प्रस्तावना : डॉ० अटल बिहारी बाजपेयी

विश्व परिप्रेक्ष्य में

धर्म सापेक्ष पंथ निरपेक्षता

डॉ० सोमनाथ शुक्ल

धर्म सापेक्ष पंथ निरपेक्षता

धर्म सापेक्ष पंथ निरपेक्षता

डॉ० सोमनाथ शुक्ल

डी० लिट०, पी-एच० डी०, एल० एल० बी०

आशीष प्रकाशन, इलाहाबाद

- पुस्तक : धर्म सापेक्ष पंथ निरपेक्षता
- लेखक : डॉ० सोमनाथ शुक्ल
- प्रकाशक : आशीष प्रकाशन,
  181/1N/10 तिलक नगर, इलाहाबाद
- संस्करण : 1996
- मूल्य : 400.00 रुपये
- शब्द सज्जा : आशीष ग्राफिक्स, रामबाग कानपुर
- मुद्रक : अजित आफसेट, रामबाग, कानपुर

प्रस्तावना

सेक्यूलरवाद की भारतीय परिकल्पना

डॉ० अटल विहारी बाजपेयी
सांसद - नेता प्रतिपक्ष

संविधान परिषद इस प्रश्न पर एक मत थी कि भारत एक "सेक्युलर" राज्य है और उसे "सेक्युलर" ही रहना चाहिए । किंतु इस सर्वसम्मति में "सेक्युलर" का स्वरूप क्या होना चाहिए, इस पर परस्पर विरोधी विचारों की कोई सीमा नहीं थी । एक छोर पर प्रो० शाह थे जिनका प्रबल मत था कि राज्य का धर्म से कोई संबंध नहीं होना चाहिए । अपनी बेबाक राय के कारण शायद प्रो० शाह परिषद में अकेले पड़ गये थे । दूसरे छोर पर प्रो० कामथ खड़े दिखाई देते हैं जो धर्म को उसके व्यापक रूप में खुले तौर पर स्वीकार करने का पुरजोर प्रतिपादन करते हैं । इन दो छोरों के बीच में अन्य सदस्य थे जो भिन्न-भिन्न कारणों से राज्य "सेक्युलर" है, होना चाहिए, इस पर बल देते हुए भी "सेक्युलर" की परिभाषा अपने-अपने ढंग से करते थे और इन परिभाषाओं में गहरी खाई होने के बावजूद यह समझते थे कि "सेक्युलर" के समर्थन में वे सब एक हैं । इस भावना से परिषद की कार्रवाई में एक लक्ष्यता आयी और देश में एक राष्ट्र की भावना को पुष्टि मिली ।

परिषद में इस प्रश्न पर आम सहमति थी कि "सेक्युलर" राज्य ईश्वर विरोधी या धर्मविरोधी नहीं होगा । श्री के०एम० मुंशी ने तो यहाँ तक कहा कि यदि संविधान की प्रस्तावना में ईश्वर को स्थान दे दिया जाय तब भी राज्य "सेक्युलर" ही रहेगा । इनके शब्दों में "सेक्युलर राज्य ईश्वर - विहीन नहीं है । वह ऐसा राज्य नहीं है जो धर्म को उखाड़ने या उसकी उपेक्षा करने के लिए संकल्पित है । वह ऐसा राज्य नहीं है जो इस देश में धार्मिक आस्था का ध्यान रखने से इंकार करता है ।" उन्होंने आगे कहा है कि, "हमें इस तथ्य को मानना चाहिए कि भारत एक धार्मिक प्रवृत्ति वाला देश है ।" "सेक्युलर" राज्य की बात करते हुए भी हमारे जीवन और चिन्तन की शैली बहुतांश में जीवन के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित है । श्री अनन्त शयनम अय्यंगार ने कहा कि परिषद के सभी सदस्य किसी न किसी धर्म में विश्वास रखते हैं । खेद का विषय यह है कि हम एक विश्व धर्म का विकास नहीं कर सके हैं इसलिए राज्य बच्चों के लिए

- पुस्तक : धर्म सापेक्ष पंथ निरपेक्षता
- लेखक : डॉ० सोमनाथ शुक्ल
- प्रकाशक : आशीष प्रकाशन,
  181/1N/10 तिलक नगर, इलाहाबाद
- संस्करण : 1996
- मूल्य : 400.00 रुपये
- शब्द सज्जा : आशीष ग्राफिक्स, रामबाग कानपुर
- मुद्रक : अजित आफसेट, रामबाग, कानपुर

प्रस्तावना
सेक्यूलरवाद की भारतीय परिकल्पना

डॉ० अटल विहारी बाजपेयी
सांसद - नेता प्रतिपक्ष

संविधान परिषद इस प्रश्न पर एक मत थी कि भारत एक "सेक्युलर" राज्य है और उसे "सेक्युलर" ही रहना चाहिए । किंतु इस सर्वसम्मति में "सेक्युलर" का स्वरूप क्या होना चाहिए, इस पर परस्पर विरोधी विचारों की कोई सीमा नहीं थी । एक छोर पर प्रो० शाह थे जिनका प्रबल मत था कि राज्य का धर्म से कोई संबंध नहीं होना चाहिए । अपनी बेबाक राय के कारण शायद प्रो० शाह परिषद में अकेले पड़ गये थे । दूसरे छोर पर प्रो० कामथ खड़े दिखाई देते हैं जो धर्म को उसके व्यापक रूप में खुले तौर पर स्वीकार करने का पुरजोर प्रतिपादन करते हैं । इन दो छोरों के बीच में अन्य सदस्य थे जो भिन्न-भिन्न कारणों से राज्य "सेक्युलर" है, होना चाहिए, इस पर बल देते हुए भी "सेक्युलर" की परिभाषा अपने-अपने ढंग से करते थे और इन परिभाषाओं में गहरी खाई होने के बावजूद यह समझते थे कि "सेक्युलर" के समर्थन में वे सब एक हैं । इस भावना से परिषद की कार्रवाई में एक लक्ष्यता आयी और देश में एक राष्ट्र की भावंना को पुष्टि मिली ।

परिषद में इस प्रश्न पर आम सहमति थी कि "सेक्युलर" राज्य ईश्वर विरोधी या धर्मविरोधी नहीं होगा । श्री के०एम० मुंशी ने तो यहाँ तक कहा कि यदि संविधान की प्रस्तावना में ईश्वर को स्थान दे दिया जाय तब भी राज्य "सेक्युलर" ही रहेगा । इनके शब्दों में "सेक्युलर राज्य ईश्वर - विहीन नहीं है । वह ऐसा राज्य नहीं है जो धर्म को उखाड़ने या उसकी उपेक्षा करने के लिए संकल्पित है । वह ऐसा राज्य नहीं है जो इस देश में धार्मिक आस्था का ध्यान रखने से इंकार करता है ।" उन्होंने आगे कहा है कि, "हमें इस तथ्य को मानना चाहिए कि भारत एक धार्मिक प्रवृत्ति वाला देश है ।" "सेक्युलर" राज्य की बात करते हुए भी हमारे जीवन और चिन्तन की शैली बहुतांश में जीवन के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित है । श्री अनन्त शयनम अय्यंगार ने कहा कि परिषद के सभी सदस्य किसी न किसी धर्म में विश्वास रखते हैं । खेद का विषय यह है कि हम एक विश्व धर्म का विकास नहीं कर सके हैं इसलिए राज्य बच्चों के लिए

धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकेगा । उन्होंने कहा कि हम सब एक ईश्वर के अस्तित्व में, प्रार्थना में, ध्यान में विश्वास करते हैं ।

आज स्वतंत्रता के लगभग चार दशक बाद "सेक्युलर" राजनीतिक वाद-विवाद का एक प्रमुख विषय बन गया है । "सेक्युलर" शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है, इस पर भी मतैक्य नहीं है । जिसे एक राजनीतिक दल "सेक्युलर" कहता है, उसे दूसरा राजनीतिक दल "नकली सेक्युलरवाद " की संज्ञा देता है। जिसे एक दल "सकारात्मक सेक्युलरवाद" कहता है, उसे दूसरा दल साम्प्रदायिकता मानता है । संसद में जो दल अपने आप को "सेक्युलर" कहते हैं, उनमें तथा ऐसे दलों में, जिसको वे "सेक्युलर" नहीं मानते हैं आये दिन नोक झोंक होती रहती है । यह आवश्यक है कि "सेक्युलरवाद" के विषय में हमारे विचार सुस्पष्ट हों । इसके लिए सेक्युलरवाद की पश्चिमी परिकल्पना और उसकी पृष्ठभूमि को पहले समझना उपयुक्त होगा ।

"द न्यू एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, माइक्रोपीडिया" खंड 9 (1978) में सेक्युलरवाद का वर्णन एक आंदोलन के रूप में किया गया है, जो पारलौकिक से इहलौकिक की ओर लक्ष्य करता है, तथा यह भी कहा गया है कि सेक्युलरवाद मध्य युग की उस प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया थी, जो मानव जीवन के क्रियाकलाप को तुच्छ समझती है तथा ईश्वर एवं इस जीवन से परे जीवन पर ध्यान केन्द्रित करती है : "इस जगत के विषयों से सम्बद्ध - - - - चर्च से सम्बद्ध नहीं ।" "चेम्बर्स, ट्वैन्टियथ सेन्चुरी डिक्शनरी" में "सेक्युलर" का प्रासंगिक अर्थ इस प्रकार दिया गया है : "प्रस्तुत जगत से सम्बद्ध या ऐसी वस्तुओं से सम्बद्ध जो आध्यात्मिक नहीं, चर्च से सम्बद्ध नहीं, धर्म से सम्बद्ध नहीं नागरिक अयाजकीय ।"

अतएव कहा जा सकता है कि सेक्युलरवाद की सारवस्तु यह है कि मानव जीवन तथा उससे सबंधित विषयों को इस जगत के संदर्भ में ही, धर्म का हवाला दिए बिना, समझना और समझाना चाहिए । इस प्रकार "सेक्युलर" का अर्थ हुआ धर्म से भिन्न या धर्मेतर या इहलौकिक । हॉलीओक को पहली बार सेक्युलरवाद शब्द का प्रयोग करने का श्रेय दिया जाता है । उन्होंने सेक्युलरवादी तथा अनीश्वरवादी में भेद किया । अनीश्वरवादी से बहुधा यह समझा जाता है कि वह न केवल ईश्वर को नहीं मानता प्रत्युत नैतिकता को भी नहीं मानता । इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि सेक्युलरवाद नैतिकता को महत्व देता है, परन्तु स्वायत्त रूप में, ईश्वर तथा धर्म से स्वतंत्र रूप में । यूरोप में सेक्युलरवाद की उत्पत्ति को पुर्नजागरण से भी संबंधित कहा जाता है । "एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज" (खंड 13-14) के अनुसार जबकि उत्तरी यूरोप के विभिन्न देशों में सुधार आन्दोलनों की सफलता ने गैरतर्कसंगत आस्था की पकड़ मजबूत की, इतालवी पुनर्जागरण के विद्वानों एवं दार्शनिकों ने तर्कसंगत जांच-पड़ताल की प्रवृत्ति को और ऊँचाई तक

पहुँचाया । प्रकृति तथा मानव जगत की प्रत्यक्ष विविधता में उनकी अथक अभिरुचि के फलस्वरूप ईश्वरपरक पारलौकिक तथा आस्थावाद की प्रतिष्ठा मंद पड़ गयी।

स्पष्टतः सेक्युलरवाद की आधुनिक धारणा का स्रोत मूलतः मध्य युग में यूरोप की स्थिति में है, जब रोमन कैथलिक चर्च का प्राधान्य था । रोमन कैथलिक चर्च के धर्माध्यक्ष पोप के पास न केवल धार्मिक सत्ता थी, प्रत्युत लौकिक सत्ता भी थी, राज्य भी था । जो कुछ विरासत में मिला था उसमें, छोटी-मोटी स्वतंत्र या अर्द्धस्वतंत्र जागीरें पोप ने भी उसी प्रकार मिला ली, जिस प्रकार अन्य राज्यों के शासकों ने मिलाई । पोप भी अन्य राजाध्यक्षों की भांति व्यवहार करते थे । उस समय चर्च नियंत्रण की एक अत्यन्त संगठित व्यवस्था थी । निरंतरता तथा परम्परा के आधार पर चर्च का मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक प्रभाव राज्यों तथा साम्राज्य की सीमाएं पार कर सारे यूरोप में फैल गया था। सम्राट से लेकर दास तक से चर्च अपने प्रति निष्ठा का दावा करता ता । साथ में समुचित दंड की धमकी भी रहती थी ।

वास्तव में आज पोप की राजनीतिक सत्ता है । वैटिकन सिटी उनका स्वतंत्र राज्य है । भारत में भी उनका राजदूत नई दिल्ली में रहता है ।

एक संगठित बल के रूप में ईसाई चर्च पश्चिम में अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर पोप इन्नोसेंट III (1198-1216) के कार्यकाल में पहुँचा, पोप ने सरलता से इंग्लैण्ड एवं फ्रांस के राजाओं को अनुशासित किया, पवित्र रोमन साम्राज्य के तीन सम्राटों को नियुक्त किया या पदच्युत किया तथा इटली का अधिकांश भाग अपनी व्यक्तिगत देख-रेख में ले लिया । उन्होंने बहुत से निर्णय लिए जो कि चर्च के कानून में ज्यों के त्यों ले लिए गये । इनके फलस्वरूप समस्त मानव जीवन चर्च के घेरे में आ गया ।

बौनीफेस - VIII (जो 1281 में पोप बने) के कार्यकाल में सबसे अधिक कटुता फ्रांस के फिलिप से झगड़े में आई । अंततः पोप के ग्रीष्म कालीन प्रासाद पर फिलिप के भेजे लोगों ने धावा बोला और यद्यपि वे पोप को बंदी बना सकते थे या और कुछ चोट पहुँचा सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और वापस भाग गये । पोप को अपनी इस बेइज्ज़ती से ऐसा धक्का लगा कि एक महीने बाद उनका रोम में देहान्त हो गया ।

पोप तथा फ्रांस के राजा फिलिप का परस्पर संघर्ष चर्च और राज्य के संघर्ष का एक विशिष्ट उदाहरण है । मूलतः प्रश्न यह था कि शासन कौन चलाएगा? देश की राजनीतिक सत्ता, राजा या कोई भी, अथवा धार्मिक सत्ता जिसका अध्यक्ष पोप था । फ्रांस और पोप के झगड़े का कुछ अध्ययन करने से इस संघर्ष के मूल स्वरूप का पता चलता है ।

फ्रांस के फिलिप तथा इंग्लैण्ड के एडवर्ड प्रथम में युद्ध चल रहा था । युद्ध के व्यय के लिए फिलिप को धन की आवश्यकता थी । उसने फ्रांस के पादरी

वर्ग से उनकी सालाना आमदनी के दसवें हिस्से की मांग की । पादरी वर्ग ने तुरंत पोप से शिकायत की तथा पोप ने एक आदेश-पत्र (बुल) जारी किया जिसमें यह घोषित किया गया कि राज्य अंसदिग्ध रूप से परम धर्म पीठ के अधीन है तथा किसी इहलौकिक शक्ति या राजा के अधिकार क्षेत्र में चर्च के लोग और उनकी सम्पत्ति नहीं आते ।

यह आदेश पत्र एडवर्ड तथा फिलिप दोनों पर लागू होता था । पर एडवर्ड ने इंग्लैण्ड के पादरी वर्ग को अपनी सालाना आमदनी का पांचवां हिस्सा देने पर मजबूर किया । धमकी दी गयी कि जिन्होंने इस नियम को नहीं माना उसकी सारी जमीन-जागीर, जिस पर एडवर्ड का सामंती अधिकार निर्विवाद था, जब्त कर ली जायेगी, तथा जिस किसी चर्च के व्यक्ति ने विरोध किया उसको बन्दी बना लिया जाएगा । यह भी महत्वपूर्ण है कि एडवर्ड ने जो कुछ किया उसके लिए देश के जनसाधारण अथवा अयाजक वर्ग का पूर्ण समर्थन प्राप्त था ।

परन्तु फ्रांस में बात आगे चली । पोप के आदेश - पत्र के उत्तर स्वरूप फिलिप ने किसी भी विदेशी के फ्रांस में प्रवेश पर रोक लगा दी । इसका अर्थ यह हुआ कि पोप के दूत अथवा अधिकारी फ्रांस नहीं आ सकते थे । तथा अंग्रेज भी नहीं आ सकते थे। इसके बाद फिलिप ने सोना, चाँदी या फौज के किसी सामान को फ्रांस से निर्यात करने पर रोक लगा दी । इससे पोप को इन वस्तुओं की सप्लाई पर रोक लग गयी, और ऐसे स्रोत से आने वाली सप्लाई जो एक महत्वपूर्ण स्रोत था ।

पोप ने समाधानात्मक रुख अपनाया । परन्तु फिलिप ने कुछ महीनों के अन्दर एक गुमनाम पत्रिका में अपनी स्थिति स्पष्ट की । इस पुस्तिका में स्पष्ट रूप से इस सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया कि इहलौकिक राजा का शासन पुरोहित वर्ग के इस दावे के पहले का है कि जनसाधारण अथवा अयाजक वर्ग पर पुरोहिती नियंत्रण होना चाहिए। इस के विपरीत पुस्तिका के अनुसार, पुरोहित वर्ग का समस्त इहलौकिक मामलों में अयाजकीय (टैम्पोरल) शासकों की आज्ञा का पालन करना चाहिए । पुस्तिका में कहा गया है कि पुरोहित वर्ग, जनसाधारण की भाँति, राज्य का एक हिस्सा है और जो कोई भी राज्य की सहायता करने से इन्कार करता है, वह व्यर्थ है ।

लगभग एक वर्ष तक शांति रही । पर कुछ दिन बाद संघर्ष फिर चल पड़ा । पोप ने एक आदेश - जारी किया, जिसमें फिलिप को चेतावनी दी गयी है कि "मेरे प्रिय पुत्र किसी के समझाने से यह न समझ लेना कि इस पृथ्वी पर कोई हम से वरिष्ठ नहीं है, और तुम चर्च संबंधी तंत्र के सर्वोच्च प्रधान के अधीन नहीं हो ।" यह आदेश-पत्र फिलिप को पढ़कर सुनाया गया । उसके संगी साथी इस पर बहुत क्रोधित हुए कि उनके राजा जो स्वयं चाहें वह करने को स्वतंत्र नहीं है ।

फिलिप ने फ्रांस के पुरोहित वर्ग, सामंत वर्ग और मध्य वर्ग के प्रतिनिधि, इन तीनों की एक मीटिंग बुलाई और इस प्रकार एक मंच का प्रबंध कर दिया, जिस पर से फिलिप के एक सलाहकार ने फ्रांस की राष्ट्रीय भावना को एक वाग्मितापूर्ण अपील की । पोप के आदेश-पत्र के उत्तर में कहा गया है कि हम इहलौकिक मामलों में किसी की अधीनता स्वीकार नहीं करते । इस पर जोर दिया गया कि क्या कुछ हमारा है, क्योंकि वह हमारे मुकुटधारी राजा के अधिकार में आता है । पोप बोनीफेस के लिए अपमानजनक भाषा का प्रयोग किया गया, जैसे "जो अपने आप को पोप कहता है" और "उसको कोई अभिवादन नहीं" महत्वपूर्ण बात यह है कि तीनों वर्ग जिनकी मीटिंग का उल्लेख हो चुका है, राजा के साथ थे । फ्रांसीसी राष्ट्रीय भावना जागृत हो गयी थी या कर दी गयी थी ।

पोप ने रोम में धर्म सभाओं के सामने एक आदेश पत्र प्रस्तुत किया जिसमें सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित रूप में कहा गया था कि प्रत्येक अयाजकीय शासक पोप के अधीन है । यह भी कहा गया था कि हमारा मानना है कि केवल एक पवित्र एवं प्रेरक कैथलिक चर्च है जिसके बाहर मुक्ति नहीं है और न पाप की माफी है। आगे कहा गया है कि चर्च के पास दो तलवारें हैं, एक आध्यात्मिक जो पुरोहित के साथ में है, और दूसरी इहलौकिक अथवा भौतिक जो राजाओं और सैनिकों के हाथ में होती है । परन्तु इस दूसरी तलवार का उपयोग पुरोहित की सहमति से करना चाहिए । हम यह घोषित करते हैं कि मुक्ति के हेतु यह सर्वथा आवश्यक है कि प्रत्येक मानव रोम के धर्माध्यक्ष के अधीन रहे ।

फ्रांस के राजा को जब इस घोषणा का पता चला तो उसने देश भर में वक्ता भेजे जिन्होंने लम्पट एवं अपव्ययी पोप की अधीनता से फ्रांस के लोगों के स्वतंत्र होने का पक्ष प्रस्तुत किया । बड़ी चतुराई से फ्रांसीसी लोगों की राष्ट्रीय भावना की अपील की गयी और लोगों की एक समान प्रतिक्रिया राजा के अनुकूल थी । राजा के मित्रों को पता था कि पोप फिलिप को धर्म से बहिष्कृत कर देगा । बहिष्करण का आदेश पत्र 8 सितम्बर को प्रकाशित होने वाला था । 7 तारीख को पोप के ग्रीष्म प्रसाद पर आक्रमण हो गया जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चर्च और राज्य के संघर्ष में राष्ट्रीयता की भावना ने काम किया । इसका संबंध राष्ट्रीय राज्यों (नेशन स्टेट) उदय से है, जो इस समय के यूरोप की एक महत्वपूर्ण घटना है । फिलिप और पोप के संघर्ष के अध्ययन में हमने पाया कि फिलिप पोप को इसलिए हरा सका कि फ्रांसीसी लोगों का समर्थन उसको प्राप्त था । यही बात इंग्लैड के एडवर्ड के पोप तथा चर्च के लोगों के विरुद्ध जाने या उनकी उपेक्षा करने में सफल होने के विषय में भी कही जा सकती है । अतः राष्ट्रीय राज्यों का उदय एक सेक्युलरवादी परिवर्धन था ।

पोप का दृष्टिकोण यह था कि समस्त ईसाई, देशों पर उसका नियंत्रण है, क्योंकि ईसाई धर्म, को मानने वालों के लिए उसकी सर्वोच्च सत्ता है, राष्ट्रीय राज्यों का अधिकार क्षेत्र राज्य की सीमा तक सीमित था क्योंकि राज्य का अध्यक्ष राजा या कोई और राजनीतिक सत्ता होती थी । पोप का अधिकार क्षेत्र देशों की सीमाओं से परे तक माना जाता था क्योंकि उसकी सत्ता का स्वरूप धार्मिक था। राज्य के अध्यक्ष का अधिकार क्षेत्र देश की समस्त जनता अथवा नागरिकों तक माना जाता पर क्योंकि उसकी सत्ता इहलौकिक थी तथा देश के सब नागरिक चाहे उनका धर्म, कोई हो, उस क्षेत्र में आते थे । इस प्रकार पोप अथवा चर्च का स्वरूप धार्मिक था तथा राज्य का स्वरूप "सेक्युलर" अथवा "धर्मेतर" था ।

जहाँ तक भारत का संबंध है, यहाँ इहलौकिक अथवा राजनीतिक सत्ता की प्रमुखता के विरुद्ध होने का प्रश्न नहीं था, चाहे राजनीतिक सत्ता राजतंत्रीय हो या धनिकतंत्रीय हो, गुटतंत्रीय हो या गणतंत्रीय हो । राज्य की इहलौकिक अथवा राजनीतिक शक्ति आचार्यों की शिक्षा के फलस्वरूप संतुलित रहती थी । यह संतुलन नैतिक तथा सार्वजनिक दृष्टिकोण अपनाने से प्राप्त होता है । हमारे देश में धर्माचार्यों के शासन की नहीं प्रत्युत अनुशासन की परंपरा रही है ।

राजनीतिक व्यवस्था की प्रमुखता स्वीकार करते हुए भी भारतीय राजनीतिक सिद्धान्त स्वेच्छाचारी तानाशाही का अनुमोदन नहीं करता । राजनीतिक सत्ता पर कुछ अंकुश रखना आवश्यक है । यह अंकुश नियम या विधि (ला) का होगा । वैदिक काल में ही विधि या नियम (ला) को महत्वपूर्ण माना गया । वैदिक काल में ऋतु की धारणा के मूल में विधि या नियम (ला) की धारणा ही है जिसके अनुसार समस्त विश्व चलता है । ऋग्वेद में कहा गया है कि - "नियम (ला) के आधार पर पृथ्वी दृढ़ रहती है, नियम (ला) के आधार पर सूर्य, आकाश में स्थिर रहता है ।" इसी प्रकार राज्य को भी नियमों के अनुसार ही चलना है । ये नियम धर्म की धारणा के मूल में हैं । धर्म के अनुसार चलकर ही राज्य नागरिकों का नैतिक तथा भौतिक शुभ निश्चित कर सकता है ।

यद्यपि धर्म का अर्थ बहुधा वही समझा जाता है जो "रिलीजन" का, पर वास्तव में "धर्म" शब्द का प्रयोग भारतीय चिन्तन में अधिक व्यापक और अनेक अर्थों में हुआ है । धर्म शब्द के मूल में "धृ" धातु है जिसका संबंध धारण करने से है । अस्तु, यह कहा जा सकता है कि जो जिसका वास्तविक रूप है उसे बनाये रखने और उस पर बल देने में जो सहायक हो वही उसका धर्म है । धर्म वस्तु और व्यक्ति में सदा रहने वाली सहज वृत्ति, उसके स्वभाव, उसकी प्रकृति अथवा गुण को सूचित करता है । धर्म कर्तव्य के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । इस अर्थ में धर्म का सामाजिक संदर्भ महत्वपूर्ण है । धर्म उन व्यवस्थाओं अथवा नियमों के समुच्चय का नाम है जो व्यक्ति को, समाज को, मानव जीवन के विभिन्न

अंगों को धारण किये रहता है और इसलिए धर्म का कहा जाता है । भारतीय परंपरा में आचरण को धर्म का सबसे महत्वपूर्ण अंग माना गया है, धर्म में विश्वास एवं विचार की बहुत स्वतंत्रता है । परन्तु, जब तक आप अपने धर्म का पालन करते हैं, या आप वह आचरण करते हैं जो आप का धर्म है, तब तक आप सही रास्ते पर हैं ।

धर्म और रिलीजन के अन्तर को हमें समझना चाहिए । रिलीजन का संबंध कुछ निश्चित आस्थाओं से होता है । जब तक व्यक्ति उनको मानता है वह उस "रिलीजन" या "मजहब" का सदस्य बना रहता है । ज्यों ही वह उन आस्थाओं को छोड़ता है वह उस "रिलीजन" से बहिष्कृत हो जाता है । धर्म केवल आस्थाओं पर आधारित नहीं है । किसी धार्मिक आस्था में विश्वास न रखने वाला व्यक्ति भी धार्मिक अर्थात् सद्गुणी हो सकता है । धर्म वस्तुतः जीने का तरीका है । वह आस्थाओं से अधिक जीने की प्रक्रिया पर आधारित है । धर्म के साथ विशेषण जोड़ने की परिपाटी नयी है । धर्म न देश से बंधा है, न काल से । न वह किसी सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित है । धर्म जब किसी सम्प्रदाय से जुड़ जाता है तब वह "रिलीजन" का रूप ग्रहण कर लेता है । धर्म जब संस्थागत धर्म बन जाता है, तब वह "रिलीजन" हो जाता है ।

विद्वानों ने धर्म के दो रूप किये हैं एक सामान्य धर्म, दूसरा विशेष धर्म। मनुस्मृति में धर्म के जिन दस लक्षणों का उल्लेख है धैर्य, क्षमा, दया, अस्तेय, शुचिता, इंदिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अहिंसा, इन सबका संबंध आचरण से है । महाभारत के शांतिपर्व में भी इस बात पर बल देते हुए कहा गया है कि मनुष्य सत्य बोले, दान दे, तप करे, शुचि हो, संतोष रखे, उसमें लोकलाज हो, क्षमाशीलता हो, व्यवहार में सीधापन हो, ज्ञानपूर्वक कार्य करे, शांति हो, दया हो, ध्यान एकाग्र करने की शक्ति और प्रवृत्ति हो ।

महाभारत के अनुसार तपस्या के घमण्ड से ग्रस्त ब्राह्मण को धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए एक मांस विक्रेता के पास जाना पड़ा था । महाभारत में ही युधिष्ठिर ने कहा था कि कौन ऊँचा है, कौन नीचा है, इसका निर्णय केवल उसके शील से हो सकता है ।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है - धर्म शासक का शासक है, तथा धर्म में प्रभु सत्ता निहित है । महाभारत में भी इसका प्रमाण मिलता है कि शासक धर्म के अधीन है । राज्याभिषेक के समय शासक को शपथ दिलाई जाती थी तथा उसे धर्म का पालन करने और कभी स्वेच्छाचारिता से काम न करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी ।

रामायण के अरण्यकांड में मुनियों ने श्री रामचन्द्र जी को उपदेश देते हुए कहा है :

पोप का दृष्टिकोण यह था कि समस्त ईसाई, देशों पर उसका नियंत्रण है, क्योंकि ईसाई धर्म, को मानने वालों के लिए उसकी सर्वोच्च सत्ता है, राष्ट्रीय राज्यों का अधिकार क्षेत्र राज्य की सीमा तक सीमित था क्योंकि राज्य का अध्यक्ष राजा या कोई और राजनीतिक सत्ता होती थी । पोप का अधिकार क्षेत्र देशों की सीमाओं से परे तक माना जाता था क्योंकि उसकी सत्ता का स्वरूप धार्मिक था। राज्य के अध्यक्ष का अधिकार क्षेत्र देश की समस्त जनता अथवा नागरिकों तक माना जाता पर क्योंकि उसकी सत्ता इहलौकिक थी तथा देश के सब नागरिक चाहे उनका धर्म, कोई हो, उस क्षेत्र में आते थे । इस प्रकार पोप अथवा चर्च का स्वरूप धार्मिक था तथा राज्य का स्वरूप "सेक्युलर" अथवा "धर्मेतर" था ।

जहाँ तक भारत का संबंध है, यहाँ इहलौकिक अथवा राजनीतिक सत्ता की प्रमुखता के विरुद्ध होने का प्रश्न नहीं था, चाहे राजनीतिक सत्ता राजतंत्रीय हो या धनिक तंत्रीय हो, गुटतंत्रीय हो या गणतंत्रीय हो । राज्य की इहलौकिक अथवा राजनीतिक शक्ति आचार्यों की शिक्षा के फलस्वरूप संतुलित रहती थी । यह संतुलन नैतिक तथा सार्वजनिक दृष्टिकोण अपनाने से प्राप्त होता है । हमारे देश में धर्माचार्यों के शासन की नहीं प्रत्युत अनुशासन की परंपरा रही है ।

राजनीतिक व्यवस्था की प्रमुखता स्वीकार करते हुए भी भारतीय राजनीतिक सिद्धान्त स्वेच्छाचारी तानाशाही का अनुमोदन नहीं करता । राजनीतिक सत्ता पर कुछ अंकुश रखना आवश्यक है । यह अंकुश नियम या विधि (ला) का होगा । वैदिक काल में ही विधि या नियम (ला) को महत्वपूर्ण माना गया । वैदिक काल में ऋतु की धारणा के मूल में विधि या नियम (ला) की धारणा ही है जिसके अनुसार समस्त विश्व चलता है । ऋग्वेद में कहा गया है कि - "नियम (ला) के आधार पर पृथ्वी दृढ़ रहती है, नियम (ला) के आधार पर सूर्य, आकाश में स्थिर रहता है ।" इसी प्रकार राज्य को भी नियमों के अनुसार ही चलना है । ये नियम धर्म की धारणा के मूल में हैं । धर्म के अनुसार चलकर ही राज्य नागरिकों का नैतिक तथा भौतिक शुभ निश्चित कर सकता है ।

यद्यपि धर्म का अर्थ बहुधा वही समझा जाता है जो "रिलीजन" का, पर वास्तव में "धर्म" शब्द का प्रयोग भारतीय चिन्तन में अधिक व्यापक और अनेक अर्थों में हुआ है । धर्म शब्द के मूल में "धृ" धातु है जिसका संबंध धारण करने से है । अस्तु, यह कहा जा सकता है कि जो जिसका वास्तविक रूप है उसे बनाये रखने और उस पर बल देने में जो सहायक हो वही उसका धर्म है । धर्म वस्तु और व्यक्ति में सदा रहने वाली सहज वृत्ति, उसके स्वभाव, उसकी प्रकृति अथवा गुण को सूचित करता है । धर्म कर्तव्य के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । इस अर्थ में धर्म का सामाजिक संदर्भ महत्वपूर्ण है । धर्म उन व्यवस्थाओं अथवा नियमों के समुच्चय का नाम है जो व्यक्ति को, समाज को, मानव जीवन के विभिन्न

अंगों को धारण किये रहता है और इसलिए धर्म का कहा जाता है । भारतीय परंपरा में आचरण को धर्म का सबसे महत्वपूर्ण अंग माना गया है, धर्म में विश्वास एवं विचार की बहुत स्वतंत्रता है । परन्तु, जब तक आप अपने धर्म का पालन करते हैं, या आप वह आचरण करते हैं जो आप का धर्म है, तब तक आप सही रास्ते पर हैं ।

धर्म और रिलीजन के अन्तर को हमें समझना चाहिए । रिलीजन का संबंध कुछ निश्चित आस्थाओं से होता है । जब तक व्यक्ति उनको मानता है वह उस "रिलीजन" या "मजहब" का सदस्य बना रहता है । ज्यों ही वह उन आस्थाओं को छोड़ता है वह उस "रिलीजन" से बहिष्कृत हो जाता है । धर्म केवल आस्थाओं पर आधारित नहीं है । किसी धार्मिक आस्था में विश्वास न रखने वाला व्यक्ति भी धार्मिक अर्थात् सद्गुणी हो सकता है । धर्म वस्तुतः जीने का तरीका है । वह आस्थाओं से अधिक जीने की प्रक्रिया पर आधारित है । धर्म के साथ विशेषण जोड़ने की परिपाटी नयी है । धर्म न देश से बंधा है, न काल से । न वह किसी सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित है । धर्म जब किसी सम्प्रदाय से जुड़ जाता है तब वह "रिलीजन" का रूप ग्रहण कर लेता है । धर्म जब संस्थागत धर्म बन जाता है, तब वह "रिलीजन" हो जाता है ।

विद्वानों ने धर्म के दो रूप किये हैं एक सामान्य धर्म, दूसरा विशेष धर्म। मनुस्मृति में धर्म के जिन दस लक्षणों का उल्लेख है धैर्य, क्षमा, दया, अस्तेय, शुचिता, इंदिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, अहिंसा, इन सबका संबंध आचरण से है । महाभारत के शांतिपर्व में भी इस बात पर बल देते हुए कहा गया है कि मनुष्य सत्य बोले, दान दे, तप करे, शुचि हो, संतोष रखे, उसमें लोकलाज हो, क्षमाशीलता हो, व्यवहार में सीधापन हो, ज्ञानपूर्वक कार्य करे, शांति हो, दया हो, ध्यान एकाग्र करने की शक्ति और प्रवृत्ति हो ।

महाभारत के अनुसार तपस्या के घमण्ड से ग्रस्त ब्राह्मण को धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए एक मांस विक्रेता के पास जाना पड़ा था । महाभारत में ही युधिष्ठर ने कहा था कि कौन ऊँचा है, कौन नीचा है, इसका निर्णय केवल उसके शील से हो सकता है ।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है - धर्म शासक का शासक है, तथा धर्म में प्रभु सत्ता निहित है । महाभारत में भी इसका प्रमाण मिलता है कि शासक धर्म के अधीन है । राज्याभिषेक के समय शासक को शपथ दिलाई जाती थी तथा उसे धर्म का पालन करने और कभी स्वेच्छाचारिता से काम न करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी ।

रामायण के अरण्यकांड में मुनियों ने श्री रामचन्द्र जी को उपदेश देते हुए कहा है :

अधर्मः सुमहात्ताथ भवेत तस्य तु भूपतेः ।
यो हरेत बलिषडभागं न च रक्षति पुत्रवत् ॥

अर्थात् "उस राजा का महान अधर्म होता है, जो प्रजा से कर तो लेता है, पर उसकी पुत्र के समान रक्षा नहीं करता है ।"

भागवत् में इसी भाव को दूसरे शब्दों में प्रकट किया गया है ।

"आपत्तियों से जिस प्रकार पिता पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार राजा भी प्रजा की रक्षा करे । "

"आपस्तम्ब" धर्म सूत्र में लिखा है :

राजा के राज्य में कोई भूख से, व्याधिजनित अकाल मृत्यु से, ठंड और गर्मी से न मरे । लोगों को महामारी और अकाल से बचाना राजा का धर्म है ।

प्राचीन शास्त्रों के अनुसार राजा के धर्म का विस्तार से वर्णन करने का अर्थ यह स्पष्ट करना ही है कि "धर्म" का मुख्य आशय कर्म से है । अपने कर्तव्य (कर्म) की उपेक्षा या उसका उल्लंघन करके कोई धर्म का पालन नहीं कर सकता ।

सेक्युलरवाद के संबंध में पश्चिमी और भारतीय अवधारणाओं की चर्चा से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि यूरोपीय सेक्युलरवाद धर्म से भिन्न एवं इहलौकिक है, जबकि आम भारतीय इस जीवन से परे जीवन की बात सहज स्वाभाविक ढंग से करता है ।

हमारी बहुत प्राचीन धार्मिक एवं आध्यात्मिक परम्परा है । इस परम्परा का भारतीय मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा है, यद्यपि यह सत्य है कि भारतीय दर्शन के इतिहास में जड़वाद तथा निरीश्वरवाद जैसे सम्प्रदायों की भी भूमिका रही है ।

महात्मा गांधी ने धर्म के प्रति सही दृष्टिकोण को "सर्वधर्म समभाव" कहा, अर्थात् सब धर्मो को बराबर आदर देना । "सर्वधर्म समभाव" का सिद्धान्त यूरोपीय धर्मेतर सेक्युलरवाद के सिद्धान्त से भिन्न है । वास्तव में गांधी जी का "सर्वधर्म समभाव" का सिद्धान्त सुप्रसिद्ध वैदिक उक्ति "एकं सद्विप्रा बहुधा वदंति" की परम्परा को जारी रखता है । "सर्वधर्म समभाव" को हम सेक्युलरवाद की भारतीय परिकल्पना कह सकते हैं ।" सर्वधर्म समभाव" प्राचीन भारत की परम्परा में निहित उदारता एवं सहिष्णुता का द्योतक है । गांधी जी ने "सर्वधर्म समभाव" को बहुत महत्व दिया और उसे अपने ब्रतों में सम्मिलित किया । हमारे स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव भी इसी दिशा में हुआ । हमारा उद्देश्य औपनिवेशिक शासन से छुटकारा तथा लोकतंत्र की स्थापना था । लोकतंत्र मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति का एक वोट है । इस प्रकार राज्य की सरकार बनाने में प्रत्येक नागरिक का योगदान समान है । वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो ।

"सर्वधर्म समभाव" किसी धर्म के विरुद्ध नहीं है । यह सब धर्मों को बराबर आदर देने के पक्ष में है । अतएव कहा जा सकता है कि सेक्युलरवाद की भारतीय परिकल्पना अधिक सकारात्मक है । विशेषकर भारत के लिए यह अधिक उपयुक्त है, क्योंकि यहाँ इस्लाम और ईसाई धर्म के आगमन के पहले से अनेक धर्मों के मानने वाले रहते आए हैं । "सेक्युलर" का अनुवाद "धर्मनिरपेक्ष" किये जाने के कारण भ्रम पैदा हुआ । एक तो धर्म निरपेक्ष के अर्थ में कुछ निषेधात्मक तत्व प्रतीत हुआ है । दूसरे धर्मनिरपेक्ष होना धर्म के प्रति उदासीन होना माना गया । भारतीय समाज मूलतः धार्मिक आस्था पर आधारित एक समाज है ।

संविधान के निर्माण के एक दशक के बाद नेहरू जी को यह बात कुछ खटकी । उन्होंने 1961 में रघुनाथ सिंह, एम०पी० की पुस्तक "धर्म निरपेक्ष राज्य" की प्रस्तावना में लिखा कि - शायद "धर्मनिरपेक्ष" शब्द अंग्रेजी के "सेक्युलर" शब्द का भाव ठीक तरह से व्यक्त नहीं करता । कुछ लोग यह समझते हैं कि यह धर्म के खिलाफ कोई बात है । जाहिर है कि ऐसा समझना गलत है । इसका मतलब यह है कि यह एक ऐसा राज्य है जो सब धर्मों और मजहबों का एक सा आदर करता है । इस प्रकार नेहरू जी ने भी "सर्वधर्म समभाव" का समर्थन किया । नेहरू जी की शिक्षा दीक्षा तथा पालन-पोषण की पृष्ठभूमि आधुनिक अथवा पाश्चात्य थी । भारत के लिए उनका आदर्श एक ऐसा समाज था, जो अपनी सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का समाधान करने हेतु विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का पूरी तरह प्रयोग करे ।

परन्तु अपनी आधुनिकता के बावजूद वह अपने प्राचीन से संबंध विच्छेद नहीं करना चाहते थे । अपनी वसीयत (बिल एंड टैस्टामेंट) में उन्होंने कहा कि "मुझे उस महान विरासत पर गर्व है जो हमारी रही है और है तथा मुझे बोध है कि हम सब की भांति मैं भी उस अखंडित श्रृंखला की एक कड़ी हूँ जो भारत के स्मरणातीत भूतकाल में इतिहास के आरम्भ तक जाती है । वह श्रृंखला मैं तोडूंगा नहीं क्योंकि मैं इसे बहुमूल्य समझता हूँ और इससे प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न करता हूँ ।"

"आप मुसलमान हैं और मैं हिन्दू हूँ । हम भिन्न धार्मिक आस्थाओं का अनुसरण कर सकते हैं या किसी भी धर्म का अनुसरण न करें पर इससे हमारी सांस्कृतिक विरासत वही रहेगी । उतनी ही आपकी जितनी मेरी है ।"

अब हम इसकी चर्चा करेंगे कि हमारा संविधान किस सीमा तक ऐसे राज्य की स्थापना करता है जो सेक्युलरवाद अथवा "सर्वधर्म समभाव" पर आधारित है । संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, और 25 "सर्वधर्म समभाव" का प्रतिपादन करते हैं । अनुच्छेद 14 में भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से राज्य द्वारा वंचित न किये जाने की

व्यवस्था है । अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा । अनुच्छेद 16 में सारे नागरिकों को समता की व्यवस्था राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों के लिए की गयी है । अनुच्छेद 25 सभी व्यक्तियों को अंतः करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबद्ध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार देता है । वास्तव में संविधान की उद्देशिका (प्रीएम्बल) में प्रतिष्ठा (स्टेटस्) एवं अवसर की समता सम्मिलित है तथा यह भी कहा गया है कि भारत के सब नागरिकों को यह समता प्राप्त करानी है ।

संविधान धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध और कानून के समक्ष बराबरी और विधियों के समान संरक्षण की व्यवस्था करता है । साथ ही वह प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता सभी नागरिकों, फिर वे किसी भी धर्म के हों, प्राप्त कराने की गारंटी देता है । इस स्थिति में यदि संविधान के निर्माताओं ने यह सोचा हो कि उद्देशिका में अलग से "सेक्युलर" शब्द को सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है तो यह बात समझ में आती है ।

किन्तु संविधान बनने के 25 वर्ष बाद एक संशोधन के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में "धर्मनिरपेक्ष" शब्द जोड़ने का फैसला किया गया । उन दिनों देश में आपातस्थिति लागू थी । लोक सभा का 5 साल का कार्यकाल समाप्त हो चुका था और वह एक वर्ष का बढ़ाया हुआ कार्यकाल जी रही थी । विरोधी दलों के अधिकांश प्रमुख नेता नजरबंद थे । सत्ता पक्ष के कुछ नेताओं को भी विरोध के जुर्म में जेल में बन्द कर दिया गया था । प्रेस पर सेंसरशिप लागू थी । अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश था। संसद में इस आशय की शिकायतें की गयी थी कि संविधान संशोधन पर चर्चा के लिए जिन सभाओं और बैठकों का आयोजन हुआ था, उनके लिए भी प्रशासन द्वारा इजाजत नहीं दो गयी । विधि मंत्री श्री गोखले ने यह कहकर सरकार का बचाव करने का प्रयत्न किया कि वे बैठकें किसी और उद्देश्य से बुलायी गयी थी ।

संविधान संशोधन का उद्देश्य उनकी प्रस्तावना में केवल कुछ नये शब्द जोड़ने का नहीं था । विधेयक के साथ "उद्देश्यों और कारणों" का जो कथन संलग्न था उसके अनुसार शासन का "उद्देश्य देश में सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति लाना रहा है ।" किन्तु क्रान्ति के मार्ग में जो बाधाएं हैं उनको दूर करने के लिए संविधान में संशोधन जरूरी है सरकार के अनुसार - "स्वार्थी तत्व अपने स्वार्थ के लिए सार्वजनिक अहित करने में लगे हुए हैं ।"

यह सभी जानते हैं कि संविधान संशोधन का उद्देश्य नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकारों पर प्राथमिकता देना, संविधान में संशोधन करने की संसद की इच्छा को सर्वोपरि बनाना और किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने के न्यायपालिका के अधिकार में कटौती करना था ।

यद्यपि विधि मंत्री श्री गोखले ने लोकसभा में संशोधन विधेयक पेश करते हुए यह कहा कि समाजवाद और सेक्युलरवाद का समावेश शब्दों का खेल नहीं है, किन्तु उन्होंने इन दोनों को समाविष्ट करने की आवश्यकता पर प्रकाश नहीं डाला । ध्यान देने की बात यह है कि समाजवाद और सेक्युलरवाद दोनों का उल्लेख एक ही सांस में किया गया । उनकी न तो पृथक चर्चा की गयी और न उन्हें परिभाषित करने का ही प्रयत्न हुआ । उन्होंने यह भी पूछा कि क्या कोई यह भी कह सकता है कि समाजवाद और सेक्युलरवाद की व्याख्या नहीं की जा सकती । फिर अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि परिभाषा तो लोकतंत्र की भी नहीं की जा सकती क्योंकि अलग-अलग देशों में उसका अलग-अलग अर्थ लगाया जाता है, किन्तु हम जानते हैं कि इन दो वादों का क्या अर्थ है ।

इस संबंध में लोक सभा में जो बहस हुई उसमें भी अनेक सदस्यों ने यह प्रश्न पूछा था कि आखिर सेक्युलरवाद को लाने की आवश्यकता क्या है ? कम्युनिस्ट पार्टी के श्री इन्द्रजीत गुप्त ने तो यहाँ तक कहा कि भारत सेक्युलरवादीलोकतंत्र ही है । सभी धर्मावलम्बियों को, यहाँ तक कि धर्म को न मानने वाले को भी राज्य समान आदर और अधिकार देता है । फिर उन्होंने पूछा कि सेक्युलरवाद को संविधान में लाने का एक ही अर्थ निकाला जा सकता है कि हम लोकतंत्र के सेक्युलरवादी स्वरूप को अधिक दृढ़ करना चाहते हैं और यह कि हम सभी धर्मों को मानने वालों को यह आश्वासन देना चाहते हैं कि हम संविधान के सेक्युलरवादी तत्व को और भी बलशाली करेंगे । उन्होंने यह भी कहा कि भारत अपने अन्य पड़ोसियों की तरह एक मजहबी या धार्मिक राज्य नहीं है । उन्होंने इस पर बल दिया कि सरकार बताये कि यह सेक्युलरवाद का समावेश करके विभिन्न मतावलम्बियों विशेषकर अल्पसंख्यकों को क्या आश्वासन देना चाहती है ।

जिन सदस्यों ने भारत को सेक्युलर घोषित करने का समर्थन किया उन्होंने भी "सेक्युलर" को उसके शब्दकोषीय अर्थ से पृथक करके देखने का आग्रह किया । सबसे उल्लेखनीय भाषण सरदार स्वर्ण सिंह का हुआ । वे संविधान संशोधन के संबंध में बनी सरकारी समिति के अध्यक्ष थे । उन्होंने अपने भाषण में स्पष्ट कहा कि हमारा "सेक्युलर" शब्दकोष के "सेक्युलर" से भिन्न है, दोनों समानार्थी नहीं हैं । उन्होंने यहाँ तक कहा कि शब्दकोष का सेक्युलर जहाँ तक कि मेरा प्रश्न है, बहुत अधिक प्रशंसनीय परिकल्पना नहीं है । फिर उन्होंने यूरोप में चर्च और राज्यों के बीच हुए संघर्ष का उल्लेख करते हुए कहा कि पश्चिम का "सेक्युलर" इस पृष्ठभूमि के कारण हमें स्वीकार नहीं है । उन्होंने यह भी

व्यवस्था है । अनुच्छेद 15 के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा । अनुच्छेद 16 में सारे नागरिकों को समता की व्यवस्था राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से संबंधित विषयों के लिए की गयी है । अनुच्छेद 25 सभी व्यक्तियों को अंतः करण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबद्ध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार देता है । वास्तव में संविधान की उद्देशिका (प्रीएम्बल) में प्रतिष्ठा (स्टेटस्) एवं अवसर की समता सम्मिलित है तथा यह भी कहा गया है कि भारत के सब नागरिकों को यह समता प्राप्त करानी है ।

संविधान धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध और कानून के समक्ष बराबरी और विधियों के समान संरक्षण की व्यवस्था करता है । साथ ही वह प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता सभी नागरिकों, फिर वे किसी भी धर्म के हों, प्राप्त कराने की गारंटी देता है । इस स्थिति में यदि संविधान के निर्माताओं ने यह सोचा हो कि उद्देशिका में अलग से " सेक्युलर" शब्द को सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है तो यह बात समझ में आती है ।

किन्तु संविधान बनने के 25 वर्ष बाद एक संशोधन के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में " धर्मनिरपेक्ष" शब्द जोड़ने का फैसला किया गया । उन दिनों देश में आपातस्थिति लागू थी । लोक सभा का 5 साल का कार्यकाल समाप्त हो चुका था और वह एक वर्ष का बढ़ाया हुआ कार्यकाल जी रही थी । विरोधी दलों के अधिकांश प्रमुख नेता नजरबंद थे । सत्ता पक्ष के कुछ नेताओं को भी विरोध के जुर्म में जेल में बन्द कर दिया गया था । प्रेस पर सेंसरशिप लागू थी । अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश था। संसद में इस आशय की शिकायतें की गयी थी कि संविधान संशोधन पर चर्चा के लिए जिन सभाओं और बैठकों का आयोजन हुआ था, उनके लिए भी प्रशासन द्वारा इजाजत नहीं दी गयी । विधि मंत्री श्री गोखले ने यह कहकर सरकार का बचाव करने का प्रयत्न किया कि वे बैठकें किसी और उद्देश्य से बुलायी गयी थी ।

संविधान संशोधन का उद्देश्य उनकी प्रस्तावना में केवल कुछ नये शब्द जोड़ने का नहीं था । विधेयक के साथ " उद्देश्यों और कारणों" का जो कथन संलग्न था उसके अनुसार शासन का " उद्देश्य देश में सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति लाना रहा है ।" किन्तु क्रान्ति के मार्ग में जो बाधाएं हैं उनको दूर करने के लिए संविधान में संशोधन जरूरी है सरकार के अनुसार - " स्वार्थी तत्व अपने स्वार्थ के लिए सार्वजनिक अहित करने में लगे हुए हैं ।"

यह सभी जानते हैं कि संविधान संशोधन का उद्देश्य नीति निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकारों पर प्राथमिकता देना, संविधान में संशोधन करने की संसद की इच्छा को सर्वोपरि बनाना और किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने के न्यायपालिका के अधिकार में कटौती करना था ।

यद्यपि विधि मंत्री श्री गोखले ने लोकसभा में संशोधन विधेयक पेश करते हुए यह कहा कि समाजवाद और सेक्युलरवाद का समावेश शब्दों का खेल नहीं है, किन्तु उन्होंने इन दोनों को समाविष्ट करने की आवश्यकता पर प्रकाश नहीं डाला । ध्यान देने की बात यह है कि समाजवाद और सेक्युलरवाद दोनों का उल्लेख एक ही सांस में किया गया । उनकी न तो पृथक चर्चा की गयी और न उन्हें परिभाषित करने का ही प्रयत्न हुआ । उन्होंने यह भी पूछा कि क्या कोई यह भी कह सकता है कि समाजवाद और सेक्युलरवाद की व्याख्या नहीं की जा सकती । फिर अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि परिभाषा तो लोकतंत्र की भी नहीं की जा सकती क्योंकि अलग-अलग देशों में उसका अलग-अलग अर्थ लगाया जाता है, किन्तु हम जानते हैं कि इन दो वादों का क्या अर्थ है ।

इस संबंध में लोक सभा में जो बहस हुई उसमें भी अनेक सदस्यों ने यह प्रश्न पूछा था कि आखिर सेक्युलरवाद को लाने की आवश्यकता क्या है ? कम्युनिस्ट पार्टी के श्री इन्द्रजीत गुप्त ने तो यहाँ तक कहा कि भारत सेक्युलरवादीलोकतंत्र ही है । सभी धर्मावलम्बियों को, यहाँ तक कि धर्म को न मानने वाले को भी राज्य समान आदर और अधिकार देता है । फिर उन्होंने पूछा कि सेक्युलरवाद को संविधान में लाने का एक ही अर्थ निकाला जा सकता है कि हम लोकतंत्र के सेक्युलरवादी स्वरूप को अधिक दृढ़ करना चाहते हैं और यह कि हम सभी धर्मों को मानने वालों को यह आश्वासन देना चाहते हैं कि हम संविधान के सेक्युलरवादी तत्व को और भी बलशाली करेंगे । उन्होंने यह भी कहा कि भारत अपने अन्य पड़ोसियों की तरह एक मजहबी या धार्मिक राज्य नहीं है । उन्होंने इस पर बल दिया कि सरकार बताये कि यह सेक्युलरवाद का समावेश करके विभिन्न मतावलम्बियों विशेषकर अल्पसंख्यकों को क्या आश्वासन देना चाहती है ।

जिन सदस्यों ने भारत को सेक्युलर घोषित करने का समर्थन किया उन्होंने भी "सेक्युलर" को उसके शब्दकोषीय अर्थ से पृथक करके देखने का आग्रह किया । सबसे उल्लेखनीय भाषण सरदार स्वर्ण सिंह का हुआ । वे संविधान संशोधन के संबंध में बनी सरकारी समिति के अध्यक्ष थे । उन्होंने अपने भाषण में स्पष्ट कहा कि हमारा "सेक्युलर" शब्दकोष के "सेक्युलर" से भिन्न है, दोनों समानार्थी नहीं हैं । उन्होंने यहाँ तक कहा कि शब्दकोष का सेक्युलर जहाँ तक कि मेरा प्रश्न है, बहुत अधिक प्रशंसनीय परिकल्पना नहीं है । फिर उन्होंने यूरोप में चर्च और राज्यों के बीच हुए संघर्ष का उल्लेख करते हुए कहा कि पश्चिम का "सेक्युलर" इस पृष्ठभूमि के कारण हमें स्वीकार नहीं है । उन्होंने यह भी

कहा कि हमारे देश में "सेक्युलर" ने एक निश्चित अर्थ प्राप्त कर लिया है और वह यह है, कि हमारे संविधान के अधीन कानून की नजर में अलग-अलग धर्मों को मानने वाले समान होंगे । उन्होंने यह भी कहा कि हमारे सेक्युलर में कोई धर्मविरोधी ध्वनि नहीं होगी और यह सब धर्मों के समादर के अर्थ में व्यवहार में आयेगा ।

मुस्लिम लीग के सदस्य श्री सुलेमान सेठ ने सेक्युलर के समावेश का स्वागत किया, किन्तु उसका यही अर्थ निकाला कि उसके परिणामस्वरूप अल्पसंख्यकों के अधिकार और सुदृढ़ होंगे । श्री सेठ ने अपने भाषण में श्रीमती इन्दिरा गांधी द्वारा 19 अप्रैल 1976 को दिये गये भाषण का एक अंश उद्धृत किया और कहा कि श्रीमती इन्दिरा गांधी के अनुसार "हम समाजवाद और साम्यवाद के भारतीय संस्करणों के लिए संघर्ष कर रहे हैं ।"

संविधान परिषद में हुई चर्चाओं में जो चर्चा सेक्युलर परिकल्पना के सबसे अधिक निकट कही जा सकती है, वह अल्पसंख्यकों और उनके मूल अधिकारों पर विचारार्थ बनी सलाहकार समिति के प्रतिवेदन पर, विशेषतः मुस्लिम लीग के कुछ सदस्यों की इस मांग पर हुई कि मुस्लिम सदस्य पृथक निर्वाचन के आधार पर चुने जायें । समिति के अध्यक्ष सरदार बल्लभ भाई पटेल थे और प्रतिवेदन प्रस्तुत करते और उस पर विवाद का उत्तर देते हुए जो भाषण दिये वे बड़े महत्वपूर्ण हैं और उनको विस्तार से उद्धृत करना आवश्यक है ।

सरदार पटेल ने इस बात पर बल दिया कि हमारा लक्ष्य सभी वर्गों के नागरिकों को जितना जल्दी हो सके समानता के स्तर पर लाने तथा समस्त वर्गीकरणों, भेदों एवं विशेषाधिकारों को समाप्त करने का है । बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक दोनों को उनके दायित्व का स्मरण कराते हुए सरदार पटेल ने कहा कि यह सबके हित में है कि सेक्युलर राज्य की वास्तविक और प्रामाणिक नींव डाली जाय । अंत में उन्होंने कहा कि हम सबको यह भूल जाना है कि इस देश में कोई अल्पसंख्यक या कोई बहुसंख्यक है, यह समझना है कि भारत में केवल एक ही समाज है ।

प्रश्न यह है कि जब संविधान परिषद में, और उसके बाहर देश में भी, इस प्रश्न पर लगभग मतैक्य था कि राज्य इस अर्थ में सेक्युलर होना चाहिए कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा और यह कि वह धर्म के आधार पर नागरिकों में किसी तरह का भेदभाव नहीं करेगा, संविधान के निर्माण के चार दशक बाद सेक्युलरवाद को लेकर इतना तीव्र विवाद क्यों उठ खड़ा हुआ है ?

इसके मुख्यतः तीन कारण दिखायी देते हैं । सिद्धान्तः यह स्वीकार करते हुए भी कि भारतीय परिकल्पना का सेक्युलरवाद सर्वधर्म समभाव से प्रेरित होगा

और धर्मविरोध का रूप नहीं लेगा, शासन द्वारा अपनायी गयी नीतियों और उनके कार्यान्वित करने के ढंग से इस आशंका ने जन्म लिया कि राज्य धर्म को प्रगति के मार्ग में एक रोड़ा समझता है और उसे दूर रखना चाहता है । सर्वधर्म समभाव के मूल में सब धर्मों और उनके मानने वालों के बीच में जो समानता अभिप्रेत थी, उसका भी व्यवहार में पालन नहीं हुआ । बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दोनों समुदायों में, सही या गलत, यह भावना जड़ पकड़ने लगी कि सत्ता की होड़ में राजनीतिक दल तराजू के पलड़ों को बराबर रखने के बजाय कभी एक तरफ और कभी दूसरी तरफ झुका देते हैं ।

संविधान के निदेशक तत्व के अनुसार राज्य को सभी नागरिकों के लिए समान सिविल कानून का प्रयास करना है । ऐसा करने में राज्य की अब तक की विफलता ने भी इस धारणा को बनाने में सहायता दी है कि सामाजिक सुधारों की दिशा में भी इसलिए पग नहीं उठाये जा रहे कि उनसे कुछ वर्गों के असंतुष्ट हो जाने और फलस्वरूप चुनाव में घाटा होने की आशंका है । वन्देमातरम् राष्ट्रगीत के गायन पर आपत्ति भी उस मनोवृत्ति का ही परिचय देती है । जिसकी चरम परिणति भारत के दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन में हुई भारत को "सेक्युलर" बनाने के पीछे यह भी भावना थी कि विभाजित भारत अविभाज्य रहेगा और धर्म, जाति, भाषा के आधार पर अब किसी नये विभाजन की मांग नहीं उठेगी ।

मुझे लगता है कि प्रारम्भ में ही "सेक्युलर" का अनुवाद "धर्मनिरपेक्ष" के बजाय "सम्प्रदायनिरपेक्ष" या "पंथनिरपेक्ष" कर दिया जाता तो अनेक आशंकायें जन्म नहीं लेती । "सेक्युलर" शब्द के अर्थ के बारे में भले ही भिन्न-भिन्न मत रहे हों किन्तु उस मतभिन्नता में इस बात पर एकता थी कि राज्य का स्वरूप असाम्प्रदायिक होना चाहिए । इस प्रश्न पर आज भी एक मत है । संविधान के नये हिन्दी संस्करण में "सेक्युलर" का अनुवाद "पंथनिरपेक्ष" करके इस भूल के परिमार्जन का प्रयास हुआ है । आवश्यक है कि "सेक्युलर" शब्द के सही अनुवाद को सब स्वीकार करें और उसे प्रचारित करें ।

सेक्युलरवाद को लेकर आज जो चर्चा हो रही है उसमें विवाद का एक मुख्य मुद्दा धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग के लिए विशेष अधिकारों का प्रावधान है । अनुच्छेद 30(1) उनके लिए विशेष अधिकार की व्यवस्था करता है जो किसी अल्पसंख्यक वर्ग के हैं, चाहे वह धर्म पर आधारित हैं या भाषा पर आधारित हो । 30(1) में यह व्यवस्था है कि सभी अल्पसंख्यक वर्ग, जो धर्म या भाषा पर आधारित है, को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना एवं उनका प्रबन्ध करने का अधिकार होगा । हम सेक्युलरवाद की विवेचना कर रहे हैं इसलिए धर्म पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे ।

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रंथ "धर्म सापेक्ष - पंथ निरपेक्षता" वर्तमान विश्व-विवेक के संदर्भ में, भारत देश के विगत और आगत, सहिष्णु तथा सद्भावनापूर्ण सहजीवन की गौरव गाथा है । धर्म सापेक्षता, भारत के सहस्त्रों वर्षों के अखंडित इतिहास की श्वासों में गुम्फित है । इस धर्म की विराट और व्यापक तथा उदात्त और उत्कृष्ट अवधारणा पंथ निरपेक्षता के मार्ग से होकर जाती है ।

भारतीय धर्म सापेक्षता वैयक्तिक जीवन को संयभित, सामाजिक जीवन को नियमित,तथा राजनीतिक जीवन को अनुशासित करने का कौशल है । धर्म सापेक्षता की फलश्रुति पंथ- निरपेक्षता, विचार के स्वातंत्र्य और आचरण के औदार्य की सूचक है ।

भारतीय संविधान की उद्देशिका में पंथ निरपेक्षता की प्रविष्टि के पूर्व स्वांतत्र्योत्तर काल में इसे धर्म विहीनता या धर्म विरोध कभी नहीं समझा गया । भारतीय संविधान के ४२ वें संशोधन से पंथनिरपेक्षता या सेकुलर की प्रविष्टि की अपेक्षा या आवश्यकता परिस्थितियों में प्रकट नहीं थी । इस संशोधन से संविधान के धर्म और उपासना की स्वतंत्रता या अन्तःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने के समान अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा । किन्तु १९९३ में संशोधन अस्सी द्वारा उस प्रावधान की प्रविष्टि का प्रयास किया गया, जिससे संशोधन के ढाँचे में निहित लोकतांत्रिक मर्यादा सहज ही क्षीण हो सकती है । इसके द्वारा भारत की परम्परागत सामाजिक चेतना, प्रवाहपूर्ण स्वतंत्र चिन्तन, और प्रगतिशील समग्र चरित्र परचोट, चिन्ता का विषय रहा है । भारतीय संविधान ही नहीं, भारतीय समाज की मूल्यवत्ता और वैश्विक मानवीय विवेकवत्ता पर इसके दुष्प्रभाव का अध्ययन, औचित्यपूर्ण निष्कर्षों का मार्ग प्रशस्त कर सकता है । वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक जीवन की पुनर्रचना में धर्म सापेक्षता और पंथ निरपेक्षता की व्याख्या-विश्लेषण अपेक्षित है ।

प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम अध्याय 'संविधान और पंथनिरपेक्षता एक भूमिका' में संविधान की महत्ता और मर्यादा का संक्षिप्त आकलन है । संविधान राज्यशक्ति को अपने कर्तव्यों और जनशक्ति के अपने अधिकारों को बोध कराता है । द्वितीय अध्याय में भारतीय संविधान के मूल ढाँचे के अन्तर्गत धर्म, आस्था-उपासना आदि के प्रसंग हैं । तृतीय अध्याय का शीर्षक 'पंथ निरपेक्षता - एक परिभाषा' है । चतुर्थ अध्याय 'पंथ निरपेक्षता विश्व परिप्रेक्ष्य में', पंथ - सापेक्ष तथा पंथनिरपेक्ष

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रंथ "धर्म सापेक्ष - पंथ निरपेक्षता" वर्तमान विश्व-विवेक के संदर्भ में, भारत देश के विगत और आगत, सहिष्णु तथा सद्भावनापूर्ण सहजीवन की गौरव गाथा है । धर्म सापेक्षता, भारत के सहस्त्रों वर्षों के अखंडित इतिहास की श्वासों में गुम्फित है । इस धर्म की विराट और व्यापक तथा उदात्त और उत्कृष्ट अवधारणा पंथ निरपेक्षता के मार्ग से होकर जाती है ।

भारतीय धर्म सापेक्षता वैयक्तिक जीवन को संयभित, सामाजिक जीवन को नियमित,तथा राजनीतिक जीवन को अनुशासित करने का कौशल है । धर्म सापेक्षता की फलश्रुति पंथ- निरपेक्षता, विचार के स्वातंत्र्य और आचरण के औदार्य की सूचक है ।

भारतीय संविधान की उद्देशिका में पंथ निरपेक्षता की प्रविष्टि के पूर्व स्वांतत्र्योत्तर काल में इसे धर्म विहीनता या धर्म विरोध कभी नहीं समझा गया । भारतीय संविधान के ४२ वें संशोधन से पंथनिरपेक्षता या सेकुलर की प्रविष्टि की अपेक्षा या आवश्यकता परिस्थितियों में प्रकट नहीं थी । इस संशोधन से संविधान के धर्म और उपासना की स्वतंत्रता या अन्तःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने के समान अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा । किन्तु १९९३ में संशोधन अस्सी द्वारा उस प्रावधान की प्रविष्टि का प्रयास किया गया, जिससे संशोधन के ढाँचे में निहित लोकतांत्रिक मर्यादा सहज ही क्षीण हो सकती है । इसके द्वारा भारत की परम्परागत सामाजिक चेतना, प्रवाहपूर्ण स्वतंत्र चिन्तन, और प्रगतिशील समग्र चरित्र परचोट, चिन्ता का विषय रहा है । भारतीय संविधान ही नहीं, भारतीय समाज की मूल्यवत्ता और वैश्विक मानवीय विवेकवत्ता पर इसके दुष्प्रभाव का अध्ययन, औचित्यपूर्ण निष्कर्षों का मार्ग प्रशस्त कर सकता है । वर्तमान राजनीतिक-सामाजिक जीवन की पुनर्रचना में धर्म सापेक्षता और पंथ निरपेक्षता की व्याख्या-विश्लेषण अपेक्षित है ।

प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम अध्याय 'संविधान और पंथनिरपेक्षता एक भूमिका' में संविधान की महत्ता और मर्यादा का संक्षिप्त आकलन है । संविधान राज्यशक्ति को अपने कर्तव्यों और जनशक्ति के अपने अधिकारों को बोध कराता है । द्वितीय अध्याय में भारतीय संविधान के मूल ढाँचे के अन्तर्गत धर्म, आस्था-उपासना आदि के प्रसंग हैं । तृतीय अध्याय का शीर्षक 'पंथ निरपेक्षता - एक परिभाषा' है । चतुर्थ अध्याय 'पंथ निरपेक्षता विश्व परिप्रेक्ष्य में', पंथ - सापेक्ष तथा पंथनिरपेक्ष

कुछ यूरोपीय तथा अमेरिकी राज्यों की स्थिति का इसी संदर्भ में विवेचन है । अध्याय पाँच में पंथ सापेक्ष इस्लामी राज्यों का उल्लेख है, जो मलेशिया से मोरक्को तक विस्तृत भूभाग में हैं । अध्याय छः में बौद्ध तथा हिन्दू पंथ सापेक्ष राज्यों की संवैधानिक व्यवस्थाओं का विहगावलोकन है । अध्याय सात में पंथ निरपेक्ष राज्यों की समीक्षा है । इनमें मार्क्सवादी-लेनिनवादी राज्य भी हैं । इनकी पंथ निरपेक्षता का आकार गहन अध्ययन का विषय है ।

यह विचारणीय है कि, पंथ निरपेक्षता या सापेक्षता के आधारभूत संविधानों में परिवर्तन इतिहास में सहज रुप से होते रहे हैं । राजनीतिक अस्थिरता, महत्वाकांक्षी सैनिक सत्ता, समाधान की आवश्यकता आदि ने संविधानों में ही नहीं, राज्यों की पुनर्रचना का भी मार्ग प्रशस्त किया है । वर्तमान में यूगोस्लाविया का विघटन, रूस में अत्यधिक परिवर्तन, तथा १ जनवरी १९९३ में चेकोस्लाव गणतंत्र के विभाजन आदि से निर्दिष्ट विषय के अध्ययन की आधार सामग्री और अधिकृत सूचना में सामयिकता का प्रभाव सम्भव है । विश्व की गत्यात्मक राजनीति के संदर्भ में संविधानों के आधार पर तथ्यपरक स्थिति के साथ तत्वज्ञानमूलक स्थिति का सामंजस्य संश्लिष्ट समस्या है । किन्तु इस स्तर के अध्ययन में तार्किकता, तत्परता तथा तटस्थता की वृतियाँ वस्तु स्थिति में अधिक समाधानकारी बन सकती हैं । अध्ययन-आकलन में कोई दुर्भावना या दुराग्रह का अवकाश नहीं है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में भारत देश के अखंडित इतिहास के संदर्भ में पंथ निरपेक्षता के औचित्य का प्रसंग है । अध्याय नवम में धर्म परिभाषा और परिव्याप्ति की संक्षिप्त गाथा है । भारतीय इतिहास के अपेक्षाकृत मुख्य मोड़ों के आधार पर इस विषय को सूत्र बद्ध किया गया है । अध्याय दसम में भारतीय इतिहास के निष्कर्ष का निरूपण है कि धर्म भारत की मुख्य धारा है । अध्याय ग्यारह में, 'पंथ और सम्प्रदाय', तथा अध्याय बारह में 'हिन्दू' की व्याख्या-विश्लेषण है ।

भारतीय इतिहास में प्रज्ज्वलित-प्रबुद्ध प्रश्न 'अल्पसंख्यक अवधारणा' का विवेचन अध्याय तेरह में है । अध्याय चौदह 'धर्म - राजनीति और राज्य' में राजधर्म का सम्यक अंकन है । यह सहज परिलक्षित है कि, भारत की परम्परागत राजनीति धर्म सापेक्ष है । किन्तु पंथ निरपेक्ष है ।

धर्म सापेक्षता और पंथनिरपेक्षता के आधार पर भारत की प्रगतिशील और प्रवहमान राजनीतिक संस्कृति का ऊर्जास्वित और उत्कृष्ट होना स्वाभाविक है । पन्द्रहवां अध्याय 'पंथ निरपेक्षता एक राजनीतिक संस्कृति' में इतिहास की विवेकवत्ता और मानवीय महत्ता के आधार पर सद्भावपूर्ण और समाधानमूलक, किन्तु तत्पर और तेजस्वी राजनीतिक संस्कृति भारत और शेष विश्व में अपेक्षित है, सोलहवाँ

अध्याय 'मानवाधिकार और पंथ निरपेक्षता' है । प्रस्तुत ग्रंथ में भारत देश की समस्याओं की दिशा में एक दायित्व पूर्ण समाधानकारी संकेत अवश्य है ।

परिशिष्ट में विभिन्न देशों के संविधानों के प्रासंगिक अंशों का हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत कर रहे हैं । किन्तु अंग्रेजी का अंश अधिकृत है ।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रेरक शक्ति माननीय बाजपेयी अटल बिहारी हैं । बाजपेयी जी ने कृपापूर्वक कुछ अंशों को १९९२ में ही देखने की कृपा की है । प्रस्तावना में बाजपेयी जी का डॉ० राजेन्द्र प्रसाद व्याख्यामाला दिसम्बर ९२ के एक भाषण 'सेकुलरवाद की भारतीय परिकल्पना' को इस ग्रन्थ के लिये प्रेरणाप्रद अंशों को यथावत रुप में अनुमति से प्रकाशित कर रहे हैं । इसके लिये लेखक कृतज्ञ है ।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रिय आशीष शुक्ल विधि प्रवक्ता तथा एडवोकेट उच्च न्यायालय लखनऊ, जो स्वयं संविधान के अध्येता हैं, सहायक और सहयोगी रहे हैं ।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के माननीय कौशल किशोर जी प्रस्तुत अध्ययन के लिये प्रेरणा देते रहे हैं ।

उत्तर प्रदेश के पूर्व राज्यपाल महामहिम बी० सत्यनारायन रेड्डी ने अपने बहुमूल्य सुझाव समय-समय पर प्रदान किये हैं । उत्तर प्रदेश विधान सभा के पुस्तकालय से मुझे आवश्यक सामग्री उपलब्ध होती रही है । सभी प्रबुद्ध प्रियजनों तथा आदरणीय मित्रों का आभारी हूँ ।

२ अक्टूबर ९३ **डॉ० सोमनाथ शुक्ल**

११७/२२६ शारदा नगर क्यू ब्लाक
कानपुर

अनुक्रम

1

संविधान और पंथ निरपेक्षता - एक भूमिका

संविधान में पंथ निरपेक्षता की भूमिका और भाष्य के विश्लेषण के संदर्भ में संविधान का प्रयोजन, संविधानवाद का सोच, संविधान की सीमा, संविधान का उद्गम, संविधान का विकास, बीसवीं शती तथा संविधान, संविधान के प्रारूप, संविधान तथा आधुनिकीकरण, संविधान की सत्ता, संविधान का वर्गीकरण, संविधान तथा परम्परा और भारतीय संविधान के रचनाकाल की संक्षिप्त व्याख्या - विवेचन आवश्यक है ।

संविधान का प्रयोजन

संविधान का आधारभूत प्रयोजन, राज्य की दंड शक्ति का संयमन और सामाजिक व्यवस्था का नियमन है । संविधान, समाज और व्यक्ति सम्बन्धों में संतुलन तथा समाज में शान्ति और सम्पन्नता को सुनिश्चित करने का शास्त्र है । संविधान का उद्देश्य राजनीतिक सत्ता को परिभाषित और परिसीमित करना है ।

संविधान मौलिक सिद्धान्तों और अधिकारों का दस्तावेज है, जिसके आधार पर राज्य की संरचना होती है । संविधान के बिना राज्य का अस्तित्व नगण्य होता है।

राज्य सत्ता को परिभाषित तथा मर्यादित करने का तंत्र भी संविधान है । संविधान द्वारा शासन का परिसीमन होता रहा है । संविधान, राज्य सत्ता का उद्देश्य पूर्ण जीवन, उत्कृष्ट स्वातंत्र्य, उदात्त निदेशक सिद्धान्त तथा उचित प्रक्रिया का संग्रह है । संविधान द्वारा दो भिन्न प्रतीत होती सत्ताओं में सामंजस्य स्थिर किया जाता है, एक है नागरिक सत्ता और दूसरी है शासन सत्ता ।

संविधान इतिहास से निसृत परम्परा में विवेक की स्थापना करता है । संविधान में विवेक द्वारा सृजित मूल्यवत्ता, सहमति की गुणवत्ता, सामान्यहित की विचारवत्ता, और विधिक प्रक्रिया की महत्ता का समावेश सहज रूप से होता है । संविधान, मानवीय विवेक, सामाजिक वास्तविकता, तथा सत्ता और स्वतंत्रता के समन्वय के आधार पर निर्मित होता है ।

संविधानवाद

संविधान राज्य सत्ता और जनसत्ता की सीमाओं का निर्धारण और नियंत्रण करता है । संविधान सभ्य शासन का आधार है । संविधान में सातत्य नियम है । सामयिक विवेक या विवशताओं में संशोधन अपवाद है । संविधान का जब कब

उन्मूलन या परिवर्तन, जैसा अस्थिर राजनीति के देशों में होता है, इससे संविधान की गरिमा और गम्भीरता नष्ट होती है । सर्वाधिकारी या तानाशाही राज्यों में संविधान की अर्थवत्ता या गुणवत्ता का विशेष अभिप्राय नहीं रह जाता ।

आधुनिक राष्ट्रवाद की प्रभुसत्तापूर्ण राज्य की अवधारणा ने संविधान को आवश्यक बना दिया है । वर्तमान युग में विज्ञान के विकास ने राजनीतिक वास्तविकताओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संविधान को अपरिहार्य किया है । वर्तमान जीवन शैली के शासन में प्रतिनिधित्व, व्यक्ति स्वातंत्र्य, चिन्तन या मतवाद में उदारता, तथा समग्र समाज का उन्नयन आदि संविधान के अपरिहार्य अंग बन गये हैं । वर्तमान आर्थिक केन्द्रीकरण को व्यक्तियों या वर्ग विशेष के द्वारा हस्तगत करने के निषेध का प्रावधान भी संविधानों में प्रविष्ट हो गया है । सर्वत्र राजनीतिक चेतना के उदय से जनसत्ता की अपनी शक्ति की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति के प्रति सजगता भी संविधानों में प्रतिबिम्बित है । संवैधानिक शासन का अभिप्राय स्थायित्व की अपेक्षा, स्वतंत्रता की आकांक्षा और सामाजिक न्याय की अनुकूलता है । इसके द्वारा विधि का शासन, व्यक्ति के स्थान पर संस्थागत संचालन, व्यक्ति की स्वतंत्रता, सुरक्षा की सुनिश्चितता तथा राज्य शक्ति और लोक शक्ति में संतुलन होता है ।

संविधान के दो पक्षों का महत्व है - स्वतंत्रता सम्बन्धी तथा प्रक्रिया सम्बन्धी। किन्तु विश्व के संविधानों में तीन अंग प्रमुख हैं - राज्य शक्ति की सीमा, जन स्वतंत्रता की मर्यादा तथा प्रक्रिया का निर्देश । भारतीय संविधान में राज्य के लिए निदेशक तत्वों का भी निर्धारण किया गया है । इसके द्वारा नीति निर्धारण और राज्य के अधिकार क्षेत्र में उसके कार्यान्वित होने की अपेक्षा है । संविधान में यह नैतिकता का प्रावधान इसका चतुर्थ अंग है । राज्य शक्ति या शासन से नागरिक के सम्बन्धों, और शासन सत्ता का अन्य सत्ताओं से सम्बन्ध का मार्गदर्शन विश्व के अधिकांश संविधानों की उद्देशिका में स्पष्ट होता है । उद्देशिका के संदर्भ में संविधान विचारणीय है ।

संविधान की सीमा

संविधान की प्रामाणिकता पर कोई विवाद राजद्रोह भी हो सकता है । किन्तु संविधान के समानान्तर या संविधान बाह्य भी कुछ शक्तियाँ कार्यरत रहती हैं । संविधान तथा उसके द्वारा सृजित संगठन औपचारिक कहे जा सकते हैं । इनके पीछे भी जो अनौपचारिक शक्तियाँ कार्य करती हैं, उनकी भी पहचान इतिहास ने स्पष्टता से की है। इन संविधान बाह्य संस्थाओं में भारतीय राजनीतिक इतिहास में विशिष्टजनों या महाजनों या संतजनों की अद्वितीय भूमिका है । प्राचीन और आधुनिक राजनीतिक इतिहास में इसकी मीमांसा और मूल्यांकन राजनीतिक अन्तः रचना के आधार को प्रकट कर सकता है ।

संविधान के बाहर अन्य शक्ति है - परम्परा या प्रथा या चलन या अभिसमय (कन्वेन्शन) । वह राजनीतिक व्यवहार जिसका प्रावधान संविधान या संसदीय प्रथा में नहीं हो, किन्तु प्रभावी हो - अभिसमय है । अभिसमयों के विभिन्न प्रकार और इनके निर्वाह का अध्ययन, भारतीय राजनीति में धर्म की भूमिका के संदर्भ में महत्व का है।

संविधान बाह्य अन्य शक्ति प्रशासकीय प्रणाली का व्यवहार प्रतिमान है । भारतीय संदर्भ में राज्य आज्ञाओं का नियमित सम्पादन, नियमों के परिचालन में निरन्तरता, कार्यों का आलेखन, कार्य कुशलता और कठोरता, निर्णयों में विलम्ब, नूतन परीक्षण का निषेध आदि में अन्तर्निहित धारा का विश्लेषण आवश्यक है ।

संविधान बाह्य अन्य महत्वपूर्ण तथ्य है - हित समूहों का अस्तित्व । हित समूह में, राजनीतिक दल तथा अन्य संस्थायें, दो प्रकार के भेद किये जा सकते हैं । उदाहरणार्थ भारतीय संविधान में राजनीतिक दलों की व्यवस्था न होने पर भी दलों की तथ्यगत स्थिति अत्यन्त सशक्त है । राजनीतिक दलों की राज्य के समानान्तर व्यवस्था को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । सामान्य नागरिक की आकांक्षा, अपेक्षा और आवश्यकता के अनुकूल राज्य शक्ति को बल देना या विवश करना राजनीतिक दलों के चरित्र के अन्तर्गत है ।

संविधान का शुभारम्भ

प्राचीन भारत तथा प्राचीन ग्रीस में भी शासन सत्ता द्वारा नागरिकों और नागरिक शक्ति द्वारा शासन सत्ता के नियंत्रण का प्रयास, विधि - विधानों द्वारा किया जाता था । प्राग् ऐतिहासिक काल के मनु प्रथम संविधानकार हैं । ग्रीस में अरस्तू प्रथम विचारक हैं, जिन्होंने विधि के शासन को परिभाषा प्रदान की । मनु की ''स्मृति'' और अरस्तू की ''पालिटिक्स'' संविधान के आदि प्रारूप हैं ।

प्राचीन भारतीय इतिहास में प्रत्येक राज्य द्वारा पृथक संविधान की निर्मिति अनावश्यक रही है । प्राचीन भारत की राजनीति में प्रत्येक राजा या राज्य का पृथक-पृथक संविधान नहीं बनाया गया । धर्म का ही एक अंग राजधर्म भी रहा है । वही राज धर्म सभी राज्यों का समान संविधान माना गया । इस प्रकार के संविधान की आख्या या व्याख्या करने के लिए धर्मज्ञ की आवश्यकता थी ।

संविधान के निर्माण का कार्य ब्रह्मज्ञ या विवेकी पुरुषों तथा संस्थाओं द्वारा होने पर राज्य शक्ति की निरंकुशता अपवाद रूप होती रही है ।

धर्मज्ञ या वेदज्ञ या ब्रह्मज्ञ राजत्व की योग्यता का निर्धारण करने के अधिकारी थे ।

मानवीय धर्म के द्वारा स्थापित समाज अव्यवस्थित होने पर महाभारतकार ने शान्ति पर्व में नियंत्रण का प्रसंग उपस्थित किया है । व्यवस्था स्थापना के लिए मानवों के प्रतिनिधि ब्रह्मा के पास गये । यह ब्रह्मा, महाभारत के अनुसार उच्चतम लक्षणों से युक्त विद्यावान और सर्वत्र समान दृष्टि रखने वाले ब्राह्मण हैं ।

"विद्या लक्षण सम्पनाः सर्वत्र समदर्शिनः ।

एते ब्रह्मसमा राजन् ब्राह्मणाः परिकीर्तिता ॥"

इस प्रकार के ब्राह्मणों ने नियन्त्रण के लिए विधियों का निर्माण किया । महाभारतकार ने अनुशासन पर्व में अंकित किया कि, ब्राह्मणों ने समस्त प्राणियों के लिए रमणीय शास्त्रों के निर्माण का भार ग्रहण किया । इन ब्राह्मणों का बल, इनकी

तपस्या और वाणी है । इनके द्वारा धर्म की उत्पत्ति और धर्म का ज्ञान व्याख्यायित और विश्लेषित हुआ । इन मनीषी ब्राह्मणों के मानस पुत्र को मनु कहा गया । प्रथम मानव धर्म का संविधान मनु-स्मृति का सृजन प्राग् ऐतिहासिक काल में हुआ था ।

संविधान निर्माण का कार्य राज्य क्षेत्र के बाहर रहा है । प्राचीन भारत में धर्म से मर्यादित राज्य की अपेक्षा रही है । वैयक्तिक रूप से राज्य-शक्ति स्वच्छन्द होने पर भी धर्म की अवधारणा ने इसे निरंकुश अनाचारी बनने में बाधा डाली । धर्म से मर्यादित राज्य और राजनीति में सामाजिक संस्थाओं को अधिक स्वातंत्र्य का अवकाश रहा है । विभिन्न सामाजिक संस्थाओं की आन्तरिक व्यवस्था या अन्तः रचना में धर्म की अवधारणा के कारण स्वातंत्र्य बना रहा है । प्राचीन भारत में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के अधिक अवकाश का कारण धर्म की स्थिति तथा स्तर के कारण रहा है ।

प्राचीन ग्रंथों में राज्य को धर्म मर्यादित रखने के लिए इसकी आचरण संहिता की व्याख्या और विश्लेषण किया गया । राज्य-शक्ति को विवेक और व्यवस्थित व्यवहार, विचारकों और विद्वानों के द्वारा निर्देशित किया गया । राज्य-शक्ति के अधीनस्थ वर्ग के द्वारा राज्य-धर्म की व्याख्या विश्लेषण अधिक प्रभावी नहीं हो सकती थी । अतः राज्य निरपेक्ष विद्वत शक्ति ने धर्म की मर्यादा का निरूपण किया था । धर्मशास्त्रों तथा नीतिशास्त्रों ने किसी राज्य विशेष के लिए आचार संहिता का प्रतिपादन नहीं किया । सभी राज्यों तथा सभी राज्य पद्धतियों तथा राजनीति के लिए आवश्यक विवेक की मीमांसा की गयी थी ।

प्राचीन भारत में प्रत्येक राज्य का पृथक संविधान आवश्यक नहीं रहा था । प्रत्येक राजा किसी लिखित संविधान की व्यवस्था से चालित नहीं था । धर्मशास्त्रों या नीतिशास्त्रों या अर्थशास्त्रों में राज्य धर्म का विश्लेषण या विवेक किसी एक राजा या राज्य के लिए ही नहीं था, इनमें एक आदर्श आचरणीय अवधारणा संविधान की थी। इस संविधान के प्रतिमान में सर्वत्र सार्वभौमिक धर्म-राज्य की आकांक्षा और अपेक्षा थी । राज्य की गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु धर्म था । धर्म अन्तः बाह्य और दृष्ट-अदृष्ट सभी का प्रेरक तथा परिचालक रहा है । धर्म पोषित सामान्य संविधान राज्य के लिए था । पृथक संविधान बनाकर अपने कर्तव्य-अधिकार परिभाषित करने की आवश्यकता नहीं थी । मानवीय जीवन को संयमित कर सत्योन्मुखी दायित्व और दिशा देने का कार्य धर्म राज्य का था । इस कारण पृथक संविधान अनावश्यक माने गये । धर्म के मानवीय रूप को आचरणीय मानकर, राज्य शक्ति को उसी पर आधृत करने का नैतिक निर्देश महत्वपूर्ण है । राज्य का नैतिक कर्तव्य उभरा कि, धर्म प्रेरित-पोषित संविधान के अनुसार शासन करें ।

भारतीय परम्परा में राज्य सत्ता का स्रोत धर्म, पांथिक विश्वासों या आचरणों या मतवादों का संचय नहीं, यह मानव की मानवता का पर्याय है । इस प्रकार मानवता को सर्वोपरि मानकर राज्यसत्ता का उद्भव हुआ है । मानव की चिरव्यापी या अपरिवर्तनशील मानवता के आधार पर संविधान स्थिर होता है ।

धर्म में जन्म लेने वाली राज्य सत्ता की भारतीय परम्परा, अराजक या एकतंत्रात्मक, या सपार्षद या अभिजात-तंत्रात्मक, या जनतंत्रात्मक किसी भी प्रतिमान

की, जो प्राचीन इतिहास में रही है, निरंकुश नहीं बनी । राज्य की निरंकुश या पूर्णसत्ता अर्थहीन रही है । इस धर्म का नियंत्रण बाह्य नीति से अधिक आन्तरिक नैतिकता से रहा है । नीति और नैतिकता का आधार मानवीय सम्बन्धों में शुचिता और ऋजुता की प्रविटि है । राज पुरुषों की इच्छा या रुचि वैचित्र्य की विधि स्रोत रूप में भारतीय परम्परा में मान्यता नहीं रही है । प्राचीन रोम की परम्परा में राजा की इच्छा ही संविधान थी ।

धर्म-राज्य के आदर्श की भारतीय परम्परा में स्वीकृति का स्पष्ट अर्थ रहा है कि धर्म की अभिव्यक्ति की विविधता का स्वातंत्र्य आवश्यक है । भिन्न आस्थावान वर्ग के उत्पीड़न की प्राचीन भारतीय परम्परा में अमान्यता है । मध्ययुग की रोमन परम्परा या मुस्लिम परम्परा विधर्मियों से संघर्ष की है ।

संविधान का विकास

वर्तमान विश्व के संविधानों का आधुनिक आलेखीय शुभारम्भ का श्रेय अमेरिकी स्वातंत्र्य संग्राम को है । १७७६ में अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में स्पष्ट किया गया था कि, सभी मनुष्य समान जन्म लेते हैं । मनुष्य को सृष्टिकर्ता जन्मजात कुछ अपहरणीय अधिकारों को प्रदान करता है । इन अधिकारों को प्राप्त करने के निमित्त समाज में सरकारें स्थापित की जाती हैं । मनुष्य जाति अपनी न्यायपूर्ण शक्तियों को शासितों की सहमति से प्राप्त करती हैं । कोई भी सरकार जब इस अभिधेय को नष्ट करती हैं, तब जनता का यह अधिकार है कि, उसे परिवर्तित कर दे या समाप्त कर दे । फिर नयी सरकार स्थापित कर दे । इससे संविधानवाद के राजदर्शन का विकास सुनिश्चित हुआ है ।

विश्व के विभिन्न देशों में इंग्लैण्ड में संविधान का विकास सभी देशों से अधिक स्थिर और सतत होता रहा है । इस कारण इंग्लैंड में निरंकुश शासन और नियंत्रणहीन स्वेच्छाचारिता का विकास नहीं हो सका । १६८८-८९ की क्रान्ति ने ब्रिटिश राज्य की प्रभुता संसद को हस्तगत कर दी थी । इंग्लैंड में क्रमिक रूप से विधि का शासन प्रभावी हो गया । इंग्लैंड में अठारहवीं शती के मध्य तक संवैधानिक शासन स्थापित हो गया । इस संदर्भ में इंग्लैंड यूरोप का प्रथम देश माना जाता है ।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति (१७८९) के उपरान्त आहूत राष्ट्रीय असेम्बली ने मनुष्य और नागरिक के अधिकारों के घोषणा पत्र में व्यक्ति के अधिकारों का सिद्धान्त तथा लोकप्रिय संप्रभुता के सिद्धान्त का समावेश है । मानव अधिकारों में जन्म से समानता और स्वतंत्रता है । मानव अधिकार स्वतंत्रता, सुरक्षा, अन्याय का विरोध आदि है । विचारों और मतों का स्वातंत्र्य मानव का सर्वाधिक उत्कृष्ट अधिकार है । फ्रांस के राज्य क्रान्ति की उपलब्धि रूप १७९१ में निर्मित संविधान की प्रस्तावना में इसे अभिव्यक्त किया गया । यह संविधान शीघ्र समाप्त हो गया । किन्तु विश्व के संविधानों में किसी न किसी रूप में इसका समावेश होता रहा है ।

संविधानवाद के इतिहास में इंग्लैंड का योगदान विधि-सम्मत शासन, अमेरिका की देन शासितों की सहमति से सरकारों का स्थायित्व, और फ्रांस का योगदान

विचारों-मतों की स्वतंत्रता का मानवाधिकार है । बीसवीं शती के विश्व के अधिकांश संविधान इनसे प्रेरित और प्रभावित हैं । विश्व के इतिहास में लोकसत्ता और राजसत्ता के सम्यक सम्बन्धों के निर्धारण में ये प्रकाश स्तम्भ हैं ।

उन्नीसवीं शती के इतिहास में राष्ट्रवाद का साम्राज्यवाद से संघर्ष तीव्र हो गया । इस संघर्ष से शती के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रवादी संविधानों का विकास हुआ । इटली के राजनायकों में मैजिनी और गेरीवाल्डी ने देश के एकीकरण का आन्दोलन तीव्र किया और अन्त में सन् १८५६ में एकीकृत इटली का संविधान बना । सन् १८६४ में डेन्मार्क ने संविधान द्वारा संसदीय पद्धति को स्वीकार किया । सन् १८६६ में आस्ट्रिया और हंगरी में नये संविधान बनें । फ्रांस में सन् १८७५ में तीसरे गणतंत्र की स्थापना से नये संविधान की रचना हुई । सन् १८७८ में रूसी-तुर्की युद्ध से तुर्की साम्राज्य टूटा, और दो नये राज्य सर्बिया तथा रूमानिया अस्तित्व में आये ।

बीसवीं शती और संविधान

बीसवीं शती संविधानवाद की शताब्दी है । तुर्की जैसे प्राचीन देश में संवैधानिक राजतंत्र की घोषणा १६०८ में हुई । इसके परिणाम स्वरूप यूरोप के दक्षिण पूर्वी क्षेत्र में तीव्र राष्ट्रवाद ने संविधानवाद का पोषण किया । बलगेरिया की स्वतंत्रता और संविधान इसी काल का है ।

प्रथम विश्व युद्ध (१६१४) के पूर्व यूरोपीय राज्यों में राष्ट्रीय संविधान का प्रयोग प्रचलित हो गया था । इस महायुद्ध के पश्चात संविधानों में लोकतांत्रिक सुगन्धि का प्रवेश हो गया । विश्व युद्ध के उपरान्त राष्ट्र संघ (लीग आफ नेशन्सस्) की स्थापना संविधानवाद के विकास में सहायक बनी ।

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में प्रथम विश्व युद्ध और द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य राजनैतिक जीवन शैली का संघर्ष पोषित होता है । फासीवाद, नाजीवाद और साम्यवाद ने लगभग अधिनायकवादी व्यवस्था का अनुसरण कर प्रजातांत्रिक देशों के संविधानों को नकारा था । सन् १६४५ में फासीवाद और नाजीवाद की पराजय ने राष्ट्रवादी लोकतांत्रिक संविधानों के महत्व को स्थापित किया ।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् राष्ट्रवादी आधार या नव स्वतंत्र एशियाई देशों में पश्चिमी प्रतिमान के अनुकूल लोकतांत्रिक संविधानों की रचना महत्वपूर्ण है ।

संविधान के प्रारूप

विश्व में लिखित संविधान को संविधान समझा जाता है । ब्रिटेन इसका अपवाद है । ब्रिटेन में संविधान है, किन्तु आलेखों के रूप में नहीं है । ब्रिटेन का संविधान, पूर्व दृष्टान्तों, न्यायविदों या प्रबुद्धों के अधिकारी कथन, प्रथायें आदि संविधियां जो प्रथाओं, पूर्व दृष्टान्तों, अभिसमयों और वैधानिक निर्णय से संलग्न है । इतिहास में समस्याओं के समाधान में मानवीय मूल्यों, महत्वपूर्ण मोड़ों, महापुरुषों के कथनों से निर्मित प्रथाओं परम्पराओं से प्रवाह और प्रगतिशीलता प्राप्त करने वाला जीवन्त संविधान ब्रिटेन का अवश्य ही है । लिखित संविधानों को जीवन्त रखने के

लिए भी संशोधनों का प्रावधान होता है । जीवन्त संविधान संशोध्य होते हैं । किसी भीदेश का समाधानमूलक संविधान उसके अखण्डित इतिहास के प्रवाह में अपेक्षित है। संविधान वर्तमान में एक सेतु है, जो अतीत की विरासत, आगत पीढ़ी को एक व्यवस्था के रूप में प्रदान करता है ।

इस्लाम सापेक्ष देश सऊदी अरब में लिखित-अलिखित कोई संविधान नहीं है । यहाँ इस्लाम के पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब के पवित्र आदेश औपचारिक वर्तमान संविधानों की शक्ति से अधिक प्रभावी हैं । आधुनिक विश्व लिखित संविधानों से आश्वस्त है ।

संविधान और आधुनिकीकरण

विभिन्न देशों और भारत देश में एक शताब्दी से अधिक काल से पाश्चात्य देशों पर निर्भरता से स्वतंत्र होने की सर्वव्यापी सामाजिक आकांक्षा और रचनात्मक राजनीतिक अपेक्षा का इतिहास में अंकन है । इस आकांक्षा और अपेक्षा में आधुनिकीकरणकी प्रेरक शक्ति है । किन्तु आधुनिकता के प्रतिमान की खोज विभिन्न देशों और भारत ने अपनी परम्परा और परिस्थितियों के अन्तर्गत की है । मार्क्स ने आधुनिकता को परिवर्तनशील भौतिक सम्बन्धों की श्रृंखला के रूप में देखा था, जिससे कि एक प्रचुर और कृपापूर्ण विश्व का उदय हो सके । पूर्व से ही जहाँ किसी परम्परागत पद्धति का अस्तित्व है, वहीं आधुनिकीकरण होता है । सामाजिक या राजनीतिक क्षेत्रों में परिवर्तित परिस्थितियों में अन्तर्ग्रस्त चुनौतियों को बुद्धिवादी या तार्किक रीति से समाधानमूलक रूप में ग्रहण करना आधुनिकता है ।

भारत देश में महात्मा गांधी ने आधुनिकता को 'हिन्द स्वराज्य' (१९०८) में जिस रूप से ग्रहण किया, उसमें पश्चिम की आधुनिकता की अवधारणा को नकारा गया। पश्चिम से प्रभावित विचारक, विस्तारपूर्ण सामाजिक अन्तःनिर्भरता, राजनीतिक संस्थागत रूपान्तरण, राजनीतिक सभ्यता में परिवर्तन, आर्थिक विकास, अधिकाधिक औद्योगीकरण, नगरीय विकास आदि से आधुनिकता को परिभाषित करते हैं । किन्तु आधुनिकीकरण विविध रूपी प्रक्रिया है, और यह विविध आयामी है । आधुनिकीकरण में एक संश्लिष्ट मानसिकता, तार्किक बौद्धिकता, सम्बंधों में विवेकवत्ता, सामाजिक औदार्य, आर्थिक पुनर्रचना, उद्योग प्रतिमान का नवीनीकरण आदि है । महात्मा गांधी ने पश्चिमी आधुनिकीकरण की तुलना में भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानवीय मूल्यों को अक्षुण रखकर नये प्रतिमान की प्रस्तावना की थी । गांधी-विचार ने औद्योगीकरण के विकृत और विग्रह युक्त रूप को अस्वीकार किया, और अपेक्षाकृत अधिक विवेकपूर्ण संरचना का उद्घोष किया था ।

आधुनिक विश्व में विज्ञान तथा प्राविधि के कारण सामाजिक सम्बन्धों में संश्लिष्टता का समावेश सहज रूप से हो गया है । इस कारण संविधान का अराजनीतिक क्षेत्रों में विस्तार अपरिहार्य हो गया है । विविध सामाजिक स्तर में संतुलन, विवेकपूर्ण आर्थिक हितों का संरक्षण, तथा विभिन्न सम्प्रदायों में सामंजस्य का कौशल राज्य शक्ति की संवैधानिक आवश्यकता बन गयी है ।

आधुनिकीकरण के उत्कृष्ट उदाहरण दो प्रमुख एशियाई देशों, तुर्की और जापान को माना गया है। परम्परागत जीवन शैलियों की निरन्तरता को स्थापित करके भी आधुनिक पद्धतियों को इन देशों ने स्वीकृति दी, और संरचना की दिशा में कदम उठाये हैं।

आधुनिकीकरण के दूसरे प्रतिमान को साम्यवादी रूस और चीन ने स्थापित किया। इस प्रतिमान में परम्परागत कृषक समाज की समाप्ति तथा औद्योगिक विकास में तीव्रता के साथ सामान्यजन के विचारों, वृत्तियों और जीवन पद्धति को नूतन दिग्विन्यास देने का प्रयास भी था।

भारत देश के आधुनिकीकरण में विभिन्न देशों या जागतिक संदर्भ में इतिहास से लाभान्वित होने की स्थिति का औचित्य है। किन्तु अनुकरण उपादेय और आवश्यक नहीं है। भारतीय संविधान के तत्वज्ञान को विश्व के संदर्भ में भारत की प्रकृति और प्रवृत्ति तथा परिवेश और परम्परा के अनुकूल ग्रहण करने में आधुनिकता का तर्क सम्मत और विवेकपूर्ण रूप पल्लवित तथा विकसित हो सकेगा। आधुनिकीकरण की दिशा में समाजशास्त्रीय तथा अर्थशास्त्रीय धारणाओं को नूतन क्षितिज गांधी-विचार ने दिया है। परम्परावाद की शक्तियों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिभाषित कर आधुनिकीकरण को नया बल दिया गया है। एकात्ममानववादी विचार ने आधुनिकता को स्वीकृति देकर भारतीय अखण्डित विचारों-भावों से संलग्न किया है। इस प्रकार आधुनिकीकरण के प्रवाह को इतिहास में सृजित सामाजिक शक्तियों पर निर्भर, परिवर्त्य रूप में मान्यता दी गयी है।

संविधान की सत्ता

आधुनिक इतिहास में संविधान की सत्ता श्रेयस्कर और श्रेष्ठ बनी है। सामाजिक न्याय तथा सद्गुणात्मक अधिकारों के श्रेष्ठ सिद्धान्तों में आस्था के कारण संविधान की गरिमापूर्ण गम्भीर सत्ता की मान्यता है। संविधानों ने राज्य शक्ति की सीमा को प्रतिबन्धित और नियमित प्रक्रियाओं से नियंत्रित करने की भूमिका का निर्वाह किया है। किन्तु संविधानों के प्रावधान, राज्य शक्ति दुधारा शस्त्र के रूप में प्रयुक्त कर सकती है, और करती रही है। वस्तुतः संवैधानिक शासन की स्थापना और इसके सातत्य में संविधान से अधिक जनसत्ता की भूमिका महत्वपूर्ण है। संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है, जिनके द्वारा सरकार की शक्ति और शासितों के अधिकार सुनिश्चित होते हैं। संविधान द्वारा इन दोनों के बीच के सम्बंधों का व्यवस्थित समायोजन होता है। संविधान, सरकार संचालन में निदेशक की भूमिका का निर्वाह करता है। राज्य का स्वरूप क्या हो ? जन शक्ति के अधिकार क्या हों? इन दो स्तम्भों पर संविधान निर्मित होता है।

संविधान की सभी परिभाषाओं में यह स्पष्ट है कि, संविधान उन मूलभूत नियमों का संग्रह होता है, जिनके अनुसार सरकारों की सक्रियता सुनिश्चित होती है। सरकार की स्वेच्छाचारिता पर संविधान एक अंकुश है। प्रमुख राजनीतिक शास्त्रकार

इस व्याख्या से सहमत है, कि संविधान आधुनिक राजनीतिक सत्ता का स्रोत है। संविधान में सरकार के विविध अंगों की स्थापना, इनकी सक्रियता और सम्बन्धों का विवेचन होता है। व्यक्तियों या वर्गों के अधिकारों की घोषणा भी संविधान का अंग है। संविधान की मर्यादा का निर्वाह आधुनिक जगत के सभी क्षेत्रों में अपरिहार्य है।

संविधान का वर्गीकरण

संविधान के वर्गीकरण में यह महत्वपूर्ण है कि संविधान मौलिक है, या संविधान प्राप्त किया गया है। मौलिक संविधान उसे कहेंगे जो देश की परम्परा, प्रवाह और प्रगति से अधिकांश में सामंजस्यपूर्ण है। प्राप्त किया उसे मानेंगे, जो एक या अनेक देशों की विभिन्न व्यवस्थाओं की अपने में स्वीकृति देता है। भारतीय संविधान प्राप्ति तथा मौलिक दोनों के बीच मध्यमार्गी है। भारतीय संविधान की उद्देशिका में घोषित सूत्र यूरोपीय पुनर्जागरण काल के हैं।

समाजवाद, पंथ निरपेक्षता, लोकतंत्र, सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था तथा उपासना स्वातंत्र्य, स्तर और अवसर की समानता, सख्यभाव जिससे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तथा अखंडता की सुरक्षाहो। ये शब्द अपेक्षाकृत नये हो सकते हैं, किन्तु इनकी भावनायें भारतीय चिन्तन के अनुकूल हैं। मूलभूत जनाधिकारों या निदेशात्मक सिद्धान्तों में अखण्डित भारतीय चिन्तन से प्रतिकूलता नहीं है। विश्व के कई संविधानों में अपने इतिहास के प्रति गौरव की अनुगूंज महत्वपूर्ण है। भारतीय संविधान में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से इसकी स्वीकृति है। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में औपनिवेशिक इंडिया को परम्परागत भारत के रूप में भी स्वीकृति है। भारतीय संविधान में निहित तत्वज्ञान भारतीय विचारवत्ता से भिन्न नहीं है। तंत्रात्मक संरचना में, राजनीति शास्त्र में पल्लवित जागतिक विकास का प्रतिबिम्ब है।

पश्चिम के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक आन्दोलनों से जिन विचारों और व्यवस्थाओं का अभ्युदय हुआ, उन्हें पराभूत मानसिकता से भी विश्व के कई एशियाई-अफ्रीकी देशों ने स्वीकार किया। इसका प्रतिबिम्ब विश्व के अनेक संविधानों में है। इस्लामी राष्ट्रों ने आधुनिक युग में साहसपूर्ण कदम उठाये हैं। भले ही पंथ-सापेक्ष हैं, किन्तु अपने इतिहास से जुड़े रहने का गौरव इन देशों के संविधानों में परिलक्षित है। जिन इस्लामी राष्ट्रों ने मार्क्सवादी समाजवाद स्वीकार किया, जैसे लीबिया आदि, इन्होंने भी अपनी परम्पराओं से संलग्नता को गरिमा दी है। इतिहास की परम्पराओं से जुड़ने के औचित्य को अनुचित नहीं कहा जा सकता। किन्तु उन परम्पराओं से समग्र मनुष्य जाति के प्रति कितनी मात्रा में सहिष्णुता, सद्भावना, सह अस्तित्व तथा सहकार है, यह महत्व का विषय है। परम्परा में यदि नफरत तथा नाश और विघटन तथा विग्रह की वृत्ति है, तब वह त्याज्य है।

भारतीय संविधान की उद्देशिका में जिन मंत्रों को समाविष्ट किया गया है, उनके अर्थ और अनुकूल आचरण महत्व के विषय हैं। यदि पंथ निरपेक्षता, समाजवाद,

न्याय, स्वातंत्र्य आदि की परिभाषा तथा परिसीमन विकृत होता है और परिव्याप्ति की दिशा में विसंगति प्रकट होती है, तब उसे सही अर्थ के रूप में मान्यता देना उचित है ।

संविधानों के वर्गीकरण में प्रथम है, राजतंत्रात्मक या गणतंत्रात्मक । द्वितीय वर्ग एकात्मक या संघात्मक संविधान का प्रारूप है । तृतीय वर्ग संसदात्मक या अध्यक्षात्मक है । चतुर्थ वर्ग संविधान के सुसंशोध्यता या दुस्संशोध्यता के आधार पर है । पंचम वर्ग है, विकसित या आरोपित । छठा वर्ग पंथ-निरपेक्षता या पंथ-सापेक्षता है ।

प्रस्तुत अध्ययन का विषय संविधान के छठवें वर्गीकरण के आधार से है । संविधान पंथ निरपेक्ष है, या पंथ सापेक्ष - इस दृष्टि से भारतीय संविधान ही नहीं, विश्व के लगभग सभी संविधानों का अध्ययन प्रासंगिक है । समग्र मानवता के उत्कर्ष और उदार सहजीवन की संरचना के लिए आधुनिक विश्व में पंथ सापेक्षता तथा पंथ निरपेक्षता की मीमांसा और मूल्यांकन आवश्यक है । राजतंत्रात्मक में ब्रिटेन, जापान, नेपाल आदि हैं, और गणतंत्रात्मक में भारत, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आदि है । लिखित-अलिखित संविधानों में गुण की अपेक्षा मात्रा का अन्तर अधिक होता है । एकात्मक या संघात्मक में शासन की शक्तियों का, केन्द्रीय राज्य सरकार और प्रदेश सरकारों में, वितरण के प्रतिमान आधार पर निर्णय होता है ।

शासन के विविध अँगों का, कार्यपालिका और विधायिका के पारस्परिक संबंधों के आधार पर, जैसे संसदात्मक संविधान में कार्यपालिका और विधायिका के बीच सामंजस्य, और अध्यक्षात्मक संविधान में दोनों एक दूसरे से पृथक भी होते हैं ।

सुसंशोध्यता या दुःसंशोध्यता में यह ज्ञातव्य है कि, अधिकांश संविधानों में संशोधनों की प्रक्रिया का उल्लेख कर सुसंशोध्यता या दु:संशोध्यता का प्रावधान रहता है । संशोधनों का प्रावधान सामयिक आवश्यकताओं तथा अपेक्षाओं के प्रतिबिम्ब के लिए रहता है । दु:संशोध्य संविधान, जड़ता के कारण बन सकते हैं ।

संविधानों का यह वर्गीकरण भी मान्य किया जाता है - विकसित और आरोपित या निर्मित । विकसित संविधान देश की ऐतिहासिक प्रक्रिया से निकलते हैं। इंग्लैंड का संविधान दीर्घ ऐतिहासिक विकास का फल है । आरोपित जैसे सन् १९४७ मई में अमेरिकी संविधानविदों ने जापान पर एक संविधान आरोपित किया । विश्व के कई देशों में कुछ संविधान जीवन दर्शन के रुचि वैचित्र्य आधार पर बने हैं - समाजवाद की घोषणा करने वाले देश जैसे चीन, क्यूबा, मोजाम्बिक, उत्तरी कोरिया आदि ।

भारत देश के संविधान को विकसित कहा जा सकता है । औपनिवेशिक परम्पराओं से इसका सम्बन्ध अटूट है । सन् १९३५ के भारत के औपनिवेशिक अधिनियम आदि से इसका अविछिन्न सम्बन्ध है । निदेशात्मक सिद्धान्त के चतुर्थ अध्याय के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि, भारत देश के सहस्रों वर्षों के इतिहास से इसका सम्बन्ध है - जैसे अनुच्छेद ३७ द्वारा राज्य की नैतिक शक्ति को प्रभावी रूप से मान्यता, अनुच्छेद ३८ में न्यायपूर्ण समाज की स्थापना, अनुच्छेद ४० द्वारा ग्राम पंचायतों का संगठन, अनुच्छेद ४४ द्वारा सभी नागरिकों के लिए सामान संहिता, अनुच्छेद ४८ में गौ-सुरक्षा, अनुच्छेद ४९ द्वारा ऐतिहासिक स्मारकों, स्थलों तथा राष्ट्रीय

महत्व के स्थानों की सुरक्षा, अनुच्छेद ५१ द्वारा विश्व शान्ति का उन्नयन, अनुच्छेद ५१ क (च) के द्वारा हमारी सामासिक संस्कृति आदि ।

संविधान और परम्परा

भारतीय राज्य शक्ति का प्राचीन इतिहास संवैधानिक मर्यादा से प्रारम्भ होता है । किन्तु विश्व इतिहास के प्राचीन तथा मध्यकाल में ऐसे बहुत कम उदाहरण हैं, जहाँ विधिविधानों द्वारा राज्य की शक्ति को मर्यादित किया गया है । शासन सत्ता एक व्यक्ति के हाथों केन्द्रित होने पर निरंकुशतंत्र या अधिनायकतंत्र का प्राबल्य होता है । सर्वोपरि सत्ताधारी व्यक्ति की रुचि वैचित्र्य ही संविधान बनता है । संवैधानिक व्यवस्थित शासन का आधार संविधान होता है । संवैधानिक शासन में, राज्य शक्ति के सभी अंग और अंश संविधान प्रदत्त अधिकारों के ही प्रयोग की अपेक्षा तथा अनिवार्यता है ।

आधुनिक युग में कुछ ऐसे देश हैं, जिन्होंने संवैधानिक सरकारों की आवश्यकता को नकारा है । ये सऊदी अरब, ओमान तथा अन्य मुस्लिम देश हैं । इनमें कुरान शरीफ ही संविधान के रूप में मान्य हैं ।

लीबिया ने एक लघु संविधान स्वीकृत करके भी, पवित्र कुरान को अपना संविधान घोषित किया है । इन देशों के शासक अपनी इच्छा को सर्वोपरि रूप में स्वीकार करते रहे हैं । भारतीय परम्परा में मनुस्मृति या किसी अन्य स्मृति को संविधान या राज्य धर्म के रूप में अन्तिम रूप से कभी स्वीकार नहीं किया गया । परम्परा में प्रगति के बीज, सर्वभूतहित, सत्य-शोध और विचार-स्वातंत्र बोता रहा है ।

विश्व के कुछ महत्वपूर्ण राष्ट्रों या देशों में जो पंथ-सापेक्ष या धर्म-सापेक्ष हैं, उनका अध्ययन वर्तमान की प्राथमिक आवश्यकता है । इस्लाम सापेक्ष एशियाई, अफ्रीकी, ईसाई सापेक्ष यूरोपीय तथा अन्य, बौद्ध सापेक्ष एशियाई तथा हिन्दू सापेक्ष एशियाई देश के संविधानों के प्रावधानों का विहंगावलोकन एक मानसिकता के प्रकटीकरण के सहायक हैं । इसके आधार पर विश्व परिप्रेक्ष्य में सहअस्तित्व, सद्भावना, सामंजस्य तथा सहजीवन का सन्मार्ग प्रशस्त होने की अनन्त सम्भावना को भावी इतिहास नकार नहीं सकेगा ।

भारतीय संविधान रचनाकाल

भारतीय संविधान के निर्माण से नये राष्ट्रीय जीवन-चिन्तन का शुभारम्भ एक ऐतिहासिक घटना है । भारतीय संविधान का निर्माण जिन परिस्थितियों में हुआ, उनका प्रतिबिम्ब सहज रूप से स्पष्ट है । संविधान की उद्देशिका में मूलभूत सिद्धान्तों और निदेशात्मक सिद्धान्तों द्वारा भारतीय जीवन की सहस्राब्दियों के इतिहास से उपलब्ध मूल्यवत्ता का तात्त्विक समावेश महत्वपूर्ण है । वर्तमान की स्थितियों और समस्याओं के सामयिक समाधान से संविधान की प्रतिबद्धता है । स्थापित और स्तरीय भावी जीवन के प्रति भी संविधान का दायित्व है ।

भारतीय संविधान के पूर्व का इतिहास भी पंथ निरपेक्षता के प्रावधान के संदर्भ में प्रासंगिक है । भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन के संदर्भ में पंथ निरपेक्षता की अवधारणा को बल मिला है ।

बीसवीं शती के भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन को गति और गंतव्य प्रदान करने वाले इतिहास पुरुष धार्मिक व्यक्ति रहे हैं । इन इतिहास पुरुषों की दीर्घ श्रृंखला है । कुछ नाम अधिक महत्व के माने जाते हैं । लोकमान्य तिलक और पश्चात् महात्मा गांधी यदि धार्मिक व्यक्ति नहीं होते, भारतीय जनमानस में इतना गहरा और गम्भीर प्रभाव नहीं होता, जितना इतिहास में अंकित हो गया है । भारतीय प्राचीन तत्वज्ञान को लोकमान्य और महात्मा ने मानवीय मूल्यों के आधार पर ग्रहण किया था । इस कारण यह पांथिक नहीं, धार्मिक थे । यह भेद भारतीय परम्परा में सहज ही ग्राह्य है। महात्मा का समस्त जीवन चिन्तन भारतीय इतिहास से प्राप्त विचार और विवेक पर आधृत था । ईसावास्योपनिषद और भगवद्गीता के भाष्य द्वारा एक परम्परागत-प्रवहमान धार्मिक-आध्यात्मिक तत्वज्ञान को वर्तमान परिवेश में महात्मा ने ग्रहण किया था । इसके अनुकूल या इसके आधार पर स्वातंत्र्य के अभियान को संचालित किया था । यह तथ्यपूर्ण है कि धर्म निरपेक्षता की जड़ मान्यताओं से इसका सम्बन्ध नहीं था । किन्तु धर्म के नाम पर जड़ता या जटिलता को भारतीय मनीषा और महात्मा ने कभी स्वीकार नहीं किया । महात्मा ने स्वीकार किया था, एक वह धर्म जो विश्व मानवता को सही दिशा और दायित्व का बोध करा सके । महात्मा के नेतृत्व में स्वातंत्र्य आन्दोलन एक धार्मिक आन्दोलन बना । भारतीय इतिहास की मुख्य धारा धर्म से जुड़ने के कारण महात्मा के स्वातंत्र्य आन्दोलन को तेजस्विता तथा तीव्रता उपलब्ध हुई । यह ऐतिहासिक तथ्य है। इस यथार्थ को इतिहास नकार नहीं सकता।

महात्मा गांधी का चिन्तन और चरित्र धर्म-सापेक्ष था । किन्तु महात्मा पंथ निरपेक्ष थे । इस पंथ निरपेक्षता का अभिप्राय, अपने मतवाद पर स्थिर रह कर दूसरे पंथों का समादर है । स्वराज्य आन्दोलन को मूलतः धर्म निरपेक्ष मानने का यह आशय हो सकता है कि, पंथों या उपासना पद्धतियों के प्रति रुचि वैचित्र्य, या निष्ठा, या सहिष्णुता, समानता, समता या सर्व धर्मसमभाव का समादर ।

१९३१ में कांग्रेस के करांची अधिवेशन के एक प्रस्ताव में कहा गया था कि, राज्य सभी धर्मों (पंथों) के सम्बन्ध में निष्पक्ष रवैया अपनायेगा । महात्मा गांधी ने ६ अगस्त, १९४२ को कहा था कि, हिन्दुस्तान उन सब लोगों का है जो यहाँ पैदा हुए और बढ़े, और जो किसी और देश की तरफ नहीं देख सकते । अतः इस पर पारसियों, इसराइलियों, भारतीय ईसाइयों, मुसलमानों तथा अन्य गैर हिन्दुओं का उतना ही हक है, जितना कि हिन्दुओं का । आजाद हिन्दुस्तान हिन्दूराज नहीं होगा, वह भारतीय राज्य होगा । जो किसी एक धर्म को मानने वालों की बहुसंख्या पर आधारित नहीं होगा । बल्कि धार्मिक भेदभाव के बिना सारी जनता के प्रतिनिधित्व पर आधारित होगा । हिन्दू और हिन्दू राज्य को संकीर्ण मतवाद से पृथक रहने का अभिप्राय महात्मा का है ।

पं० नेहरू ने 'भारत आज और कल' में इसी बात पर जोर देते हुए कहा, - 'भारत उन सबका घर है जो यहाँ रहते हैं चाहे वे किसी धर्म के हों - उनके अधिकार और दायित्व बराबर हैं । हमारा समाज मिला जुला समाज है, और आधुनिक बहु धार्मिक समाज में व्यक्तिगत विश्वास तथा व्यक्तिगत आचरण का सम्मान किया जाना चाहिए । धर्म-निरपेक्षता एक संघीय समाज का सिद्धान्त है, जो सभी लोगों के कल्याण के लिए हैं । हम एक धर्म-निरपेक्ष राज्य का निर्माण करने जा रहे हैं जहाँ प्रत्येक धर्म को पूरी आजादी और पूरा सम्मान मिलेगा और उसके नागरिकों को समान आजादी तथा समान अवसर मिलेंगे ।' इन सबमें धर्म का अभिप्राय पंथ (रिलीजन) से हैं । इसमें हिन्दू राज्य का निषेध हिन्दू की संकीर्ण अवधारणा में हैं । (अन्य प्रकरण में हिन्दू शब्द का विवेचन है) सामान्यतः इस तथ्य को कभी नहीं माना गया है कि, उपासना पद्धति या पांथिक आस्था के कारण किसी की नागरिकता की अस्वीकृति होगी । यहाँ बहुधार्मिक समाज शब्द के स्थान पर सर्वधार्मिक या सर्व पांथिक शब्द सार्थक है ।

भारतीय संविधान निर्माण काल की परिस्थितियों का विश्लेषण आवश्यक है । भारत देश का, पंथ के आधार पर १९४७ में बंटवारा हो गया । इस बंटवारे का दोष या दायित्व किसका है, यह विवादास्पद हो सकता है, किन्तु बंटवारे में मुस्लिम लीग और राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रमुख भूमिकायें रही हैं । मुस्लिम लीग इस्लाम मतावलम्बियों की पक्षधर थी । राष्ट्रीय कांग्रेस हिन्दू-मुसलमानों दोनों के प्रतिनिधित्व करने का दावा करती रही । जिसे मुस्लिम लीग आदि ने स्वीकार न कर, कांग्रेस को हिन्दू राष्ट्रवादी शक्ति माना था । बँटवारे में हिन्दू बहुमत भारत, और मुस्लिम बहुमत पाकिस्तान बना । तथ्य की दृष्टि से यह हिन्दू-मुसलमान दोनों मतावलम्बियों के मध्य बँटवारा था । इतिहास इसे अस्वीकार नहीं कर सकता । यह धर्म या पंथ के नाम पर बँटवारा क्यों हुआ ? क्या साम्राज्यवादी शक्तियों का कूटनीतिक कुचक्र था ? क्या उभय पक्ष की सत्तालोलुपता कारण बनी थी ? क्या इस्लाम की असहिष्णुता ने बंटवारे को इतिहास का तथ्य बनाया ? क्या मध्यकालीन इतिहास में पदाक्रान्त हिन्दुत्व का दर्प जाग्रत हो गया था ? वस्तुतः सभी प्रश्नों में आंशिक सत्य है । यह भी सत्य है कि, इस्लाम की असहिष्णुता पर्याप्त तथा प्रामाणिक रूप से बंटवारे के लिए उत्तरदायी है । महात्मा गांधी जी का स्पष्ट कथन है कि, इस्लाम के संदर्भ में पंथ निरपेक्षता निरर्थक है। पंथ निरपेक्षता स्वीकार कर इस्लाम अपने अस्तित्व को कठिनाई से सुरक्षित कर सकेगा ।

भारतीय संविधान के निर्माण के पूर्व स्वातंत्र्य संघर्ष, महात्मा गांधी की सद्भावना और भारत विभाजन की त्रासदी का विश्लेषण, पंथ निरपेक्ष या सेकुलर विचार को विकसित और व्याख्यायित करने में सहायक है । इस शोध ग्रंथ में सेकुलर या पंथ निरपेक्ष का भारतीय परम्परा के परिप्रेक्ष्य में विवेचन अन्य प्रकरण में है ।

संविधान का प्रयोजन राजसत्ता को परिभाषित और परिष्कृत करना है । सभ्यशासन का आधार, राज्य व्यवस्था के स्थायित्व की अपेक्षा, स्वतंत्रता की आकांक्षा, तथा सामाजिक न्याय की अनुकूलता संविधान का तत्त्वज्ञान है । इसे संविधानवाद की

2
भारतीय संविधान

भारतीय संविधान २२ भागों में है । इसमें ३६५ अनुच्छेद और दस अनुसूचियां तथा चार परिशिष्ट है । पंथ निरपेक्षता के अध्ययन के प्रमुख आधार संविधान की उद्देशिका, नागरिक का मूलभूत संरक्षण तथा मूल अधिकार हैं । इस संदर्भ में संविधान की सुसंशोध्यता, ४२वां संविधान संशोधन, सर्वधर्म समभाव का संशोधन, संविधान के धर्म और पंथ के प्रसंग, तथा पंथ निरपेक्षता और साम्प्रदायिकता के अन्तर्निहित विचारों को व्याख्यायित करना उपादेय है ।

भारतीय संविधान की रचना में सर्वप्रथम उद्देशिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है । इतिहास की पृष्ठभूमि से निसृत तथ्य और तत्वज्ञान के आधार परसमाज की आकांक्षा और अपेक्षा की सूत्रबद्ध अभिव्यक्तिउद्देशिका में है । उद्देशिका संविधान की चेतना या आत्मा है । राज्य के सुनिश्चित और सुव्यवस्थित पथ पर उद्देशिका प्रकाश स्तम्भ है । भारत के संविधान में ही नहीं, विश्व के अनेक संविधानों में उद्देशिका का प्रावधान है । किन्तु उद्देशिका की सूत्रबद्ध शैली भारतीय चिन्तन परम्परा के अधिक निकट है। चिन्तन की परम्परा में सूत्र शैली काल बाधित नहीं होती । अपेक्षाकृत दीर्घकाल तक इसमें तेजस्विता अक्षुण रहती है । इसकी नित्यनूतनता या ताजगी, भाष्यकारों या वार्तिकारों को परिवेश, परिस्थितियों तथा प्रतिभाओं के अनुकूल चिन्तन के अनन्त आकाश में विचरण करने का आमंत्रण है ।

उद्देशिका

भारतीय संविधान के केन्द्र की खोज में उद्देशिका को प्रथम स्थान देने वाले संविधानविद भी हैं । संविधान की दिशा उद्देशिका द्वारा स्पष्ट है । भारतीय संविधान की उद्देशिका की व्याख्या या विश्लेषण अभीष्ट नहीं है । निर्दिष्ट विषय पंथ निरपेक्षता या सेकुलर के विश्लेषण के सन्दर्भ में उद्देशिका की विवेचना आवश्यक है ।

नवम्बर १९४९ को जब भारतीय संविधान अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया, उद्देशिका में पंथ निरपेक्ष या सेकुलर शब्द नहीं था । किन्तु धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का प्रावधान था । उद्देशिका में न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, प्रतिष्ठा अवसर की समानता और बंधुता के बढ़ाने की घोषणा कर, राज्य शक्ति को मर्यादित किया गया । उद्देशिका में पांथिक भेदभाव समापन का निश्चय, स्पष्ट रहा है।

मूलभूत संरक्षण

आधुनिक संविधानों में नागरिक का संरक्षण और स्वतंत्रता का प्रावधान पश्चिम के इतिहास में लम्बे संघर्ष के उपरान्त हुआ है । इंग्लैण्ड के मध्यकाली

विश्वासों, विचारों और विवेक के आधार पर वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन जीने की सुविधा है। अपने पंथ या धर्म पर अबाध विश्वास, पांथिक आचरण का स्वातंत्र्य, पांथिक आस्था, पांथिक संगठन स्वातंत्र्य आदि का प्रावधान है। इस संदर्भ में पांथिक, धार्मिक, आध्यात्मिक मतवादों के स्वातंत्र्य की संवैधानिक गारंटी है। भारतीय संविधान में स्वतंत्रता का प्रावधान इसके निर्मिति काल की परिस्थितियों और भारत देश की इतिहास की परम्पराओं, तथा विश्व परिप्रेक्ष्य में तर्कपूर्ण है। किन्तु राजनीति शास्त्री या संविधानविद् इस सामान्य तर्क से भी सहमत हैं कि, स्वातंत्र्य या इसका अधिकार असीमित नहीं हो सकता। स्वतंत्रता का अभिप्राय स्वच्छंदता नहीं है। सार्वजनिक नैतिकता, सदाचार तथा राज्य की नीतिमत्ता के अन्तर्गत स्वातंत्र्य का उपयोग विवेक-सम्मत माना जाता है। मौलिक अधिकार को संविधान निर्मित नहीं करता है, केवल स्वीकृति देता है।

मूल अधिकार, विश्वासों, विचारों और विवेक के आधार पर वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन जीने की सुविधा है। अपने पंथ या धर्म पर अबाध विश्वास, पांथिक आचरण का स्वातंत्र्य, पांथिक आस्था, पांथिक संगठन - स्वातंत्र्य आदि का मूल अधिकार है। मूल अधिकारों के संदर्भ में पांथिक, धार्मिक और आध्यात्मिक मतवादों के स्वातंत्र्य की संवैधानिक मान्यता है। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का संविधान भाग - ३ में प्रावधान है। राजनीतिक नैतिकता के अन्तर्गत नागरिक के मूलभूत अधिकारों का अधिकांश संविधानों में प्रावधान है। संविधानों में इसे प्रमुख रूप से स्वीकार किया गया है। मूल अधिकार में समता का अधिकार, स्वातंत्र्य का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, पांथिक स्वातंत्र्य का अधिकार, सांस्कृतिक स्वातंत्र्य का अधिकार ही है। ये मूलभूत अधिकार उस स्वतंत्रता तथा स्थिति में हैं, जिससे नागरिक का विकास अबाध रूप से हो सके। आत्म विकास की दिशा में उचित स्वतंत्रता की मांग की संज्ञा, अधिकार है। अधिकार, श्रेयस्कर जीवन का आधार है। राज्य की हस्तक्षेपनीयता को सीमित करने और साम्पत्तिक अधिकारों तथा दंड विधानों की प्रक्रिया से तर्क संगत संरक्षण कौशल के अधिकारों का संविधान में प्रावधान है। निरंकुश या निर्मम प्रणाली में राज्यतंत्र की इच्छा की बलिवेदी पर अधिकारों का समापन किया जाता है। लोकशाही का लक्षण मूलभूत स्वातंत्र्य की व्यवस्था है।

नागरिक के संतुलित और समुचित विकास के लिए मूलभूत अधिकार अनिवार्य हैं। मूलभूत अधिकारों की पृष्ठभूमि में सामाजिक सम्बन्धों तथा स्थितियों की श्रेष्ठ संरचना है। नागरिक के अधिकारों की संवैधानिक मान्यता, संविधान पूर्व सामाजिक स्वीकृति प्राप्त प्रचलित स्थिति के कारण है। समाज में सर्वमान्य हित के लिए, तथा उत्तम और उन्नत सामाजिक सम्बन्धों के लिए राज्य शक्ति मनुष्य जाति के आधारभूत स्वत्व को बुनियादी अधिकारों के प्रावधान द्वारा स्वीकृति देती है।

संविधान के प्रारम्भ में नागरिकता के संदर्भ में (अनुच्छेद ५) प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत के राज्य क्षेत्र में अधिवास या जन्मा था, या उसके माता या पिता कोई जन्मे थे, या पाँच वर्ष पूर्व से निवास कर रहा हो, उसे भारत का नागरिक मान लिया गया। नागरिकता के अभेद में पांथिक बाधा सामने नहीं आयी। पांथिक स्वतंत्रता को

विश्वासों, विचारों और विवेक के आधार पर वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन जीने की सुविधा है। अपने पंथ या धर्म पर अबाध विश्वास, पांथिक आचरण का स्वातंत्र्य, पांथिक आस्था, पांथिक संगठन स्वातंत्र्य आदि का प्रावधान है। इस संदर्भ में पांथिक, धार्मिक, आध्यात्मिक मतवादों के स्वातंत्र्य की संवैधानिक गारंटी है। भारतीय संविधान में स्वतंत्रता का प्रावधान इसके निर्मिति काल की परिस्थितियों और भारत देश की इतिहास की परम्पराओं, तथा विश्व परिप्रेक्ष्य में तर्कपूर्ण है। किन्तु राजनीति शास्त्री या संविधानविद् इस सामान्य तर्क से भी सहमत हैं कि, स्वातंत्र्य या इसका अधिकार असीमित नहीं हो सकता। स्वतंत्रता का अभिप्राय स्वच्छंदता नहीं है। सार्वजनिक नैतिकता, सदाचार तथा राज्य की नीतिमत्ता के अन्तर्गत स्वातंत्र्य का उपयोग विवेक-सम्मत माना जाता है। मौलिक अधिकार को संविधान निर्मित नहीं करता है, केवल स्वीकृति देता है।

मूल अधिकार, विश्वासों, विचारों और विवेक के आधार पर वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन जीने की सुविधा है। अपने पंथ या धर्म पर अबाध विश्वास, पांथिक आचरण का स्वातंत्र्य, पांथिक आस्था, पांथिक संगठन - स्वातंत्र्य आदि का मूल अधिकार है। मूल अधिकारों के संदर्भ में पांथिक, धार्मिक और आध्यात्मिक मतवादों के स्वातंत्र्य की संवैधानिक मान्यता है। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का संविधान भाग - ३ में प्रावधान है। राजनीतिक नैतिकता के अन्तर्गत नागरिक के मूलभूत अधिकारों का अधिकांश संविधानों में प्रावधान है। संविधानों में इसे प्रमुख रूप से स्वीकार किया गया है। मूल अधिकार में समता का अधिकार, स्वातंत्र्य का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार, पांथिक स्वातंत्र्य का अधिकार, सांस्कृतिक स्वातंत्र्य का अधिकार ही है। ये मूलभूत अधिकार उस स्वतंत्रता तथा स्थिति में हैं, जिससे नागरिक का विकास अबाध रूप से हो सके। आत्म विकास की दिशा में उचित स्वतंत्रता की मांग की संज्ञा, अधिकार है। अधिकार, श्रेयस्कर जीवन का आधार है। राज्य की हस्तक्षेपनीयता को सीमित करने और साम्पत्तिक अधिकारों तथा दंड विधानों की प्रक्रिया से तर्क संगत संरक्षण कौशल के अधिकारों का संविधान में प्रावधान है। निरंकुश या निर्मम प्रणाली में राज्यतंत्र की इच्छा की बलिबेदी पर अधिकारों का समापन किया जाता है। लोकशाही का लक्षण मूलभूत स्वातंत्र्य की व्यवस्था है।

नागरिक के संतुलित और समुचित विकास के लिए मूलभृत अधिकार अनिवार्य हैं। मूलभूत अधिकारों की पृष्ठभूमि में सामाजिक सम्बन्धों तथा स्थितियों की श्रेष्ठ संरचना है। नागरिक के अधिकारों की संवैधानिक मान्यता, संविधान पूर्व सामाजिक स्वीकृति प्राप्त प्रचलित स्थिति के कारण है। समाज में सर्वमान्य हित के लिए, तथा उत्तम और उन्नत सामाजिक सम्बन्धों के लिए राज्य शक्ति मनुष्य जाति के आधारभूत स्वत्व को बुनियादी अधिकारों के प्रावधान द्वारा स्वीकृति देती है।

संविधान के प्रारम्भ में नागरिकता के संदर्भ में (अनुच्छेद ५) प्रत्येक व्यक्ति जिसका भारत के राज्य क्षेत्र में अधिवास या जन्मा था, या उसके माता या पिता कोई जन्मे थे, या पाँच वर्ष पूर्व से निवास कर रहा हो, उसे भारत का नागरिक मान लिया गया। नागरिकता के अभेद में पांथिक बाधा सामने नहीं आयी। पांथिक स्वतंत्रता को

सिद्ध करने के लिए अनुच्छेद ५ पर्याप्त है । पांथिकमतवाद या धार्मिक आस्था - विश्वास नागरिकता का मानदंड नहीं है । भारत-पाक का पंथ के नाम पर विभाजन का संदर्भ भी परम्परागत भारतीय औदार्य की ऊँचाइयों को नहीं झुका सका । संविधान के मूल अधिकारों के प्रावधान में समाज की अन्तः रचना का प्रतिबिम्ब है । उद्देशिका संविधान के शरीर की आत्मा, और मूल अधिकार इसकी बुद्धि है ।

भारतीय संविधान के १४वें अनुच्छेद में प्रत्येक नागरिक की विधि के समक्ष समानता और संरक्षण की घोषणा है । किसी पंथ विशेष या जाति को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है । भारतीय ऐतिहासिक वैचारिक परम्परा, तथा आधुनिक विश्व में मानवता की प्रगति के संदर्भ में कानून के समक्ष राज्य शक्ति द्वारा प्रत्येक की समानता और संरक्षण, अध्ययन का रोचक विषय है । जन्म, व्यवसाय और जाति की असमानताओं में मनुष्य जाति की समता की स्थापना और सख्य की शोध १४वें अनुच्छेद में निहित है । तथ्यगत और तर्कसंगत समता, सहजीवन की मान्यता है । इस प्रावधान से पंथ और जाति के कारण असमानता के घिरौंदे और उनसे जन्मी घृणा सारहीन है ।

भारतीय संविधान के १५वें अनुच्छेद में राज्य की स्पष्ट घोषणा है कि, किसी नागरिक से राज्य शक्ति, पंथ-जाति आदि के कारण भेदभाव नहीं करेगी । इस अनुच्छेद के प्रावधान में समाज के किन्हीं पदाक्रान्त वर्गों को संरक्षण है । असमानता और अन्याय की पौधशाला को विवेक से विनष्ट करना इस अनुच्छेद का अभिधेय है ।

संविधान के १६वें अनुच्छेद में राज्य शक्ति ने सेवा-समायोजन में पंथ आदि के भेद को अस्वीकृत किया है । किसी पांथिक या धार्मिक संस्थान के परम्परागत विधि सम्मत प्रबंधन स्वातंत्र्य में हस्तक्षेप न करने का निर्णय है ।

भारतीय संविधान के १९वें अनुच्छेद ने स्वातंत्र्य की अवधारणाओं को मूर्त रूप प्रदान किया है । इस अनुच्छेद में वाक्-स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, शान्तिपूर्ण निशस्त्र सभा संयोजन स्वातंत्र्य, संगठन-संस्थान आयोजित करने के स्वातंत्र्य आदि, राज्य की सुरक्षा, मैत्री पूर्ण विदेशी सम्बन्धों का सम्मान, सार्वजनिक जीवन की शालीनता, नैतिकता, विधिका सम्मान, नीतिमत्ता आदि के संदर्भ में स्वीकृति है । लोकतांत्रिक जीवन के ताने बाने में स्वातंत्र्य की मान्यता और मर्यादा की स्वीकारोक्ति संविधान के १९वें अनुच्छेद में है ।

१९वें अनुच्छेद में मानवीय व्यक्तित्व को स्वयं संतुष्टि या स्वांतःसुखाय का वातावरण प्रदान किया गया है। इसने सतत सत्य की शोध का मार्ग प्रशस्त किया है। सच बोलने की आजादी दी है । राज्य और समाज के किसी निर्णय में सहभागिता के द्वार उन्मुक्त किये हैं । सामाजिक स्थायित्व और सामाजिक परिवर्तन के मध्य सन्तुलन स्थापित किया गया है । पांथिक या धार्मिक स्वातंत्र्य की गरिमा इसमें सहज रूप से समाविष्ट है । स्वातंत्र्य-स्वधर्म के प्रति सहजता और परधर्म के प्रति सहिष्णुता है । भारतीय संविधान की पंथ निरपेक्षता मानवीय स्वातंत्र्य की आकांक्षा और अभिव्यक्ति की उपज है ।

संविधान के २१वें अनुच्छेद में पंथ निरपेक्षता की अवधारणा, व्यक्तिगत अस्तित्व और आजादी की सुरक्षा के सन्दर्भ में विवेचनीय है । पांथिक मतभेद के कारण

मध्ययुगीन और सामंती पद्धति, जीवन और जीवन शैली को संकट में ढकेलती रही है। जिहाद या धर्म युद्ध के नाम पर पाशविक या अमानवीय अव्यवस्था को नकारने के सन्दर्भ में भी इस प्रावधान का ग्रहण करना आवश्यक है । राज्य शक्ति दृढ़ता से इस मध्ययुगीन वृति का समापन करने की निष्ठा से आपूरित है । वर्तमान सन्दर्भ में भी मानवीय गरिमा से पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन जीने की शक्ति और साहस का संचय २१वां अनुच्छेद है ।

संविधान के २५से २८ अनुच्छेदों में विशेष रूप से पांथिक स्वातंत्र्य के अधिकारों की घोषणा हैं ।

२५वें अनुच्छेद नें पांथिक मतवादों के सन्दर्भ में चेतना, चिन्तन, चरित्र तथा प्रचार-प्रसार के अधिकार स्वातंत्र्य को अग्रसारित किया है । पांथिक गतिविधियों से संलग्न आर्थिक, वित्तीय, राजनीतिक तथा अपांथिक वृत्तियों को नियंत्रित और प्रतिबंधित करने के अधिकार को राज्य शक्ति के विवेकाधीन का प्रावधान भी २५वें अनुच्छेद में है । सामाजिक शुभ और सुधार के निमित्त सभी सार्वजनिक चरित्र की हिन्दू धार्मिक संस्थाओं को, समस्त हिन्दू वर्गों और विभागों के लिए उन्मुक्त किया गया है । अनुच्छेद के अनुसार हिन्दू के अन्तर्गत सिक्ख, जैन तथा बौद्ध हैं । सिखों को कृपाण रखने की छूट का भी प्रावधान है ।

अनुच्छेद २६ में सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा स्वास्थ्य की पृष्ठभूमि में, प्रत्येक पंथ या उसके किसी वर्ग को पांथिक या जनहित में संस्था की रचना और इसके पोषण के अधिकार का प्रावधान है । इसी अनुच्छेद में पांथिक व्यवस्था के प्रबंध तथा चल-अचल सम्पत्ति के स्वामित्व ग्रहण और इस सम्पत्ति के रख रखाव का अधिकार प्रत्येक पंथ को है ।

अनुच्छेद २७ में किसी व्यक्ति को पांथिक प्रसार आदि के लिए किसी को करशुल्क लेने के अधिकार का वर्जन है । मध्ययुगीन शासकों द्वारा जजिया आदि के संदर्भ में आधुनिक युग के दृष्टिकोण के अध्ययन के प्रसंग में यह अनुच्छेद महत्त्व का है।

अनुच्छेद २८ के अनुसार राज्य द्वारा संचालित शिक्षालयों में कोई पांथिक शिक्षण नहीं होगा । किन्तु किसी ट्रस्ट आदि द्वारा सृजित और संचालित शिक्षण संस्थान में यह अनुच्छेद प्रभावी नहीं है । राज्य द्वारा मान्य, या राज्य द्वारा सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान में किसी व्यक्ति को पांथिक शिक्षण के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद २९ में किसी वर्ग को अपनी अलग भाषा, लिपि तथा सभ्यता के रक्षण का अधिकार प्रदान किया गया है । इसके द्वारा अल्पसंख्यकों को भाषायी और सांस्कृतिक अधिकार का संरक्षण प्राप्त है । राज्य से मान्य या वित्तीय सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थान के द्वारा केवल पंथ, नस्ल जाति तथा भाषा के आधार पर प्रवेश का निषेध वर्जित है ।

भारतीय संविधान के तीसवें अनुच्छेद में सभी भाषायी-पांथिक अल्पसंख्यकों को अपनी रुचि अनुकूल शिक्षण संस्थाओं के चयन तथा स्थापन और प्रबन्धन का अधिकार दिया गया है । इस अनुच्छेद में अल्पसंख्यक से भेदभाव न करने का निर्देश

भी है । 'रुचि' शब्द का अर्थ अल्पसंख्यक के संरक्षण का है । इससे किसी विशेषाधिकार का बोध संविधान की बृहत पृष्ठभूमि में तर्क संगत और विवेकपूर्ण नहीं हो सकता । रुचि की मर्यादा की व्याख्या-विश्लेषण जागतिक और भारतीय परम्परा में भी होना अत्यावश्यक है । अल्पसंख्यक को बंधनहीन और अबाधित अधिकार नहीं है । बहुसंख्यक की तुलना में अल्पसंख्यक से समानता स्थापित रखने का अभिप्राय ही इस प्रावधान का अर्थ होना उचित है । संविधान के अनुच्छेद १३-१४ तथा १६ के अनुसार अल्पसंख्यक को विशेषाधिकार, संविधान की मर्यादा के विरुद्ध है ।

अनुच्छेद ३० के भारतीय संविधान का उद्देश्य है कि, समाज के किसी भी या सभी अल्पसंख्यक वर्ग को अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति का अधिकार है । समस्त संवैधानिक ढांचे के संदर्भ में इस पर विचार करना आवश्यक है । इसमें यह भी स्पष्ट है कि भारतीय संविधान किसी वर्ग को विशेषाधिकार नहीं प्रदान करता । इसके साथ ही शिक्षा के नाम पर स्वच्छन्दता, कुप्रबंधन या नियमहीनता या धन सम्पत्ति के दुरुपयोग आदि की छूट नहीं हो सकती । उच्चतम न्यायालय ने (ए०आई०आर० १६५८ एस० सी० १६५६ और एम० आई० आर० १६७४ एस० सी० १३८६) अपने निर्णयों द्वारा अल्पसंख्यक संस्थाओं को प्रश्रय दिया। इसका अभिप्राय संविधान प्रदत्त संरक्षण मात्र की व्यवस्था है । इससे कुछ अल्पसंख्यक संस्थानों को विशेषाधिकार प्राप्त होना तर्क-संगत तथा विवेकपूर्ण नहीं है। राज्य की नियामक शक्ति की परिधि से बाहर, कोई पांथिक विशेषाधिकार की कोटि में, किसी प्रकार से अल्पसंख्यक वर्ग को भी अधिकार नहीं हो सकता ।

अनुच्छेद ३० में रुचि का अर्थ भारतीय संविधान की मूल भावना समता का अतिक्रमण नहीं हो सकता । रुचि किसी विशेष अधिकार को जन्म नहीं देती । रुचि द्वारा राज्य के हस्तक्षेप को निरस्त नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद ३० के सन्दर्भ में राज्य द्वारा या न्यायालयों द्वारा बहुसंख्यक समुदाय की सुविधा को अल्पसंख्यक की तुलना में सीमित नहीं किया जा सकता । किसी गैर बराबरी को इस अनुच्छेद द्वारा पोषित करना द्वेष और दमन का कारण भी बन सकता है । बहुसंख्यक अधिकारों की कटौती का अभिप्राय वास्तविक और विवेकपूर्ण नहीं हो सकता ।

संविधान के इस अनुच्छेद में रुचि का तात्पर्यपंथ विशेष के मतवाद का शिक्षण तर्क संगत है । किन्तु अन्य शिक्षण संस्थान के समान विषय या पाठ्य क्रम को स्वीकार करके भी अल्पसंख्यक संस्थान घोषित करना अर्थहीन होगा । पंथ विशेष के सिद्धान्तों की शिक्षा में रुचि के स्वातंत्र्य का अधिकार है । यदि वह अर्थ स्वीकार्य नहीं, तब बहुसंख्यकों की तुलना में अल्पसंख्यक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग बनेगा । संवैधानिक समाधान किसी अन्यायपूर्ण स्थिति का प्रक्षालन और समानता से सुसंगति के द्वारा सम्भव है ।

भारतीय संविधान के भाग ४ में राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों का प्रावधान है । भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३८ में लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए राज्य से एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था के विकास की अपेक्षा है, जिससे सामाजिक,

आर्थिक और राजनीतिक न्याय चेतना से राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थायें अनुप्राणित हों । न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में परोक्ष रूप से पंथ निरपेक्षता भी समाविष्ट है । धर्म-पंथ या मतवाद या किसी पूर्वाग्रह में अभेद की स्थिति का निर्देश इस अनुच्छेद में है । समाज में विभिन्न स्तरों पर न्याय की प्रतिष्ठा मानवीय एकता की दिशा में है । इस न्याय में पंथ निरपेक्षता एक सहज अनुबन्ध है ।

अनुच्छेद ३६ में प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष की जीवन यापन की बराबरी का उल्लेख है । स्वातंत्र्य और सम्मान प्रत्येक के लिए है । अनुच्छेद ४४ में समानतापूर्ण नागरिक संहिता की राज्य द्वारा निर्मिति का निर्देश है ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ५१ (क) को १६७६ के ४२वें संशोधन द्वारा अतःस्थापित किया गया । भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण भारत के प्रत्येक नागरिक के कर्तव्य रूप में स्थापित किया गया । धर्म या वर्ग आदि के भेदभाव से परे होने की अपेक्षा इस अनुच्छेद में है । इसी अनुच्छेद (ज) में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना के विकास का प्रावधान है । धर्म के बुद्धिग्राह्य रूप के लिए यह प्रावधान महत्वपूर्ण है । धर्म आदि के प्रति विवेक का आग्रह इसमें स्पष्ट है । भारतीय मनीषा की सारग्रही प्रवृत्ति इसी आधार पर परम्परा को नित्य नूतन रूप देने का प्रयास करती रही है । सभी धर्मों या पंथों के सख्य और सामंजस्य की प्रोन्नति का कर्तव्य प्रत्येक नागरिक का है । सभी की उच्च स्तरीय उपलब्धियों की दिशा में सामूहिक दायित्व का निर्वाह, इस अनुच्छेद में कर्तव्य घोषित किया गया है।

अनुच्छेद ३२५ में धर्म या पंथ, मूलवंश (नस्ल), जाति या लिंग के आधार पर वयस्क मताधिकार के लिए अपात्रता का निषेध है । वयस्क मताधिकार में पांथिक भूमिका का निषेध है । मतवाद या उपासना पद्धति निरपेक्ष राजनीति वयस्क मताधिकार के अधिक अनुकूल है । प्रत्येक व्यक्ति का मत स्वातंत्र्य इस अधिकार की नींव है ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३२६ में संसद और विधान सभा के निर्वाचन में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था है । वयस्क मतदाता की आयु उन्नीसवें संशोधन सन् १६८६ में अट्ठारह वर्ष की गयी थी । इस अनुच्छेद में वयस्क मताधिकार से विधिक रूप में अनागरिक, अपराधी, अवैध या भ्रष्टाचार, विकृत चित्त आदि कारणों से वंचित होने का प्रावधान है । पांथिक मतवाद बाधक नहीं है ।

भारतीय संविधान के कुछ विरोधाभास हैं । संविधान निर्मात्री परिषद ने, संविधान में राज्य के द्वारा 'परसनल ला' की आजादी के प्रावधान को क्यों स्वीकार किया ? संविधान में ३३१-३३६-३३७ में एंग्लो भारतीयों के हित के लिए विशेष प्रावधान करने से क्या संविधान की समानता खण्डित नहीं होती ? हिन्दू कानून पृथक और मुस्लिम 'परसनल ला' अलग, फिर समान नागरिक संहिता का क्या औचित्य है?

अल्पसंख्यक को संरक्षण ही क्यों ? वृहत समाज को संरक्षण क्यों नहीं ? क्या इस कारण कथित अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के मध्य अविश्वास पनप नहीं रहा है ? समाज को तोड़ने वाली ताकतों को क्या कोई संविधान संरक्षण दे सकता है?

सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि, संविधान के प्रावधानों को मानवीय मूल्यों, लोकतांत्रिक मर्यादाओं और उत्कृष्ट परम्परा तथा प्रगति के आधार पर ही समझा जाये । अन्यथा समस्याओं का आकार क्या बढ़ता नहीं रहेगा ? और क्या समाधान सिकुड़ता नहीं रहेगा ? संविधान की अन्तर्निहित अपेक्षा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि, भारतीय समाज समरसता या एकात्मकता की दिशा में अग्रसर हो सके ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद ३७० में जम्मू-कश्मीर राज्य के सम्बंध में अस्थायी उपबन्धों का प्रावधान है । जम्मू कश्मीर के महाराजा और भारत के राष्ट्रपति की ५ मार्च १९४८ की उदघोषणा के अनुरूप अनुच्छेद ३७० की व्यवस्था की गयी । १९६२ में तेरहवें संविधान संशोधन से अस्थायी तथा अन्तःकालीन उपबन्ध के स्थान पर केवल अस्थायी उपबन्ध किया गया ।

जम्मू-काश्मीर को पंथ निरपेक्षता की परिधि से बाहर रखने का प्रावधान संविधान में किया गया । उद्देशिका से समाजवादी तथा पंथ-निरपेक्ष का लोप किया गया । जम्मू-कश्मीर में पंथ निरपेक्षता का प्रावधान लागू न होने के कारण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में संवादहीनता तथा संवेदनहीनता की वृद्धि हुई है । संविधान का परिशिष्ट दो दृष्टव्य है । राष्ट्रीय परिस्थितियों में तनाव बढ़ा, और संविधान के प्रावधान पर शंका बढ़ी है । जम्मू-काश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है । अनुच्छेद ३७० द्वारा अस्थायी व्यवस्था को दीर्घकाल तक चलाने और इस अनिर्णय की स्थिति से राष्ट्रीयता या एकता तथा अखण्डता को ऐतिहासिक चुनौती प्राप्त हुई है । अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत-पाक मध्य दो युद्धों की स्थिति और निरन्तरशीत युद्ध चलने की स्थिति भी है । कुछ अन्य मुस्लिम राष्ट्र जम्मू-काश्मीर को इस्लामिक समस्या बता कर, भूल भ्रम को बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय तनाव उत्पन्न कर रहे हैं ।

पंथ निरपेक्षता की संवेदनहीनता के दो अन्य संवैधानिक उदाहरण हैं - नागालैण्ड और मिजोरम । १९६२ में तेरहवें संविधान संशोधन से अतः स्थापित अनुच्छेद ३७१ (क) में नागालैण्ड राज्य के सम्बन्ध में विशेष उपबन्ध द्वारा संविधान के अन्तर्गत व्यवस्थाओं से नागाओं की धार्मिक या सामाजिक प्रथायें तथा नागा रूढ़िजन्य विधि और प्रक्रिया आदि को मुक्त किया गया है । संविधान के तिरपनवें संशोधन १९८६ से अन्तः स्थापित अनुच्छेद ३७१(छ)मिजोरम राज्य के सम्बन्ध में प्रावधान द्वारा मिजोरम की, संविधान के अन्तर्गत व्यवस्था से, धार्मिक या सामाजिक प्रथाओं को मुक्त किया गया । मिजो रूढ़िजन्य विधि और प्रक्रिया को छूट दी गयी ।

भारत के अंगेज साम्राज्यवादी इतिहास ने नागालैण्ड और मिजोरम को ईसाई पंथ की ओर अग्रसर किया है । ईसाई पांथिक दृष्टि से लगभग दो प्रतिशत कुल जनसंख्या के होने के कारण, इन्हें अल्पसंख्यक के रूप में संरक्षण प्राप्त है । उपरोक्त भू-भाग में जम्मू-कश्मीर की भाँति पंथ निरपेक्षता की स्थिति का समापन है ।

भारतीय संविधान में किसी ऐसे प्रावधान जिससे पंथ निरपेक्षता पर आक्रमण हो, या इसका क्षरण होता है, या इसके विपरीत प्रतीत हो, तब उद्देशिका, मूल अधिकारों और निदेशक सिद्धान्तों के सन्दर्भ में ही इसका अर्थ ग्राह्य है ।

संविधान संशोधन

विश्व के संविधानों में आवश्यकता के अनुरूप संशोधन का प्रावधान है । राज्य के सुचारु रूप से संचालन के लिए, परिस्थितियों की मांग के अनुकूल, संशोधन की व्यवस्था न होना गतिरोध उत्पन्न कर सकती है । भाग - २० के अनुसार भारत का संविधान भी संशोधनीय है । भारतीय संसद अपनी संविधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए संविधान के किसी उपबंध का परिवर्धन, परिवर्तन या निरसन के रूप में संशोधन, ३६८ अनुच्छेद में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार कर सकती है । इस प्रसंग में संसद की संविधायी शक्ति पर किसी प्रकार र्निबंधन नहीं है ।

भारतीय संविधान में ३६५ अनुच्छेद हैं । नवम्बर १६४६ में संविधान अंगीकृत और अधिनियमित हुआ । इसके पश्चात् १६५१ में प्रथम संशोधन और १६६३ अप्रैल में तिहत्तरवाँ संशोधन किया गया । १६५६ में सातवें संशोधन और १६७६ में ४२वें संशोधन, और १६७८ में ४४वें संशोधन ने संविधान में, अन्य संशोधनों की अपेक्षा अधिक व्यापक परिवर्तन किये हैं । संशोधनों के अंक और आकार में जितनी संख्या का विस्तार होगा, संविधान की मूल भावना उतनी नष्ट होती जायेगी। मूल भावना में चेतन परिवर्तन सहज सत्य है, और सत्ताधारी की अपनी सुविधा का आंशिक सत्य भी संशोधनों का कारण होता है । सत्तापक्ष अपनी संख्यात्मक स्थिति का संवैधानिक लाभ भी उठाता है ।

संविधान में संशोधनों की तार्किक सीमा की विवेकवत्ता किसी भी देश के लिए अनिवार्य है । भारतीय संविधान में इतने संशोधनों का स्पष्ट संकेत है कि, अर्द्ध शताब्दी के काल खण्ड के लगभग संविधान को नूतन रूप देना ऐतिहासिक आवश्यकता है । १६४७ से १६७७, तीस वर्षों तक केन्द्र में एक ही दल के शासन की स्थिति का समापन हो चुका है । अतः नूतन संविधान निर्मात्री परिषद की संरचना विवेकपूर्ण हो सकती है । देश-विदेश की परिवर्तित परिस्थितियों का यह सहज निष्कर्ष हो सकता है। किन्तु इसकी अपरिहार्यता नहीं है ।

प्रस्तुत ग्रंथ का विवेचनीय विषय पंथ निरपेक्षता की दृष्टि से ४२वें संविधान संशोधन का विवेचन प्रासंगिक है । इस संविधान ने उद्देशिका के अतिरिक्त लगभग चालीस अनुच्छेदों को प्रभावित किया । उनके पूर्व १६५६ में सातवें संशोधन ने साठ से अधिक अनुच्छेदों को प्रभावित किया था । संविधान के मूल ढांचे से संगति और सुधार की दृष्टि से सातवें संशोधन के प्रतिकार का कोई प्रश्न नहीं उठा । किन्तु ४२वें संशोधन के सुधार में ४४वें-४५वें संशोधन, १६७८ के प्रावधान का अध्ययन रोचक विषय हो सकता है । प्रस्तुत अध्ययन का विषय पंथ निरपेक्षता की दृष्टि से दोनों संशोधनों का तुलनात्मक विवेचन किया जा सकता है ।

४२वाँ संविधान संशोधन

भारतीय संविधान के प्रवर्तन में पंथ निरपेक्षता या सेकुलर शब्द का उद्देशिका में प्रवेश नहीं था । भारतीय संविधान में पंथ निरपेक्षता शब्द ४२वें संशोधन

के अन्तर्गत उद्देशिका में प्रविष्ट किया गया। इसी संशोधन के द्वारा एक अन्य महत्वपूर्ण शब्द समाजवाद भी उद्देशिका में सम्मिलित किया गया । पंथ निरपेक्षता तथा समाजवाद दोनों शब्दों को परिभाषित नहीं किया गया। दोनों शब्दोंने ऐतिहासिक भूल और भ्रम का मार्ग प्रशस्त किया है । समाजवादी शब्द को उच्चतम न्यायालय ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। उच्चतम न्यायालय ने समाजवाद को उद्देश्यपूर्ण अर्थप्रदान किया । उच्चतम न्यायालय ने मेहनतकश जनता को शोभनीय जीवन स्तर का प्रावधान और आय तथा सामाजिक असमानता का समापन समाजवाद का अभिप्राय बताया है । (मिनर्वा मिल्स यूनियन आफ इन्डिया ए १९८०-१९९० तथा नकारा बनाम यूनियन आफ इण्डिया ए १३०-१९८४) । किन्तु निर्दिष्ट विषय पंथ निरपेक्षता की परिभाषा उच्चतम न्यायालय ने नहीं की है। पंथ निरपेक्षता के भी विभिन्न अर्थ आरोपित करने की सम्भावना प्रबल हो गयी । उद्देशिका तथा संविधान में निहित अन्य समानान्तर प्रावधानों से इस पंथ निरपेक्षता की सुसंगति का भी स्पष्टीकरण नहीं किया गया ।

पंथ निरपेक्षता शब्द की प्रविष्टि के काल-खण्ड पर विचार करना उचित है । जिस परिप्रेक्ष्य या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इस शब्द को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई है, वह है अनुच्छेद ३५२ भारतीय संविधान के अन्तर्गत १९७५ की आपातकालीन घोषणा । इस संवैधानिक घोष्णा के द्वारा नागरिक के मौलिक अधिकारों के स्थगन और राज्य शक्ति के नग्न और निर्मम रूप का प्रदर्शन भारतीय लोकतंत्र के सन्दर्भ में गम्भीर घटना है । परिस्थितियों के कृत्रिम आकलन द्वारा कथित आपातकाल में पंथ निरपेक्षता के संशोधन को स्वीकृति उपलब्धकरायी गयी । जबकि पंथ निरपेक्षता की भावना को संविधान के अन्य प्रावधान कहीं अस्वीकृत नहीं करते ।

आपातकाल के पूर्व के संविधान के स्वरूप मेंपंथ निरपेक्षता का स्वरूप, उद्देशिका और मौलिक अधिकारों के सन्दर्भ में प्रकट है। चिन्तन, अभिव्यक्ति, विश्वास, निष्ठा और उपासना स्वातंत्र्य की घोषणा भारतीय संविधान में शुभारम्भ से है ।

उद्देशिका में स्तर और अवसर की समानता की घोषणा, तथा व्यक्ति की गरिमा को स्थापित करने के लिए सख्य भाव की घोषणा के सन्दर्भ में पंथ निरपेक्षता को भारतीय लोकतंत्र के विशेषण रूप में प्रविष्ट करने की अपरिहार्यता नहीं रही है ।

१९३५ गर्वनमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट के प्रावधानों में भी पंथ निरपेक्षता के बीज हैं । यह स्वीकृत तथ्य है कि पंथ निरपेक्षता की सैद्धान्तिक रूप से सहमति वर्तमान भारतीय संविधान के शुभारम्भ काल और उसके पूर्व रूप से है । पंथ निरपेक्षता शब्द यदि संशोधन द्वारा प्रविष्ट नहीं किया जाता, तो भी भारतीय संविधान में इस विचार और भावना का पर्याप्त समावेश है । बयालीसवें संविधान संशोधन से पंथ निरपेक्षता को परिभाषित न करके भी इसको रोमांचकारी और रहस्यपूर्ण बना दिया गया है । इस पंथ निरपेक्षता को परिभाषित करने की चुनौती भारतीय राजनीति ने प्रस्तुत की है । पंथ निरपेक्षता या इसके अंग्रेजी समानार्थक शब्द सेकुलर को स्पष्ट करने का दायित्व भारतीय संविधान के अन्य प्रावधानों पर है ।

उद्देशिका में पंथ निरपेक्षता या सेकुलर की प्रविष्टि के पूर्व से ही उपासना शैली के स्वातंत्र्य का प्रावधान महत्व का है । संविधान को मौलिक अधिकारों के परिभाषित करने वाले अनुच्छेदों १४ से १७ तक पंथ के आधार पर भेदभाव न करने की व्यवस्था है । अनुच्छेद २५ से २८ में धार्मिक या पांथिक स्वातंत्र्य का प्रावधान है। राज्य अपने विधि विधानों द्वारा पांथिक या धार्मिक स्वातंत्र्य को, शान्ति व्यवस्था, नैतिकता तथा स्वास्थ्य के अनुरूप अनुशासित भी कर सकता है ।

नीति निदेशक सिद्धान्त-अनुच्छेद ४८-में राज्य को गोहत्या समाप्त करने का निर्देश है । राज्य को एक समान नागरिक संहिता की संरचना का निर्देश भी महत्वपूर्ण है । इन प्रावधानों से स्पष्ट है कि संविधान में पंथ सापेक्ष राज्य की अस्वीकृति है । किसी पांथिक प्रतिमान के अनुरूप उपासना के लिए नागरिक को स्वातंत्र्य प्राप्त है । सभी नागरिकों में अभेद की स्पष्ट अवधारणा की स्वीकृति संविधान में है । शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और सहजीवन के अभ्युदय के लिए राज्य को पांथिक व्यवहार नियमित करने के अधिकार का भी संविधान में प्रावधान है । वस्तुतः पंथ निरपेक्षता शब्द की प्रविष्टि, सर्व धर्म समभाव की भावना को विशेष शक्ति प्रदान करने के लिए संविधान में की गयी ।

सर्वधर्म समभाव

सन् १९७८ में जनता पार्टी ने ४५वें संविधान द्वारा सेकुलर को परिभाषित करने का प्रयत्न किया । इसकी धारा ४४ में स्पष्ट है कि इस संविधान की उद्देशिका में सेकुलर शब्द से विशेषित गणतन्त्र शब्द का अर्थ ऐसा गणतंत्र है, जिसमें समस्त धर्मों का समान आदर होता है । कांग्रेस सत्ता में न होने पर भी राज्य सभा में बहुमत में थी । इसका विरोध कांग्रेस द्वारा किया गया । जिससे सेकुलर की परिभाषा सर्वधर्म समभाव स्वीकृत नहीं हुई । इससे निश्चित अर्थवत्ता के स्पष्टीकरण में सहायता न कर, भूल भ्रम को प्रसारित करने का अवसर दिया गया ।

संविधान धर्म और पंथ

भारतीय संविधान के हिन्दी अनुवाद में पंथ और धर्म शब्दों को समानार्थक रूप में प्रयुक्त किया गया है । उद्देशिका में पंथ निरपेक्ष शब्द है । अनुच्छेद १५ में धर्म आदि के आधार पर विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण में विभेद न करने का प्रावधान है । १६वें अनुच्छेद में धर्म के कारण अवसर की समता में अपात्रता का निषेध है । अनुच्छेद २५ में धर्म को अबाध रूप से मानने का अधिकार प्रदान किया गया है । धार्मिक आचरणों पर नियमन या नियंत्रण के विधिक प्रवर्तन का अधिकार राज्य को इस अनुच्छेद से प्राप्त है । इस अनुच्छेद में सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए हिन्दू धार्मिक सार्वजनिक संस्थानों को हिन्दुओं के सभी अनुभागों के लिए खोलने का उपबन्ध है । सिक्खों का कृपाण धारण सिक्ख धर्म में सम्मिलित है । यहाँ हिन्दुओं से अभिप्राय सिक्ख, जैन और बौद्ध धर्म मानने वालों से भी है ।

अनुच्छेद २५ (१) के अन्तर्गत सभी धार्मिक मतावलम्बियों का राज्य द्वारा नियमन या नियंत्रण लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य की सीमा के अन्तर्गत है ।

अनुच्छेद २५ (२-क) के अनुसार आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रिया-कलाप के विनिमय या निर्बधंन में राज्य की विधिक प्रक्रिया को धार्मिक आचरण से सम्बद्ध करने से निवारित नहीं किया जा सकता । किसी धार्मिक आचरण या किसी धार्मिक संस्था को अबाध स्वतंत्रता का अधिकार है । किन्तु मर्यादित आचरण के लिए राज्य शक्ति अनिवार्य या अपरिहार्य संस्था है ।

अनुच्छेद २६ में धार्मिक कार्यों की स्वतंत्रता प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय या उसके अनुभाग की है । लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य जैसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में राज्य के विवेकपूर्ण नियमन का अधिकार इस अनुच्छेद में है ।

अनुच्छेद २७ में विशिष्ट धर्म या धार्मिक समुदाय की अभिवृद्धि या पोषण में किसी कर की व्यवस्था का निषेध है । अनुच्छेद २८ में धार्मिक शिक्षा या उपासना में भागीदारी की स्वतंत्रता की व्यवस्था है ।

अनुच्छेद २८ में धर्म आदि के कारण राज्य द्वारा पोषित या राज्य द्वारा सहायता प्राप्त शिक्षा संस्था में प्रवेश से वर्जित नहीं किया जा सकता । इसमें धार्मिक, भाषायी तथा सांस्कृतिक आधार पर अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण है ।

अनुच्छेद ३० के अनुसार धर्म और भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों की अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और संचालन का अधिकार है। धर्म के आधार पर शिक्षण में राज्य द्वारा वित्तीय सहायता में विभेद का निषेध है ।

अनुच्छेद ५१ क संविधान के ४२वें संशोधन से प्रविष्ट हुआ । इसमें भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना निर्मित करने के लिए धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावना से परे होने के मूल कर्तव्य का प्रावधान किया गया था ।

यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में अंग्रेजी रिलीजन के पर्यायवाची के रूप में धर्म शब्द का प्रयोग किया गया है । संविधान में जिस प्रकार से पंथ की परिभाषा नहीं है, उसी प्रकार धर्म की भी परिभाषा नहीं है । भारतीय परम्परा में रिलीजन का समानार्थक शब्द पंथ है । धर्म शब्द की भारतीय परम्परा के सन्दर्भ में व्यापक व्यवस्था के विश्लेषण के पूर्व उच्चतम न्यायालय द्वारा धर्म की व्याख्या का प्रसंग उपादेय है ।

धर्म शब्द के व्यापक और विराट रूप को उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार नियमित किया है कि धर्म की पर्याप्त व्याख्या नहीं की जा सकती । इसकी सुनिश्चित अर्थ व्याप्ति बताना भी सम्भव नहीं है । भारत जैसे बड़े देश में जाने माने कुछ धर्मों के अतिरिक्त कई ऐसे धर्म है, जिनसे सामान्य जन परिचित नहीं हैं । ये किसी विशेष वर्ग में भी सीमित हैं । ऐसे भी धर्म हैं, जो किसी रूढ़ धर्म में भगवान या उसकी मूर्ति को स्वीकार नहीं करते । इसलिए धर्म की व्याख्या या व्याप्ति दृढ़ता के साथ बतायी नहीं जा सकती । सर्वोच्च न्यायालय का यह कह कर रुक जाना पड़ा है कि कि -

र्को ऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना

नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्

धर्मष्य तत्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पंथाः ॥

इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने धर्म की अपेक्षा पंथ की परिभाषा कर दी है- महाजनों येन गतः स पंथाः । यह महाजन कौन है ? वे महान पुरुष हैं, जिनकी वाणी, विचारों और आचरणों का अनुगमन कर मनुष्य पांथिक, या उस पंथ का राही बनता है। पौराणिक विष्णु का अनुगमन कर वैष्णव पंथ, शिव का अनुगमन कर शैव पंथ, महावीर स्वामी के पद चिह्नों का अनुकरण कर जैन पंथ, बुद्ध के सिद्धान्तों से प्रतिबद्धता बौद्ध पंथ, ईसा मसीह को आराध्य मानने वाला ईसाई पंथ, मोहम्मद साहब का अनुयायी बनना इस्लाम पंथ, नानक साहब के चरण चिह्नों पर जीवन धन्य करने वाला सिक्ख पंथ आदि आदि पंथों की संख्या की कोई सीमा नहीं है । इसे सीमाबद्ध करने का औचित्य नहीं है । पांथिक स्वतंत्रता मनुष्य जाति की मूल स्वतंत्रता से सम्बद्ध है । धर्म, मनुष्य को मनुष्यत्व की गुणात्मकता से आबद्ध करने का आचरण-आस्था आदि है ।

पंथ निरपेक्षता के आधार पर भारत को बहुधर्मी या धर्म विरोधी राज्य नहीं कहा जा सकता । भारत को बहुधर्मी कहना भ्रममूलक है । (योजना १५ अगस्त, १९८८ कृष्ण अय्यर) विभिन्न पंथों या धर्मों से सहअस्तित्व, सहजीवन और समानता की स्वीकृति से देश बहुधर्मी नहीं बनता । प्रत्येक मानवतावादी मतवाद तथा आस्था विश्वास की स्वतंत्रता बहु-धर्मिता नहीं है । इसे पांथिक सहिष्णुता या सर्वधर्म समानता का देश कहा जा सकता है । भारत के धर्म का एक स्पष्ट रूप है, पंथ निरपेक्षता । इसे सर्वधर्मी देश कहना अधिक तर्क संगत है । पंथ निरपेक्षता का स्पष्ट अभिप्राय है कि राज्य का कोई पंथ नहीं है । सभी पंथ राज्य के लिए समान है । राज्य कोई पांथिक प्रतिठान नहीं है । पांथिक सहिष्णुता इस पंथ निरपेक्षता का केन्द्र बिन्दु है ।

पंथ सापेक्षता का स्पष्ट अभिप्राय है कि एक पंथ विशेष राज्य का पंथ घोषित किया जाये । इससे समस्त शासन या प्रशासन राज्य के पंथ के सिद्धान्तानुसार संचालित हो सके ।

पंथ निरपेक्षता का यह अभिप्राय नहीं कि जीवन में आस्थाओं या विश्वासों को खंडित किया जाये । आस्थाओं और विश्वासों की व्यापक स्वीकृत मानवीय मूल्यों पर आधृत मानकर, पांथिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया जाना पंथ निरपेक्षता का लक्षण है ।

पंथ निरपेक्षता और साम्प्रदायिकता

पंथ निरपेक्षता समाज में सभी सम्प्रदायों की स्वतंत्रता की आश्वस्तता या सुनिश्चितता है । कुछ प्रश्न उठे हैं ।

भारतीय परिवेश में पंथ निरपेक्षता को विभिन्न अर्थों में ग्रहण किया गया है। क्या पंथ निरपेक्षता धर्म विरोधी अवधारणा है ? पंथ निरपेक्षता धर्मविहीन या अधार्मिक सोच है ? पंथ निरपेक्षता बहु धर्मों के सह-अस्तित्व का तत्व ज्ञान है । पंथ निरपेक्षता

सर्वधर्म समभाव का द्योतक है ? पंथ निरपेक्षता का आशय अल्पसंख्यकों का संरक्षण है ? या पंथ निरपेक्षता अल्पसंख्यकों का विशेषाधिकार है ?

पंथ निरपेक्षता नकारात्मक नहीं, सकारात्मक सहजीवन शैली का पक्षधर है। पंथ निरपेक्षता की मूल्यवत्ता मर्यादा और मान्यता का विश्लेषण भारतीय इतिहास के परिवेश में आवश्यक है । इतिहास की मुख्य धारा या प्रवाह में पंथ निरपेक्षता की स्थिति क्या है ? पंथ निरपेक्षता की अवधारणा भारतीय परम्परा में परिभाषित करने की आवश्यकता है । इसके पूर्व आधुनिक विश्व के परिप्रेक्ष्य में पंथ निरपेक्षता को व्याख्यायित करने का औचित्य और उपादेयता है । इसके भी पूर्व पंथ निरपेक्षता के संदर्भ में कथित प्रावधानों का प्रथमतः भारतीय संविधान में परस्पर विरोधी विसंगतियों का आकलन आवश्यक है । किन्तु सर्व प्रथम आवश्यकता है कि, पंथ निरपेक्षता या सेकुलर के इतिहास का विहंगावलोकन किया जाये ।

राज्य शक्ति की उद्देश्यपूर्ण यात्रा की उद्घोषणा सूत्रबद्ध रूप से उद्देशिका है । इसमें पांथिक भेदभाव के समापन का सुनिश्चित प्रावधान है । संविधान में लोकशक्ति या नागरिक शक्ति के संरक्षण और मूलभूत अधिकार नियमतः अपरिवर्त्य हैं । मूल अधिकार मानव की सहज संस्कृतस्थिति के परिचायक हैं । भारतीय संविधान ने इनके द्वारा नागरिक के अबाध विकास तथा श्रेयस्कर जीवन का विवेक सुरक्षित किया है । मूलभूत अधिकार लोकशाही के प्रमुख तथ्य और तत्वज्ञान हैं । लोकशक्ति की परिस्थितिजन्य अपेक्षा और राज्यशक्ति के सुचारू संचालन की आवश्यकता के निमित्त संविधायी शक्ति पर निर्बधंन नहीं है । ४२वें संविधान संशोधन में कालखंड की कुंठा और कलह की प्रतिच्छाया को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इस संशोधन द्वारा प्रविष्ट पंथ निरपेक्षता का तात्पर्य सर्वधर्म समभाव को, पक्षगत राजनीति स्वीकार नहीं कर सकी । भारतीय संविधान में धर्म, रिलीजन या पंथ का पर्यायवाची है । भारतीय संविधान का अधिकृत शब्द, पंथ निरपेक्षता सभी पंथों या सम्प्रदायों की मर्यादा पूर्ण स्वतंत्रता है । इस पंथ निरपेक्षता के अधिक विवेचन तथा विश्लेषण की वर्तमान में सर्वाधिक प्रासंगिकता है ।

3

पंथ निरपेक्षता एक परिभाषा

पंथ निरपेक्षता शब्द संविधान के हिन्दी अनुवाद में प्रयुक्त किया गया है । पंथ निरपेक्षता के लिए अंग्रेजी में सेकुलर शब्द का प्रयोग संविधान की उद्देशिका में है । संविधान में अंग्रेजी पाठ अधिकृत है । अनुच्छेद ३९४ क खण्ड (२) के अनुसार संविधान के हिन्दी अनुवाद का वही अर्थ लगाया जायेगा, जो उसके मूल अंग्रेजी का है । इस कारण सेकुलर शब्द का उद्भव और इसके अभिप्राय के स्पष्टीकरण का औचित्य है । इसी प्रसंग में पांथिक या साम्प्रदायिक व्यवस्था, भारत देश की पंथ निरपेक्षता, इस पंथ निरपेक्षता का इतिहास, तथा पंथ निरपेक्षता और राज्य हस्तक्षेप का विवेचन आवश्यक है । पंथ निरपेक्षता के सन्दर्भ में अल्प-संख्यक तथा मानवाधिकार और पंथ निरपेक्षता की व्याप्ति का मूल्यांकन अपेक्षित है ।

पंथ निरपेक्षता या सेकुलर का स्पष्ट अर्थ है कि राज्य शक्ति, पंथ या सम्प्रदाय के विरुद्ध नहीं है । पंथ के प्रति राज्य तटस्थ है । इस संदर्भ में सम्प्रदाय और पंथ पर्यायवाची कहे जा सकते हैं । संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के प्रथम संशोधन को लागू करते हुए विद्यालयों में धार्मिक प्रार्थनाओं का निषेध किया है । न्यायमूर्ति डगलस का स्पष्टीकरण है कि, अमेरिकी संविधान का प्रथम संशोधन सरकार को धर्म के विरुद्ध नहीं, धर्म के प्रति तटस्थ बनाता है । चाहे कोई नास्तिक भी हो, वह भी अपने ढंग से जी सकता है । यदि सरकार आध्यात्मिक मामलों में हस्तक्षेप करेगी, तो वह विभाजक शक्ति होगी । उस प्रथम संशोधन का निष्कर्ष यह है कि धर्म के मामले में तटस्थ सरकार सभी धर्मों के हितों की बेहतर रक्षा कर सकती है ।

सेकुलर शब्द

सेकुलरवाद का एक शब्द कोष में अर्थ है कि, वह विश्वास जो राज्य, नैतिकता और शिक्षण आदि को पंथों से स्वतंत्र रूप में स्थापित करता है । सेकुलरवाद को सामाजिक नैतिकता या आचरण व्यवस्था की संज्ञा भी कहा गया है । इसी लोक से सम्बन्धित या जो आध्यात्मिक नहीं है, सामाजिक है, किन्तु पांथिक नहीं है, वह सेकुलर है । पांथिक नियमों से अप्रतिबद्ध और पंथों से तटस्थता, सेकुलरवाद है।

आक्सफोर्ड शब्द कोष में सेकुलर शब्द की परिभाषा है - इसी लोक से सम्बद्धता, या लौकिकता, गिरजाया मठ से असम्बन्धित आदि । विदेशी विद्वानों ने इसकी परिभाषा में कहा है कि जीवन की वह शैली और व्याख्या जिसमें वस्तुओं की भौतिक व्यवस्था की जाती है, और जिसमें विचार और जीवन के लिए ईश्वर या किसी

आध्यात्मिक सच्चाई की जरूरत नहीं होती । एक विद्वान ने इस शब्द को धर्म की निन्दा से निहित बताया है । उन्होंने कहा है कि दुनिया के धर्म या पंथ आधुनिक समाजों को जो सबसे महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं, वह यह है कि ये आत्महत्या कर लें । डोनाल्ड यूजीन स्मिथ ने, जिनकी पुस्तक 'इण्डिया एज ए सेकुलर स्टेट' एक महत्वपूर्ण कृति है, इस शब्द की काम चलाऊ परिभाषा इस प्रकार की है - धर्म या पंथ निरपेक्ष राज्य ऐसा राज्य है, जो व्यक्ति और संस्थाओं को धर्म या पंथ की स्वतंत्रता देता है । व्यक्ति के साथ एक नागरिक के रूप में व्यवहार करता है, चाहे वह किसी धर्म या पंथ का हो । जो संवैधानिक रूप से किसी विशेष धर्म या पंथ के साथ नहीं जुड़ा हो और जो न किसी धर्म को बढ़ावा देता हो और न किसी धर्म में हस्तक्षेप करता हो वह सेकुलर राज्य है ।

सेकुलर शब्द का उद्‌भव यूरोप की धरती पर हुआ है । यूरोप के इतिहास में सेकुलरवाद का जन्म और विकास पवित्र रोमन साम्राज्य के पाखंड का विरोध था। इस पृष्ठभूमि में भारतीय संविधान के सेकुलर शब्द को परिभाषित करना तर्कपूर्ण नहीं है। सेकुलर शब्द का अर्थ भारतीय परम्परा, परिस्थिति, प्रगति और प्रतिभा के अनुकूल किये जाने का औचित्य है ।

सेकुलर शब्द का समानार्थी शब्द पंथ निरपेक्षता संविधान के हिन्दी अनुवाद में है । पंथ निरपेक्ष शब्द भारतीय चिन्तन के निकट है । सेकुलर को पंथ निरपेक्षता के आधार पर परिभाषित करना आवश्यक है । सेकुलरवाद का विषय पारलौकिक या मरणोत्तर जीवन से विलग भौतिक सम्बन्धों का है । प्राचीन भारतीय चिन्तन में श्रेष्ठ विचारक उतथ्य तथा वृहस्पति राज्य शक्ति के द्वारा भौतिक चिन्तन पर विश्वास करते प्रतीत होते हैं । प्राचीन भारतीय चारवाक दर्शन इस सेकुलर के कुछ निकट है । किन्तु सेकुलर का सम्बन्ध यूरोप के राजदर्शन से संलग्न करने का प्रतिमान प्रचलित है । वस्तुतः भारतीय संविधान में पंथ निरपेक्षता या सेकुलर को मानवीय सह-अस्तित्व तथा सहजीवन की दृष्टि से, आदि ग्रंथ संहिता से वर्तमान संविधान तक चिन्तन की शोध, भारतीय अखंडित इतिहास के परिप्रेक्ष्य में उचित है ।

पांथिक या साम्प्रदायिक व्यवस्था

भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अभ्युदय से इस्लाम का राजनीतिक व्यक्तित्व क्षीण हो गया । १६०६ में भारत के इस्लामी राजनीतिक व्यक्तित्व के विकास के लिए मुस्लिम लीग की स्थापना उल्लेखनीय है । इतिहास के इस बिन्दु से पार्थक्य की साम्प्रदायिक राजनीति का प्रवर्तन हुआ । इसकी चरम परिणति १६४७ में भारत देश के विभाजन से हुई ।

देश विभाजन के पश्चात् भारतीय संविधान ने राज्य की पंथ निरपेक्षता के संदर्भ में पांथिक अहस्तक्षेपनीयता को स्वीकृति दी है । धर्म निरपेक्षता का सोच औपनिवेशिक मानसिकता की अभिव्यक्ति है । धर्म निरपेक्षता शब्द का प्रयोग भारतीय परम्परा में युक्ति-संगत नहीं है । पंथ निरपेक्षता की अर्थवत्ता प्रकट करने के लिए

भारतीय परम्परा-परिवेश में विश्लेषण आवश्यक है । शब्दों के पीछे जो भावनायें और विचार जुड़ते हैं, वे इतिहास से प्राप्त होते हैं । भारतीय सहस्रों वर्षों के इतिहास में धर्म के अर्थ की शोध सेकुलर के मन्तव्य को स्पष्ट करने में सहायक हो सकती है ।

पंथ या सम्प्रदाय जिन आस्थाओं और विश्वासों पर खड़े होते हैं, उनकी मौलिक अधिकारों के रूप में संविधान में मान्यता है । इन अनुच्छेदों की संक्षिप्त व्याख्या की जा चुकी है । फिर यह रहस्यपूर्ण है कि, सम्प्रदायों या साम्प्रदायिकता का विरोध क्यों है ? विरोध का कारण एक प्रतीत होता है, कि भारतीय संविधान में विशेष सम्प्रदायों को अपनी पहिचान बनाये रखने का भी प्रावधान है । इसका स्पष्ट अर्थ कि भारतीय धार्मिक चेतना के औदार्य पर संविधान निर्माताओं को पूरा भरोसा है । भारतीय संविधान ने संख्यात्मक आधार पर खड़े लोकतंत्र को सदगुणात्मक बनाये रखने का कौशल प्रकट किया है । उनको सुरक्षा कवच दिया गया, जिनको अपने अस्तित्व के समापन की शंका रही होगी ।

भारतीय संविधान के साम्प्रदायिक सुरक्षा चक्र को, भारत का सम्प्रदायों के नाम पर बंटवारे की विकृत मानसिकता के समाधान के परिप्रेक्ष्य में भी समझा जा सकता है । भारत का बंटवारा सम्प्रदायों के नाम पर गलत आधार से किया गया । भारतीय धार्मिक चेतना अपने समग्र इतिहास में विचार या आस्था-स्वातंत्र्य की पक्षधर रही है । अपनी गौरवपूर्ण परम्परा में समाधान की आकांक्षा की अभिव्यक्ति को, विशेषाधिकार के रूप में दुरुपयोग की राजनीति ने पंथ निरपेक्षता को अल्पसंख्यक के तुष्टीकरण और बहुसंख्यक के तिरस्कार का औजार बनाया है । इस मानसिकता या पंथ निरपेक्षता के विकृत अर्थ ने भारत के पुनः विभाजन का समर्थन किया है ।

सम्प्रदाय, जाति या वर्ग आदि की प्राथमिकता के लिए सोच और सक्रियता साम्प्रदायिकता है । राष्ट्र हित के लिए चिन्तन और चरित्र राष्ट्रीयता है । अपनी आस्था और विश्वासों के अनुकूल यदि व्यक्ति या वर्ग या जाति शेष समाज के साथ सामंजस्य और समरसता को उपेक्षित नहीं करता, वह किसी सम्प्रदाय का होकर भी साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता ।

संविधान में निहित अधिकारों का प्रयोग देश के हित के विरुद्ध नहीं हो सकता । वर्तमान इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पंथ निरपेक्षता के आकलन से यह स्पष्ट है कि संविधान को सही अर्थों में न ग्रहण कर साम्प्रदायिकता का विस्तार किया गया है। साम्प्रदायिकता को नये नये आयाम आरोपित किये गये । देश की पहिचान बहुसंख्यक और अल्प संख्यक रूप में बनने से साम्प्रदायिक पृथकतावादी शक्तियों को बल उपलब्ध होता है । राष्ट्रवाद को पंथवाद में बिखरा कर, पंथवाद और जातिवाद की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन प्राप्त होता है ।

पंथ निरपेक्षता साध्य नहीं, एक साधन है । यह राज्य और राजनीति में न्याय की अवतारणा का कौशल है । पंथ निरपेक्षता, विभिन्न मतवादों के [illegible] सहअस्तित्व की अवधारणा है । पंथ निरपेक्षता या सेकुलरवाद के [illegible] रेखांकन या सीमाकंन से वर्तमान भावी समाज का संतुलन और सामंजस्य संत[illegible]

भारत की पंथ निरपेक्षता

भिन्न-भिन्न देशों में पंथ निरपेक्षता का पृथक-पृथक रूप विकसित हुआ है । भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में पंथ निरपेक्षता का अर्थ अन्य देशों से भिन्न होना सहज है । भारत में परम्परागत धर्म का अर्थ केवल उपासना पद्धति नहीं है । धर्म की व्यापकता का सम्बन्ध भारतीय प्राचीन और सनातन या नित्य नूतन सभ्यता और संस्कृति से है ।

भारतीय इतिहास ने अपने प्राचीनतम इतिहास और मध्यकालीन शताब्दियों तथा वर्तमान में जिस सहिष्णुता, सर्व धर्म समादर, एक सत्य की विविध अभिव्यक्ति की स्वीकृति का पोषण किया है, इससे भिन्न किसी सेकुलरवाद की कल्पना भारतीय संविधान या भारतीय सामाजिक जीवन शैली या राजनीतिक चिन्तन तथा चरित्र के अनुकूल नहीं हो सकती । भारतीय जीवन की प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए राज्य शक्ति और लोकशक्ति को सेकुलरवाद या पंथ निरपेक्षता को अपने सही परिप्रेक्ष्य में स्थापित करना आवश्यक है ।

सहस्त्रों वर्षों के अखंडित इतिहास के देश में सशक्त और सजीव परम्परा के परिप्रेक्ष्य में सेकुलरवाद की पहिचान तर्कपूर्ण है । भारतीय धर्म राज्य की अवधारणा और पंथ निरपेक्षता का सिद्धान्त, भारत के इतिहास के संदर्भ, में पर्यायवाची है । भारतीय इतिहास के विभिन्न काल खण्डों में धर्म की परिभाषा, परिसीमन या परिव्याप्ति आदि का जिस प्रकार विवेचन या विश्लेषण हुआ है, उसका अन्य अध्यायों में निरूपण है ।

पंथ निरपेक्षता और राज्य हस्तक्षेप

समाज में शान्ति व्यवस्था (लोक-व्यवस्था), नैतिकता (सदाचार) और स्वास्थ्य के संदर्भ में राज्य द्वारा पंथ या धर्म के अबाध रूप में मानने, तदनुकूल आचरण करने और प्रचार करने के समान अधिकार का प्रावधान भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५ (१) में है । इसी अनुच्छेद (ख) में राज्य को धार्मिक (पांथिक) आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रिया कलाप का विनियमन या निर्बाधन के लिए विधि निर्मिति का अधिकार दिया गया है । धार्मिक (पांथिक) आचरण का संविधान द्वारा सभी को समान स्वातंत्र्य या संरक्षण है । किन्तु समाज व्यवस्था या सार्वजनिक व्यवस्थापन की दृष्टि से इस स्वातंत्र्य के परिसीमन का अधिकार राज्य को है । सदाचरण या सार्वजनिक सम्बन्धों में तार्किक विनियमन में भी राज्य हस्तक्षेप की संवैधानिक मान्यता है । राज्य का हस्तक्षेप, स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले धार्मिक (पांथिक) आचरण पर भी है । पंथ निरपेक्षता तर्क, युक्ति और विवेक की तुला पर मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति है । इस कारण पंथों या विविध उपासना मार्गों या उपासना विरोधों को समाज विरोधी रूप धारण न करने की राह, राज्य द्वारा निषिद्ध करने का संवैधानिक प्रावधान है ।

इस २५वें अनुच्छेद (२-ख) द्वारा हिन्दुओं के प्रति एक विशेष अधिकार राज्य को प्राप्त है कि, सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार

की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और विभागों को खोलने का उपबंध है । इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि समाज कल्याण और समाज सुधार के क्षेत्र में संविधान द्वारा राज्य का हस्तक्षेप स्वीकृत किया गया है । धर्म या पंथ के नाम पर भेद-भाव की अस्वीकृति सामाजिक प्रगति का मान्य लक्षण है । किन्तु इसका अभिप्राय केवल हिन्दुओं के ही समाज कल्याण आदि का नहीं हो सकता । सभी के लिए सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए अनुच्छेद २५ (२क) के अन्तर्गत राज्य का अधिकार है । यदि कुछ या बहुसंख्यक के क्रिया कलापों पर अंकुश और अन्य को मुक्त करने का अर्थ किसी प्रावधान से समझा जाये, तो वह विशेषाधिकार ही रहेगा । संविधान द्वारा किसी को धार्मिक (पांथिक) आचरण से सार्वजनीन नैतिकता के उल्लंघन का अधिकार नहीं हो सकता ।

अनुच्छेद २५ में एक स्पष्टीकरण सिक्ख पंथ की भावनाओं का समादर करने के लिए हैं । इसके द्वारा कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिक्ख धर्म के मानने का अंग समझा जायेगा । यह विशेषाधिकार का प्रावधान नहीं है । एक पांथिक प्रतीक की मान्यता है । पंथ निरपेक्षता की भावना पर इससे आघात नहीं होता है । यह एक दृष्टि से महत्वहीन अपवाद है ।

भारतीय संविधान के २६वें अनुच्छेद में धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता को राज्य शक्ति, लोक-व्यवस्था, सदाचार तथा स्वास्थ्य के अधीन नियंत्रित कर सकती है । इस संदर्भ में प्रत्येक धार्मिक (पांथिक) सम्प्रदाय या उसके किसी अनुभाग को राज्य अनुशासित कर सकता है । राज्य के इस हस्तक्षेप को किसी पंथ विशेष या सम्प्रदाय विशेष के अनुकूल या प्रतिकूल दोनों को एक सीमा तक उचित और उपादेय माना जा सकता है । किन्तु सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध करने वाली पांथिक व्यवस्थाओं को संरक्षण देना या सहायता करना राज्य का प्रतिगामी कदम समझा जा सकता है ।

पांथिक प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना, पोषण, प्रबंधन, सम्पत्ति अर्जन या स्वामित्व ग्रहण या उसके व्यवस्थापन का विधि सम्मत अधिकार संविधान के इसी २६वें अनुच्छेद में है । राज्य इसमें लोक व्यवस्था, सदाचार तथा स्वास्थ्य के आधार पर हस्तक्षेप कर ही सकता है । इसमें लोक-व्यवस्था क्या है ? सदाचार किसे कहेंगे ? स्वास्थ्य की क्या सीमा है ? आदि प्रश्नों से महत्वपूर्ण है कि, राज्य हस्तक्षेप का प्रतिमान पांथिक भेदभाव या तुष्टीकरण तथा तिरस्कार के क्षेत्र में प्रवेश तो नहीं कर रहा है ?

सामाजिक प्रगति के नाम पर राज्य हस्तक्षेप के संवैधानिक प्रसंग हैं । संविधान की व्याख्या में पांथिक परम्परा और सामाजिक प्रगति का भेद किया गया है। (बंबई उच्च न्यायालय राज्य बनाम नरसू ए ५२/८४)

सामाजिक प्रगति के आधार पर हिन्दू बहु विवाह वर्जित किया गया । किन्तु इस्लाम में इसे सामाजिक प्रगति का आधार नहीं माना गया । पुरुष बहु विवाह का अधिकारी और महिला को इसका निषेध, राज्य के हस्तक्षेप की विसंगति के रूप में पहिचाना गया है । सामाजिक प्रगति के नाम पर राज्य को हस्तक्षेप का व्यापक अधिकार

संविधान में है । किन्तु इसमें किसी पंथ या सम्प्रदाय के साथ गैर बराबरी या ज्यादती तर्क संगत या युक्तिसंगत नहीं हो सकती ।

भारतीय परम्पराओं के परिवेश में पंथ निरपेक्षता का अभिप्राय, उपासना पद्धतियों में राज्य शक्ति की अहस्तक्षेपनीयता है । उपासना पद्धति की स्वतंत्रता का यह भी अर्थ है कि उपासना करने की बाध्यता या अबाध्यता के क्षेत्र में भी राज्य अतिक्रमण नहीं कर सकता । राज्य शक्ति अपनी तटस्थता की मर्यादा का नैतिकता, श्लीलता और व्यवस्था आदि के संदर्भ में रक्षण कर सकता है ।

राज्य शक्ति नैतिकता के नाम पर पांथिक या धार्मिक क्षेत्र में हस्तक्षेप संविधान के प्रावधान के अनुरूप कर सकती है । राज्य शक्ति ने सती, देवदासी आदि के प्रसंगों में हस्तक्षेप किया है । वर्तमान सामाजिक परिवेश में सती की घटना आकस्मिक रूप में हैं । सती प्रथा के नाम से कोई परम्परा-प्रथा प्रचलित नहीं है । यही स्थिति देवदासी प्रथा के सम्बन्ध में है । नारी स्वातंत्र्य-सम्मान के संरक्षण में बहुचर्चित शाहबानों के वाद में राज्य शक्ति ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय में परिवर्तन कर विचित्र स्थिति उत्पन्न की है । नारी स्वातंत्र्य-सम्मान के संदर्भ में मध्यकालीन प्रथाओं के समक्ष राज्य शक्ति द्वारा समर्पण इतिहास की तर्कसंगत और विवेकपूर्ण घटना नहीं है ।

राज्य के हस्तक्षेप में समग्र समाज की प्रगति के परिप्रेक्ष्य में, न्यायवत्ता और विवेकवत्ता तथा समानता की सुगंधि अपरिहार्य है । अन्यथा पंथ निरपेक्षता, विसंगतियों से आक्रान्त होकर सामाजिक प्रगति, सामाजिक सामंजस्य तथा समन्वय पर आक्रामक बनेगी । राज्य के हस्तक्षेप का आवश्यक अनुबंध है, सम्पूर्ण समाज से समान स्तरीय सम्बन्धों की स्थापना और संवैधानिक व्यवस्था में किसी भी विसंगति का इस संदर्भ में समापन ।

भारतीय संविधान और अल्पसंख्यक

भारतीय संविधान में राजनीतिक, सामाजिक, भाषायी, सांस्कृतिक, आर्थिक और पांथिक रूप में अल्पसंख्यक की पहिचान की गयी है । राजनीतिक अल्पसंख्यक की पहिचान लोकतांत्रिक संदर्भ में है । संविधान की व्यवस्था द्वारा निर्मित संस्थाओं तथा सदनों, ग्रामसभा से लेकर प्रदेश विधान सभा और केन्द्र की संसद आदि तक बहुसंख्यक या बहुमत को नियामक और निर्णायक अधिकार प्राप्त हैं । बहुमत का निर्णय संख्या के आधार पर है । बहुमत के निर्णय की प्रक्रिया में पचास प्रतिशत से अधिक संख्या को नियामक और निर्णायक अधिकार प्राप्त हैं । अल्पसंख्यक या अल्पमत नियमन के अधिकार से वंचित रहता है । किन्तु लोकतांत्रिक तत्वज्ञान से संदर्भ में बहुमत की निर्णायक भूमिका राजनीतिक इतिहास में एक लम्बे संघर्ष से प्राप्त हुई है । जिसका अभिप्राय है कि यह एक निर्णय की प्रक्रिया है, जिसमें सर्वानुभति का सोच और समझ है ।

लोकतंत्र के मूल तत्वज्ञान में बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक का महत्व अन्तिम नहीं है । लोकतंत्र सर्वानुमति है । यदि लोकतंत्र सर्वानुमति नहीं माना जायेगा, तब यह कलहतंत्र रहेगा । बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक का सतत संघर्ष, कुंठा-कलह से

गृह युद्ध तक विस्तारित हो सकता है । इस प्रकार तथा कथित राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पांथिक आदि किसी प्रकार के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के भेद की स्वीकृति तथा इस विभाजन का सातत्य विग्रह और विस्फोट का कारण बन सकता है।

भारत में पांथिक दृष्टि से हिन्दू लगभग ८३ प्रतिशत और मुसलमान ११ प्रतिशत, ईसाई ३ प्रतिशत तथा सिक्ख २ प्रतिशत हैं । केवल इसके कारण भारत को विभिन्न पंथों या धर्मों वाला देश माना नहीं जा सकता । लोकतांत्रिक संदर्भ में ५१ प्रतिशत का शासन सुनिश्चित होता है । अतः ८३ प्रतिशत तथा ११ प्रतिशत और अन्यों के सम्बन्धों का सुनिश्चय होना भी भारत और जागतिक संदर्भ में आवश्यक है। लोकतांत्रिक व्यवस्था और प्रक्रिया में संख्यात्मक विस्तार निर्णय की सुविधात्मक प्रक्रिया है । विश्व इतिहास अभी तक सामन्ती व्यवस्था के अल्पसंख्यक निर्णय के विरोध में, बहुसांख्यिक समाधान तक, लोकतंत्र के रूप में अपनी यात्रा सम्पन्न कर चुका है । इस लोकतांत्रिक निर्णय की प्रक्रिया का कोई सक्षम व्यावहारिक विकल्प इतिहास में नहीं प्रस्तुत किया गया है ।

पंथ निरपेक्षता को संख्यात्मक आकार देकर इतिहास में समस्यायें खड़ी की गयी हैं । संख्यात्मक आधार से भारत के विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान तथा बांगला देश में अल्पसंख्यक हिन्दू का निरन्तर पलायन और भारत की ही काश्मीर घाटी से अल्पसंख्यक हिन्दू का पलायन वर्तमान इतिहास में चौंका देने वाले तथ्य हैं । पंथ सापेक्ष राज्यों में बहुसंख्यक ने अल्पसंख्यक को इतिहास के पृष्ठों पर प्रताड़ित किया है । इतिहास में पंथ निरपेक्ष राज्यों में इसकी प्रतिक्रिया को प्रतिबिम्बित या प्रतिफलित होना स्वाभाविक, किन्तु संकटपूर्ण है ।

भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में ऊँचे से ऊँचे पद पर पांथिक सम्बद्धता बाधक नहीं है । किन्तु पंथ सापेक्ष इस्लामी या ईसाई देशों में यह सम्भव नहीं है । अधिक विकसित समझे जाने वाले ब्रिटेन में रोमन कैथोलिक या अन्य मतानुयायी, एंगि्लकन चर्च के अतिरिक्त राजा - रानी नहीं हो सकते । अल्पसंख्यक वर्गों को मानवोचित समानता के अधिकार मानवीय गरिमा को उत्कर्ष देने के लिए उचित और उपादेय हैं ।

भारतीय संविधान के २५वें अनुच्छेद द्वारा सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रसार करने का अधिकार है । इसके उपरान्त २६वें तथा २७वें अनुच्छेद में धार्मिक सम्प्रदायों और उसके किसी अनुभाग को स्वतंत्रता देकर कथित अल्पसंख्यकों को भी समान अधिकार प्रदान किया गया है । अनुच्छेद २९ में अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण किया गया । इसके द्वारा भाषा, लिपि या संस्कृति विशेष को बनाये रखने का अधिकार है। अनुच्छेद ३० द्वारा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार अल्पसंख्यक वर्गों को प्रदान किया गया। वस्तुतः पांथिक, सांस्कृतिक, भाषायी आदि द्वारा अल्पसंख्यक को संरक्षण, विशेषाधिकार नहीं है । संविधान में इन व्यवस्थाओं द्वारा बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की अवधारणा मनुष्य जाति के स्वातंत्र्य के अधिकारों को बहु आयामी व्यक्तित्व देने

के लिए है । मानवीय अधिकारों के संदर्भ में अल्पसंख्यक अधिकारों को परिभाषित या परिसीमित करना भारतीय संविधान के ढांचें में तर्कपूर्ण और विवेकपूर्ण है । अन्य प्रकरण में इस अल्पसंख्यक अवधारणा की व्याख्या है ।

पंथ निरपेक्षता और मानवाधिकार

भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने का प्रावधान तात्कालिक न्यायिक समाधान की दृष्टि से भी है । यह संरक्षण विशेषाधिकार का रूप नहीं ग्रहण कर सकता । निर्मिति काल में जिन समस्याओं ने भारतीय मानसिकता को आक्रान्त किया, उनके समाधान में संविधान में अल्पसंख्यकों को कुछ छूट देकर संतुष्टि और सुरक्षा का आश्वासन दिया गया है । किन्तु इतना निश्चित है कि संविधान के समग्र ढांचे से किसी अल्पसंख्यक को विशेषाधिकार की व्यवस्था मेल नहीं खाती ।

राज्य की नीति निदेशक सिद्धान्तों में अनुच्छेद ४४ में भारत के समस्त राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने के प्रयास का समर्थन है । बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक का विभाजन वहीं से प्रारम्भ होता है, जब भिन्न-भिन्न शिक्षा, संस्कृति, भाषा, लिपि, सिविल कानून आदि का निर्णय पांथिक आधार पर होता है । पंथ निरपेक्षता का निर्वाह, अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के आश्वासन से राज्यशक्ति मानवीय अधिकारों को मान्यता प्रदान कर सकती है ।

१९७६ में भारतीय संविधान के ४२ वें संशोधन जिसके द्वारा उद्देशिका में पंथ निरपेक्षता की प्रविष्टि की गयी, उसी से अनुच्छेद ५१ (क) भी संविधान में जोड़ा गया, इसमें भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भातृत्व की भावना का निर्माण करने का संकल्प है । इसमें धर्म या पंथ, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से ऊपर उठने का आमंत्रण है ।

अनुच्छेद ५१ (क) ज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद आदि के विकास की अपेक्षा की अभिव्यक्ति है । मानववाद की कोई परिभाषा संविधान में नहीं है । किन्तु विश्व में संविधानों के अभ्युदयकाल में मानवता को प्रतिष्ठित करने और उसके अधिकारों को विधि समस्त करने में एक अक्षय प्रेरणा का प्रवाह परिलक्षित है ।

भारतीय चिन्तन का उत्कृष्ट रूप वेदान्त की अवधारणा है । इसके अनुसार मनुष्य जाति में ही नहीं, समस्त जड़ चेतन में विवेकपूर्ण अभेद की अभिव्यक्ति है । सर्वत्र मानवता की प्रेरणा ने समतामूलक अधिकारों को विकसित किया है ।

भारतीय धर्मशास्त्र मानवता के पोषक और समर्थक है । प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय विचारकों द्वारा मानवता की पक्षधरता ने अल्पसंख्यकों को स्वातंत्र्य और सम्मान प्रदान किया है ।

आधुनिक युग में मानवाधिकारों का अध्याय संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की घोषणा (१७७८) में है । सभी मनुष्यों की समानता को अपहरणीय तथा प्राकृतिक अधिकारों की संज्ञा दी गयी है । सामूहिक जीवन यापन और स्वतंत्रता के अधिकार के संदर्भ में पांथिक स्वतंत्रता का प्रावधान है । इस पांथिक स्वतंत्रता के साथ इसके उचित उपभोग

के दायित्व की भी घोषणा है । अठारहवीं शती के अन्तिम दो दशकों में फ्रांस की राज्य क्रान्ति ने मानवतावादी अवधारणा को वैश्विक स्तर पर अग्रसारित किया है ।

उन्नीसवीं शती में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों ने मनुष्य-जाति के मूल अधिकारों में आर्थिक पक्ष को सशक्त रूप में संलग्न किया है । साम्यवादी राज्य शक्तियों ने अर्थ व्यवस्था की राजनीतिक दृष्टि से संरचना की है । इस व्यवस्था में राजनीतिक अधिकारों या स्वतंत्रताओं का स्थान महत्वहीन है । मार्क्सवाद ने राजनीतिक अधिकारों को आर्थिक अंतःरचना से पृथक नहीं किया है । साम्यवादी सिद्धान्तों के अनुसार समकालीन सामाजिक-आर्थिक प्रतिमान के आधार पर राजनीतिक अधिकारों का अस्तित्व है । मार्क्सवाद ने जिस कालखंड में प्राकृत और अपहरणीय मानवीय अधिकारों से दूरी अधिक बढ़ा ली, उसी में इसका पराभव अवश्यम्भावी था ।

इतिहास ने मानवीय अधिकारों के सदैव उन्मुक्त या खुलेपन और सर्वत्र चिन्तन-पुनर्चिन्तन की प्रक्रिया से पुनः पुनः संलग्न होने का समर्थन किया है । पंथ निरपेक्षता मानवीय अधिकारों की अक्षय पूँजी है । वर्तमान युग में संविधान, मानवीय सम्बन्धों के प्रत्येक पक्ष के लिए नैतिकता और न्याय की इस पूंजी का प्रहरी है ।

पंथ निरपेक्षता की व्याप्ति

मानवीय अधिकारों में पंथ निरपेक्षता एक शक्तिपूर्ण स्तर है । जागतिक संदर्भ में जिन देशों ने पंथ निरपेक्षता को नकारा है, उन्होंने भी आस्था स्वातंत्र्य आदि की घोषणा न करने की भूल नहीं की है । मोरक्को से मलेशिया तक अफ्रीकी और ऐशियाई देशों के संविधान इस संदर्भ में दृष्टव्य है । अग्रिम अध्याय में इनका विवेचन है । इस्लाम पंथ सापेक्ष या ईसाई पंथ सापेक्ष देश भी मानवीय अधिकारों के संदर्भ को स्वीकार करने का साहस नहीं कर पाये हैं । किन्तु पंथ निरपेक्ष देश के संविधान कथित अल्पसंख्यकों को संरक्षण देकर मानवता को अधिक उत्कर्ष देने के प्रयास में हैं । संरक्षण का अभिप्राय दोहरी या निम्न स्तरीय नागरिकता नहीं है ।

पंथ निरपेक्षता राज्य के निमित्त कोई अमूर्त सिद्धान्त नहीं है । पंथ निरपेक्षता कोई वाग्विलासिता की श्रेणी का चिन्तन नहीं है । पंथ निरपेक्षता कोरी दार्शनिकता नहीं है । लोकतांत्रिक सिद्धान्तों का प्रमुख अंश, पंथ निरपेक्षता है । लोकतांत्रिक संरचना का प्रधान अंग पंथ निरपेक्षता है । पंथ निरपेक्षता, लोकतांत्रिक संवादिता और सहजीवन के ताने बाने से बुनी जाती है । अपने पृथक अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वाले किसी दृष्टि से बहुसंख्यकों या अल्पसंख्यकों को दिशा भ्रम अवश्यम्भावी है । लोकतांत्रिक राज्य की पारदर्शी अवधारणा, सहजीवन, सामंजस्य तथा संतुलित या स्वस्थ्य सामाजिक सम्बन्धों की निर्मित में प्रकट होती है । पंथ निरपेक्षता के मर्यादित मूल्यांकन तथा मानवीय मान्यताओं के आधार पर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उत्कृष्ट तथा उज्वल सम्बन्धों को सख्य, समता तथा स्वतंत्रता की महँक से आपूरित किया जा सकता है ।

सत्य की शोध, स्वातंत्र्य की अपेक्षा, और समता की स्थापना, पंथ निरपेक्षता के निश्चित आधार हैं । सत्य, स्वातंत्र्य और समानता का पूरक है । सत्य की शोध

महत्व का विषय है । मनुष्य जाति ने सृष्टि के सत्य की शोध में, सृष्टि के रहस्यों को विज्ञान में अनावृत किया है । कार्यकारण सम्बन्ध से सृष्टा की शोध ने अध्यात्म को जन्म दिया है । सत्य की शोध जागतिक जिज्ञासा का विषय रहा है । भारतीय चिन्तन ने सत्य की शोध के सन्दर्भ में विचार, वाक्, विवेक आदि, तथा अभिव्यक्ति के विविध प्रतिमानों या प्रारूपों को स्वातंत्र्य, सहिष्णुता और सद्भावना प्रदान की है । मानवीय समता और महत्ता के अन्तर्गत विरोधी विचार या समानान्तर सिद्धान्तों के प्रति सहिष्णुता से पंथ निरपेक्षता का सृजन सम्भव है । इस कारण पंथ निरपेक्षता विविध मतवादों के प्रति विवेकपूर्ण समादर और समझदारी का स्रोत है ।

पंथ निरपेक्षता के आधार पर स्थापित होने वाले समाज को जब राज्य शक्ति स्वीकृति देती है, तब किसी भी पंथ को विशेषाधिकार से मुक्त करती है । किसी पंथ को पृथक स्तर पर सुविधा या संरक्षण राज्य नहीं प्रदान कर सकता । पंथ निरपेक्षता की घोषणा और किसी पंथ के विशेष संरक्षण में विसंगति और विरोधाभास का पोषण होने की स्थिति बनती है । अतः भारतीय संवैधानिक ढांचें में जिस व्यवस्था में विशेषाधिकार की दुर्गन्ध है, उनको पहिचान कर, उनको विवेक संगत अर्थ प्रदान करना अपरिहार्य है । सभी मतवादों को समान रूप से संरक्षण अनिवार्य है ।

पंथ निरपेक्षता की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि यूरोपीय इतिहास के सेकुलर शब्द की भारतीय पांथिक या साम्प्रदायिक या धार्मिक शब्दों से सामंजस्य नहीं है । भारतीय इतिहास की विशिष्ट परम्परा में पंथ निरपेक्षता के आकलन का औचित्य है । पंथ निरपेक्षता के प्रसंग में राज्य हस्तक्षेप, संविधान के माध्यम से, समाज कल्याण और समाज सुधार के क्षेत्र में स्वीकृत है । इस संदर्भ में अल्पसंख्यक अवधारणा की संवैधानिक स्थिति का सीमांकन मानवाधिकारों की मर्यादा में होना समाधानकारी है । पंथ निरपेक्षता मानवाधिकारों की अक्षयपूँजी है । पंथ निरपेक्षता की एकांगी या एकदेशिक मीमांसा मूल्यांकन की अपेक्षा जागतिक पृष्ठभूमि में इसका विवेचन वर्तमान और भावी मानवता के लिए कल्याणकारी है ।

4

पंथ निरपेक्षता-विश्व परिप्रेक्ष्य

विश्व परिप्रेक्ष्य में पंथ निरपेक्षता के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु, सेकुलरवाद की यात्रा, तथा पंथ सापेक्ष कुछ यूरोपीय राज्यों के संविधानों का विवेचन, मानवीय इतिहास में प्रेरक तथा प्रभावकारी हैं । इंगलैंड का परम्पराओं पर आधृत संविधान के इतिहास का अध्ययन रोचक विषय है । यूरोप के पंथ सापेक्ष ग्रीस, मोनाको, नार्वे तथा वेटिकन, एक दक्षिण अमेरिका के राज्य कोस्टरिका आदि भी पंथवाद की दृष्टि से बिवेचनीय हैं ।

पंथ निरपेक्षता या सेकुलर शब्द के यूरोप या विश्व के अन्य किसी राज्य द्वारा ग्रहीत अर्थों या अभिवृतियों का कोई विशेष अभिप्राय भारतीय राजनीति या समाज के लिए मान्य करना आवश्यक नहीं है । भारतीय परम्परा और परिस्थितियों तथा मूल्यों और मनोभावों के परिप्रेक्ष्य में सेकुलर शब्द के संदर्भ का उद्घाटन उचित तथा उपादेय है । भारतीय राजनीति की आधारभूत विशेषताओं और विश्वासों तथा चिन्तन और चरित्र की पृष्ठभूमि में राज्य शक्ति की पंथ निरपेक्षता का विश्लेषण आवश्यक है । किन्तु भारत की पंथ निरपेक्ष या सेकुलर व्यवस्था का वर्तमान विश्व में एकाकी रूप से आकलन की भी विशेष सार्थकता नहीं है । वैज्ञानिक तथा प्राविधि के उन्नयन के कारण विश्व निकट आ गया है, और भी निकट लाने की तैयारी में प्राविधि संलग्न है । विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों का सम्यक निरीक्षण आवश्यक तथा उपादेय है ।

अध्ययन के बिन्दु

धर्म या पंथ या मतवाद विश्व सभ्यता की प्राचीनतम संस्था है । इस कारण राज्य शक्ति अपनी मर्यादा को धर्म या पंथ के संदर्भ में संविधान द्वारा सुनिश्चित कर देती है । देश विशेष या राष्ट्र विशेष की परम्पराओं और परिस्थितियों केसमायोजन तथा समाधान में संविधान के प्रावधान नागरिक शक्ति को आश्वस्त करते हैं ।

विश्व के विभिन्न देशों के राष्ट्रों के संविधानों में पंथ निरपेक्षता या सेकुलरवाद का प्रावधान अध्ययन का महत्वपूर्ण बिन्दु है । इन प्रावधानों की पृष्ठभूमि में देश विशेष का विवेक और बाध्यता का विश्लेषण तथा व्याख्या, द्वितीय बिन्दु है । भारत की अपनी अखण्डित इतिहास की परम्परा, आधुनिक प्रवाह, तथा वर्तमान परिवेश में पंथ निरपेक्षता या सेकुलरवाद के आकार का अध्ययन तृतीय बिन्दु है ।

सेकुलरवाद की यात्रा

सेकुलर शब्द की यूरोपीय इतिहास में अर्थवत्ता और विश्व राज़नीति में इसकी यात्रा के विवेचन में यह स्पष्ट है कि पांथिक शक्तियों ने राज्य शक्ति को अनधिकृत करने का अभियान चलाया, तब इस शब्द का अभ्युदय हुआ।

सोलहवीं शती में यूरोप की राजनीति में पांथिक निरंकुश शक्ति के वर्चस्व को क्षीण करने के लिए सेकुलर राजनीतिक पद्धति का अविष्कार हुआ था। सेकुलर का आशय राज्य शक्ति और चर्च के क्षेत्रों का पार्थक्य रहा है। चर्च पारलौकिक जीवन के चिन्तन से आक्रान्त था। राज्य लौकिक जीवन की चिन्ता से संलग्न होने की प्रक्रिया से व्यस्त हो गया। राज्य की अन्तःरचना चर्च से अधिकार मुक्ति की दिशा में गतिशील हुई थी। इसको पश्चिम में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के रूप में मान्यता उपलब्ध हुई है।

मध्यकालीन शताब्दियों में यूरोप में पवित्र रोमन साम्राज्य, रोमन चर्च आदि के पराभव के पश्चात् प्रोटेसटेन्ट आदि द्वारा एक ऐसे युग का प्रवर्तन हुआ, जिसमें पांथिक सत्ता की अस्वीकृति थी। यूरोप के राजतन्त्र ने चर्च के प्रभुत्व को अस्वीकार कर राजाओं के राजनीतिक या नितान्त लौकिक सम्बन्धों को महत्व दिया। एक नैतिकता को नकार कर निरंकुशता की दिशा में भी बढ़े। इस युग में राज्य को अंकुश लगाने वाली संविधान की शक्ति का विकास उन्नीसवीं शती तक रुका रहा। यूरोप के कुछ बड़े-छोटे देशों ने सेकुलरवाद को स्वीकार नहीं किया है।

पंथ सापेक्ष यूरोपीय तथा अमेरिकी राज्य

यूरोप के इंगलैण्ड, ग्रीस, नार्वे, पुर्तगाल, मोनको, माल्टा, स्पेन और अन्य देशों की संवैधानिक पंथ सापेक्षता का अध्ययन रोचक विषय है। इंगलैण्ड की पंथ सापेक्षता, परम्परा और आधुनिकता का सामंजस्य है। ग्रीस की गौरवपूर्ण सभ्यता यूरोप में प्राचीनतम है। इस देश का इतिहास खण्डित हुआ है, किन्तु ग्रीस की पंथ सापेक्षता की व्यवस्था का अध्ययन अनिवार्य है। मोनको एक छोटा राज्य है। उसकी पंथ सापेक्षता की व्यवस्था की व्याख्या आवश्यक है। नार्वे आधुनिकतम देश है। इसमें पंथ सापेक्षता का प्रावधान जिज्ञासा का विषय है। वेटिकन सर्वभौम स्वतंत्र सत्ताधारी लघु राज्य है। किन्तु एक ईसाई चर्च का प्रमुख केन्द्र है। पंथ सापेक्षता की प्रबलतम स्थिति की व्याख्या आधुनिक विश्व के लिए उपादेय है। यूरोपीय उपनिवेशवाद ने भी पंथ सापेक्ष राज्यों की सृष्टि यूरोप के बाहर भी की है, अर्जेनटाइना, कोलम्बिया, कोस्टारिका, ब्राजील आदि।

इंगलैण्ड का संविधान

इंगलैण्ड के संविधान का १४०० वर्षों में सतत विकास हुआ है। बाह्य विजय और आन्तरिक विसंगतियों के कालखण्ड में भी इंगलैण्ड का राष्ट्रीय जीवन पोषित होता रहा है।

इंगलैण्ड के संविधान की निर्मिति इतिहास के दीर्घकालीन अवधि में हुई है। इस संविधान के कई स्रोत माने जाते हैं। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण परम्परायें हैं।

परम्पराओं के बिना संविधान का महत्व नहीं है । इंगलैण्ड में परम्परायें उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना संविधान है । इंगलैण्ड की राजनीतिक परम्पराओं में जैसे कबीना के परामर्श को राजा या रानी को स्वीकार करना अनिवार्य है । संसद की स्वीकृति के बिना कोई कराधान सम्भव नहीं है । संसद को वर्ष में एक बार बैठना अनिवार्य है । संसद में बहुमत दल के नेता को ही प्रधानमंत्री बनाना होगा । संसद के प्रति कबीना का सामूहिक दायित्व अनिवार्य है, आदि-आदि ।

संविधान का दूसरा स्रोत चार्टर है । समय-समय पर महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घोषणायें और समझौते, जिनसे नागरिक और राज्य की सत्ता परिभाषित हुई है - जैसे मैगनाकार्टा (१२१५) आदि । वस्तुतः इंगलैण्ड के संविधान में प्रभावी तत्व लिखित से अलिखित अधिक है । यह कथन सत्य है कि परम्पराओं और रीतिरिवाजों पर इंगलैण्ड का संविधान अधिकांश में आधारित है । इस कारण इंगलैण्ड के संविधान को बुद्धिमत्ता और संयोग की संतान कहा जाता है । सामाजिक-राजनीतिक जीवन के मुख्य प्रवाह को संविधानों से परिवर्तित नहीं किया जा सका है । यह स्पष्ट है कि इंगलैण्ड में वर्तमान का विगत से सम्बन्ध विच्छेद नहीं किया गया है । किसी सर्वथा नये संविधान का निर्माण नहीं किया गया । राजनीतिक परिवर्तन क्रमशः स्तर-स्तर होते गये । बिट्रेन के संवैधानिक इतिहास में जो सातत्य है, अन्यत्र दुर्लभ है ।

इंगलैण्ड का शासन सिद्धान्त राजाशाही नृपतंत्र है । राजा-रानी सर्वस्व हैं । जो स्वरूप में सीमित संवैधानिक राजशाही है । किन्तु संरचना तथा सक्रियता का चरित्र नितांत लोकतांत्रिक है । इंगलैण्ड मुकुटधारी लोकतंत्र है । ब्रिटिश संविधान राजाशाही, अभिजात्यशाही और लोकशाही का समन्वित रूप है ।

यह ज्ञातव्य है कि, इंगलैण्ड में ऐसा कोई कानून नहीं है, जिससे नागरिकों के मूलभूत अधिकारों का प्रावधान किया गया हो । भारत और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संविधानों में नागरिक के मूलभूत अधिकारों की व्यवस्था है । इंगलैण्ड के नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की परम्परागत मान्यता है । संसद को अधिकार है कि, वह नागरिक अधिकारों में कटौती कर दे या चर्च और राज्य का सम्बन्ध तोड़ दे । किन्तु परम्परा और जागरूक नागरिकों के कारण इंगलैण्ड के इतिहास में यह सम्भव-नहीं रहा ।

इंगलैण्ड के नागरिकों के बुनियादी अधिकारों का आधार संविधान नहीं है। विधि सम्मत शासन के आधार से नागरिक के अधिकार सुनिश्चित माने जाते हैं । शताब्दियों के संघर्ष से इस स्थिति का निर्माण हुआ है ।

इंगलैण्ड की राजाशाही एक संस्था है । राजा या रानी का व्यक्ति के रूप में नहीं, ताजशाही के रूप में प्राधान्य है । यह ताजशाही स्थापित ब्रिटिश चर्च की प्रधान है । आर्चविशप, विशप तथा अन्य चर्च अधिकारी राज्य की ओर से नियुक्त होते हैं। ताज धार्मिक सम्मेलनों को आहूत करता है, और उनके अधिनियमों को स्वीकृति देता है । ताज स्काटलैण्ड के चर्च का भी प्रमुख है । ताज एक रक्षक है । यदि राजाशाही-नृपतंत्र समाप्त हो जाये, तब ब्रिटेन की चर्च का शासक समाप्त हो जायेगा ।

इंगलैण्ड की राजशाही पंथ सापेक्ष है । १५वीं शती की संस्था प्रिवी कौंसिल वर्तमान में भी जीवित है । इसके सदस्यों में कन्टरबरी और यार्क के आर्कविशप तथा लन्दन के विशप भी होते हैं । प्रिवी कौंसिल का सदस्य आजीवन होता है । इसकी बैठकें राजाशाही के महल बकिंघम में होती है । यह संस्था न केवल एक सर्वोच्च न्यायालय की भाँति कार्य करती है, बल्कि चर्च के विवादों को भी समाधान देती है । इंगलैंड के हाउस आफ लार्ड्स में पांथिक सापेक्षता का स्पष्ट प्रावधान है । इस सदन में २६ सदस्यों का नामांकन होता है । केम्टरवरी और यार्क के आर्क विशप के अतिरिक्त इंगलैंड की चर्च के वरिष्ठ विशप इसमें होते हैं ।

ग्रीस-पंथसापेक्षता

ग्रीस विश्व की प्राचीन सभ्यता का केन्द्र बिन्दु रहा है । मध्यकालीन शताब्दियों (ई० १४५३) में ग्रीस तुर्क साम्राज्य के अन्तर्गत हो गया था । बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में स्वतंत्र संविधान (१९५२) निर्मित हुआ । पुनः १९६८ में एक संविधान बना । पश्चात् ७ जून, १९७५ में नये संविधान का प्रवर्तन हुआ ।

ग्रीस के संविधान के अनुच्छेद ३ में चर्च और राज्य का सम्बन्ध जोड़ा गया। पवित्र धर्म ग्रंथ के मूल पाठ को परिवर्तित करने का प्रावधान है । किन्तु चर्च की अनुकूलता से या स्वीकृति के बिना निषेध भी स्पष्ट किया गया है ।

अनुच्छेद १३ में पांथिक या धार्मिक स्वतंत्र चेतना का प्रावधान है । सभी ज्ञात पंथों को स्वतंत्र रूप से उपासना शैली या समारोह मनाने का अधिकार दिया गया है । किन्तु ऐसी किसी भी उपासना की छूट नहीं है, जिससे जन शक्ति या जन नैतिकता का उल्लंघन हो । सभी विहित धर्मों या पंथों की राज्य से नियुक्त निरीक्षक द्वारा देखभाल करने का भी प्रावधान है ।

अनुच्छेद १६ में शिक्षा के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण प्रावधान किया गया है कि, शिक्षण का उद्देश्य राष्ट्रीय और धार्मिक चेतना जाग्रत करने की है, जिससे स्वतंत्र और दायित्व पूर्ण नागरिकता का निर्वाह हो सके ।

ग्रीस के संविधान में पंथ सापेक्षता को अपने समाज के अनुकूल सकारात्मक तथा समाधानकारी माना गया है । इसके साथ-साथ पांथिक स्वातंत्र्य की भी उपेक्षा नहीं की गयी । शिक्षण की प्रक्रिया के साथ धार्मिक चेतना को बलवती करने की आकांक्षा ग्रीस के संविधान की विशेषता है ।

नार्वे पंथ सापेक्ष

नार्वे नवम् शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वतंत्र राज्य हो गया । सन् ८७२ में राजा हेराल्ड नार्वे के एकीकरण में सफल हुआ ।

सन् १३८० में नार्वे डेन्मार्क से जुड़ गया । सन् १६६५ में कोगोलाव, राज्य का असीमित अधिकार युक्त नृप तथा सभी विधि-विधान से परे सर्वसत्ताधारी बना ।

राजा किसी जज को धरती पर मान्यता न देकर, केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी समझा गया ।

सन् १८१४ में नार्वे का संविधान जब बना, तब उसके समक्ष अमेरिका (१७८६) स्वीडन (१८०६) स्पेन (१८१२) ब्रिटेन आदि की संवैधानिक परम्परा थी। किन्तु इसने फ्रांस (सन् १७६१) के संविधान को प्रभावी समझा था । इसके उपरान्त इसमें निरन्तर संशोधन होते रहे ।

बीसवीं शती के प्रथम विश्व युद्ध में नार्वे तटस्थ रहा । सन् १६४० में जर्मन सेना ने नार्वे में अधिकार किया । सन् १६४५ में नार्वे स्वतंत्र हुआ, और यूनो का सदस्य बना । इसके पश्चात् भी संविधान में संशोधन होते रहे । १७ मई १६८४ में नार्वे का नूतन संविधान बना ।

यूरोप का प्राचीनतम संविधान नार्वे का है । बहुत कुछ संशोधित होकर भी सन् १८१४ के अपने मौलिक स्वरूप में बना रहा ।

नार्वे के संविधान के द्वितीय अनुच्छेद में समस्त नागरिकों को अपने पांथिक विचार और आचार की स्वतंत्रता अखंडित मानी गयी है ।

अनुच्छेद चार में ईसाई धर्म के एक लूथरन सम्प्रदाय के अनुयायी रूप में ही राजा का प्रावधान है ।

अनुच्छेद सोलह के अन्तर्गत सभी सार्वजनिक गिरजाघरों को आदेश देने का अधिकारी राजा को ही माना गया है । राजा द्वारा निर्मित विधि-विधानों को पांथिक या धार्मिक क्षेत्र में मान्यता प्रदान की गयी । एक पंथ सापेक्ष देश ने अपनी परम्परा से नागरिक जीवन को अनुशासित करने का प्रावधान संविधान में किया है ।

अनुच्छेद १०० में प्रेस के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । किन्तु पांथिक या धार्मिक तथा नैतिकता की अवमानना न करने की व्यवस्था है ।

पुर्तगाल

११४२ में पुर्तगाल के राजा अलफांसो को पोप ऐनोसेन्स द्वितीय ने मान्यता प्रदान की । पुर्तगाल ११८५ में स्वतंत्र सत्ताधारी राज्य बन गया । कुछ समय (१५८१ से १६४०) के लिए पुर्तगाल, स्पेन द्वारा अधिकृत किया गया । अन्य यूरोपीय देशों की भाँति पुर्तगाल की संवैधानिक व्यवस्था धीरे-धीरे विकसित हुई ।

१५वीं शती में यूरोप का प्रथम उपनिवेशवादी राज्य पुर्तगाल ही था । पुर्तगाल में १८२२ का संविधान फ्रांस के १७६१ के संविधान की प्रेरणा से बना था । १८२६ में एक अन्य संविधान बना । १८३८ में पुर्तगीज राजाशाही का एक अन्य संविधान बना । पुर्तगाली संवैधानिक इतिहास में १६११ में पुनः गणतांत्रिक संविधान प्रवर्तित हुआ । पश्चात् १६३३ में एक नया संविधान प्रवर्तित हुआ ।

१६७४ में पुर्तगाली सेनापति जनरल अन्तानियों ने पोर्तगाल के साम्राज्यवादी स्वरूप की रक्षा के लिए अंगोला, मोजेम्बिक, गायना आदि में सफलता पूर्वक संघर्ष

कर 'समरनायक' (वारहीरो) की प्रसिद्धि प्राप्त की। किन्तु अफ्रीका के देशों में युद्ध द्वारा समाधान को सम्भव नहीं माना। एक कामनबेल्थ का सुझाव दिया। कट्टरवादी साम्राज्यवादियों के विरोध के कारण सेना में विद्रोह हो गया। सैनिक शासन ने पुर्तगाल में लोकतंत्र, और अफ्रीकी उपनिवेशों में शान्ति स्थापन की घोषणा की।

संविधान के अनुच्छेद ४६ में पुर्तगाल का परम्परागत पंथ रोमन केथोलिक चर्च को वैधानिक स्वीकृति है। किन्तु राज्य और पंथ के पार्थक्य की भी घोषणा है। अनुच्छेद ५ में विधिक समानता का, पांथिक आदि भेदभाव को नकार कर, प्रावधान है। पांथिक विश्वासों और कृत्यों की छूट अनुच्छेद ८ द्वारा है। अनुच्छेद ४३ में ईसाई सिद्धान्तों तथा नैतिकता और परम्परागत मान्यताओं के आधार पर नागरिकता और नैतिकता के विकास की घोषणा है। अनुच्छेद ४६ द्वारा कैथोलिक मिशनों को संरक्षण और सहायता का प्रावधान है।

माल्टा

भूमध्यसागर में माल्टा द्वीप की स्थिति १६वीं शती के शुभारम्भ में महत्वपूर्ण बन गयी। सन् १८०० में माल्टा के जन विद्रोह का इंगलैण्ड ने साथ दिया, और फ्रांस का अधिकार समाप्त हो गया। १८१४ में माल्टा ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन गया। १६वीं शती के अन्त में इसके संवैधानिक इतिहास का प्रारम्भ होता है।

१६६४ में माल्टा का स्वतंत्र संविधान ब्रिटिश संसद ने पारित किया। कामनवेल्थ के अन्तर्गत माल्टा स्वतंत्र हो गया। अनुच्छेद १० के द्वारा सभी विद्यालयों में रोमन कैथोलिक चर्च विशेष के विचारों या मतवाद का शिक्षण अनिवार्य किया गया। वैधानिक सीमा के अन्तर्गत मत, विचार, आस्था, अभिव्यक्ति आदि का भी विधि सम्मत स्वातंत्र्य प्रदान किया गया। अनुच्छेद ४१ में रुचि वैचित्र्य के अनुसार उपासना पद्धति के स्वातंत्र्य का संरक्षण है।

मोनाको पंथ सापेक्ष

मोनाको यूरोप का एक छोटा राज्य है। फ्रांस और इटली के मध्य में हैं।

फ्रांस के क्रान्तिकाल (सन् १७६३) में मोनाको फ्रांस के अधिकार में आ गया था। सन् १८६१ के पूर्व कई शताब्दियों तक मोनाको अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करता रहा है।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में सन् १६६६ जून में संवैधानिक उत्तराधिकारपूर्ण राजाशाही स्थापित हुई। संविधान में रोमन कैथोलिक ईसाई धर्म को राज्य का धर्म घोषित किया गया।

मोनाको के संविधान में अनुच्छेद १७ में किसी को विशेषाधिकार देने का निषेध किया गया। अनुच्छेद १६ में व्यक्तिगत स्वतंत्रता की गारंटी की गयी। यह भी

महत्वपूर्ण है कि, अनुच्छेद २३ में धर्म की स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है । पंथ सापेक्ष देश ने विचार स्वातंत्र्य की मर्यादा को अस्वीकार नहीं किया है ।

स्पेन

१६वीं शताब्दी में फिलिप द्वितीय (१५५६ से १५६८) ने स्पेनिश राज्य का विस्तार कर सन् १५८० में इसे उत्कर्ष पर आसीन किया ।

१५८८ में ब्रिटेन द्वारा नौसैनिक पराजय से स्पेन हतप्रभ हुआ था । १८वीं शती में फ्रांस के राजनीतिक विचारोंसे स्पेन प्रभावित हुआ था । सन् १८०८ में नैपोलिन ने स्पेन पर अधिकार कर लिया ।

स्पेन का प्रथम संविधान मार्च १८१२ में बना था । इसमें ३८४ अनुच्छेद थे, और इसकी प्रेरणा का स्रोत सितम्बर १७९१ का प्रथम फ्रेंच संविधान था । स्पेन परम्परागतरूप से रूढ़िवादी राजनीतिक संस्कृति का अनुगामी था । पश्चात् १८३७-१८४५ - १८६६ आदि में नये-नये संविधान बने । कभी सेनाशाही का कभी राजाशाही का शासन स्पेन में स्थापित हुआ ।

प्रथम विश्वयुद्ध में स्पेन तटस्थ रहा था । १९२३ में पुनः तानाशाही स्थापित हो गयी । १९३१ में पुनः एक नया संविधान बना ।

१९३६ से १९३९ तक जनरल फ्राँको के नेतृत्व में विद्रोह और संघर्ष चलता रहा। इसमें पाँच लाख मनुष्यों से अधिक की आहुति चढ़ी । सन् १९६६ में जनरल फ्रांको ने नया संविधान प्रवर्तित किया । १९६७ में जनरल ने किसी राजनीतिक दल को कार्य न करने देने की घोषणा की । १९६९ में जनरल ने राजाशाही की वापसी की भी घोषणा की थी ।

१९७४ में चर्च और राज्य का संघर्ष पनपा । नागरिकों ने सांस्कृतिक अस्तित्व के लिए विद्रोह किया । राज्य ने इस विद्रोह को समाप्त करने के लिए स्पेन की चर्च को अनुदान रोक देने की धमकी दी ।

यह वास्तविकता है कि स्पेन पंथ सापेक्ष देश रहा है । मई १९५८ के राष्ट्रीय आन्दोलन के सिद्धान्तों में होली केथोलिक अपोस्टोलिक रोमन चर्च के प्रति गहरी आस्था स्पष्ट रूप से घोषित है ।

वेटिकन पंथतांत्रिक

वेटिकन विश्व का सबसे छोटा राज्य है । सन् १९२९ की एक संधि के अनुसार वेटिकन राज्य अस्तिव में आया । यह रोम के महानगर का एक कोना है । इसका क्षेत्रफल १०९ एकड़ तथा जनसंख्या १९६६ में लगभग एक सहस्त्र रही है । वेटिकन राज्य की सरकार रोमन कैथोलिक चर्च की है । इस राज्य का पोप सर्वोपरि अधिकारी है । वेटिकन अपने राजदूत आदि भी विभिन्न देशों में नियुक्त करता है ।

अर्जेन्टाइना

अर्जेन्टाइना का इतिहास स्पेन के खोजी नाविकों से प्रारम्भ होता है । उन्नीसवीं शती में उपनिवेशवादियों के संघर्ष से निकलकर, इसने ९ जुलाई १८१६ को स्वतंत्रता की घोषणा की ।

सन् १८१६ में १३८ अनुच्छेदों का संविधान बना । सन् १८२६ तथा संघर्षों के उपरान्त १८५३ में एक अन्य संविधान बना । इसमें सन् १८६६-१८६८ तथा १९५७ में संशोधन किये गये ।

अर्जेन्टाइना के संविधार के अनुच्छेद २ में राज्य द्वारा रोमन केथोलिक पंथ के समर्थन की घोषणा है ।

कोलम्बिया

कोलम्बिया स्पेन के साम्राज्यवाद का अंग सोलहवीं शताब्दी में बना था । सन् १८१० के एक विद्रोह ने संविधान निर्मात्री परिषद् की रचना की । १८१६ में पुनः स्पेन ने अधिकार कर लिया । १८२१ में पुनः नया संविधान प्रवर्तित हुआ । १८३० में फिर एक संविधान प्रवर्तित हुआ । १८५३ में फिर एक संविधान बना । १८५८ और १८६० में भी संविधानों की रचना हुई । १८६० के विद्रोह ने इनका समापन कर दिया । १८६३ में पुनः नया संविधान आया । १८८६ में पुनः नया संविधान बना । कोलम्बिया राजनीतिक स्थिरता की खोज में लगा रहा । बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में राजनीतिक आतंकवाद, गोरिल्ला गतिविधियों, छात्र आन्दोलन आदि कोलम्बिया के भूगोल-इतिहास में छाये रहे । सन् १८८६ के संविधान और उसके संशोधनों सहित १ सितम्बर १९५७ की मतगणना (प्लेवीसांइट) से परिवर्तनों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन है ।

इस संविधान के अनुच्छेद ५३ में राजा द्वारा आस्था के स्वातंत्र्य की गारंटी की गयी है । पांथिक मतवादों के आधार पर उत्पीड़न का निषेध है । किन्तु ईसाई नैतिकता के विरोध में किसी स्वातंत्र्य की मान्यता नहीं है । संविधान के अध्याय चार का शीर्षक है - 'पंथ तथा राज्य और चर्च के सम्बन्ध' इसमें परस्पर सम्मान (चर्च और राज्य) की घोषणा है ।

कोस्टारिका

यूरोपीय उपनिवेशवादियों द्वारा प्रसारित पंथ सापेक्षता का एक उदाहरण कोस्टारिका है । दक्षिण अमेरिका में प्रशान्त महासागर तथा केरीवियन सागर के तट पर एक छोटा देश है । इसका इतिहास मध्यकालीन शताब्दियों के उपनिवेशवादियों से प्रारम्भ होता है ।

सन् १९४४ में कोस्टारिका गणतंत्र घोषित हुआ । इसका अपना संविधान है । इसके अनुच्छेद ७५ में कोस्टारिका में रोमन कैथोलिक धर्म को राज्य का धर्म घोषित किया गया । किन्तु इसमें किसी अन्य उपासना पद्धति के स्वातंत्र्य का भी प्रावधान है । सार्वभौमिक नैतिकता और अच्छे रिवाज के विरोध में जो उपासना पद्धति है, उसके स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

ब्राजील

सन् १५०० के लगभग पुर्तगाल ने ब्राजील की खोज की, और १५३२ में प्रथम बार यहाँ स्थायी आवास बनाये गये । विश्व की सर्वाधिक विशाल नदी अमेजन का देश यूरोपीयवासियों का उपनिवेश बनता गया ।

सन् १५८० से १६४० तक ब्राजील स्पेन की राजाशाही के अन्तर्गत आ गया था । सन् १८०७ में पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन में नेपालियन की सेनाओं ने अधिकार कर लिया । पुर्तगाल की राजाशाही ब्राजील आ गयी । सन् १८१५ में ब्राजील की राजाशाही ने पुर्तगाल की बराबरी में इसको मान्यता प्रदान की ।

आन्तरिक संघर्षों और संरचनाओं की राहों से निकलकर ब्राजील ने उन्नीसवीं शती से बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक कई संविधानों का शुभारम्भ, समापन, सृजन और संशोधन किया. । प्रस्तुत अध्ययन १९६७ के संविधान के आधार पर है । इसमें १७ अक्टूबर १९६९ में महत्वपूर्ण संशोधन किया गया ।

संविधान के चतुर्थ अध्याय के अनुच्छेद १५३ के प्रथम संकल्प में सभी को विधिक समानता और पंचम संकल्प में सोच और पांथिक आस्थाओं को विधि सम्मत स्वतंत्रता प्रदान की गयी । षष्टम् संकल्प में पांथिक विश्वास, सैद्धान्तिक विचारों और राजनीतिक धारणाओं को अपहृत न करने का आश्वासन है । अनुच्छेद १७६ (३/५) के राज्य के प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में पांथिक शिक्षण की घोषणा है । किन्तु इसे वैकल्पिक कर बाध्यता को अस्वीकार किया गया है । अनुच्छेद १८० में राज्य का कर्तव्य, संस्कृति को सहायता देने का निर्धारित किया गया है ।

प्रस्तुत प्रकरण में इंग्लैण्ड, ग्रीस, नार्वे, पुर्तगाल, मोनको, माल्टा, स्पेन, वेटिकन तथा अमेरिकी अर्जेंटाइना, कोलेम्बिया, कोस्टारिका, तथा ब्राजील के संविधानों के आधार पर पांथिक स्थिति का विवेचन है । इंग्लैण्ड असंदिग्ध रूप से धर्म की शक्ति से सुदृढ़ स्थापित राज्य है । इंग्लैण्ड के संविधान में सामान्य कानून के अनुसार उपासना का स्वातंत्र्य है । इंग्लैण्ड के सम्बन्ध में समझा जा सकता है कि वह पंथ के आधार पर नागरिकों में भेद नहीं करता है । किन्तु तथ्यगत और तत्वज्ञान तथा संवैधानिक आधार पर इंग्लैण्ड पूर्णरूपेण पंथ सापेक्ष है । यदि व्यवस्था के विपरीत कोई व्यवहार है, वह विवादग्रस्त ही रहेगा । व्यवहार में सभी पंथों के प्रति सम्मान या समानता आधुनिक राष्ट्र का लक्षण है । इस प्रगति के तथ्य को इंग्लैण्ड की परम्परा भी अस्वीकार नहीं कर सकती है ।

पंथ निरपेक्षता के विश्व परिप्रेक्ष्य में निरूपण से यह स्पष्ट है कि धर्म या पंथ या मतवाद विश्व की प्राचीनतम संस्था है । विविध संविधानों की पंथ सापेक्षता में देश विशेष का विवेक या बाध्यता परिलक्षित है । यूरोप में चर्च के विरोध में राज्य शक्ति जब खड़ी हुई, तब सेकुलरवाद की यात्रा का शुभारम्भ हुआ । सेकुलरवाद में नितान्त लौकिक जीवन को महत्व देकर, चर्च की नैतिक शक्ति को भी नकारा गया । पंथ सापेक्ष यूरोपीय राज्यों में परम्पराओं के आधार तथा इंग्लैण्ड के संविधान और समाज का सतत विकास इतिहास का प्रेरक तथ्य है । इंग्लैण्ड की पथ सापेक्षता में उपासना स्वातंत्र्य का अधिकार भी प्रभावकारी है । ग्रीस राज्य ने धार्मिक चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से शिक्षण व्यवस्था को मान्य किया है । ग्रीस राज्य ने सकारात्मक तथा समाधानकारी पंथ सापेक्षता का अपने संविधान में प्रावधान किया है । पंथ सापेक्ष मोनको के संविधान में विशेषाधिकार का निषेध है, और पंथ या धर्म के स्वातंत्र्य की गारंटी है । पंथ सापेक्ष नार्वे में समस्त नागरिकों को अपने पांथिक विचार-आचार की अखंडित स्वतंत्रता है । नार्वे के संविधान में पांथिक तथा नैतिक अवमानना का निषेध है । रोमन केथोलिक वेटिकन सर्वभौम सत्ताधारी पंथतांत्रिक राज्य है । दक्षिण अमेरिका के राज्य कोस्टारिका को यूरोपीय उपनिवेशवादियों ने पंथ सापेक्ष के रूप में विकसित किया । किन्तु किसी उपासना पद्धति का निषेध नहीं है ।

◆ ◆ ◆

5

पंथ सापेक्ष इस्लामी राज्य

पंथ सापेक्ष इस्लामी देश अफगानिस्तान (एशिया), अलजीरिया (अफ्रीका), अरब अमीरात (एशिया), ओमान (एशिया), इजिप्ट (अफ्रीका), ईराक, ईरान, कुवैत, जोर्डन (एशिया), ट्यूनीसिया (अफ्रीका), पाकिस्तान, बहरीन, बांगलादेश, यमन-अरब रिपब्लिक, यमन पीपुल्स-डेमोक्रेटिक रिपलब्लिक (एशिया), लीबिया अफ्रीका, मालद्वीप, मलेशिया एशिया, मोरक्को अफ्रीका, सऊदी अरब (एशिया) और सोमाली लोकतांत्रिक गणतंत्र (अफ्रीका) की पंथ सापेक्ष परम्परा का उल्लेख प्रस्तुत अध्ययन में है ।

पंथ निरपेक्ष इस्लामी देशों में इण्डोनेशिया और तुर्की की संवैधानिक स्थिति का विश्लेषण भी इस अध्ययन में है ।

पंथ सापेक्ष अफगानिस्तान

अफगानिस्तान, भारत के प्राचीन इतिहास का अंग रहा है । अफगानिस्तान आर्य सभ्यता का केन्द्र भी रहा है । अफगानिस्तान के इतिहासवेत्ताओं ने ऋग्वेद की कुभा नदी को, काबुल नदी के रूप में पहिचान की है । ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं का सृजन स्थल इसी नदी की घाटी को माना गया है । ईसा के जन्म के दो सहस्त्र वर्ष पूर्व के अधिक समय से इस देश की पहिचान है । इसका पूर्व नाम आर्याना बताया गया है।

ईसवी ६३७ से ११८६ तक अरब में इस्लाम के प्रसार ने काबुल की हिन्दूशाही का पराभव कर इसकी प्राचीनता को तोड़ दिया । मध्यकालीन शताब्दियों में गजनवी साम्राज्यकाल के समय में अफगान चरम उत्कर्ष पर थे ।

ई० १७४७ में अफगानिस्तान में अहमदशाह दुर्रानी ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किया । दुर्रानी का अफगान की जनजातियों ने चयन किया था ।

अंग्रेजों के उत्कर्षकाल (ई० १८३८ से १८४२) में प्रथम अंग्रेज-अफगान युद्ध हुआ था । सोलह सहस्त्र सैनिकों के मारे जाने पर अंग्रेज सेना हट गयी थी । ई० १८४२ में अफगानिस्तान में अमीरकी सत्ता स्थापित हुई थी । द्वितीय अंगरेज-अफगान युद्ध (१८७८ से १८८०) से अफगान विदेश नीति अंग्रेजों के हाथ आयी । १९१९ में तृतीय अंग्रेज-अफगान युद्ध हुआ । पश्चात् १९२२ में अफगानिस्तान की पूर्ण स्वतंत्रता ब्रिटेन द्वारा मान्य की गयी ।

ई० १९२३ में नये अफगान संविधान का प्रवर्तन हुआ । इसके द्वारा उत्तराधिकारयुक्त राजाशाही स्थापित रही । यह संविधान तुर्की के प्रशासनिक विधान

पंथ निरपेक्षता के विश्व परिप्रेक्ष्य में निरूपण से यह स्पष्ट है कि धर्म या पंथ या मतवाद विश्व की प्राचीनतम संस्था है । विविध संविधानों की पंथ सापेक्षता में देश विशेष का विवेक या बाध्यता परिलक्षित है । यूरोप में चर्च के विरोध में राज्य शक्ति जब खड़ी हुई, तब सेकुलरवाद की यात्रा का शुभारम्भ हुआ । सेकुलरवाद में नितान्त लौकिक जीवन को महत्व देकर, चर्च की नैतिक शक्ति को भी नकारा गया । पंथ सापेक्ष यूरोपीय राज्यों में परम्पराओं के आधार तथा इंग्लैण्ड के संविधान और समाज का सतत विकास इतिहास का प्रेरक तथ्य है । इंग्लैण्ड की पथ सापेक्षता में उपासना स्वातंत्र्य का अधिकार भी प्रभावकारी है । ग्रीस राज्य ने धार्मिक चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से शिक्षण व्यवस्था को मान्य किया है । ग्रीस राज्य ने सकारात्मक तथा समाधानकारी पंथ सापेक्षता का अपने संविधान में प्रावधान किया है । पंथ सापेक्ष मोनको के संविधान में विशेषाधिकार का निषेध है, और पंथ या धर्म के स्वातंत्र्य की गारंटी है । पंथ सापेक्ष नार्वे में समस्त नागरिकों को अपने पांथिक विचार-आचार की अखंडित स्वतंत्रता है । नार्वे के संविधान में पांथिक तथा नैतिक अवमानना का निषेध है । रोमन केथोलिक वेटिकन सर्वभौम सत्ताधारी पंथतांत्रिक राज्य है । दक्षिण अमेरिका के राज्य कोस्टारिका को यूरोपीय उपनिवेशवादियों ने पंथ सापेक्ष के रूप में विकसित किया । किन्तु किसी उपासना पद्धति का निषेध नहीं है ।

5

पंथ सापेक्ष इस्लामी राज्य

पंथ सापेक्ष इस्लामी देश अफगानिस्तान (एशिया), अलजीरिया (अफ्रीका), अरब अमीरात (एशिया), ओमान (एशिया), इजिप्ट (अफ्रीका), ईराक, ईरान, कुवैत, जोर्डन (एशिया), ट्यूनीसिया (अफ्रीका), पाकिस्तान, बहरीन, बांगलादेश, यमन-अरब रिपब्लिक, यमन पीपुल्स-डेमोक्रेटिक रिपलब्लिक (एशिया), लीबिया अफ्रीका, मालद्वीप, मलेशिया एशिया, मोरक्को अफ्रीका, सऊदी अरब (एशिया) और सोमाली लोकतांत्रिक गणतंत्र (अफ्रीका) की पंथ सापेक्ष परम्परा का उल्लेख प्रस्तुत अध्ययन में है ।

पंथ निरपेक्ष इस्लामी देशों में इण्डोनेशिया और तुर्की की संवैधानिक स्थिति का विश्लेषण भी इस अध्ययन में है ।

पंथ सापेक्ष अफगानिस्तान

अफगानिस्तान, भारत के प्राचीन इतिहास का अंग रहा है । अफगानिस्तान आर्य सभ्यता का केन्द्र भी रहा है । अफग़ानिस्तान के इतिहासवेत्ताओं ने ऋग्वेद की कुभा नदी को, काबुल नदी के रूप में पहिचान की है । ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं का सृजन स्थल इसी नदी की घाटी को माना गया है । ईसा के जन्म के दो सहस्त्र वर्ष पूर्व के अधिक समय से इस देश की पहिचान है । इसका पूर्व नाम आर्याना बताया गया है।

ईसवी ६३७ से ११८६ तक अरब में इस्लाम के प्रसार ने काबुल की हिन्दूशाही का पराभव कर इसकी प्राचीनता को तोड़ दिया । मध्यकालीन शताब्दियों में गजनवी साम्राज्यकाल के समय में अफगान चरम उत्कर्ष पर थे ।

ई० १७४७ में अफगानिस्तान में अहमदशाह दुर्रानी ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किया । दुर्रानी का अफगान की जनजातियों ने चयन किया था ।

अंग्रेजों के उत्कर्षकाल (ई० १८३८ से १८४२) में प्रथम अंग्रेज-अफगान युद्ध हुआ था । सोलह सहस्त्र सैनिकों के मारे जाने पर अंग्रेज सेना हट गयी थी । ई० १८४२ में अफगानिस्तान में अमीरकी सत्ता स्थापित हुई थी । द्वितीय अंगरेज-अफगान युद्ध (१८७८ से १८८०) से अफगान विदेश नीति अंग्रेजों के हाथ आयी । १९१९ में तृतीय अंग्रेज-अफगान युद्ध हुआ । पश्चात् १९२२ में अफगानिस्तान की पूर्ण स्वतंत्रता ब्रिटेन द्वारा मान्य की गयी ।

ई० १९२३ में नये अफगान संविधान का प्रवर्तन हुआ । इसके द्वारा उत्तराधिकारयुक्त राजाशाही स्थापित रही । यह संविधान तुर्की के प्रशासनिक विधान

और १६०६ के ईरान के संविधान से प्रभावित थी । ई० १६२८ में अमानुल्ला ने चुनाव की प्रक्रिया से १५० सदस्यों की इंग्लैण्ड के प्रतिमान के अनुरूप कवीना संसद बनायी। इसका विरोध परम्परावादियों ने किया ।

१६२३ के संविधान को नादिरशाह ने १६२६ में समाप्त कर दिया । नादिरशाह ने पांथिक या धार्मिक भावनाओं को दृष्टिगत रखकर जनजाति (ट्राइबल) सरदारों को सन्तुष्ट किया था ।

१६३१ अक्टूबर में नये संविधान की घोषणा हुई । यह संविधान १६६४ तक लागू रहा ।

बादशाह के अधिकारों को मर्यादित नहीं किया गया । नादिरशाह के परिवार में सत्ता केन्द्रित की गयी थी । १६३३ में नादिरशाह का कत्ल हो गया । इनके बेटे जहीरशाह उत्तराधिकारी बने ।

अक्टूबर १६६४ में जहीरशाह ने नये संविधान की घोषणा की इसके द्वारा आंशिक चयन और आंशिक नामित सदस्यों की संसद बनी । राजा के हाथ में पूरे अधिकार रहे ।

सर्व शक्तिमान ईश्वर के नाम पर संविधान की घोषणा की गयी । इसकी उद्देशिका में अफगान इतिहास और संस्कृति की स्वीकृति राष्ट्रीय वास्तविकता पर की गयी । प्रगतिशील समाज और मानवीय सम्मान के संरक्षण को मान्यता दी गयी । विश्व में ऐतिहासिक परिवर्तन की चेतना से, उद्देशिका में समग्र मानवता की अंश रूप से ही स्वीकृति की अभिव्यक्ति है ।

संविधान के अनुच्छेद दो में इस्लाम को राज्य का पवित्र धर्म माना गया । यह इस्लाम हनीफी सम्प्रदाय के अनुरूप स्वीकृत हुआ । अनुच्छेद ८ में राज्य को केवल हनीफी सिद्धान्तों से नियंत्रित माना गया । इस अनुच्छेद ८ को अनुच्छेद १२० द्वारा असंशोधनीय माना गया । अफगानिस्तान का शासक मुसलमान होना अनिवार्य किया गया ।

अनुच्छेद ५ में ही गैर मुसलमान को परम्परा के अनुकूल स्वतंत्रता दी गयी। किन्तु तत्कालीन विधि विधानों के नाम पर स्वातंत्र्य को सीमित कर दिया गया ।

१६७३ अगस्त में अफगानिस्तान में राजनीतिक परिवर्तन हो गये । राजा जहीरशाह पलायन कर गये । राष्ट्रपति दाउद बने ।

१६७७ फरवरी में राष्ट्रपति दाउद ने नये संविधान की घोषणा की । इनका शासन समाप्त होकर सन् १६८० अप्रैल में डेमोक्रेटिक रिपब्लिक आफ अफगानिस्तान ने अफगान मुसलमानों और मेहनतकशों के नाम पर क्रान्तिकारी कौन्सिल घोषित की। इसके संविधान की उद्देशिका में नये समाज की स्थापना का आश्वासन दिया गया । नये समाज को शान्ति, स्वातंत्र्य, न्याय, बन्धुता, समानता, लोकतंत्र, प्रगति आदि के आधार पर निर्मित करने की घोषणा है ।

इस संविधान के अनुच्छेद १ में अफगानिस्तान के मेहनतकश मुसलमानों को प्रमुख मानकर आश्वस्त किया गया है । संविधान में यह प्रविष्टि सोवियत रूस के प्रभाव से की गयी थी ।

अनुच्छेद ५ में इस्लाम धर्म को सत्य और पवित्र मानकर सम्मानित किया गया है। अन्य धर्मों का स्वातंत्र्य भी वैधानिक सीमा के अन्तर्गत है। राष्ट्र विरोधी रूप में धर्म या पंथ वर्जित है। संविधान ने राष्ट्रवादी शक्तियों के सहायक रूप में धार्मिक या पांथिक मान्यताओं को स्वीकृति दी है।

अनुच्छेद २८ में धर्म के आधार पर भेदभाव का निषेध है। अनुच्छेद २६ में धार्मिक या पांथिक समानता का प्रावधान है। इस्लाम धर्म के अनुसार जीवन यापन का संरक्षण है।

अफगानिस्तान के इस संविधान में स्पष्ट है कि राष्ट्र विरोधी गतिविधियों से आक्रान्त पंथ या पांथिक आधार की वर्जना है। धर्म या पंथ के राष्ट्र विरोधी प्रतिमान की स्पष्ट अस्वीकृति है। अफगानिस्तान, रूस के पराभव के पश्चात कलह का केन्द्र इतिहास में बना है। इस्लामी शक्तियां राजनीतिक क्षेत्र में प्रबल हैं।

अलजीरिया इस्लाम सापेक्ष

अफ्रीका में अटलांटिक महासागर के तट पर अलजीरिया अरब विजेताओं की भूमि रही है, शक्तिशाली तुर्कों का शासन सन् १८३० तक रहा है। पश्चात् फ्रांस का आधिपत्य हो गया। फ्रांस का आधिपत्य सितम्बर १९६२ में समाप्त हो गया। औपनिवेशिक व्यवस्था के विरोध में इस्लाम की भूमिका महत्व की रही। ८ सितम्बर १९६२ में नये संविधान की घोषणा हुई। संविधान के अनुच्छेद ४ में इस्लाम को राज्य धर्म की मान्यता दी गयी। इसके साथ ही धार्मिक आस्थाओं और विश्वासों के स्वातंत्र्य का भी प्रावधान है।

अनुच्छेद १० में मानव के शोषण के विरूद्ध व्यवस्था दी गयी। मानव मात्र के स्वातंत्र्य और सम्मान तथा विश्व शान्ति से प्रतिबद्धता प्रकट की गयी।

अनुच्छेद १२ में सभी नागरिकों को समान अधिकार और कर्तव्य का प्रावधान तथा प्रेस, सूचना, संगठन, वाक् आदि का स्वातंत्र्य प्रदान किया गया।

पंथ सापेक्ष राज्य भी मानवीय अधिकारों का निषेध नहीं कर सका है। मानव मात्र का सम्मान और स्वातंत्र्य की प्रेरक और प्रभावी शक्ति पंथ सापेक्षता से पदाक्रान्त नहीं हो सकी है।

अरब अमीरात

आबूधाबी, दुबई, शरजाह, अजमान आदि सात अमीरों के राज्य का नाम अरब अमीरात है। इनकी जनसंख्या कुल दो लाख है। किन्तु खनिज तेल के कारण ये अकूत धन के स्वामी वर्तमान विश्व में हैं। मध्यकालीन शताब्दियों में अरब का यह क्षेत्र अभाव ग्रस्त रहा, और समुद्री डकैतियों से इसका इतिहास संलग्न रहा है।

ई० १६०० में यह पोर्तगीज अधिकार में आ गया। अठारवीं शती में ईरान ने इस पर अधिकार कर लिया। किन्तु १७८३ में ईरान का निष्कासन इस क्षेत्र से हो

और १६०६ के ईरान के संविधान से प्रभावित थी । ई० १६२८ में अमानुल्ला ने चुनाव की प्रक्रिया से १५० सदस्यों की इंग्लैण्ड के प्रतिमान के अनुरूप कवीना संसद बनायी। इसका विरोध परम्परावादियों ने किया ।

१६२३ के संविधान को नादिरशाह ने १६२६ में समाप्त कर दिया । नादिरशाह ने पांथिक या धार्मिक भावनाओं को दृष्टिगत रखकर जनजाति (ट्राइबल) सरदारों को सन्तुष्ट किया था ।

१६३१ अक्टूबर में नये संविधान की घोषणा हुई । यह संविधान १६६४ तक लागू रहा ।

बादशाह के अधिकारों को मर्यादित नहीं किया गया । नादिरशाह के परिवार में सत्ता केन्द्रित की गयी थी । १६३३ में नादिरशाह का कत्ल हो गया । इनके बेटे जहीरशाह उत्तराधिकारी बने ।

अक्टूबर १६६४ में जहीरशाह ने नये संविधान की घोषणा की इसके द्वारा आंशिक चयन और आंशिक नामित सदस्यों की संसद बनी । राजा के हाथ में पूरे अधिकार रहे ।

सर्व शक्तिमान ईश्वर के नाम पर संविधान की घोषणा की गयी । इसकी उद्देशिका में अफगान इतिहास और संस्कृति की स्वीकृति राष्ट्रीय वास्तविकता पर की गयी । प्रगतिशील समाज और मानवीय सम्मान के संरक्षण को मान्यता दी गयी । विश्व में ऐतिहासिक परिवर्तन की चेतना से, उद्देशिका में समग्र मानवता की अंश रूप से ही स्वीकृति की अभिव्यक्ति है ।

संविधान के अनुच्छेद दो में इस्लाम को राज्य का पवित्र धर्म माना गया । यह इस्लाम हनीफी सम्प्रदाय के अनुरूप स्वीकृत हुआ । अनुच्छेद ८ में राज्य को केवल हनीफी सिद्धान्तों से नियंत्रित माना गया । इस अनुच्छेद ८ को अनुच्छेद १२० द्वारा असंशोधनीय माना गया । अफगानिस्तान का शासक मुसलमान होना अनिवार्य किया गया ।

अनुच्छेद ५ में ही गैर मुसलमान को परम्परा के अनुकूल स्वतंत्रता दी गयी। किन्तु तत्कालीन विधि विधानों के नाम पर स्वातंत्र्य को सीमित कर दिया गया ।

१६७३ अगस्त में अफगानिस्तान में राजनीतिक परिवर्तन हो गये । राजा जहीरशाह पलायन कर गये । राष्ट्रपति दाउद बने ।

१६७७ फरवरी में राष्ट्रपति दाउद ने नये संविधान की घोषणा की । इनका शासन समाप्त होकर सन् १६८० अप्रैल में डेमोक्रेटिक रिपब्लिक आफ अफगानिस्तान ने अफगान मुसलमानों और मेहनतकशों के नाम पर क्रान्तिकारी कौन्सिल घोषित की। इसके संविधान की उद्देशिका में नये समाज की स्थापना का आश्वासन दिया गया । नये समाज को शान्ति, स्वातंत्र्य, न्याय, बन्धुता, समानता, लोकतंत्र, प्रगति आदि के आधार पर निर्मित करने की घोषणा है ।

इस संविधान के अनुच्छेद १ में अफगानिस्तान के मेहनतकश मुसलमानों को प्रमुख मानकर आश्वस्त किया गया है । संविधान में यह प्रविष्टि सोवियत रूस के प्रभाव से की गयी थी ।

अनुच्छेद ५ में इस्लाम धर्म को सत्य और पवित्र मानकर सम्मानित किया गया है । अन्य धर्मों का स्वातंत्र्य भी वैधानिक सीमा के अन्तर्गत है । राष्ट्र विरोधी रूप में धर्म या पंथ वर्जित है । संविधान ने राष्ट्रवादी शक्तियों के सहायक रूप में धार्मिक या पांथिक मान्यताओं को स्वीकृति दी है ।

अनुच्छेद २८ में धर्म के आधार पर भेदभाव का निषेध है । अनुच्छेद २९ में धार्मिक या पांथिक समानता का प्रावधान है । इस्लाम धर्म के अनुसार जीवन यापन का संरक्षण है ।

अफगानिस्तान के इस संविधान में स्पष्ट है कि राष्ट्र विरोधी गतिविधियों से आक्रान्त पंथ या पांथिक आधार की वर्जना है । धर्म या पंथ के राष्ट्र विरोधी प्रतिमान की स्पष्ट अस्वीकृति है । अफगानिस्तान, रूस के पराभव के पश्चात कलह का केन्द्र इतिहास में बना है । इस्लामी शक्तियां राजनीतिक क्षेत्र में प्रबल हैं ।

अलजीरिया इस्लाम सापेक्ष

अफ्रीका में अटलांटिक महासागर के तट पर अलजीरिया अरब विजेताओं की भूमि रही है, शक्तिशाली तुर्कों का शासन सन् १८३० तक रहा है । पश्चात् फ्रांस का आधिपत्य हो गया । फ्रांस का आधिपत्य सितम्बर १९६२ में समाप्त हो गया । औपनिवेशिक व्यवस्था के विरोध में इस्लाम की भूमिका महत्व की रही । ८ सितम्बर १९६२ में नये संविधान की घोषणा हुई । संविधान के अनुच्छेद ४ में इस्लाम को राज्य धर्म की मान्यता दी गयी । इसके साथ ही धार्मिक आस्थाओं और विश्वासों के स्वातंत्र्य का भी प्रावधान है ।

अनुच्छेद १० में मानव के शोषण के विरुद्ध व्यवस्था दी गयी । मानव मात्र के स्वातंत्र्य और सम्मान तथा विश्व शान्ति से प्रतिबद्धता प्रकट की गयी ।

अनुच्छेद १२ में सभी नागरिकों को समान अधिकार और कर्तव्य का प्रावधान तथा प्रेस, सूचना, संगठन, वाक् आदि का स्वातंत्र्य प्रदान किया गया ।

पंथ सापेक्ष राज्य भी मानवीय अधिकारों का निषेध नहीं कर सका है । मानव मात्र का सम्मान और स्वातंत्र्य की प्रेरक और प्रभावी शक्ति पंथ सापेक्षता से पदाक्रान्त नहीं हो सकी है ।

अरब अमीरात

आबूधावी, दुबई, शरजाह, अजमान आदि सात अमीरों के राज्य का नाम अरब अमीरात है । इनकी जनसंख्या कुल दो लाख है । किन्तु खनिज तेल के कारण ये अकूत धन के स्वामी वर्तमान विश्व में हैं । मध्यकालीन शताब्दियों में अरब का यह क्षेत्र अभाव ग्रस्त रहा, और समुद्री डकैतियों से इसका इतिहास संलग्न रहा है ।

ई० १६०० में यह पोर्तगीज अधिकार में आ गया । अठारवीं शती में ईरान ने इस पर अधिकार कर लिया । किन्तु १७८३ में ईरान का निष्कासन इस क्षेत्र से हो

गया । सन् १८२० में ईस्ट इंडिया कम्पनी से समझौता हुआ । पश्चात् सन् १८६२ में ब्रिटेन का संरक्षण प्राप्त हो गया ।

शेखों से ब्रिटेन की संधि मार्च १९७१ तक चलती रही । पश्चात् १९७१ में ही एक संविधान बना, और अरब अमीरात देश का इतिहास में अभ्युदय हुआ ।

संविधान के अनुच्छेद ६ में शेष अरब राष्ट्रों से धार्मिक, भाषाई तथा ऐतिहासिक सम्बन्धों की पुष्टि की गयी । अनुच्छेद ७में इस्लाम को राज्य का अधिकृत धर्म घोषित किया गया । राज्य के समस्त विधि विधानों का स्रोत इस्लाम पंथ माना गया । अनुच्छेद १२ में इस्लाम के प्रचार - प्रसार में सहयोग - सहकार का प्रावधान किया गया । अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में यूनों चार्टर को आदर्श माना गया ।

यह महत्वपूर्ण है कि इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्य ने भी धार्मिक विश्वासों के आधार पर भेद भाव न करने का दावा अनुच्छेद २५ में किया । सभी नागरिकों को कानून की दृष्टि से समानता दी गयी । अनुच्छेद २४ आर्थिक सम्बन्धों में, सामाजिक न्याय का पक्षधर है ।

पांथिक संविधान में सामाजिक न्याय, स्वतंत्र आस्था - विश्वास, और समानता का प्रावधान है । वर्तमान इतिहास के दबाव ने जागतिक स्तर पर पांथिक स्वतंत्रता, सामाजिक न्यायवत्ता और समानता की गुणवत्ता की प्रतिष्ठा अनिवार्य कर दी है । इसकी स्वीकृति जितने अंशों में है, उतनी ही आधुनिकता या वास्तविकता को राज्य शक्ति ने ग्रहण किया है ।

ओमान

ओमान उत्तर पूर्व अरब में खाड़ी पर स्थित देश है । हजरत मोहम्मत साहब के समय से ही इस देश में इस्लाम का प्रसार हो गया था ।

ई० १५०७ सन् में पोर्तगाली उपनिवेशवादियों के अधिकार में ओमान आ गया था ।

बीसवीं शती के उत्तरार्ध (सन् १९७१) में ओमान, यूनो का सदस्य बना । यहां वर्तमान में परम्परागत इस्लामी विधि विधान है । कोई लिखित संविधान नहीं है। कोई संसद नहीं है ।

इजिप्ट (मिश्र)

इजिप्ट विश्व के पुरातन देशों में है । ईसा के ३२०० वर्ष, पूर्व एक राजाशाही का आस्तित्व इजिप्ट में था । प्राचीन सभ्यता के अवशेष आज भी उपलब्ध हैं । किन्तु इस्लाम के अभ्युदय से अरबों ने प्राचीन सभ्यता को सेना और शस्त्रों के द्वारा नष्ट कर दिया । मध्यकालीन शताब्दियों (१५७१) में तुर्की साम्राज्य ने इजिप्ट पर अधिकार

कर लिया । पश्चात् १८८२ में ब्रिटेन ने इजिप्ट पर अधिकार कर लिया था । इजिप्ट के लिए ब्रिटेन ने संविधान का निर्माण कराया । १९२२ में ब्रिटेन द्वारा संरक्षण समाप्त कर दिया गया । १९२३ अप्रैल में प्रथम लिखित संविधान बना । फिर इतिहास मेंउत्थान पतनकी गाथाओं की रचना हुई । बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध (१९७१) में नये संविधान के द्वारा लोकतांत्रिक तथा समाजवादी गणतन्त्र की घोषणा हुई ।

अनुच्छेद २ में इस्लाम को राज्य का धर्म घोषित किया गया । इस अनुच्छेद में देश के ऐतिहासिक उत्तराधिकार की स्वीकृति दी गयी है । जिसमें धार्मिक शिक्षण और नैतिक तथा राष्ट्रवादी मूल्यों को महत्व दिया था ।

अनुच्छेद १९ में धार्मिक शिक्षण को सामान्य शिक्षण के साथ स्वीकार किया गया है ।

पंथ सापेक्ष संविधान की स्वीकृति के साथ अनुच्छेद ४० में धर्म या मतवाद के आधार पर किसी भेदभाव का निषेध भी है ।

ईराक

ईराक पुरातन सभ्यता का देश रहा है । सातवीं सती में अरबों द्वारा इसे विजित किया गया । इसकी पुरातन सभ्यता के रूप ढह गये । तेरहवीं सती के मध्य में मंगोलों का बगदाद पर अधिकार हो गया । सोलहवीं शती (१५३४) में ईरान, तुर्की साम्राज्य का अंश हो गया । ईराक का प्रमुख नगर बगदाद इस्लामी सभ्यता का केन्द्र बना रहा ।

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में प्रथम विश्व युद्ध ने तुर्की साम्राज्य को तोड़ दिया। १९३० में अंग्रेज और ईराक संधि के अनुसार ईराक स्वतंत्र हो गया ।

जुलाई १९७० में ईराक का एक अन्तरिम संविधान बना था । इसी के आधार पर राज्य और धर्म का विवेचन है । यह उल्लेखनीय है कि संविधान के प्रथम अनुच्छेद में समाजवादी व्यवस्था की घोषणा है । चतुर्थ अनुच्छेद में इस्लाम को राज्य धर्म घोषित किया गया है । अनुच्छेद २५ में धार्मिक स्वातंत्र्य, आस्था तथा धार्मिक समारोहों के स्वातंत्र्य की गारंटी है । ईरान ने १९९० में कुवैत पर आक्रमण तथा अधिकार कर अपनी सामरिक शक्ति का परिचय दिया । यूनो के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने कई इस्लामी देशों के सहयोग से ईराक को पराभूत कर कुवैत को स्वतंत्र किया । ईराक की पराजय ने उसकी प्रगति को बहुत पीछे फेक दिया ।

इस्लामिक पांथिक राज्य जब समाजवाद को स्वीकार करते हैं, तब सर्वाधिकारी राज्यवाद प्रमुख बन जाता है । जनशक्ति गौण बन जाती है । समाजवाद, जनवाद को पराभूत कर देता है । पंथ के नाम पर अपनी परम्परा का स्वातंत्र्य देकर राज्य शक्ति समर्थन प्राप्त कर लेती है ।

ईरान

ईरान प्राचीन देश है । इस्लाम के प्रसार ने इसकी प्राचीनता को परास्त कर दिया था । मध्यकालीन इतिहास में भी धार्मिक-सांस्कृतिक आदि दृष्टि से ईरान की भूमिका महत्वपूर्ण रही है । उन्नीसवीं शती के शुभारम्भ से एक सौ वर्षों (१८०० से १६०३) तक ईरान का रूस से संघर्ष चलता रहा । ईरान का कई बार पराभव हुआ। उन्नीसवीं शती के अन्त में रूस और ब्रिटेन का ईरान पर अधिकार के लिए संघर्ष चला। किन्तु ईरान में २५०० वर्ष प्राचीन राजाशाही बनी रही ।

आधुनिक इतिहास में ईरान की कट्टर धार्मिक शक्तियों ने राजाशाही को निष्क्रमण के लिए बाध्य किया । अयातुल्ला खुमैनी ने ईरान के १६०६ के संविधान को समाप्त कर, इस्लाम की पवित्र सरकार स्थापना का ध्येय लेकर विद्रोह का सफल संचालन किया । १६७५ मार्च में एक पार्टी व्यवस्था का सूत्रपात हुआ । १६७६ जनवरी में ईरान के शाह देश छोड़कर चले गये ।

संविधान की उद्देशिका में ईरान को इस्लामिक रिपब्लिक घोषित किया गया अनुच्छेद १ में इस्लामिक गणतंत्र की स्थापना के साथ-साथ, कुरान आधारित न्याय को मान्यता दी गयी । अनुच्छेद २ में एक ईश्वर की सर्वोपारिता पर समर्पण का प्रावधान किया गया । अनुच्छेद ७ में पवित्र कुरान की व्यवस्था के अनुसार प्रशासन संचालन के दायित्व को स्वीकृति दी गयी ।

ईरान के संविधान के अनुच्छेद १२ में ईरान के अधिकृत धर्म इस्लाम की घोषणा की गयी । इसमें इस्लाम के शिया सम्प्रदाय को मान्यता दी गयी । अन्य इस्लामी सम्प्रदायों को भी पूर्ण सम्मान की गारण्टी दी गयी । इस अनुच्छेद को अपरिवर्तनीय या असंशोधनीय कहा गया है ।

कुवैत

मध्यकालीन शताब्दियों में कुवैत ईराक के अधिकार में भी रहा है । साम्राज्यवादी यूरोपीय शक्तियों ने इसे संरक्षण दिया । कुवैत में संवैधानिक राजाशाही रही है । १६६२ में सर्वशक्तिमान ईश्वर या अल्लाह के नाम पर यहां पर संविधान बना। संविधान के अनुच्छेद २ में राज्य का धर्म इस्लाम माना गया । इस्लामी शरियत को सभी विधि-विधानों का स्रोत माना गया है । इस्लाम में उत्तराधिकार में प्राप्त मूल्यों और मान्यताओं को सुरक्षित रखने का आश्वासन अनुच्छेद १२ में है ।

अनुच्छेद २६ में मानवता की दृष्टि से सभी मनुष्यों को समान माना गया है। पंथ, भाषा आदि के भेदभाव का भी निषेध किया गया । इस पंथ सापेक्ष राज्यों द्वारा मानवीय मूल्यवत्ता की स्वीकृति अपनी सीमित परिधि में है । यह मानवीय मूल्यवत्ता, इस्लामी गुणवत्ता से भिन्न नहीं है । इस्लाम के किसी विरोध का कोई प्रश्न ही नहीं है। १६६० में कुवैत और ईराक का युद्ध, अरब इस्लामी राष्ट्र की साम्राज्यवादी लालसा

और आर्थिक विद्वेष की भावना के कारण हुआ । इसमें यूनो की ओर से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने सऊदी अरब आदि अरब राष्ट्रों की ओर से कुवैत की पूरी सहायता की । इस्लाम की जोड़ने की शक्ति इस युध्द में टूटी थी ।

जोर्डन

जोर्डन अरब देश का महत्वपूर्ण राज्य है । १६४६ मार्च में जोर्डन ने अंग्रेजों से आजादी प्राप्त की । १६४७ फरवरी में संविधान द्वारा राजाशाही पद्धति स्थापित हुई । संविधान से सीमित संसदीय पद्धति स्वीकृति की गयी ।

संविधान के अनुच्छेद २ में इस्लाम, राज्य का धर्म घोषित किया गया । राज्य की अधिकृत भाषा अरबी की मान्यता संविधान द्वारा की गयी । अनुच्छेद ७ में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण से आश्वस्त किया गया । अनुच्छेद १४ में उपासना पद्धतियों और धार्मिक समारोहों का स्वातंत्र्य दिया गया । लेकिन यह स्वातंत्र्य राज्य में प्रचालित रीति रिवाजों के अन्तर्गत किया गया । अनुच्छेद१५ में मतवाद के स्वातंत्र्य को गारंटी दी गयी है । पांथिक राज्यों में किसी प्रकार का भी स्वातंत्र्य मर्यादित या सीमित हो जाता है । राज्य-धर्म के अतिरिक्त धर्म का अन्य कोई रूप सहज ग्राह्य नहीं है ।

ट्यूनीसिया

अफ्रीका के भूमध्य सागरीय क्षेत्रों में अरबों द्वारा मध्यकालीन शताब्दियों में विजित ट्यूनीसिया में राजाशाही का ही इतिहास है । किन्तु जून १६५६ के संविधान द्वारा राजाशाही की समाप्ति हो गयी । एक नवीन गणतंत्र का अभ्युदय हो गया । संविधान में इस्लाम के प्रति सतत वफादारी की घोषणा की गयी । न्याय और स्वातंत्र्य के लिए संघर्षरत शक्तियों से सहकार पर आस्था प्रकट की गयी ।

संविधान के अनुच्छेद १ में इस्लाम राज्य का धर्म घोषित किया गया । अनुच्छेद ८ में लोकतांत्रिक जीवन में मान्य स्वातंत्र्य की गारंटी की गयी । विचार, अभिव्यक्ति, प्रेस तथा प्रकाशन आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । संविधान के अनुच्छेद ४० में केवल मुस्लिम धर्मावलम्बी को ही ट्यूनीसिया के राष्ट्रपति का अधिकार घोषित किया गया । इसके साथ ही पिता और पितामह का ट्यूनिसियानागरिक होना भी अनिवार्य किया गया । इसका अर्थ है कि, अनवरत कई पीढ़ियों से इस्लाम धर्मावलम्बी होना राष्ट्रपति पद के लिए अनिवार्य है ।

पाकिस्तान

पाकिस्तान और भारत समान भूगोल, इतिहास, सभ्यता तथा परम्परा और परिस्थितियों वाले राज्य हैं । सन् १६४७ में भारत को तोड़कर पंथ या धर्म के आधार

पर एक नये राज्य पाकिस्तन की रचना हुई । यह पंथ सापेक्ष राज्य इतिहास में आन्तरिक अस्थिरता के दौर से निकलता रहा । सन् १९७३ अप्रैल १२ को इस्लामिक रिपब्लिक पाकिस्तान के नाम से नये संविधान का प्रवर्तन हुआ ।

पाकिस्तान के संविधान की उद्देशिका में इस्लाम के अनुकूल लोकतंत्र, स्वातंत्र्य, समता, सहिष्णुता, सामाजिक न्याय आदि की घोषणा है । कुरान के अनुकूल जीवन की रचना का संकल्प है । अल्पसंख्यकों को धार्मिक स्वातंत्र्य से भी आश्वस्त किया गया है ।

संविधान के अनुच्छेद २ में इस्लाम को राज्य के धर्म के रूप में मान्यता है। अनुच्छेद ९ में मनुष्य के गौरव के रक्षण की गारंटी है । अनुच्छेद २० में प्रत्येक को अपने पंथ या धर्म के पालन के स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

अनुच्छेद २१/२२ में स्वपंथ या स्वधर्म की छूट है । अनुच्छेद ३१ में पाकिस्तान के मुसलमानों को व्यक्तिगत और समुदायगत जीवन को इस्लाम के उसूलों या कुरान के अनुकूल बनाने का प्रावधान है । इस्लामिक नैतिक मानदंडों के अनुकूल जीवन की रचना संवैधानिक मान्यता है ।

अनुच्छेद ३६ में अल्पसंख्यकों के वैधानिक अधिकारों के सुरक्षित करने का भी प्रावधान है ।

पंथ निरपेक्ष राष्ट्र किस सीमा तक सहिष्णु हो सकते हैं ? यह विवाद का विषय है । किन्तु जागतिक परिस्थितियों में मानवीय मूल्यवत्ता के समावेश से संविधान की औपचारिकता का निर्वाह अवश्य किया गया है ।

बहरीन

बहरीन सऊदी अरब के निकट फारस की खाड़ी में है । बहरीन का अर्थ दो समुद्र है । यह अरब में एक मात्र द्वीप राज्य है । इस्लाम के अभ्युदय से बहरीन आक्रान्त हुआ । १७८२ के पूर्व बहरीन का पृथक अस्तित्व सैकड़ों वर्षों तक रहा है । साम्राज्यवादी पुर्तगीज तथा ईरानी दोनों ने बहरीन को पदाक्रान्त किया । किन्तु १८२० में ब्रिटेन से बहरीन की सन्धि हो गयी । १९वीं शती में तुर्की ने बहरीन पर बारम्बार अपने आधिपत्य का दावा किया ।

१९०२ से ब्रिटेन का राजनीतिक एजेन्ट बहरीन में रहा । १९६८ से १९७१ तक ब्रिटेन ने अपनी सेनायें हटा ली । वैसे राष्ट्र संघ द्वारा १९७० में ही सर्वभौम सत्ता के रूप में मान्यता बहरीन को मिल गयी थी । १९७१ में बहरीन की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा हो गयी । १९७३ मई २० को बहरीन का स्वतंत्र संविधान बना ।

संविधान की उद्देशिका में सर्वशक्तिमान ईश्वर के नाम पर स्वतंत्रता समानता, बंधुत्व, न्याय, जागतिक शान्ति आदि का आह्वान है । संविधान के अनुच्छेद-१ में लोकतंत्र की घोषणा है । अनुच्छेद दो में इस्लाम को राज्य के धर्म के

रूप में मान्यता दी गयी है। इस्लाम, राज्य के सभी विधि विधानों का मुख्य स्रोत माना गया।

बांगलादेश

भारत से १६४७ में पृथक होकर पाकिस्तान का एक भाग पूर्वी बंगाल बना। पूर्वी बंगाल ने अपने स्वातंत्र्य के आन्दोलन में एक ऐतिहासिक संघर्ष किया। सन् १६७२ नवम्बर में पूर्ण स्वतंत्र बांगलादेश का नया संविधान निर्मित हुआ।

इस १६७२ के संविधान की उद्देशिका में उत्कृष्ट आदर्शों को मान्यता दी गयी। राष्ट्रवाद, समाजवाद तथा पंथ निरपेक्षवाद की घोषणा हुई। सभी के लिए राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक न्याय से प्रतिबद्धता तथा मानवता की प्रगति से सम्बद्धता स्वीकृत हुई।

संविधान के अनुच्छेद १० में समाजवादी अर्थ व्यवस्था का प्रावधान किया गया।

संविधान के अनुच्छेद १२ में पंथ निरपेक्षता की दिशा में सम्प्रदायवाद के सभी रूपों के समापन, किसी भी धर्म या पंथ के राजनीतिक स्तर पर पक्षपात, राजनीतिक उद्देश्यों के लिए पंथ या धर्म का दुरुपयोग, और पंथ या धर्म विशेष के कारण भेदभाव की प्रताड़ना का निषेध है।

अनुच्छेद २८ के अनुसार पंथ या धर्म के आधार पर कोई भेदभाव, अयोग्यता, दायित्व, प्रतिबन्ध या शर्त नहीं होगी।

अनुच्छेद ४१ के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म के पालन या प्रसार का अधिकार प्राप्त है। धार्मिक समुदाय, धार्मिक संस्था आदि को स्थापित, स्थिर तथा उनके स्वतंत्र प्रबंधन का कार्य कर सकते हैं। किसी दूसरे धर्म से सम्बन्धित समारोह में भाग लेने से नागरिक मुक्त रह सकता है।

मुस्लिम बाहुल्य देश अपवाद रूप में पंथ निरपेक्षता का पोषण कर पाते हैं। बांगला देश भी राजनीतिक परिवर्तन में इस्लाम सापेक्ष पांथिक राज्य वर्तमान में बन गया।

यमन अरब रिपब्लिक

यमन अरब खाड़ी का एक देश है, जिस पर ई० ६३१ में इस्लाम ने विजय प्राप्त की थी। इसके पश्चात् तुर्क साम्राज्य का अंग (१५६८) हो गया। विद्रोह और स्वातंत्र्य संघर्ष पलता रहा। हार-जीत होती रही। ई० १८४६ में पुनः तुर्की का अधिकार हो गया। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त तुर्की की हारने इसका साम्राज्य ध्वस्त कर दिया।

पर एक नये राज्य पाकिस्तन की रचना हुई । यह पंथ सापेक्ष राज्य इतिहास में आन्तरिक अस्थिरता के दौर से निकलता रहा । सन् १६७३ अप्रैल १२ को इस्लामिक रिपब्लिक पाकिस्तान के नाम से नये संविधान का प्रवर्तन हुआ ।

पाकिस्तान के संविधान की उद्देशिका में इस्लाम के अनुकूल लोकतंत्र, स्वातंत्र्य, समता, सहिष्णुता, सामाजिक न्याय आदि की घोषणा है । कुरान के अनुकूल जीवन की रचना का संकल्प है । अल्पसंख्यकों को धार्मिक स्वातंत्र्य से भी आश्वस्त किया गया है ।

संविधान के अनुच्छेद २ में इस्लाम को राज्य के धर्म के रूप में मान्यता है। अनुच्छेद १ में मनुष्य के गौरव के रक्षण की गारंटी है । अनुच्छेद २० में प्रत्येक को अपने पंथ या धर्म के पालन के स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

अनुच्छेद २१/२२ में स्वपंथ या स्वधर्म की छूट है । अनुच्छेद ३१ में पाकिस्तान के मुसलमानों को व्यक्तिगत और समुदायगत जीवन को इस्लाम के उसूलों या कुरान के अनुकूल बनाने का प्रावधान है । इस्लामिक नैतिक मानदंडों के अनुकूल जीवन की रचना संवैधानिक मान्यता है ।

अनुच्छेद ३६ में अल्पसंख्यकों के वैधानिक अधिकारों के सुरक्षित करने का भी प्रावधान है ।

पंथ निरपेक्ष राष्ट्र किस सीमा तक सहिष्णु हो सकते हैं ? यह विवाद का विषय है । किन्तु जागतिक परिस्थितियों में मानवीय मूल्यवत्ता के समावेश से संविधान की औपचारिकता का निर्वाह अवश्य किया गया है ।

बहरीन

बहरीन सऊदी अरब के निकट फारस की खाड़ी में है । बहरीन का अर्थ दो समुद्र है । यह अरब में एक मात्र द्वीप राज्य है । इस्लाम के अभ्युदय से बहरीन आक्रान्त हुआ । १७८२ के पूर्व बहरीन का पृथक अस्तित्व सैकड़ों वर्षों तक रहा है । साम्राज्यवादी पुर्तगीज तथा ईरानी दोनों ने बहरीन को पदाक्रान्त किया । किन्तु १८२० में ब्रिटेन से बहरीन की सन्धि हो गयी । १६वीं शती में तुर्की ने बहरीन पर बारम्बार अपने आधिपत्य का दावा किया ।

१६०२ से ब्रिटेन का राजनीतिक एजेन्ट बहरीन में रहा । १६६८ से १६७१ तक ब्रिटेन ने अपनी सेनायें हटा ली । वैसे राष्ट्र संघ द्वारा १६७० में ही सर्वभौम सत्ता के रूप में मान्यता बहरीन को मिल गयी थी । १६७१ में बहरीन की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा हो गयी । १६७३ मई २० को बहरीन का स्वतंत्र संविधान बना ।

संविधान की उद्देशिका में सर्वशक्तिमान ईश्वर के नाम पर स्वतंत्रता समानता, बंधुत्व, न्याय, जागतिक शान्ति आदि का आह्वान है । संविधान के अनुच्छेद-१ में लोकतंत्र की घोषणा है । अनुच्छेद दो में इस्लाम को राज्य के धर्म के

रूप में मान्यता दी गयी है । इस्लाम, राज्य के सभी विधि विधानों का मुख्य स्रोत माना गया।

बांगलादेश

भारत से १९४७ में पृथक होकर पाकिस्तान का एक भाग पूर्वी बंगाल बना। पूर्वी बंगाल ने अपने स्वातंत्र्य के आन्दोलन में एक ऐतिहासिक संघर्ष किया । सन् १९७२ नवम्बर में पूर्ण स्वतंत्र बांगलादेश का नया संविधान निर्मित हुआ ।

इस १९७२ के संविधान की उद्देशिका में उत्कृष्ट आदर्शों को मान्यता दी गयी । राष्ट्रवाद, समाजवाद तथा पंथ निरपेक्षवाद की घोषणा हुई । सभी के लिए राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक न्याय से प्रतिबद्धता तथा मानवता की प्रगति से सम्बद्धता स्वीकृत हुई ।

संविधान के अनुच्छेद १० में समाजवादी अर्थ व्यवस्था का प्रावधान किया गया।

संविधान के अनुच्छेद १२ में पंथ निरपेक्षता की दिशा में सम्प्रदायवाद के सभी रूपों के समापन, किसी भी धर्म या पंथ के राजनीतिक स्तर पर पक्षपात, राजनीतिक उद्देश्यों के लिए पंथ या धर्म का दुरुपयोग, और पंथ या धर्म विशेष के कारण भेदभाव की प्रताड़ना का निषेध है ।

अनुच्छेद २८ के अनुसार पंथ या धर्म के आधार पर कोई भेदभाव, अयोग्यता, दायित्व, प्रतिबन्ध या शर्त नहीं होगी ।

अनुच्छेद ४१ के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म के पालन या प्रसार का अधिकार प्राप्त है । धार्मिक समुदाय, धार्मिक संस्था आदि को स्थापित, स्थिर तथा उनके स्वतंत्र प्रबंधन का कार्य कर सकते हैं । किसी दूसरे धर्म से सम्बन्धित समारोह में भाग लेने से नागरिक मुक्त रह सकता है ।

मुस्लिम बाहुल्य देश अपवाद रूप में पंथ निरपेक्षता का पोषण कर पाते हैं। बांगला देश भी राजनीतिक परिवर्तन में इस्लाम सापेक्ष पांथिक राज्य वर्तमान में बन गया।

यमन अरब रिपब्लिक

यमन अरब खाड़ी का एक देश है, जिस पर ई० ६३१ में इस्लाम ने विजय प्राप्त की थी । इसके पश्चात् तुर्क साम्राज्य का अंग (१५६८) हो गया । विद्रोह और स्वातंत्र्य संघर्ष पलता रहा । हार-जीत होती रही । ई० १८४९ में पुनः तुर्की का अधिकार हो गया । प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त तुर्की की हारने इसका साम्राज्य ध्वस्त कर दिया ।

पर एक नये राज्य पाकिस्तन की रचना हुई । यह पंथ सापेक्ष राज्य इतिहास में आन्तरिक अस्थिरता के दौर से निकलता रहा । सन् १९७३ अप्रैल १२ को इस्लामिक रिपब्लिक पाकिस्तान के नाम से नये संविधान का प्रवर्तन हुआ ।

पाकिस्तान के संविधान की उद्देशिका में इस्लाम के अनुकूल लोकतंत्र, स्वातंत्र्य, समता, सहिष्णुता, सामाजिक न्याय आदि की घोषणा है । कुरान के अनुकूल जीवन की रचना का संकल्प है । अल्पसंख्यकों को धार्मिक स्वातंत्र्य से भी आश्वस्त किया गया है ।

संविधान के अनुच्छेद २ में इस्लाम को राज्य के धर्म के रूप में मान्यता है। अनुच्छेद ९ में मनुष्य के गौरव के रक्षण की गारंटी है । अनुच्छेद २० में प्रत्येक को अपने पंथ या धर्म के पालन के स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

अनुच्छेद २१/२२ में स्वपंथ या स्वधर्म की छूट है । अनुच्छेद ३१ में पाकिस्तान के मुसलमानों को व्यक्तिगत और समुदायगत जीवन को इस्लाम के उसूलों या कुरान के अनुकूल बनाने का प्रावधान है । इस्लामिक नैतिक मानदंडों के अनुकूल जीवन की रचना संवैधानिक मान्यता है ।

अनुच्छेद ३६ में अल्पसंख्यकों के वैधानिक अधिकारों के सुरक्षित करने का भी प्रावधान है ।

पंथ निरपेक्ष राष्ट्र किस सीमा तक सहिष्णु हो सकते हैं ? यह विवाद का विषय है । किन्तु जागतिक परिस्थितियों में मानवीय मूल्यवत्ता के समावेश से संविधान की औपचारिकता का निर्वाह अवश्य किया गया है ।

बहरीन

बहरीन सऊदी अरब के निकट फारस की खाड़ी में है । बहरीन का अर्थ दो समुद्र है । यह अरब में एक मात्र द्वीप राज्य है । इस्लाम के अभ्युदय से बहरीन आक्रान्त हुआ । १७८२ के पूर्व बहरीन का पृथक अस्तित्व सैकड़ों वर्षों तक रहा है । साम्राज्यवादी पुर्तगीज तथा ईरानी दोनों ने बहरीन को पदाक्रान्त किया । किन्तु १८२० में ब्रिटेन से बहरीन की सन्धि हो गयी । १९वीं शती में तुर्की ने बहरीन पर बारम्बार अपने आधिपत्य का दावा किया ।

१९०२ से ब्रिटेन का राजनीतिक एजेन्ट बहरीन में रहा । १९६८ से १९७१ तक ब्रिटेन ने अपनी सेनायें हटा ली । वैसे राष्ट्र संघ द्वारा १९७० में ही सर्वभौम सत्ता के रूप में मान्यता बहरीन को मिल गयी थी । १९७१ में बहरीन की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा हो गयी । १९७३ मई २० को बहरीन का स्वतंत्र संविधान बना ।

संविधान की उद्देशिका में सर्वशक्तिमान ईश्वर के नाम पर स्वतंत्रता समानता, बंधुत्व, न्याय, जागतिक शान्ति आदि का आह्वान है । संविधान के अनुच्छेद-१ में लोकतंत्र की घोषणा है । अनुच्छेद दो में इस्लाम को राज्य के धर्म के

रूप में मान्यता दी गयी है । इस्लाम, राज्य के सभी विधि विधानों का मुख्य स्रोत माना गया।

बांगलादेश

भारत से १९४७ में पृथक होकर पाकिस्तान का एक भाग पूर्वी बंगाल बना। पूर्वी बंगाल ने अपने स्वातंत्र्य के आन्दोलन में एक ऐतिहासिक संघर्ष किया । सन् १९७२ नवम्बर में पूर्ण स्वतंत्र बांगलादेश का नया संविधान निर्मित हुआ ।

इस १९७२ के संविधान की उद्देशिका में उत्कृष्ट आदर्शों को मान्यता दी गयी । राष्ट्रवाद, समाजवाद तथा पंथ निरपेक्षवाद की घोषणा हुई । सभी के लिए राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक न्याय से प्रतिबद्धता तथा मानवता की प्रगति से सम्बद्धता स्वीकृत हुई ।

संविधान के अनुच्छेद १० में समाजवादी अर्थ व्यवस्था का प्रावधान किया गया।

संविधान के अनुच्छेद १२ में पंथ निरपेक्षता की दिशा में सम्प्रदायवाद के सभी रूपों के समापन, किसी भी धर्म या पंथ के राजनीतिक स्तर पर पक्षपात, राजनीतिक उद्देश्यों के लिए पंथ या धर्म का दुरुपयोग, और पंथ या धर्म विशेष के कारण भेदभाव की प्रताड़ना का निषेध है ।

अनुच्छेद २८ के अनुसार पंथ या धर्म के आधार पर कोई भेदभाव, अयोग्यता, दायित्व, प्रतिबन्ध या शर्त नहीं होगी ।

अनुच्छेद ४१ के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म के पालन या प्रसार का अधिकार प्राप्त है । धार्मिक समुदाय, धार्मिक संस्था आदि को स्थापित, स्थिर तथा उनके स्वतंत्र प्रबंधन का कार्य कर सकते हैं । किसी दूसरे धर्म से सम्बन्धित समारोह में भाग लेने से नागरिक मुक्त रह सकता है ।

मुस्लिम बाहुल्य देश अपवाद रूप में पंथ निरपेक्षता का पोषण कर पाते हैं। बांगला देश भी राजनीतिक परिवर्तन में इस्लाम सापेक्ष पांथिक राज्य वर्तमान में बन गया।

यमन अरब रिपब्लिक

यमन अरब खाड़ी का एक देश है, जिस पर ई० ६३१ में इस्लाम ने विजय प्राप्त की थी । इसके पश्चात् तुर्क साम्राज्य का अंग (१५६८) हो गया । विद्रोह और स्वातंत्र्य संघर्ष पलता रहा । हार-जीत होती रही । ई० १८४६ में पुनः तुर्की का अधिकार हो गया । प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त तुर्की की हारने इसका साम्राज्य ध्वस्त कर दिया ।

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त ई० १६४५ में यमन, अरब लीग और १६४७ में यूनो का सदस्य बना । कुछ वर्षो (१६५८ से १६६१) तक यमन, मिश्र और सीरिया का फैडरेशन 'यूनाइटेड अरब स्टेट' के नाम से बना ।

दिसम्बर, १६७० में यमन का संविधान प्रवर्तित हुआ । संविधान का शुभारम्भ कुरान की आयतों से है । संविधान की उद्देशिका में अरब और इस्लाम की स्पष्ट घोषणा है । कुरान के लिए प्रतिबद्धता का प्रकाशन भी है । साथ ही इस्लाम द्वारा प्रगतिशील, जीवन में बाधा न मानने का दावा है ।

संविधान के अनुच्छेद १ के अनुसार यमन अरब इस्लामिक राज्य है । अनुच्छेद २ में इस्लाम को राज्य का धर्म घोषित किया गया । अनुच्छेद ३ में इस्लाम की विधियों को समस्त विधानों का स्रोत माना गया है । अनुच्छेद ८ के अन्तर्गत पांथिक या धार्मिक स्वातंत्र्य इस्लामी विधि विधानों में सीमित किया गया है । उपासना स्थल के सम्मान का प्रावधान अनुच्छेद २८ में हैं । अनुच्छेद १४१ में पंथ या धर्म की रक्षा को पवित्र कर्तव्य घोषित किया गया है ।

इस्लामी पंथ सापेक्षता में मानवता के सन्दर्भ में धार्मिक या पांथिक स्वातंत्र्य का निषेध ही अधिक है । किन्तु मानवतावादी आधार की अस्वीकृति नहीं है ।

यमन पीपुल्स डेमोक्रेटिक रिपब्लिक

इस यमन के केन्द्र अदन में ईसा की चतुर्थ शताब्दी (ई० ३५६) में ईसाई चर्च की स्थापना हुई थी । सन् ५७५ तक ईरान ने दक्षिण अरब पर अपना अधिकार किया था। सन् ६२५ में इस्लाम का प्रसार दक्षिण अरब में हुआ । फिर इतिहास में तुर्क साम्राज्य का अभ्युदय हो गया । ई० १५४७ में तुर्कों का अदन पर आधिपत्य हो गया।

उन्नीसवीं शती के शुभारम्भ (१८०२) में अदन के सुल्तान से ब्रिटेन की मैत्री हो गयी । ई० १८३६ में ब्रिटेन ने अदन पर अधिकार कर लिया । १६३२ में भारत पर अंग्रेज गर्वनर जनरल के हाथों अदन का प्रशासन आ गया ।

ई० १६६३ में ब्रिटेन के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह यमन में हुआ । 'पीपुल्स डेमोक्रेटिक रिपब्लिक' के विशेषण से स्वतंत्र देश के संविधान का प्रवर्तन नवम्बर १६७० में हुआ ।

संविधान के द्वितीय अनुच्छेद में यमन अरब राष्ट्र का अंग घोषित किया गया। यह महत्वपूर्ण है कि यमन ने अपनी वैचारिक आस्था वैज्ञानिक समाजवाद या साम्यवाद पर अनुच्छेद ७ में स्पष्ट की । इस सन्दर्भ में अनुच्छेद ८ में शोषण की समाप्ति का दावा किया गया । अनुच्छेद १४ में सामाजिक न्याय के आधार पर राज्य को स्थापित करने का संकल्प लिया गया । अनुच्छेद ३१ में अरब और इस्लाम से उत्तराधिकार में प्राप्त मानवीय सभ्यता को प्रोत्साहन दिया गया । अनुच्छेद ३४ में पंथ या धर्म, भाषा आदि कारण किसी भेदभाव का निषेध किया गया । सभी को कानून की दृष्टि में समानता

प्रदान की गयी। अनुच्छेद ४६ में स्पष्ट रूप से इस्लाम को राज्य का धर्म घोषित किया गया। यह महत्वपूर्ण है कि धर्म के स्वातंत्र्य या दूसरे मतवादों के स्वातंत्र्य की भी घोषणा की गयी। अनुच्छेद ६६ में दायित्व ग्रहण करने पर (पीपुल्स सुप्रीम काउन्सिल मेम्बर) सर्वशक्तिमान ईश्वर के प्रति निष्ठा प्रकट करने की अनिवार्य व्यवस्था है।

इस संविधान ने यह झुठला दिया कि साम्यवाद की व्यवस्था में धर्म या पंथ का प्रावधान नहीं हो सकता। इस संविधान ने पांथिक या धार्मिक स्वातंत्र्य की घोषणा कर राज्य के धर्म, इस्लाम होने का दावा किया। राज्य पंथ सापेक्ष या निरपेक्ष होकर भी अन्य मतवादों का स्वातंत्र्य प्रदान कर सकता है। यमन के संविधान ने साम्यवाद के ग्रहण से नयेपन की ताजगी का स्वागत किया। यमन ने इस्लाम की व्यवस्था की स्वीकृति इतिहास की परम्परा और परिस्थितियों के दबाव में प्रदान की। संविधान, इस्लाम की गहरी आस्तिकता से और परम्परागत सभ्यता से पूर्णतया प्रेरित तथा प्रभावित है।

लीबिया

लीबिया भूमध्य सागरीय अफ्रीकी राष्ट्र है। इस्लाम के उदय के उपरान्त यह अरबों के अधिकार में आ गया। समुद्री तट से कुछ किलोमीटर के पश्चात लीबिया बृहत रेगिस्तान का भाग है। दूसरे विश्वयुद्ध में इसमें उभय विरोधी पक्षों ने इसे पदाक्रान्त किया।

लीबिया का आधुनिक संस्करण दिसम्बर १९६९ से प्रारम्भ होता है। लीबिया ने समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार किया। लीबिया के संवैधानिक नाम से समाजवादी शब्द का विशेषण संलग्न किया गया।

संविधान के अनुच्छेद २ में पवित्र कुरान को लीबिया का संविधान घोषित किया गया है। लीबिया के संविधान में कुल १० अनुच्छेद हैं। लीबिया ने इस्लामी राज्य और समाजवाद के सामंजस्य करने का प्रयास किया है। इस्लामी राज्य द्वारा देश की परम्परा और समाजवाद द्वारा प्रगतिशीलता के सामंजस्य की मानसिकता इस संविधानसे प्रकट है।

मालदीव गणतन्त्र

हिन्द महासागर में शान्त लघुद्वीप समूह मालदीप ई० ११५७ में अरब नाविकों द्वारा अधिकृत किया गया। इसके साथ ही इस्लाम का प्रसार हुआ और सुल्तानी की स्थापना हुई।

ई० १५०५ में पोर्तगीज व्यापारियों का सम्पर्क मालदीव से हुआ। ई० १५१८ में सुलतान द्वारा पोर्तगीज से प्रथम शान्ति सन्धि हुई। इसके आधार पर पोर्तगीज ने माले में किला बनाने की अनुमति प्राप्त की।

ई० १५५० में सुलतान ने ईसाई धर्म स्वीकार किया । १५५६ में मालदीव पर पोर्तगीज का शासन स्थापित हो गया । मालदीप ने गोरिल्ला युद्ध (१५६५ से १५७३) द्वारा १५७३ में पोर्तगीज का पलायन करा दिया । पुनः १६५६ में अन्तिम सुलतान ने पोर्तगीज को अपने अधिकार सौंप दिये थे ।

१८५७ में मालदीव ब्रिटेन का संरक्षित राज्य बना । इसे स्वशासन प्राप्त था। १६३१ में मालदीप का प्रथम संविधान बना और चुनाव से सुलतान पुनः स्थापित हुए। १६३७ में नया संविधान बना, जिसे १६४२-१६४४ में संशोधित किया गया । पश्चात् १६६८ नवम्बर में पुनः नया संविधान बना ।

यह संविधान अल्लाह के नाम पर बना । संविधान के दूसरे अनुच्छेद में इस्लाम को राज्य धर्म घोषित किया गया । अनुच्छेद १४ में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, चिन्तन स्वातंत्र्य आदि का प्रावधान किया गया । किन्तु यह व्यवस्था की गयी जिससे इस्लाम धर्म का कोई उल्लंघन न हो । अनुच्छेद १५ में प्रत्येक नागरिक को अरबी भाषा का ज्ञान तथा कुरान शरीफ का पढ़ना और इस्लाम का पालन अनिवार्य किया गया । अनुच्छेद १६ तथा १७ में इस्लामी विधान के अनुसार शिक्षण, संगठन आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान किया गया । अनुच्छेद २६ के अनुसार मालदीव का राष्ट्रपति इस्लाम पंथ तथा सुन्नी सम्प्रदाय का अनिवार्य रूप से मतावलम्बी रहेगा । अनुच्छेद २७ के अनुसार इस्लाम के सम्मान की प्रतिज्ञा राष्ट्रपति को लेनी है ।

अनुच्छेद ३४ के अनुसार राष्ट्रपति को इस्लाम के प्रसार का उच्चतम अधिकार प्रदान किया गया । अनुच्छेद ३८ के अनुसार राष्ट्रपति इस्लाम धर्म का विरोध नहीं कर सकता । अनुच्छेद ५३ में यह स्पष्ट प्रावधान है कि, मालदीव का प्रधान मंत्री इस्लाम धर्म के सुन्नी सम्प्रदाय का अनुयायी होगा ।

मलेशिया

मलेशिया या मलक्का हिन्द महासागर के नौ मलय राज्यों का फेडरेशन है । प्राचीन भारत से इसके सांस्कृतिक सम्बन्ध बहुत गहरे रहे हैं । मध्यकालीन शताब्दियों में यह इस्लाम द्वारा विजित हो गया । पश्चात् यूरोप की उपनिवेशवादी शक्तियों से आक्रान्त हुआ ।

ई० १५११ में मलक्का या मलय जातियों की बस्ती को पुर्तगालियों ने अधिकृत किया । ई० १८४७ में यह ब्रिटेन के आधिपत्य में आ गया । ई० १८७४ में मलय राज्यों ने ब्रिटेन से संधि कर संरक्षण प्राप्त किया । १६०६ में कुछ मलय राज्यों ने सहमति द्वारा फेडरल कौंसिल बनायी । द्वितीय विश्वयुद्ध उपनिवेशवादियों का अन्तिम संघर्ष था । इस संघर्ष से क्षेत्र में भी आत्मनिर्णय की सुगंधि प्रसारित हुई और 'मर्देका' (आजादी) के नारों से वातावरण आपूरित हो गया ।

ई० १६४८ में मलय फेडरेशन बना । इस समझौते में मलय की परिभाषा की गयी । मलय भाषाभाषी; इस्लाम मतावलम्बी और मलय के रीति-रिवाज मानता

हो, वह मलय है । इस फेडरेशन से पृथक होकर १६५८ में सिंगापुर स्वशासी स्वतंत्र राज्य बना । विदेश, सुरक्षा तथा आन्तरिक सुरक्षा छोड़कर १६६३ जुलाई में फेडरेशन आफ मलेशिया तथा ब्रिटेन, उत्तरी बोरनियो और सिंगापुर से समझौता हुआ । इस समझौते से ३१ अगस्त, १६६३ को सिंगापुर की स्वतंत्रता की घोषणा हुई ।

मलेशिया का संविधान १६७१ में बना । पश्चात् १६७३, १६७६, १६७६ में महत्वपूर्ण संशोधन हुए । १६७६ में संविधान द्वारा राज्य का अंग्रेजी में नाम मलेशिया, वैसे नाम मलय रहा ।

मलेशिया के संविधान के अनुच्छेद ३-में इस्लाम को राज्य का धर्म घोषित किया गया । किन्तु अन्य धर्मों या पंथों को शान्ति और सामंजस्य से कार्य करने का स्वातंत्र्य भी दिया गया है ।

इस्लाम धर्म के प्रधान या प्रमुख के समस्त अधिकार या विशेषाधिकार यथावत संविधान द्वारा स्थापित किये गये । इस्लाम के वर्चस्व बनाये रखने का संविधान में स्पष्ट प्रावधान है ।

अनुच्छेद ८ में नागरिक समानता का प्रावधान है, जिसके द्वारा उपासना पद्धति का स्वातंत्र्य घोषित है । प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को अपनी संस्था के स्वतंत्र संचालन में छूट दी गयी । किन्तु यह प्रतिबन्ध किया गया कि, इस्लाम पंथ या धर्म के किसी अहित की स्थिति में राज्य हस्तक्षेप करेगा ।

अनुच्छेद १२ में प्रत्येक पंथ या धर्म को अपने धर्मावलम्बियों के लिए शिक्षण संस्थान बनाने की अनुमति दी गयी । किन्तु राज्य, इस्लाम के शिक्षण की ही सहायता करेगा ।

पंथ सापेक्ष मलेशिया ने १६४८ के समझौते में मलय राष्ट्रवाद की रक्षा की। संविधान ने मलय की भाषा और मलय की परम्पराओं या रीति रिवाजों की अनिवार्यता कर, इस्लाम पंथ को राष्ट्रवादी धरती से संलग्न कर एक सुरक्षा चक्र प्रदान किया ।

मोरक्को

मोरक्को इस्लाम के अभ्युदाय काल से धार्मिक नेता के शासन में रहा है । सातवीं शती से उन्नीसवीं शती तक धार्मिक नेता सुलतान रहे हैं । शासन कुरान के आधार पर चलता रहा । बीसवीं शती के शुभारम्भ में (१६१२) मोरक्को फ्रेंच संरक्षण में आया । सन् १६५६ में फ्रांस ने मोरक्को को स्वतंत्र घोषित कर दिया । पश्चात् कई संविधान बने और मिटे । सन् १६७० में हसन द्वितीय के काल में संविधान निर्मित हुआ ।

मोरक्को के संविधान के प्रथम अनुच्छेद में मोरक्को को लोकतांत्रिक सामाजिक राजाशाही घोषित किया गया । राजा का धर्म इस्लाम घोषित हुआ । यह महत्वपूर्ण है, कि उपासना के व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की भी संविधान में व्यवस्था की गयी है ।

सऊदीअरब

सऊदी अरब इस्लाम धर्म के प्रवर्तक की भूमि है । हजरत मोहम्मद ने इस्लाम के धर्मचक्र प्रवर्तन द्वारा नयी सभ्यता की स्थापना की । सऊदी अरब विश्व के मुसलमानों का केन्द्र है । सऊदी अरब उन देशों में है, जिनके पास आधुनिक संविधान नहीं है । कुरान शरीफ ही इसका संविधान है ।

सऊदी अरब में इस्लाम के विधि-विधानों या शरियत की भूमिका और भाष्य में मतभेद परम्परावादी तथा प्रगतिशील शक्तियों में है । वैसे शरियत सार्वकालिक और सार्वदेशिक है ।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के कुछ वर्षों (१९५३ से १९६४) को छोड़कर सऊदी अरब का राजा, सरकार और शासन का प्रमुख रहा है । १९६४ में सऊदी अरब के धार्मिक नेताओं-उल्मा-ने फतवा (पांथिक या धार्मिक वैधानिक निर्णय) दिया कि राजा सऊदी राज्य की गतिविधियों के संचालन के लिए अयोग्य है । इस कारण युवराज फैजल को सभी अधिकार सौंपे जायें । इस आधार पर सभी संगठनात्मक, प्रशासनिक, न्यायिक दायित्व फैजल को प्राप्त हो गये । १९७५ में फैजल की हत्या हो गयी । युवराज फहद राजा हो गये ।

सीरिया

सीरिया विश्व इतिहास में प्राचीनतम देश रहा है । सीरिया, तुर्क साम्राज्य का अंग १५१६ से १९१८ तक बना रहा ।

आतोमन या तुर्क संविधान (१८७६ अनुच्छेद १०६) के अनुसार सीरिया (विलायत या प्रदेश) में निर्वाचित और पदेन परिषद बनी थी । साम्राज्यवादियों के बंधन से छूटकर आंतरिक विद्रोह का दौर भी सीरिया में चला । १९५८ में ईजिप्ट से सीरिया सम्बद्ध हो गया । अरबी एकता, अरबी समाजवाद और अरब भूमि की इजरायलियों से मुक्ति या अरब अखण्डता के उद्देश्य से यह अरब संघ बना था । प्रस्तुत समीक्षा मार्च १३ सन् १९७३ के सीरिया अरब रिपलब्लिक संविधान के आधार पर है । समाजवादी मूल्यों के लिए संघर्ष का संकल्प उद्देशिका में है । अनुच्छेद ७ में समाजवाद से प्रतिबद्धता घोषित है । अनुच्छेद १३ (१) में आर्थिक ढाँचा समाजवादी स्वीकृत है ।

सीरिया के अनुच्छेद ३ (१) के अनुसार प्रेसीडेन्ट का पंथ निश्चित रूप से इस्लाम है, और इस्लाम के विधि - विधान ही अन्य विधि विधानों या कानूनों के स्रोत अनुच्छेद ३ (२) में घोषित है । अनुच्छेद ३५ द्वारा मतवाद या विश्वासों का स्वातंत्र्य है, और राज्य द्वारा सभी पंथों के सम्मान का प्रावधान है । यह स्वातंत्र्य विधि सम्मत है (३५/२) ।

सूडान

सन् १८८६ में ब्रिटेन और मिस्र के समझौते से सूडान प्रसिद्धि में आया। ब्रिटेन की अनुशंसा से गवर्नर जनरल की नियुक्ति सूडान में हुई। अफ्रीकी इतिहास के घटनाक्रम (१८२४) में मिश्र का प्रभाव सूडान से समाप्त करने के लिए अधिकारी और सैन्य शक्ति हटा दी गयी।

१६३७ में - ग्रेजुएट्स कांग्रेस पार्टी-प्रथम राजनैतिक दल सूडान में बना। संसदीय पद्धति के अनुकूल १६५५ में संविधान बना। १ जनवरी १६५६, स्वतंत्रता दिवस घोषित किया गया। पश्चात् आन्तरिक विग्रह और सैनिक हस्तक्षेप से घटनाक्रम सूडान के इतिहास में प्रभावी रहा। १६७३ में सूडान का स्थायी संविधान प्रवर्तित हुआ।

संविधान के प्रथम अनुच्छेद में लोकतांत्रिक, समाजवादी गणतंत्र सूडान घोषित है। अनुच्छेद में केवल सूडानी समाजवादी यूनियन को राजनीतिक दल-संगठन के रूप में मान्यता दी गयी।

अनुच्छेद ६ में इस्लामी कानून और रिवाज को विधि-विधानों का स्रोत माना गया। गैर मुस्लिमों को अपने निजी विधि-विधानों से नियंत्रित होने का प्रावधान किया गया। अनुच्छेद १६ में राज्य का पंथ इस्लाम और उसके आदर्शों या मूल्यों को मान्य किया गया। इसी अनुच्छेद में सूडान के ईसाई पांथिकों को भी संरक्षण मिला। अलौकिक तथा आध्यात्मिक विश्वासों के शुभ-पक्षों की अवमानना का निषेध इसी अनुच्छेद में है। राज्य द्वारा पांथिक आस्थाओं पर रोक लगाने के निषेध की भी अनुच्छेद में घोषणा है। राजनैतिक कारणों से पांथिक दुरूपयोग पर रोक है। अनुच्छेद ३८ में पंथ आदि के कारण भेद - भाव को अमान्य किया गया है। अनुच्छेद ४७ में विश्वास, उपासना, पांथिक कृत्य या समारोह आदि का अधिकार नागरिक का है।

सोमाली

लालसागर के दक्षिण में भारत और स्वेज नहर की राह के मध्य सोमाली देश है। उन्नीसवीं शती में इटली और इंगलैण्ड के उपनिवेशवादियों के कुचक्र से यह देश आक्रान्त रहा है।

१६०० से १६२० तक सय्यद महमूद अब्दील हसन ने बीस वर्षों तक ब्रिटेन, इटली और इथोपिया से संघर्ष किया।

१६३६ में इटली ने इथोपिया को जीत लिया। १६४०-४१ में ब्रिटेन और इटली में युद्ध हुआ, और इससे सोमाली ब्रिटिश सैनिक प्रशासन के अन्तर्गत आया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका और रूस ने जनमत की आकांक्षाओं के अनुरूप सोमाली यूथ लीग से वार्ता की। समस्त सोमाली देश के लिए एक सरकार की वार्ता सफल न होने पर, १६४६ को राष्ट्र संघ ने एक प्रस्ताव द्वारा कुछ सोमाली भूमि इटली को, और शेष को ब्रिटेन की संरक्षता में दस वर्षों के लिए दिया।

१९७९ में राष्ट्रव्यापी रेफेरेन्डम के पश्चात् नये संविधान को स्वीकार किया गया । इसके द्वारा समाजवाद को स्वीकृति प्राप्त हुई । संविधान की उद्देशिका में समाजवादी समाज की संरचना और विश्व में शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व तथा सहकार के सोच को प्रकट किया गया ।

अनुच्छेद १ में मेहनतकश के नेतृत्व में समाजवादी राज्य की स्थापना का उद्घोष है ।

अनुच्छेद ३ में इस्लाम को राज्य धर्म घोषित किया गया ।

अनुच्छेद ६ के अनुसार धर्म आदि के भेद होने पर भी कानून के समक्ष समानता की व्यवस्था है ।

अध्याय - २ मौलिक अधिकारों के अनुच्छेद ३१ में प्रत्येक व्यक्ति को धर्म और मतवाद के सुरक्षा की गारंटी है ।

अनुच्छेद ५७ में सोमाली राज्य द्वारा प्रगतिशील सभ्यता के प्रचार की व्यवस्था है । जिससे मानव समाज की विश्व सभ्यता से सोमाली लाभान्वित हो सके।

सोमाली एक ऐसा पंथ या धर्म सापेक्ष देश है, जिसने समाजवाद के प्रतिबद्धता प्रकट की है । वर्तमान में अभाव, अव्यवस्था तथा अनिश्चितता के वातावरण से गुजर रहा है ।

इस्लाम धर्मावलम्बियों के बहुमत वाले राज्यों में पंथ निरपेक्षता अपवाद है। अपवाद रूप इंडोनेशिया और तुर्किस्तान की पंथ निरपेक्षता का विवेचन अन्यत्र है ।

इस्लाम पंथ सापेक्ष कुछ राज्य साम्यवादी या समाजवादी वैचारिक स्थिति से आक्रान्त हुए, किन्तु अपनी परम्परागत स्थिति के निर्वाह का गम्भीर सफल प्रयास किया । अफगानिस्तान की इस्लाम सापेक्षता, साम्यवाद के प्रभाव में पड़ कर भी अपने पंथतांत्रिक चरित्र का निर्वाह करती रही । वैज्ञानिक समाजवाद या साम्यवाद क्षीण हो गया । पंथिक सापेक्षता का सातत्य बना रहा । अलजीरिया ने अपनी पंथ सापेक्षता से प्रतिबद्ध होकर भी मानव शोषण का विरोध किया और मानव के स्वातंत्र्य तथा सम्मान से विश्व शान्ति की घोषणा की । अरब अमीरात राज्य ने पांथिक घोषणाओं से अनुबंधित होकर भी आधुनिक इतिहास के दबाव से सामाजिक न्याय, स्वतंत्र आस्था, समानता आदि की स्वीकृति प्रकट की है ।

इस्लाम पंथ-सापेक्ष ईराक ने समाजवाद को स्वीकार किया और सर्वाधिकारी राज्य बना, पंथ सापेक्षता के आधार पर परम्परा को स्वीकृति दी और जन समर्थन प्राप्ति का प्रयास किया । यमन पीपुल्स डेमोक्रेटिक रिपलब्लिक तथा लीबिया के संविधानों में भी वैज्ञानिक समाजवादी या समाजवादी विचारों से इस्लाम पंथ सापेक्षता का सामंजस्य घोषित है । सोमाली संविधान में समाजवादी मूल्यवत्ता को इस्लामी पांथिक सापेक्षता के साथ स्वीकृत किया गया है ।

ईजिप्ट के संविधान में, इस्लाम पंथ सापेक्षता की स्वीकृति देकर अपनी मौलिक परम्पराओं को संरक्षित करने का प्रावधान है । धार्मिक शिक्षण को संवैधानिक

संरक्षण है । संविधान में मतवाद के आधार पर भेद-भाव का निषेध भी है । कुवैत में मानवता की दृष्टि से संवैधानिक समानता है । इस्लामी गुणवत्ता से अभिन्न पंथ के भेदभाव का निषेध है । जोर्डन की पांथिक व्यवस्था में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और उपासना पद्धति काभी स्वातंत्र्य है । टयूनीसिया के पंथ सापेक्ष राज्य में लोकतांत्रिक जीवन में मान्य स्वातंत्र्य का भी प्रावधान है । बहरीन के पांथिक राज्य में लोकतंत्र से प्रतिबद्धता है । इस्लाम पंथ के अनुकूल सभी विधिविधानों की संवैधानिक मान्यता है । बांगला देश अपनी पंथ निरपेक्षता का सातत्य स्थिर नहीं रख सका । मलेशिया में इस्लामी वर्चस्व के साथ अन्य पंथों को सामंजस्य से सहजीवन की घोषणा संविधान में है । किन्तु मलयभाषा, मलयप्रथा आदि से पांथिक व्यवस्था को संलग्न कर राष्ट्र की धरती से जोड़ा गया है । मोरक्को में व्यक्तिगत उपासना की संवैधानिक व्यवस्था है ।

यमन अरब रिपब्लिक में कुरान से प्रतिबद्धता का प्रावधान है । पंथ की रक्षा एक पवित्र कर्तव्य है । पांथिक आस्था से प्रगतिशील जीवन में बाधा न पड़ने की भी घोषणा है । पांथिक विश्वास से मानवतावादी आधार की अस्वीकृति नहीं है । पाकिस्तान के पांथिक राज्य ने कुरान के अनुकूल जीवन के ताने बाने की रचना की स्वीकृति दी हैं । पांथिक राज्य किस सीमा तक अल्पसंख्यकों को व्यवहार में स्वातंत्र्य प्रदान कर सकता है ? यह इतिहास में विचार और विवाद का विषय है । ईरान में इस्लाम के शिया सम्प्रदाय की विधिक मान्यता है । ईरान का संविधान कुरान आधारित है । अन्य इलामी सम्प्रदायों के सम्मान की भी घोषणा है ।

मालदीप गणतंत्र में कुरान का पढ़ना अनिवार्य स्थिति है । इस्लाम का पालन और अरबी भाषा का ज्ञान भी अनिवार्य है । ओमान राज्य में लिखित संविधान नहीं है । सऊदी अरब राज्य में कुरान शरीफ ही संविधान है ।

ईसाई तथा इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्यों की व्यवस्था के उपरान्त, बौद्ध सापेक्ष तथा हिन्दू सापेक्ष राज्यों की संवैधानिक स्थिति का विहंगावलोकन विवेकपूर्ण है ।

6

बौद्ध तथा हिन्दू पंथ सापेक्ष संविधान

ईसाई तथा इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्यों के अतिरिक्त बौद्ध पंथ सापेक्ष श्रीलंका और कम्पूचिया तथा हिन्दू पंथ सापेक्ष नेपाल के संविधानों में अभीष्ट विषय का विवेचन और इनका तुलनात्मक मूल्यांकन उपयोगी है । पंथ सापेक्षता का आधार और आकार का स्पष्टीकरण भी इस प्रकरण में आवश्यक है ।

श्रीलंका

ईसा से ५०० वर्ष पूर्व वर्तमान सिंहली जन के पूर्वजों ने भारत से आकर श्रीलंका को बताया था ।

ईसा से २५० से २१० वर्ष पूर्व भारत के सम्राट अशोक के पुत्र महेन्द्र ने श्रीलंका में बुद्ध धर्म का प्रसार किया था । उस काल से सन् १८१५ तक श्रीलंका में राजाशाही स्थापित रही ।

यह महत्वपूर्ण है कि ईसा के पश्चात् ४१ से ५३ तक सिंहल के राजा और रोमन सम्राट के मध्य दौत्य या कूटनीति सम्बन्ध भी स्थापित रहे । सिंहली राजा ने चीन भी अपने दूत भेजे ।

सन् ११५३ से ११८६ तक राजा पराक्रम बाहु महान ने राज्य के प्रशासनिक और विधिक संचालन के लिए मंत्रिपरिषद की रचना की । इतिहास में यह श्रीलंका का स्वर्णयुग कहा जाता है ।

सन् १५०५ से १६५६ तक पोर्तगाली खोजियों ने श्रीलंका और यूरोप के मध्य व्यापार के एकाधिकार का प्रयास किया ।

सन् १६५६ से १७६६ तक स्पेन और पोर्तगाल की व्यापारी बस्तियों पर डचों ने आक्रमण किया । १६५६ में डचों ने कोलम्बों पर अधिकार प्राप्त कर लिया । १६५८ में जाफना के पतन से पोर्तगाली प्रभुत्व समाप्त हो गया । १७६६ से १८१५ तक ब्रिटिश के हाथों में सत्ता आई और डच शासन का पतन हो गया । श्रीलंका के ब्रिटिश गवर्नर ने मंत्रिपरिषद बनायी । १८०२ में ब्रिटेन की क्राउन कालोनी श्रीलंका बन गया ।

१८१५ में कैंडी स्थित सिंहली राजा को युद्ध के पराभव के पश्चात् भारत भेज दिया गया । श्रीलंका ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बन गया ।

१८३३ में श्रीलंका का प्रथम संविधान बना । सन् १६१० में द्वितीय संविधान निर्मित हुआ । सन् १६२० में तीसरा संविधान और सन् १६२३-२५ में चतुर्थ संविधान प्रवर्तित हुआ । द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात सन १६४५ मई में छठे संविधान का

प्रवर्तन हुआ । ब्रिटेन की संसद ने श्रीलंका की स्वतंत्रता का अधिनियम पारित किया। जिस पर ताज की स्वीकृति १९४७ दिसम्बर को प्राप्त हो गयी ।

सन् १९४८ फरवरी में श्रीलंका की स्वतंत्रता घोषित हो गयी ।

सन् १९५७ में श्रीलंका की फ्रीडम पार्टी ने अत्यधिक बहुमत में आने पर संविधान में संशोधन की प्रस्तावनाकी ।

सन् १९७२ में श्रीलंका का नया संविधान प्रवर्तित हुआ ।

संविधान की उद्देशिका में श्रीलंका समाजवादी लोकतंत्र घोषित किया गया। महात्मा बुद्ध के काल से २५१५ वर्ष पश्चात् (सन् १९७२) में श्रीलंका में नये राजनीतिक जीवन का अभ्युदय हुआ ।

संविधान के अध्याय - २ अनुच्छेद ६ में बौद्ध धर्म को प्रथम स्थान दिया गया। राज्य का यह कर्तव्य माना गया कि बौद्ध धर्म का रक्षण और पोषण करे । किन्तु अन्य पंथों को भी अपने अधिकारों के लिए आश्वस्त करने का प्रावधान किया गया ।

अध्याय - ५ अनुच्छेद १६ (६) में राज्य के सभी नागरिकों को अपने पांथिक सिद्धान्तों के अनुसार जीने का दायित्व दिया गया ।

अध्याय - ६ के अनुच्छेद १८ में कानून के समक्ष सभी नागरिकों को समानता दी गयी । सभी नागरिकों को चिन्तन, आस्था और पंथ का स्वातंत्र्य प्रदान किया गया। अपने धर्म या उपासना के विश्वास, पालन, आचरण तथा शिक्षण के स्वातंत्र्य का भी प्रावधान किया गया ।

कम्पूचिया (कम्बोडिया)

एशिया के दक्षिण पूर्व प्रशान्त महासागर के तट पर कम्पूचिया के इतिहास का शुभारम्भ ईसा पश्चात् दूसरी शताब्दी से होता है । चीन के साम्राज्य से भी इसका सम्बन्ध रहा है । किन्तु इसने स्वातंत्र्य के लिए संघर्ष किया । तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ (सन् १२१८) में खामेर राज्य के उत्कर्ष का पराभव, राजा जयवर्मा (सप्तम) की मृत्यु से हो गया । मध्यकालीन शताब्दियों में श्यामदेश द्वारा कम्पूचिया आक्रान्त हुआ । सन् १७९६ में श्याम ने कम्पूचिया पर अपना शासन स्थापित किया । सन् १८८६ में फ्रांस ने कम्पूचिया को अपने प्रभाव में ले लिया ।

द्वितीय विश्व युद्ध (१९४५) में कम्पूचिया जापान के पूर्ण संरक्षण में आ गया । राजा सिंहानुक ने कम्पूचिया को फ्रांस से स्वतंत्र घोषित किया । १९४५ अगस्त में जापान के समपर्ण से फ्रांस का पुनः अधिकार हो गया । इसी वर्ष फ्रांस के अन्तर्गत कम्पूचिया स्वशासित घोषित हुआ । सन् १९४६ सितम्बर में स्वतंत्र कम्पूचिया का प्रथम लिखित संविधान बना । इसका प्रवर्तन ६ मई १९४७ को हुआ ।

सन् १९७१ में नये संविधान की निर्मिति का शुभारम्भ हुआ । इसमें संविधान को राष्ट्रीय जीवन का उत्पाद बताकर आयातित संविधान के निषेध का संकल्प प्रकट किया गया ।

सन् १९७२ अप्रैल में पुनः नया संविधान बना । इस संविधान के प्रथम अनुच्छेद में स्वतंत्रता, समानता, सख्य-भाव तथा प्रगति और प्रसन्नता की घोषणा की गयी ।

संविधान के दूसरे अनुच्छेद में बुद्ध पंथ को राज्य का पंथ घोषित किया गया। किन्तु आस्था और उपासना की स्वतंत्रता को पूर्ण रूप से स्वीकृति मिली । विभिन्न पांथिक विश्वासों को अभेद रूप से मान्यता प्राप्त हुई ।

थाईलैंड

थाईलैंड का पूर्व नाम श्याम है । सन् ६४६ में नानचों राज्य की स्थापना हुई। इसके पश्चात् इतिहास में सामंती सभ्यता और संघर्षों से श्याम निकला ।

उन्नीसवीं शती के अन्त में लोकतांत्रिक संस्थानों का प्रवेश राजा राम (पंचम) द्वारा प्रारम्भ किया गया । पश्चात् १६१० से १६२५ तक राजा राम (षष्ठम) ने अपने पिता द्वारा प्रवर्तित लोकतांत्रिक प्रक्रिया का विस्तार और विकास किया । १६३२ में राजा राम (सप्तम) के काल में रक्तहीन क्रान्ति द्वारा संविधान का शासन प्रवर्तित हुआ। इस १६३२ के संविधान में पांथिक स्वातंत्र्य प्रदान किया गया । सन् १६४६ में १८८ अनुच्छेदों का पंचम संविधान बना । सन् १६५६ में २० अनुच्छेदों का अन्तरिम संविधान प्रवर्तित हुआ। सन् १६६८ में आठवां संविधान निर्मित हुआ । १६७२ में नवां संविधान आया । १६७६ में ग्यारहवां संविधान बना । १६७७ में पुनः नया संविधान आया, और १६७८ दिसम्बर से प्रवर्तित हुआ । यह २५२१वां वर्ष महात्मा बुद्ध के जीवन से संदर्भित है

थाईलैंड के संविधान अनुच्छेद ४ द्वारा थाई नागरिक को पांथिक आदि भेदभाव के निषेध से आश्वस्त किया गया है । इस संवैधानिक ताजशाही में अनुच्छेद ७ द्वारा राजा को बुद्ध धर्मावलम्बी और पांथिक सुरक्षा के अधिकार से सम्पन्न किया गया है । अनुच्छेद २३ द्वारा सभी की विधि समक्ष समानता और समान संरक्षण की घोषणा है । अनुच्छेद २५ द्वारा सभी को पांथिक स्वतंत्रता, उपासना पद्धति का स्वातंत्र्य आदि है । थाईलैंड के संविधान के तृतीय अध्याय में थाई नागरिकों के अधिकार और स्वतंत्रताओं का प्रावधान है । अनुच्छेद ४५ के द्वारा किसी को यह अधिकार नहीं है, कि राष्ट्र, पंथ, राजा और संविधान के विरुद्ध अपने स्वातंत्र्य और अधिकार को प्रयुक्त करे । अनुच्छेद ४६, अध्याय चार के द्वारा प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि, वह राष्ट्र, पंथ, राजा और लोकतांत्रिक व्यवस्था का समर्थन करें । यह उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद ६३ (३) के अन्तर्गत चुनाव में बौद्धपुजारी, भिक्षु, पादरी आदि को मताधिकार से वंचित किया गया । यह उल्लेखनीय है कि अनुच्छेद ६६ (३) के अनुसार चुनाव भी नहीं लड़ सकते ।

नेपाल

नेपाल महात्मा बुद्ध के समय नेपाल का अस्तित्व था । अशोक युग में नेपाल का प्रसंग इतिहास में है । अठारहवीं शती (१७६८) में राजा पृथ्वी नरायण ने विजेता के रूप में काठमांडो को अपनी राजधानी घोषित की । सन् १७७० में नेपाल का नामकरण हुआ । सन् १७८८ से १७६१ तक नेपाल द्वारा तिब्बत विजित किया गया । सन् १७६२ में चीन ने तिब्बत को अपने अधिकार में ले लिया । उन्नीसवीं शती (१८१४-१६) में नेपाल का ब्रिटेन से युद्ध हुआ । परिणाम स्वरूप नेपाल को गढ़वाल, कुमायूं, सिक्कम तथा तराई

का क्षेत्र छोड़ना पड़ा था। १८५५-५६ में नेपाल ने पुनः तिब्बत को विजित किया। किन्तु चीन से संधि होने पर तिब्बत पर नेपाल का अधिकार समाप्त हो गया।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में सन् १९५०-५७ में मध्यकालीन शताब्दियों का राणा-शासन समाप्त हो गया। सन् १९५९ में राजा महेन्द्र द्वारा नया संविधान बना। सन् १९६२ नवम्बर में पुनः नया संविधान बना। सन् १९७२ में राजा वीरेन्द्र अधिष्ठित हुए। राज्य संस्था की रचना में परिवर्तन की लहरें वर्तमान में भी उद्वेलित रही हैं। सन् १९६२ के संविधान के अनुसार नेपाल दलहीन लोकतांत्रिक राज्य बना था। नेपाल के संविधान अनुच्छेद ३ में नेपाल स्वतंत्र, अविभाज्य और हिन्दू राज्य घोषित किया गया। परम्पराओं की मान्यता की संवैधानिक घोषणा है।

अनुच्छेद १० के अनुसार समानता के अधिकार की व्यवस्था की गयी। उपासना पद्धति इस समानता में बाधा नहीं मानी गयी। अनुच्छेद १४ से सभी को उपासना पद्धति का स्वातंत्र्य सुनिश्चित किया गया। परम्पराओं को सम्मान देने की घोषणा की गयी। धर्म परिवर्तन कराने के लिए भी अधिकार का समापन किया गया।

नेपाल के संविधान में पंथ निरपेक्षता की प्रविष्टि के लिए वर्तमान इतिहास पर दबाव का प्रयास किया गया। किन्तु घोषित हिन्दू राज्य में भी सभी उपासना पद्धतियों के स्वातंत्र्य की संवैधानिक व्यवस्था है। पंथ या धर्म परिवर्तन के लिए भी अधिकार का समापन संविधान की विशेषता है। साम्राज्यवादी इतिहास ने राज्य शक्ति और सम्पत्ति के आधार से, विपरीत या विरोधी पांथिक आस्थाओं या विश्वासों के परिवर्तन का प्रयास एशियाई और अफ्रीकी देशों में किया है।

बौद्ध पंथ सापेक्ष देशों और एक हिन्दू पंथ सापेक्ष देश के संविधानों के विश्लेषण में अपने पुरातन इतिहास से अखंडता की आकांक्षा, परम्पराओं से अविच्छिन्नता की अपेक्षा, और प्रगतिशीलता के लिए औदार्य की स्वीकृति है। श्रीलंका के संविधान में बौद्ध धर्म के रक्षण और पोषण की घोषणा है। किन्तु अन्य पंथों को भी अपने विश्वासों के अनुकूल जीवन यापन से आश्वस्त किया गया है। कम्पूचिया के संविधान में भी बुद्ध पंथ के स्वीकृति के साथ अन्य सभी पांथिक विश्वासों और व्यवहारों को मान्यता प्रदान की गयी। नेपाल की पंथ सापेक्षता, अन्य आक्रामक पंथों से अपने अस्तित्व के रक्षण का सुरक्षा चक्र के रूप में प्रतीत होती है।

पंथ सापेक्षता का आधार और आकार

ईसाई पंथ सापेक्ष राष्ट्रों में इंग्लैंड में पंथ (चर्च) और राज्य की एकता है। सर्वोच्च शासक राज्याध्यक्ष और धर्माध्यक्ष है। किन्तु विचार स्वातंत्र्य की स्वीकृति महत्वपूर्ण है। मानवीय मूल्यवत्ता के आधार पर मूल अधिकारों की मान्यता महत्वपूर्ण है। इस प्रकार इस पंथ सापेक्षता में परम्परा का निर्वाह और प्रगति की निर्मिति का सामंजस्य है।

पंथ सापेक्ष ग्रीस में चर्च और राज्य का पार्थक्य नहीं है। पांथिक चेतना और शिक्षण का सामंजस्य भी है, और विचार के स्वातंत्र्य की भी संवैधानिक व्यवस्था है। इस्लामी तुर्की साम्राज्यवाद से अपने स्वतंत्र अस्तित्व के रक्षण की समस्या से ग्रीस ने ऐतिहासिक परिस्थितियों में पंथ सापेक्षता को समाविष्ट किया है।

भूमध्यसागरीय लघु राज्य मोनको में पंथ (चर्च) और राज्य का पार्थक्य नहीं है । किन्तु पांथिक स्वतंत्रता का भी प्रावधान है ।वैयक्तिक स्वतंत्रता की भी संवैधानिक घोषणा है । नार्वे में राज्य की चर्च सापेक्षता द्वारा अपने समाज को परम्परा द्वारा अनुशासित करने का प्रयास किया है । लेकिन वेटिकन की पंथ सापेक्षता ने इतिहास में यह सिद्ध कर दिया है कि पूर्ण पंथ सापेक्ष लघुतम राज्य भी अपना अस्तित्व वर्तमान विश्व में स्थापित कर सकता है ।

कोस्टारिका जैसे लघु देश अपनी एकता और अखंडता की रक्षा के लिए पंथ सापेक्षता स्वीकार करते हैं ।

विभिन्न देशों के संविधान की तुलनात्मक समीक्षा में कुछ निष्कर्ष स्पष्ट हैं । पंथ सापेक्ष राष्ट्र किसी पंथ विशेष से राज्य के सम्बन्धों की घोषणा एक पृष्ठभूमि में करते हैं । वह है - राज्य और पंथ के पुरातन और पवित्र सम्बन्ध । यह पंथ सापेक्ष राज्यों की जीवनी शक्ति है । किन्तु पंथ सापेक्ष राज्यों पर संकीर्णता का आरोप भी है। कुछ संविधान मध्ययुगीन भावनाओं और भावुकता से अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सफल है । सउदी अरब का राज्य यदि किसी संविधान की आवश्यकता नहीं मानता, तब इसका अभिप्राय इस्लाम की मान्यताओं के घिरौंदें में संतुष्ट और सम्पन्न जीवन पर उसकी आस्था है । इस्लाम पर चलने वाले देशों में ऐतिहासिक, भौगोलिक और भौतिक जीवन में उस राज्य और राजनीति को विकसित किया है, जिसमें पांथिक आसक्ति और मतवाद का अनुगमन है । किन्तु आस्था की स्थिरता और आत्म प्रसार की लालसा इसका केन्द्र बिन्दु है ।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में पंथ सापेक्ष राष्ट्रों में मानवीय मूल्यों को एक सीमा तक प्रविष्ट करने का प्रयत्न किया है । इसमें नैसर्गिक नैतिकता की स्वीकृति अवश्य है। इस नैतिकता के बिना आधुनिक विश्व में सह अस्तित्व सम्भव नहीं है ।

पंथ सापेक्ष इस्लामी देशों ने अपनी परम्परा से शक्ति ग्राह्यता पर विश्वास प्रकट किया है । इस्लाम जीवन शैली के अभ्युदय के पूर्व की सभी अन्य पद्धतियों की अस्वीकृति भी इस इस्लाम पंथ सापेक्षता में प्रकट है । इस्लाम ग्रहण के पश्चात् अपने इतिहास को अखंडित रखने की आकांक्षा से इस्लाम पंथ सापेक्षता ने पुरातन सभ्यता के रूप विभिन्न देशों में ढहाये हैं । किन्तु पंथ सापेक्ष इस्लामी संविधानों ने आधुनिक इतिहास की मानवतावादी पृष्ठभूमि को भी स्वीकार कर प्रगतिशीलता से सम्पर्क का संकेत किया है । पंथ सापेक्षता की असहिष्णुता में यह औदार्य का प्रतिबिम्बन है । पंथ सापेक्ष इस्लामी संविधानों में परम्परा की वासना और प्रगतिशीलता की आकांक्षा परिलक्षित है। इस आधार पर पूर्व वर्णित देशों की पंथ सापेक्षता के चरित्र का विहंगावलोकन अपेक्षित है। ईसाई पंथ सापेक्ष, इस्लाम पंथ सापेक्ष तथा बौद्ध और हिन्दू सापेक्ष देशों में कोई विशेष व्यवस्था का अन्तर नहीं है । इस्लाम की असहिष्णुता अपेक्षाकृत अधिक उग्र और उन्माद ग्रस्त है । किन्तु आधुनिक जागतिक परिस्थितियों और विज्ञान-प्राविधि की उपलब्धियों से मानवीय स्पर्श की अस्वीकृति संविधानों में नहीं हैं ।

7

पंथ निरपेक्ष राज्य

आधुनिक विश्व में पंथ निरपेक्ष राज्य संख्यात्मक दृष्टि से अधिक हैं । सभी महाद्वीपों में पंथ निरपेक्ष देश हैं । पंथ निरपेक्ष इस्लाम बहुल इन्डोनेशिया तथा तुर्किस्तान, अफ्रीका का अपर बोल्टा, आइवरी कोस्ट गणतन्त्र, आस्ट्रेलिया, अंगोला, इजरायल, इटली, क्यूबा, कनाड़ा, कोरिया (दक्षिणी), कोरिया (उत्तरी), चीन, चेकोस्लाविया, जमैका, जर्मनी, जर्मनी (पूर्वी), जापान, जाम्बिया, फिनलैण्ड, फ्रांस, मंगोलिया, मारीशस, मोजेम्बिक, युगांडा, युगोस्लाविया, रूस, वियतनाम, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, साइप्रेस, सिंगापुर, स्विट्ज़रलैण्ड तथा सेनेगाल आदि राज्यों ने अपनी विविध ऐतिहासिक परिस्थितियों और राजनीतिक- सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में पंथ निरपेक्षता के मूल्यों से प्रतिबद्धता की संवैधानिक घोषणा की है ।

इंडोनेशिया

पंथ निरपेक्ष इस्लामी देश में इन्डोनेशिया का महत्व है । इन्डोनेशिया के संविधान में एक सर्वोच्च ईश्वर पर आस्था और पांथिक स्वतंत्रता की स्वीकृति है । इन्डोनेशिया में प्राचीन काल से हिन्दू सांस्कृतिक परम्परा, मध्यकालीन इस्लामी शासन और दो-तीन शताब्दियों पूर्व इसाई साम्राज्यवादियों के प्रभाव ने इसे पंथ निरपेक्ष बनने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान की है ।

इंडोनेशिया में सातवीं शती से तेरहवीं शती तक जावा-सुमात्रा में हिन्दू राज्य तथा हिन्दू राजनीतिक दर्शन प्रभावी रहा है । ई० १३०० से १४०० तक इस्लाम के प्रसार से हिन्दू राज्य निष्प्रभावी हो गया ।

ई० १५०० से इस्लामी शासन का अभ्युदय हो गया । इन्डोनेशिया के अधिकांश राज्यों का अधिकृत धर्म इस्लाम बन गया । ई० १५०७ में पोर्तगाली उपनिवेशवासियों के द्वारा ईसाई धर्म के प्रसार का प्रयास भी प्रारम्भ हो गया । इन्डोनेशिया के प्रमुख शासक ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया । सन् १६०० में उपनिवेशवादियों से संघर्ष होता रहा है ।

इंडोनेशिया के इतिहास की प्रमुख घटना है - द्वितीय विश्वयुद्धकाल में जापान के अधिकार की । विश्वयुद्ध के पश्चात् १७ अगस्त १९४५ में इंडोनेशिया के नेता सुकर्नो ने देश की आजादी की घोषणा कर दी ।

भूमध्यसागरीय लघु राज्य मोनको में पंथ (चर्च) और राज्य का पार्थक्य नहीं है । किन्तु पांथिक स्वतंत्रता का भी प्रावधान है ।वैयक्तिक स्वतंत्रता की भी संवैधानिक घोषणा है । नार्वे में राज्य की चर्च सापेक्षता द्वारा अपने समाज को परम्परा द्वारा अनुशासित करने का प्रयास किया है । लेकिन वेटिकन की पंथ सापेक्षता ने इतिहास में यह सिद्ध कर दिया है कि पूर्ण पंथ सापेक्ष लघुतम राज्य भी अपना अस्तित्व वर्तमान विश्व में स्थापित कर सकता है ।

कोस्टारिका जैसे लघु देश अपनी एकता और अखंडता की रक्षा के लिए पंथ सापेक्षता स्वीकार करते हैं ।

विभिन्न देशों के संविधान की तुलनात्मक समीक्षा में कुछ निष्कर्ष स्पष्ट है । पंथ सापेक्ष राष्ट्र किसी पंथ विशेष से राज्य के सम्बन्धों की घोषणा एक पृष्ठभूमि में करते हैं । वह है - राज्य और पंथ के पुरातन और पवित्र सम्बन्ध । यह पंथ सापेक्ष राज्यों की जीवनी शक्ति है । किन्तु पंथ सापेक्ष राज्यों पर संकीर्णता का आरोप भी है। कुछ संविधान मध्ययुगीन भावनाओं और भावुकता से अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सफल है । सउदी अरब का राज्य यदि किसी संविधान की आवश्यकता नहीं मानता, तब इसका अभिप्राय इस्लाम की मान्यताओं के घिरौंदें में संतुष्ट और सम्पन्न जीवन पर उसकी आस्था है । इस्लाम पर चलने वाले देशों में ऐतिहासिक, भौगोलिक और भौतिक जीवन में उस राज्य और राजनीति को विकसित किया है, जिसमें पांथिक आसक्ति और मतवाद का अनुगमन है । किन्तु आस्था की स्थिरता और आत्म प्रसार की लालसा इसका केन्द्र बिन्दु है ।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में पंथ सापेक्ष राष्ट्रों में मानवीय मूल्यों को एक सीमा तक प्रविष्ट करने का प्रयत्न किया है । इसमें नैसर्गिक नैतिकता की स्वीकृति अवश्य है। इस नैतिकता के बिना आधुनिक विश्व में सह अस्तित्व सम्भव नहीं है ।

पंथ सापेक्ष इस्लामी देशों ने अपनी परम्परा से शक्ति ग्राह्यता पर विश्वास प्रकट किया है । इस्लाम जीवन शैली के अभ्युदय के पूर्व की सभी अन्य पद्धतियों की अस्वीकृति भी इस इस्लाम पंथ सापेक्षता में प्रकट है । इस्लाम ग्रहण के पश्चात् अपने इतिहास को अखंडित रखने की आकांक्षा से इस्लाम पंथ सापेक्षता ने पुरातन सभ्यता के रूप विभिन्न देशों में ढहाये हैं । किन्तु पंथ सापेक्ष इस्लामी संविधानों ने आधुनिक इतिहास की मानवतावादी पृष्ठभूमि को भी स्वीकार कर प्रगतिशीलता से सम्पर्क का संकेत किया है । पंथ सापेक्षता की असहिष्णुता में यह औदार्य का प्रतिबिम्बन है । पंथ सापेक्ष इस्लामी संविधानों में परम्परा की वासना और प्रगतिशीलता की आकांक्षा परिलक्षित है। इस आधार पर पूर्व वर्णित देशों की पंथ सापेक्षता के चरित्र का विहंगाँवलोकन अपेक्षित है। ईसाई पंथ सापेक्ष, इस्लाम पंथ सापेक्ष तथा बौद्ध और हिन्दू सापेक्ष देशों में कोई विशेष व्यवस्था का अन्तर नहीं है । इस्लाम की असहिष्णुता अपेक्षाकृत अधिक उग्र और उन्माद ग्रस्त है । किन्तु आधुनिक जागतिक परिस्थितियों और विज्ञान-प्राविधि की उपलब्धियों से मानवीय स्पर्श की अस्वीकृति संविधानों में नहीं हैं ।

7

पंथ निरपेक्ष राज्य

आधुनिक विश्व में पंथ निरपेक्ष राज्य संख्यात्मक दृष्टि से अधिक हैं । सभी महाद्वीपों में पंथ निरपेक्ष देश हैं । पंथ निरपेक्ष इस्लाम बहुल इन्डोनेशिया तथा तुर्किस्तान, अफ्रीका का अपर बोल्टा, आइवरी कोस्ट गणतन्त्र, आस्ट्रेलिया, अंगोला, इजरायल, इटली, क्यूबा, कनाडा, कोरिया (दक्षिणी), कोरिया (उत्तरी), चीन, चेकोस्लाविया, जमैका, जर्मनी, जर्मनी (पूर्वी), जापान, जाम्बिया, फिनलैण्ड, फ्रांस, मंगोलिया, मारीशस, मोजेम्बिक, युगांडा, युगोस्लाविया, रूस, वियतनाम, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, साइप्रेस, सिंगापुर, स्विट्ज़रलैण्ड तथा सेनेगाल आदि राज्यों ने अपनी विविध ऐतिहासिक परिस्थितियों और राजनीतिक- सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में पंथ निरपेक्षता के मूल्यों से प्रतिबद्धता की संवैधानिक घोषणा की है ।

इंडोनेशिया

पंथ निरपेक्ष इस्लामी देश में इन्डोनेशिया का महत्व है । इन्डोनेशिया के संविधान में एक सर्वोच्च ईश्वर पर आस्था और पांथिक स्वतंत्रता की स्वीकृति है । इन्डोनेशिया में प्राचीन काल से हिन्दू सांस्कृतिक परम्परा, मध्यकालीन इस्लामी शासन और दो-तीन शताब्दियों पूर्व इसाई साम्राज्यवादियों के प्रभाव ने इसे पंथ निरपेक्ष बनने की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान की है ।

इंडोनेशिया में सातवीं शती से तेरहवीं शती तक जावा-सुमात्रा में हिन्दू राज्य तथा हिन्दू राजनीतिक दर्शन प्रभावी रहा है । ई० १३०० से १४०० तक इस्लाम के प्रसार से हिन्दू राज्य निष्प्रभावी हो गया ।

ई० १५०० से इस्लामी शासन का अभ्युदय हो गया । इन्डोनेशिया के अधिकांश राज्यों का अधिकृत धर्म इस्लाम बन गया । ई० १५०७ में पोर्तगाली उपनिवेशवासियों के द्वारा ईसाई धर्म के प्रसार का प्रयास भी प्रारम्भ हो गया । इन्डोनेशिया के प्रमुख शासक ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया । सन् १६०० में उपनिवेशवादियों से संघर्ष होता रहा है ।

इंडोनेशिया के इतिहास की प्रमुख घटना है - द्वितीय विश्वयुद्धकाल में जापान के अधिकार की । विश्वयुद्ध के पश्चात् १७ अगस्त १६४५ में इंडोनेशिया के नेता सुकर्णो ने देश की आजादी की घोषणा कर दी ।

सन् १९४९ में डच संसदीय माडल के अनुकरण में नया संविधान बना। सन् १९५० में तीसरा संविधान बना।

पुनः १९५९ अप्रैल में एक नये संविधान का प्रवर्तन हुआ। संविधान के अध्याय ११ में पंथ निरपेक्षता की व्यवस्था का उल्लेख है। अनुच्छेद २९ में राज्य द्वारा अपने-अपने पंथ या धर्म की स्वतंत्रता की व्यवस्था की गयी। इसी अनुच्छेद में एक सर्वोच्च ईश्वर के ऊपर राज्य की आस्था की स्वीकृति है। पंथ निरपेक्ष देश ने आस्तिकता को मान्यता प्रदान की है।

तुर्की

तुर्की का इतिहास साम्राज्यवाद के प्रसार से आक्रान्त रहा है। तुर्की के साम्राज्य का विस्तार मध्य एशिया और पूर्वी योरोप आदि में रहा है।

सन् १९०८ में तुर्की के सुलतान ने संवैधानिक राजाशाही को स्वीकृति दी।

सन् १९१९ अप्रैल में १०५ अनुच्छेदों का एक संविधान निर्मित हुआ।

सन् १९२४ से १९५० तक सात बार संशोधन हुए। तुर्की राष्ट्रपति मुस्तफा कमाल पाशा (१९२४ से १९३८) ने पंथ और राज्य के पृथककरण के सिद्धान्त को स्वीकृति दी। सन् १९३७ में राज्य के अधिकृत धर्म की व्यवस्था समाप्त कर दी गयी। अतातुर्क कमाल पाशा की मान्यता पंथ निरपेक्ष और सुधारवादी राज्य शक्ति की थी।

जुलाई सन् १९६१ में तुर्की गणतंत्र का एक संविधान बना। पुनः सितम्बर सन् १९८० में नया संविधान बना। जून सन् १९८१ में नये संविधान का प्रवर्तन हुआ।

संविधान की उद्देशिका में एक लोकतांत्रिक और पंथ निरपेक्ष राज्य की घोषणा हुई। उद्देशिका में स्पष्ट किया गया कि विधि-विधान सर्वोपरि है। समस्त नागरिक, मानवीय अधिकार तथा स्वातंत्र्य और सामाजिक न्याय का उपभोग करेंगे।

अनुच्छेद २ में तुर्की राज्य के राष्ट्रवादी, लोकतांत्रिक पंथ निरपेक्ष आदि रहने की व्यवस्था का उल्लेख है।

अनुच्छेद १२ में राजनीतिक विचार, दार्शनिक दृष्टि तथा पंथ आदि में भेदभाव का निषेध कर, पंथ या धर्म में समानता की व्यवस्था है।

अनुच्छेद १९ में नागरिकों के लिए पंथ या धर्म, आस्था, मतवाद आदि के स्वातंत्र्य का उल्लेख है। इसी में उपासना पद्धति तथा पांथिक या धार्मिक समारोहों के स्वातंत्र्य का प्रावधान है।

अनुच्छेद १५४ में पांथिक या धार्मिक विषयों के लिए एक विभाग की स्थापना की व्यवस्था है।

तुर्की के संविधान में पंथ निरपेक्षता का प्रावधान आधुनिक इतिहास की उपलब्धि है। अन्य मुस्लिम बहुल राष्ट्रों ने इतना उदार दृष्टिकोण आवश्यक नहीं माना है। तुर्की ने बीसवीं शती के चौथे दशक में आधुनिकता के प्रवेश के लिए पांथिक कट्टरता पर प्रहार किया। पंथ और राज्य के पृथकरण की संवैधानिक व्यवस्था में

इस्लाम का उदार दृष्टिकोण है । मध्ययुगीन इस्लामिक नैतिकता में सुधार और परिष्कार की दिशा में यह पंथ निरपेक्षता महत्व की हैं ।

अपर वोल्टा

अपर वोल्टा अफ्रीकी देश है । उन्नीसवीं शती के अन्त में (१८६५-६७) फ्रांस ने अपर वोल्टा पर अपना अधिकार कर साम्राज्यवादी संरक्षण दिया था । सन् १८६८ में एग्लों फ्रेंच समझौते से गोल्डकोस्ट और अपर वोल्टा की सीमायें निश्चित की गयीं ।

सन् १९५८ अक्टूबर में फ्रांसीसी संविधान को अपर वोल्टा की जनता से स्वीकृति प्राप्त हुई । यह स्वशासी गणतन्त्र घोषित हुआ । अपर बोल्टा का प्रथम संविधान फरवरी १९५९ को मान्य हुआ । इसके द्वारा संविधान - पद्धति का अभ्युदय हो गया । १९६० अगस्त ५ को अपर बोल्टा पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया । फिर एक नयी राष्ट्रपतीय प्रणाली के संविधान का निर्माण हुआ ।

सन् १९७० जून में पुनः नये संविधान की निर्मिति हुई । सन् १९७७ में फिर से एक नये संविधान का प्रवर्तन हुआ । इसके द्वारा तीन राजनीतिक पक्षों को मान्यता उपलब्ध हुई है ।

सन् १९८० में एक राजनीतिक संघर्ष में रक्तहीन सैनिक क्रान्ति से तत्कालीन सरकार का पतन हो गया ।

अपर बोल्टा के संविधान के प्रथम अनुच्छेद में इसे लोकतांत्रिक पंथ निरपेक्ष और सामाजिक गणतंत्र घोषित किया गया । संविधान में अधिकृत भाषा फ्रेंच को मान्य किया गया ।

अपर बोल्टा के संविधान के शुभारम्भ में विविध स्वतंत्रताओं का प्रावधान है । इसके अनुसार सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र हैं और स्वतंत्र रहेंगे । अपने सभी अधिकारों में समता प्राप्त करेंगे । विधि के समक्ष अपने धर्म, विचार, लिंग आदि के विभेद से किसी एकता के खण्डन का निषेध किया गया ।

आइवोरी कोस्ट गणतंत्र

नवोदित अफ्रीकी राज्य आइबोरी कोस्ट गणतंत्र है । १८४३ में फ्रांस द्वारा व्यापारिक लाभ के लिए व्यापक सम्पर्क का आरम्भ हुआ । १८८७ में फ्रेंच प्रभाव में पर्याप्त बढ़त हुई । १८८३ में आइवोरी कोस्ट फ्रांस का उपनिवेश हो गया । १९५८ तक फ्रांस ने अपना आधिपत्य बनाये रखा ।

सन् १९५९ मार्च २६ को एक नये संविधान को स्वीकृति मिली, जिसके द्वारा एक नये राष्ट्र को संसदीय सरकार की उपलब्धि हुई । १९६० अगस्त ७ को आइवोरी कोस्ट पूर्ण स्वतंत्र हो गया । अक्टूबर ३१ को बहुपक्षीय राष्ट्रपतीय प्रणाली का संविधान प्रवर्तित हुआ ।

संविधान की उद्देशिका में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और मानवीय अधिकारों पर आस्था प्रकट की गयी । न्याय, स्वातंत्र्य, समानता, भातृभाव और मानवीय एकता पर गहरा विश्वास अभिव्यक्त किया गया ।

अनुच्छेद १ के अनुसार फ्रेंच राज्य भाषा मानी गयी ।

अनुच्छेद २ में आइबोरी कोस्ट को सेकुलर, अविभाज्य, लोकतांत्रिक आदि स्वीकार किया गया ।

अनुच्छेद ६ में कानून के समक्ष धार्मिक समानता से आश्वस्त किया गया । संविधान में सभी पांथिक या धार्मिक विश्वासों के सम्मान का प्रावधान है ।

आस्ट्रेलिया

ब्रिटिश अनुकरण पर आस्ट्रेलिया में संसदीय लोकतांत्रिक संविधान है । परम्परागत रूप से लोकतांत्रिक स्वातंत्र्य नागरिक को प्राप्त है । ब्रिटिश संसद से सन् १९०० में कामन वेल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट पारित किया । इसी के अन्तर्गत आस्ट्रेलिया का संविधान है । यह संविधान आठ अध्यायों में है । इसमें १२८ अनुच्छेद हैं । जनवरी सन् १९०१ से यह लागू हुआ ।

आस्ट्रेलिया के संविधान में बुनियादी अधिकारों का कोई पृथक अध्याय नहीं है । किन्तु आस्ट्रेलिया के नागरिकों को लोकतांत्रिक परम्परा के बुनियादी अधिकार तथा आजादी संविधान से उपलब्ध हैं । अनुच्छेद ११६ में धार्मिक मतवाद के प्रति सहिष्णुता का प्रावधान है ।

अंगोला

अंगोला एक अफ्रीकी देश है । यूरोपीय उपनिवेशवादियों ने मध्यकालीन शताब्दियों में अंगोला में प्रवेश किया । सन् १५८१ से १६०० में कांगो के राजा की प्रार्थना पर पुर्तगालियों ने अंगोला में प्रवेश किया ।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध (१९७५) में अंगोला में नये संविधान का प्रवर्तन हुआ । एक सार्वभौम सत्ताधारी पंथ निरपेक्ष गणराज्य की स्थापना हुई ।

संविधान के अनुच्छेद २ में समाजवादी समाज कीसंरचना की घोषणा हुई । अनुच्छेद ७ में सभी पंथों या धर्मों के सम्मान की घोषणा हुई । राज्य और पंथ या धर्म की संस्थाओं के पार्थक्य का प्रावधान हुआ । राज्य के विधि विधान द्वारा पूजा गृहों के संरक्षण की व्यवस्था की गयी ।

अनुच्छेद १८ के अन्तर्गत धर्म के सन्दर्भ में सभी नागरिकों को समान अधिकार मान्य किये गये ।

अनुच्छेद २४ में आस्था और विश्वास का स्वातंत्र्य प्रदान किया गया ।

इजरायल

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की पराजय के उपरान्त तुर्क साम्राज्य के अन्तर्गत फिलिस्तीन को लीग आफ नेशनस् ने ब्रिटेन के शासन के अन्तर्गत दे दिया ।

१९४५ में राष्ट्र संघ बना, उसने यथास्थिति रखी । फिर १९४७ में फिलिस्तान के प्रश्न पर विचार के उपरान्त एक संविधान निर्मात्री परिषद के चयन का निर्णय हुआ। १९४५ में इजरायल राज्य की स्थापना की घोषणा हो गयी ।

१९४७ जनवरी में संविधान परिषद् का चयन हो गया । मार्च में यह संसद में रूपान्तरित हो गयी ।

इजरायल आधुनिक राष्ट्रों में एक है, जिसका कोई एक औपचारिक संविधान नहीं है ।

यहूदी जाति की आध्यात्मिक, धार्मिक और राजनीतिक पहिचान की निर्मिति इजराइल की भूमि में हुई थी । किन्तु उन्हें अपनी भूमि से निष्कासित कर दिया गया था । अतः अपनी पुरातन भूमि में पुनः स्थापित होने का अधिकार उपलब्ध कराया गया, और तदनुकूल घोषणा १९४८ में हुई थी । द्वितीय विश्वयुद्ध में उन्हें सब प्रकार से नष्ट करने का प्रयास किया गया था । इसके लिए मानवीय न्याय के संदर्भ में आजादी इज्जत और ईमान से जीने के लिए, इजरायल की स्थापना की गयी थी । स्वातंत्र्य, न्याय और शान्तिपूर्ण व्यवस्था की, सामाजिक तथा राजनीतिक समता की सुनिश्चितता की अपेक्षा की गयी । यह विश्वास किया गया कि, आस्था, भाषा, शिक्षा, संस्कृति आदि की स्वतंत्रता की गारंटी रहेगी । यह भी विश्वास किया गया कि सभी पंथों या धर्म के पवित्र स्थलों का रक्षण होगा ।

इटली

इटली का इतिहास अति प्राचीन रोम सभ्यता से संलग्न रहा है । नेपोलियन के समय इटली, फ्रांस के साम्राज्य में था । वस्तुतः इटली विभाजित राष्ट्र रहा है । जिसके लिए मैजिनी और गेरीबाल्डी का संघर्ष इतिहास का गरिमा पूर्ण अध्याय है । वर्तमान एकीकृत इटली आधुनिक इतिहास में (ई० १८४८) उभरा है ।

१८६१ में इटली का संविधान प्रवर्तित हुआ । १९२२ अक्टूबर मे फासिस्टवादियों के अभ्युदय से इटली के इतिहास में महत्वपूर्ण मोड़ प्रस्तुत होता है । मुसोलिनी ने इटली को द्वितीय विश्व युद्ध में झोंक दिया । अन्त में १९४३ जुलाई २५ को मुसोलिनी अपदस्थ हुआ और बंदी बनाया गया । १९४५ अप्रैल को उसके जीवन का अंत कर दिया गया ।

१९४६ में इटली रेफरेन्डम द्वारा गणतंत्र घोषित हुआ । ५५६ सदस्यों की विधान निर्मात्री परिषद निर्मित हुई । इसमें २०७ क्रिश्चियन डेमोक्रेट, ११५ समाजवादी, १०४ साम्यवादी, २३ रिपब्लिकन और १९ त्रिबरल थे । इसके द्वारा निर्मित संविधान २२ दिसम्बर १९४७ को प्रवर्तित हुआ । यह १९४८ जनवरी १ से प्रभावी हुआ ।

संविधान के अनुच्छेद १ के द्वारा मेहनतकशों के आधार पर इटली को डेमोक्रेटिक रिपब्लिक घोषित किया गया । अनुच्छेद ३ में धर्म, नस्ल, भाषा आदि के भेदभाव का निषेध किया गया । समता के प्रावधान से नागरिक के समग्र व्यक्तित्व के विकास की अपेक्षा की गयी ।

अनुच्छेद ७ के अनुसार राज्य और कैथोलिक चर्च दोनों की स्वतंत्र सर्वभौम सत्ता का आश्वासन है । राज्य की स्वतंत्रता और चर्च की स्वतंत्रता का प्रावधान महत्व का है । अनुच्छेद ८ में सभी पंथों या धर्मों को कानून के समक्ष समानता प्रदान की गयी है । कैथोलिक के अतिरिक्त अन्य धर्मावलम्बी को अपने विश्वासों के अनुकूल संगठित होने के लिए स्वातंत्र्य दिया गया ।

अनुच्छेद १६ में अपने धार्मिक विश्वासों के आधार पर व्यक्तिगत या संघ बद्ध, दोनों प्रकार से स्वतंत्रता का प्रावधान है ।

, अनुच्छेद २० द्वारा राज्य, पंथ की स्वतंत्रता के विरुद्ध कोई वैधानिक या वित्तीय अमर्यादा का पोषण नहीं करेगा ।

अनुच्छेद २१ में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

इटली के संविधान में पंथ और राज्य की दो समानान्तर और स्वतंत्र सत्ताओं का प्रावधान पंथ निरपेक्ष राज्य का अतुलनीय उदाहरण है । इटली के दीर्घ इतिहास के निष्कर्ष रूप में इसे मान्यता उपलब्ध हुई है ।

कांगो (किनसाइसा)

कांगो नदी का यह तटवर्ती प्रदेश १४८१ में एक पुर्तगीज खोजी के द्वारा यूरोप के प्रथम सम्पर्क में आया । किन्तु दास व्यापार के कारण अच्छे सम्बन्ध पुर्तगाल से नहीं बन सके । उन्नीसवीं शती के अन्तिम दसकों में यह बेलजियम के अधिकार में आया। जुन १९६० में बेलजियम से शासन मुक्ति मिल गयी । स्वतंत्रता के पश्चात् षड्यंत्र और संघर्ष पनपे । अगस्त १८६४ में पथम संविधान प्रवर्तित किया गया । दूसरा संविधान १९६७ में निर्मित हुआ । इसके अन्तर्गत १९७० में राष्ट्रीय चुनाव सम्पन्न हुए ।

संविधान के अनुच्छेद ३ में किसी पांथिक आदि भेद-भाव का निषेध किया गया । अनुच्छेद १ के अन्तर्गत सोच, आस्था और पंथ का स्वातंत्र्य प्रदान किया गया। राज्य के किसी पंथ का निषेध है ।

कांगो (ब्राजविली)

अफ्रीका की कांगों नदी के तट पर बसादेश फ्रांसीसी साम्राज्यवाद से आक्रान्त रहा है । यह उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध से बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक फ्रेन्च साम्राज्य का भाग बना रहा । १९४६ में फ्रांस द्वारा एक संविधान से कांगो शासित रहा । १५ अगस्त को १९६० कांगो स्वतंत्र गणतंत्र हो गया १९६१ के संविधान द्वारा कांगो

राष्ट्रपति प्रणाली से शासित हुआ । १९७३ में एक नया संविधान जनता द्वारा स्वीकृत हुआ । पुनः १९७६ में नया संविधान बना ।

संविधान के प्रथम अनुच्छेद में इसे सेकुलर घोषित किया गया । अनुच्छेद ६६ के द्वारा राष्ट्रपति की शपथ में उसे मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों के अनुसार चलने का प्रावधान है ।

केन्या

ब्रिटिश पूर्व अफ्रीका एसोसिएशन को १८८७ में जंजीबार के सुलतान ने दस मील समुद्री तट के प्रबन्धन का अधिकार दिया । १८९५ में ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका कम्पनी को समुद्री तट से युगांडा तक संरक्षता का अधिकार प्राप्त हो गया । ब्रिटिश भारत के विधि-विधान यहां पर प्रवर्तित किये गये । मुस्लिम क्षेत्रों में खांधी (काजी) की सहायता से और बनवासियों के वरिष्ठ जनों की सहायता से विधि-विधानों का राज्य स्थापित हुआ ।

१९६३ में आन्तरिक स्वराज्य जून में और पूर्ण स्वतंत्रता दिसम्बर १२ में केन्या को उपलब्ध हुई । १९६३ में संविधान बना । पुनः सन् ६६-६८-६९-७४-७९ आदि में संशोधन किये गये ।

केन्या के संविधान में औपनिवेशिक काजी व्यवस्था को मान्यतादी गयी । इस्लामी विधि-विधानों को लागू रखने के लिए अनुच्छेद ६६ में मुख्य काजी (चीफ खांधी) का प्रावधान किया गया । इसका मुसलमान होना अनिवार्य किया गया ।

केन्या के संविधान के पंचम अध्याय में नागरिक के मूलभूत अधिकारों की व्यवस्था की गयी । अनुच्छेद ७० द्वारा आस्था, अभिव्यक्ति आदिका स्वातंत्र्य है ।

क्यूबा

सन् १४९२ में कोलम्बस क्यूबा के उत्तरीतट पर आया था । उसने स्पेनिश राज्य की स्थापना की थी ।

क्यूबा में कालक्रम से कई संविधान बने । कई संविधान निर्मात्री परिषद् बनी। सन् १९५३ में सन् १९४० में बने संविधान को प्रवर्तित करने का आन्दोलन चला ।

सन् १९५४ में सिद्धान्त रूप से सन् १९४० के संविधान की स्वीकृति हुई । सन् १९५६ में फेडिल केस्ट्रों के नेतृत्व में गोरिल्ला युद्ध छिड़ा । अन्त में केस्ट्रो की जीत हुई और सन् १९५९ में केस्ट्रो प्रधानमंत्री बने । सन् १९६० में रूस और सोवियत संघ में कूटनीतिक रिश्ते बने । सन् १९७५ फरवरी में क्यूबा का प्रथम समाजवादी संविधान बना ।

इस संविधान अनुच्छेद ८ के अनुसार मार्क्सवाद तथा लेनिनवाद के आधार पर सभी संबंधों की पुनर्रचना की घोषणा की गयी । विश्व समाजवादी समुदाय का क्यूबा अंग बना । अनुच्छेद ५२ में साम्यवादी समाज के अनुकूल अभिव्यक्ति तथा प्रकाशन के

स्वातंत्र्य की व्यवस्था की गयी । अनुच्छेद ५४ के अन्तर्गत वैज्ञानिक भौतिकवादी अवधारणा के अनुकूल, पांथिक या धार्मिक आस्था-विश्वास का, वैधानिक सीमा के अन्तर्गत स्वातंत्र्य का प्रावधान हुआ । विधि-विधानों द्वारा धार्मिक संस्थाओं के संचालन की संवैधानिक मान्यता हुई । वस्तुतः मार्क्सवाद-लेनिनवाद पंथ या धर्म की भूमिका का महत्वहीन करने की प्रक्रिया पर विश्वास की दिशा में गतिशील रहा है ।

कनाडा

१८६७ में ब्रिटिश उत्तरी अमेरिका अधिनियम से कनाडा को एक संविधान उपलब्ध हुआ । पश्चात् ११५ वर्षों तक २३ बार संशोधन होने पर १६८२ में संविधान अधिनियम बना । इस संविधान में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का ब्रिटेन के संविधानों का समन्वय है । संघीय प्रतिमान, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका द्वारा और संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था ब्रिटेन से, कनाडा के संविधान ने ग्रहण की है ।

१६८२ संविधान अधिनियम के पूर्व कनाडी नागरिकों के अधिकार और आजादी के लिखित संवैधानिक अधिकार नहीं थे । किन्तु परम्परा से ये अधिकार और आजादी थी । कनाडा के संविधान १६८२ ने मौलिक स्वातंत्र्य का प्रावधान प्रस्तुत किया । इसमें आस्था, सोच आदि का स्वातंत्र्य सुनिश्चित किया गया । समानता का अधिकार भी स्वीकार किया गया, जिसमें मत मतान्तर या धर्म के कारण कोई अन्तर नहीं रहेगा । तार्किक सीमा के अन्तर्गत समानता स्वीकृत की गयी जो लोकतांत्रिक और आजाद समाज में हो सकती है ।

कोरिया (दक्षिणी)

कोरिया दो सहत्र वर्षों से अधिक अखंडित इतिहास का देश है । प्राचीन इतिहास में इस देश में बौद्ध धर्म ने प्रवेश किया था । यह देश बौद्ध धर्मावलम्बी रहा है।

बीसवीं शती में द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् जापान के अधिकार से कोरिया (दक्षिणी) को १५ अगस्त सन् १६४५ में मुक्त करा दिया गया । सितम्बर सन् १६४५ में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का शासन स्थापित हुआ ।

सन् १६४८ जुलाई में दक्षिण कोरिया का संविधान घोषित हुआ ।

संविधान की उद्देशिका में कोरिया (दक्षिणी) ने अपने गरिमापूर्ण इतिहास का प्रसंग उपस्थित किया गया है । यह भी उद्देश्य प्रकट किया गया कि, प्रत्येक व्यक्ति को राजनीति, अर्थनीति समाज और संस्कृति के क्षेत्र में अपनी क्षमता के अनुसार विकास का अबसर प्रदान किया जायेगा ।

अनुच्छेद ६ में किन्हीं धार्मिक विश्वासों आदि के कारण किसी भेदभाव का निषेध किया गया ।

अनुच्छेद १७ में सभी नागरिकों को आस्था का स्वातंत्र्य स्वीकृत हुआ ।

अनुच्छेद ३० में सभी नागरिकों को उत्तम मानवीय जीवनयापन का अधिकार स्वीकार किया गया है ।

कोरिया (उत्तरी) लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र

कोरिया (उत्तरी) द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् सन् १९४५ में रूस के नियंत्रण में आया । इसके कारण साम्यवाद से प्रभावित संविधान की रचना हुई ।

सन् १९७२ में नया संविधान निर्मित हुआ । इसके अनुच्छेद १ में कोरिया (उत्तरी) एक स्वतंत्र समाजवादी राज्य घोषित किया गया ।

संविधान के अध्याय - ३ के अनुच्छेद ३८ में अतीत के इतिहास से सम्बन्ध तोड़ा गया । जीवन के सभी क्षेत्रों में नयी समाजवादी जीवन शैली को प्रविष्ट करने का प्रावधान किया गया ।

अनुच्छेद ५४ में सभी नागरिकों को पांथिक या धार्मिक स्वातंत्र्य का अधिकार दिया गया, और साथ ही पंथ या धर्म के निषेध के प्रचार का भी स्वातंत्र्य दिया गया।

साम्यवादी जीवन पद्धति पुराने पंथ या धर्म को अस्वीकार कर, एक भौतिकवादी जीवन पंथ को आरोपित करने में अग्रसर रही है ।

चाइल

सोलहवां शताब्दी में दक्षिण अमेरिका का चाइल स्पेनिश साम्राज्य का अंग बन गया ।

सन् १८१८ में चाइल की स्वतंत्रता घोषित हुई । पश्चात् १८२२ में २४८ अनुच्छेद का महत्वपूर्ण संविधान बना । पुनः १८२८ में एक संविधान प्रवर्तित हुआ। काल प्रवाह में संविधान सृजित होते रहे, समाप्त हुए, पुनः संरचना की प्रक्रिया चलती रही । १९२५ का संविधान अधिक काल तक जीवित नहीं रहा । १९७३ सितम्बर में राजनीतिक क्रान्ति से सत्ता परिवर्तित हो गयी । १९८० में नया संविधान बना । इसके प्रथम अनुच्छेद में व्यक्ति को स्वतंत्र और समान, गौरव तथा अधिकारों के संदर्भ में घोषित किया गया ।

अनुच्छेद ९ में आतंकवाद के किसी भी रूप को मानव अधिकारों के विरुद्ध बताया गया ।

अनुच्छेद १९ (२) में विधि के समक्ष समानता का प्रावधान है । इसी अनुच्छेद (६) में चेतना और पांथिक चरित्र की स्वतंत्रता की घोषणा है । पांथिक प्रतिष्ठान चर्च को बना और चला सकते हैं ।

चीन

चीन में सनयात सेन की कुमिनतांग राज्य शक्ति की मुख्य भूमि में पतन (१९४९) से एक नये इतिहास और नये चीन का शुभारम्भ बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ।

नवचीन में साम्यवादी पार्टी के हाथों में समस्त राजनीतिक तथा सैन्य शक्ति रही है । यह साम्यवादी प्रतिमान रूस की पद्धति से विलग रहा है । चीन, रूस का उपग्रह नहीं बना । इसने नये जीवन-चिन्तन की शोध की । इस कारण चीन के राजनीतिक या सामरिक स्तर से अधिक जिज्ञासा का विषय उसके आन्तरिक जीवन की संरचना है ।

चीन में साम्यवादी संविधान प्रथम बार सितम्बर १६५४ में लागू हुआ । पुनः १६७८ में दूसरे नये संविधान काप्रवर्तन हुआ । प्रथम संविधान में समस्त देश की एकता, अखंडता, महान समाजवादी राज्य की संरचना तथा मानवीय प्रगति और शान्ति की उद्देश्यपूर्ण घोषणा की गयी थी । स्तर-स्तर समाजवाद की संरचना, प्रथम संविधान का अभिधेय था । रूस से भिन्न, पौलैंड तथा यूगोस्लाविया आदि की भांति एक नयी समाजवादी पद्धति की खोज चीन में की गयी । चीन कम्युनिस्ट पार्टी के नेता मावो की कल्पना लेनिन - स्टालिन की कट्टरता से भिन्न थी । मावों के सोच में वैचारिक विविधता का प्रावधान था । किन्तु यथार्थ में या व्यवहार में दूसरी कथा थी । वैचारिक मतभेद का कोई अवकाश चीन में मान्यता प्राप्त नहीं कर सका ।

मावो की चिन्ता थी कि, देश में आधुनिकता, आर्थिक उन्नति और शासन तंत्र के विकास की गति से सैद्धान्तिक तेजस्विता क्षीण न हो जाये । मावो ने सामाजिक शिक्षा के आन्दोलन का शुभारम्भ १६६२ में किया । १६६६ में इसका सामंजस्य चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति की मुख्य धारा से हो गया । यह क्रान्ति विचार परिवर्तन की सतत प्रक्रिया का संचालन था । किन्तु यह मावों के विरोधियों के समापन में सीमित हो गयी थी । इस क्रान्ति ने चीन के बौद्धिकों को संशोधनवादी, और साम्यवादी पद्धति के शत्रुओं की संज्ञा दी ।

सांस्कृतिक क्रान्ति के लाल रक्षकों ने साम्यवादी दल के ऊपर अपना प्रभुत्व स्थापित किया । लाल रक्षकों ने शासन के कार्यालयों पर भी आक्रमण किया, और बड़े पैमाने पर तहस-नहस प्रारम्भ किया । १६६७ में यह विध्वंस अपने उत्कर्ष पर आ गया था । मावो ने तभी सेना को लाल रक्षकों को संयमित करने का आदेश दिया । १६६८ में मावो की पत्नी के नेतृत्व में लाल रक्षकों ने पुनः हिंसक आन्दोलन किया । किन्तु इसी आन्दोलन में लाल रक्षकों की राजनीतिक मृत्यु हो गयी । सांस्कृतिक क्रान्ति के निर्माताओं को दंडित किया गया । राजनीति में सेना की शक्ति बढ़ती गयी । मावों की इस उक्ति को, कि पार्टी बन्दूकों पर नियंत्रण करेगी और बन्दूकों को पार्टी पर निमंत्रण की अनुमति नहीं होगी, सांस्कृतिक क्रान्ति ने झुठला दिया था । सांस्कृतिक क्रान्ति मार्क्स-लेनिन के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं थी, और न यह चीन के यथार्थ के निकट थी । इसका पतन हो गया ।

सांस्कृतिक क्रान्ति के उथल पुथल के पश्चात् भी मावो विजयी हुआ । मावो की सांस्कृतिक क्रान्ति की जो भी कुछ उपलब्धियां थी, और समाजवाद की नींव मजबूत करने के लिए, नये संविधान निर्मित करने का निश्चय किया गया । किन्तु सितम्बर १६७६ में मावो का शरीरान्त हो गया ।

साम्यवादी देशों के संविधान अधिकांश में घोषणा पत्रक हैं। चीन का संविधान भी घोषणापत्रक है। नीतिगत संकल्पों का दस्तावेज चीन का संविधान है। इस संविधान में १०६ अनुच्छेद हैं। सामान्य मनुष्य की भाषा में, जिसे मेहनतकश सरलता से समझ सके, चीन के संविधान की संरचना की गयी थी। मार्च १९५४ में यह प्रसारित हुआ था। विभिन्न पक्षों और जन संगठनों में इस पर वाद विवाद के निष्कर्षों के आधार पर जून १९५४ में पुनः दूसरे संशोधित संविधान का प्रसारण हुआ। इस द्वितीय प्रसारण पर भी वाद विवाद हुआ। सितम्बर १९५४ में तीसरा प्रारूप, विभिन्न सुझावों के आधार पर निश्चित हुआ। संविधान के स्तर पर अन्तिम रूप में यह स्वीकृत किया गया।

इस संविधान में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को प्रकाशित तथा प्रतिबिम्बित किया गया। यह एक राजनीतिक घोषणा पत्र था। इसमें राज्य शक्ति के बुनियादी सिद्धान्तों की घोषणा की गयी थी। सैनिक संगठन तथा आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक और विदेश नीतियों की अभिव्यक्ति की गयी थी। एक समाजवादी समाज के विकास के लिए संविधान की स्वीकृति थी। इसके लिए संविधान संक्रान्तिकालीन व्यवस्था थी।

चीन के संविधान के ८७ अनुच्छेद में सभी नागरिकों को राजनीतिक स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, प्रेस का स्वातंत्र्य, संस्था निर्मित करने का स्वातंत्र्य आदि का प्रावधान भी है। इस विविध स्वातंत्र्य का सहज निष्कर्ष उपासना पद्धति का स्वातंत्र्य भी है। इस प्रकार सम्प्रदाय या पंथ निरपेक्षता का प्रावधान चीनी संविधान में माना जा सकता है।

चीन के १९५४ के संविधान में अनुच्छेद ८८ महत्वपूर्ण है। धार्मिक या पांथिक विश्वासों के स्वातंत्र्य का प्रावधान इसमें है। किसी भी उपासना पद्धति की छूट है। चीन में मस्जिद और गिरजाघर हैं। किन्तु वहाँ जाने वाले बहुत कम हैं। चीन सरकार का दावा रहा है कि, उसने इन उपासना स्थलों के संरक्षण और मरम्मत पर पर्याप्त धन उदारता से व्यय किया है। अधिकांश चीनी नागरिक बौद्ध सम्प्रदाय के हैं।

मार्च ७८ में चीन के नये संविधान में भी उपासना स्वातंत्र्य, शिक्षण स्वातंत्र्य, समानता का स्वातंत्र्य आदि का प्रावधान है। किन्तु साम्यवादी पद्धति में इसकी सीमायें हैं। संविधान के अनुसार किसी भी नागरिक को, किसी भी उपासना पद्धति के स्वातंत्र्य के अधिकार के साथ उपासना करने या न करने का भी अधिकार है। (अनुच्छेद ४६) चीन में बौद्ध अधिक होने पर नास्तिक वृति का आधिक्य रहा है।

चेकोस्लोवाक गणतंत्र

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त चेकोस्लोवाक गणतंत्र नवम्बर १९१८ में अस्तित्व में आया। चेक और स्लोवकी के अपने पृथक-पृथक इतिहास और सभ्यतायें रही हैं। दो विभिन्न राष्ट्रवादी सत्ता, एक राजनीतिक समानता के स्तर पर स्थापित हो गयी। बीसवीं शती के दो महायुद्धों के मध्य पूंजीवादी लोकतांत्रिक राज्य के रूप में

यह गणतंत्र था । द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् यह देश साम्यवादी बन गया । साम्यवादी दल का वर्चस्व स्थापित होकर नये संविधान की घोषणा हुई । इस संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में आस्था केवल समाजवादी संरचना पर थी । राज्य समाजवादी नैतिकता के नाम पर अन्य मानवीय मूल्यतिरोहित हैं । समाजवाद-साम्यवाद एक नये पंथ के रूप में स्पष्ट है । नागरिक स्वातंत्र्य, वैचारिक स्वातंत्र्य, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य आदि सभी कुछ साम्यवादी मूल्यों के बंधन में हैं । परम्परागत पंथ सापेक्ष देशों की तुलना में साम्यवादी देश नये पंथ-सापेक्ष वर्ग के हैं । इन देशों में साम्यवाद या वैज्ञानिक समाजवाद अपरिहार्य राजधर्म है ।

नवम्बर १७ सन् १६८६ की क्रान्ति ने साम्यवादी या कम्युनिस्ट शासन को उखाड़ फेका । चेक कम्युनिस्ट पार्टी की अगुवा भूमिका संविधान से हटा दी गयी । इस देश का नाम चेक और स्लोवाक संघीय गणराज्य हो गया । जून १६६० में स्वतंत्र संसदीय चुनाव सम्पन्न हुए । इसमें कम्युनिस्ट पार्टी के पराभव से साम्यवादी राजधर्म का समापन हो गया । एक संघीय सरकार सिविक फोरम, पब्लिक अगेंस्ट वायलेंस और क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक मूवमेंट के गठजोड़ की सरकार स्थापित हो गयी । गिरजाघरों के घंटे फिर मुखर हो गये ।

१ जनवरी ६३ से चेक और स्लोवाक पृथक-पृथक राज्य बन गये ।

जमैका

१५वीं शती के अन्त में स्पेन के नाविकों ने इसकी खोज की थी । झरनों का बाहुल्य होने के कारण स्पेनिश भाषा में इसका नाम जमैका-झरनों का देश-पड़ गया ।

१६५५ में ब्रिटिश सेनाओं ने जमैका पर आक्रमण किया और अधिकृत कर लिया १६६१ में इंग्लैण्ड के बादशाह चार्ल्स द्वितीय ने वहां बसने वालों को ब्रिटेन की प्रजा घोषित किया था ।

१६६३ में प्रथम विधान सभा बनी ।

१६७० में मैड्रिड संधि द्वारा स्पेन ने ब्रिटेन के अधिकार को स्वीकार किया ।

१८८४ में विधान सभा चयनित प्रतिनिधियों और नामांकित सदस्यों की बनी ।

१६४४ में वयस्क मताधिकार स्वीकृत हुआ । इसी के आधार पर पूर्णतया प्रतिनिधि मूलक सदन बना ।

१६५३ में तदनुकूल संविधान संशोधन हो गया ।

१६६२ में कामनवेल्थ का स्वतंत्र सदस्य जमैका बन गया । नया संविधान जुलाई १६६२ में घोषित हुआ ।

अनुच्छेद १३ के अनुसार मूल अधिकार और स्वातंत्र्य, नागरिक को प्राप्त है । किसी भी आस्था से कोई भेदभाव नहीं है । आस्था, अभिव्यक्ति और संगठन का स्वातंत्र्य उपलब्ध कराया गया है ।

अनुच्छेद १७ में मानव के सम्मान के विरुद्ध प्रताड़ना आदि का निषेध है। अनुच्छेद २१ में आस्था के स्वातंत्र्य को स्पष्ट किया गया है। इस स्वातंत्र्य का अभिप्राय है कि, विचार स्वातंत्र्य, पांथिक स्वातंत्र्य और सम्प्रदाय परिवर्तन का स्वातंत्र्य। धर्म प्रसार या पूजा पद्धति प्रचार का वैयक्तिक या सामुदायिक जीवन में स्वतंत्रता की व्यवस्था है।

स्वेच्छा के अतिरिक्त किसीको धर्म-पंथ या मतवाद के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। राज्य से आंशिक या पूर्ण अनुदान प्राप्त शैक्षणिक, संस्थान को निषिद्ध नहीं किया जायेगा। किसी भी व्यक्ति को अपने धार्मिक या पांथिक विश्वासों के अतिरिक्त शपथ ग्रहण करने को बाध्य नहीं किया जायेगा।

जर्मनी (दि जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक)

द्वितीय विश्व युद्ध के पहलेजर्मनी का गरिमापूर्ण अतीत रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इसके स्वातंत्र्य का अंत हो गया। जर्मनी के दो टुकड़े हो गये और यह राज्य अस्तित्व में आया। इसका प्रथम संविधान १९४८ में बना। सन् १९६८ में द्वितीय संविधान निर्मित हुआ। लोकतांत्रिक केन्द्रवाद इस पूर्वी जर्मनी की समाजवादी उपलब्धि थी।

इसको सन् १९५४ में रूस ने सार्वभौम सत्ताधारी राज्य घोपित किया।

१९५५ में पूर्वी जर्मन साम्यवादी पार्टी की पंचम कांग्रेस में पूंजीवाद और समाजवाद के मध्य संक्रमण काल को समाप्त घोषित किया गया। समाजवाद की निर्मिति को पूर्ण कहा गया।

१९६८ के संविधान की उद्देशिका में फासिस्ट विरोधी सामाजिक न्याय और शान्ति आदि की घोषणा की गयी। अनुच्छेद १ में मार्क्सवादी लेनिनवादी समाजवाद को यथार्थ बनाने का संकल्प है।

१९७४ के संविधान के अनुच्छेद ३ में समाजवादी समाज के अभ्युदय के लिए राजनीतिक जनवादी संगठन तथा समग्र शक्तियों के एक जुट होकर कार्य करने का प्रावधान है। अनुच्छेद ४ में सभी शक्तियों द्वारा जन कल्याण, शन्तिपूर्ण जीवन, जीवन स्तर, मानव के स्वतंत्र विकास, व्यक्ति के गौरव का रक्षण आदि की अपेक्षा अभिव्यक्त की गयी है।

अनुच्छेद १८ में समाजवादी संस्कृति के रक्षण का प्रावधान है। जिससे शान्ति, मानवतावाद और समाजवादी समाज का विकास हो सके।

अनुच्छेद २० में चिन्तन या धार्मिक कारणों आदि से अधिकारों और कर्तव्यों में कोई अन्तर न होने की घोषणा है। सभी कानून के समक्ष बराबर हैं।

अनुच्छेद ८६ में समाजवादी समाज में सर्वहारा या श्रमिक को राजनीतिक अधिकार देने का प्रावधान है। न्याय, सख्य और मानवता की गारंटी है।

जर्मनी (फेडरल रिपब्लिक)

फेडरल रिपब्लिक सन् १६४६ में जर्मनी का नया संविधान बना। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में मनुष्य की गरिमा की घोषणा की गयी। संविधान में मानवता के सम्मान और संरक्षण का प्रावधान है।

अनुच्छेद २ में स्वतंत्र व्यक्तित्वके विकास की गारंटी है।

अनुच्छेद ३ विधिक समानता का प्रावधान है।

अनुच्छेद ३ में ही आस्था और विश्वास के स्वातंत्र्य का संरक्षण है। इसमें आस्था, विश्वास, पांथिकया सैद्धान्तिक स्वातंत्र्य का प्रावधान है।

अबाध रूप से पांथिक उपासना का स्वातंत्र्य है।

अनुच्छेद १०३ मृत्युदंड की समाप्ति की घोषणा है।

बीसवीं सती के नवम दशक का इतिहास साक्षी है कि, दोनों जर्मनी में एकीकरण की प्रक्रिया ने संवैधानिक एकता का मार्ग प्रशस्त किया है। पार्थक्य की प्रतीक बर्लिन दीवाल की धज्जियां उड़ गयीं।

जापान

प्रशान्त महासागर में चीन के उत्तर पूर्व में एक विस्तृत द्वीप समूह के रूप में उन्नीसवीं शती के अन्त में जापान महाशक्ति के रूप में उभरा।

मध्यकालीन शताब्दियों में यूरोपीय व्यापारियों, साम्राज्यवादियों और ईसाईयों ने जापान को अधिकृत करने का प्रयास किया। सोलहवीं शती में ईसाई मिशनरियों ने सहस्त्रों जापानियों को ईसाई बनाया, और सैकड़ों चर्च जापान में खड़े किये। सन् १५८६ में जापान सरकार ने ईसाई धर्म के प्रसार पर रोक लगा दी। सहस्त्रों जापानी ईसाइयों को प्राण दंड दिया गया। पांथिक प्रतिबन्ध से यूरोपीय जातियों के विस्तार पर रोक लग गयी।

जापान ने सन् १८७१ में सामन्ती पद्धति को समाप्त किया। सन् १८८६ में नूतन शासन विधान या संविधान की व्यवस्था की गयी। इसका निर्माण यूरोपीय पद्धतियों के अध्ययन के उपरान्त किया गया। तत्कालीन प्रशिया के शासन विधान को अनुकूल समझा गया। १८८६ के शासन विधान से जापान के सम्राट को बहुत अधिकार दिये गये। जापानी संसद के दो सदन बने। एक प्रतिनिधि सभा में सर्व साधारण मतदाताओं द्वारा प्रतिनिधि चयनित करने का प्रावधान स्वीकृत हुआ। विधि के समक्ष समता, आस्था-अभिव्यक्ति आदि की स्वतंत्रता के साथ-साथ पांथिक या धार्मिक कारणों से भेदभाव के निषेध की व्यवस्था को मान्यता प्रदान हुई।

नूतन समाज और शासन पद्धति के प्रवर्तन से जापान बीसवीं शती के शुभारम्भ में महाशक्ति के रूप में इतिहास में स्थापित हो गया। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध में साम्राज्यवादी शक्तियों के संघर्ष में अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन करके भी १६४५ में जापान पराजित हो गया।

१९४७ में अमेरिकी संविधानविदों ने पराभूत जापान को व्यवस्थित करने के लिए एक नया संविधान आरोपित किया ।

जापानी संविधान के अनुच्छेद १९ में सोच और आस्था के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । बीसवें अनुच्छेद में पांथिक या धार्मिक मतवाद के स्वातंत्र्य का अधिकार है । किसी पांथिक या साम्प्रदायिक संगठन को राज्य से विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है, और न कोई विशेष राजनीतिक अधिकार है ।

किसी भी नागरिक को पांथिक या धार्मिक समारोह आदि में भाग लेने को विवश नहीं किया जा सकता ।

राज्य या उसका कोई भी विभाग पांथिक या धार्मिक गतिविधियों या पांथिक, धार्मिक शिक्षा से विलग रहेगा ।

जापान को सेकुलर, राज्य कहा जाता है । यह प्रावधान किया गया कि राज्य द्वारा किसी पांथिक या धार्मिक मतवाद की शिक्षा नहीं दी जायेगी । राज्य द्वारा किसी धार्मिक मतवाद को विशेष वरीयता नहीं दी जा सकती ।

जाम्बिया

१७वीं शती के शुभारम्भ में पोर्तगीज ने जाम्बिया से (१६१६ १८६३) सम्पर्क तथा सम्बन्ध जोड़कर शोषण तथा शासन किया । १८८६ से ब्रिटिश साउथ अफ्रीकी कम्पनी ने जाम्बिया के दोहन का कार्य किया । १६५१ में अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस की निर्मित हुई । अफ्रीकी देशों के स्वातंत्र्य के लिए संघर्ष में इसका नेतृत्व इतिहास का महत्वपूर्ण मोड़ है । १६५३ में अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस के सिक्रेटरी जनरल केनेथ कौंडा बने थे । केनेथ कौंडा के नेतृत्व में कड़े संघर्ष के उपरान्त ब्रिटेन की संसद ने जाम्बिया के स्वातंत्र्य का अधिनियम १९६४ में पारित किया । स्वतंत्रता सेनानी केनेथ कौंडा प्रथम राष्ट्रपति बनें ।

जाम्बिया का नया संविधान सन् १९७३ में प्रवर्तित हुआ । इस संविधान की विशेषता, भागीदारी लोकतंत्र और मानवतावादी दर्शन की घोषणा है । पूंजीवाद से मानवतावाद की दिशा में गतिशील होने का संकल्प संविधान की उद्देशिका में है । इस संविधान की विशेषता है कि, केवल एक दलीय व्यवस्था का प्रावधान अनुच्छेद ४ में है। जाम्बिया के संविधान अनुच्छेद १५ में किसी धार्मिक समुदाय या संस्था को धार्मिक शिक्षा के लिए निषेध नहीं किया गया है । अपने पांथिक विश्वासों के अनुकूल शपथ ग्रहण करने का स्वातंत्र्य है । इसके पूर्व अनुच्छेद १३ में आस्था, अभिव्यक्ति, संगठन आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । किन्तु अनुच्छेद १५ में शासन द्वारा यूनाइटेड नेशनल इंडपेंडेन्स पार्टी की नीतियों के अनुरूप धार्मिक नीतियों की रचना का स्पष्टीकरण भी है ।

भागीदारी लोकतंत्र और मानवतावादी जीवन दर्शन के लिए संकल्पित राज्य शक्ति, आस्था-अभिव्यक्ति तथा विश्वास और विवेक के स्वातंत्र्य का जब प्रावधान करती है, तब विधि-विधानों को मर्यादा के अनुकूल धार्मिक या पांथिक स्वातंत्र्य भी

प्रदान करती है । किन्तु एक दलीय व्यवस्था स्वातंत्र्य पर एक सीमा तक नियंत्रण ही करती है । इस प्रकार जाम्बिया में पांथिक स्वातंत्र्य पर एक अंकुश लगाया गया ।

१९९१ के अन्त में कैनेथ कौंडा के नेतृत्व का पराभव हो गया । किन्तु संविधान में तत्सम्बन्धी परिवर्तन नहीं हुआ ।

फिनलैंड

फिनलैंड यूरोप के उत्तर पूर्व में है ।

बारहवीं शती में फिनलैंड, स्वीडन के अधिकार क्षेत्र में था । उन्नीसवीं शती के शुभारम्भ (१८०८-१८०९) में रूस ने फिनलैंड विजित कर लिया । रूस ने (१८०९) में फिनलैंड को स्वशासी इकाई बना दिया । १८६३ से जारशाही ने फिनलैंड की स्वतंत्रता को सीमित करने का प्रयास किया ।

१९१७ की बोलशेविक क्रान्ति के पश्चात् फिनलैंड स्वतंत्र सत्ताधारी राज्य बन गया । सन् १९१९ फरवरी में फिनलैंड के संविधान अधिनियम का प्रवर्तन हुआ। सन् १९३४ में 'लीग आफ नेशसन्स' का फिनलैंड सदस्य बना । द्वितीय महायुद्ध की घटनाओं से प्रभावित फिनलैंड सन् १९५३ में यूनो का सदस्य बना ।

१९७० में फिनलैंड के १९१९ के संविधान की पुनः समीक्षा की गयी । सन् १९७२ में इसमें संशोधन किये गये ।

अनुच्छेद ५ में सभी नागरिकों को कानून के समक्ष समता प्रदान की गयी । अनुच्छेद ८ में नागरिकों को उपासना का स्वातंत्र्य प्रदान किया गया । धार्मिक समुदायों के परिवर्तन के अधिकार की भी व्यवस्था की गयी ।

अनुच्छेद ९ की व्यवस्था के अनुसार, नागरिक के किसी भी पांथिक या धार्मिक वर्ग में होने या न होने से नागरिक अधिकार तथा कर्तव्य में कोई अन्तर नहीं होगा ।

संविधान के नवम् अध्याय अनुच्छेद ८३ में पांथिक धार्मिक संस्थान का उल्लेख है, कि लूथरन चर्च विधि सम्मत रहेगी ।

अन्य धार्मिक समुदाय विधि विधान से नियंत्रित रहेंगे । विधि-विधान की सीमा के अन्तर्गत नये धार्मिक समुदाय स्थापित होने की भी व्यवस्था है ।

ताइवान (रिपब्लिक आफ चाइना)

ताइवान (चीन) का सहस्त्रों वर्षों का इतिहास है । १८९५ के चीन जापान युद्ध में फारमोसा या ताइवान जापान के अधिकार में आ गया । चीन में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रवादी और साम्यवादी शक्तियों के संघर्ष के परिणाम में राष्ट्रवादी, चीन की मुख्य भूमि से पलायनकर, फारमोसा चले गये । इस प्रकार दो चीन बन गये । चांग काई शोक, १९७२ में पांचवीं बार ताइवानया चीन के राष्ट्रपति चुने गये । यह इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व ५ अप्रैल १९७५ को समाप्त हो गया । चीन का यह गणतंत्र ताइवान तक सीमित रहा ।

प्रस्तुत अध्ययन दिसम्बर २५ सन् १९४७ से प्रभावी संविधान के आधार पर है । इसमें फारमोसा के अतिरिक्त चीन की मुख्य भूमि पर दावा किया गया । किन्तु फारमोसा या ताइवान तक यथार्थ में इसकी सीमायें रहीं ।

अध्याय - २ के ७वें अनुच्छेद में सभी नागरिकों को पांथिक आदि भेद-भाव से मुक्त घोषित किया गया है । अनुच्छेद ८ के अनुसार सभी की वैयक्तिक स्वतंत्रता का प्रावधान है । अनुच्छेद १३ में नागरिक को पांथिक विश्वास का स्वातंत्र्य है ।

नाइजर

फ्रांसीसी साम्राज्यवादियों ने १९०० के लगभग चाडझील के आस-पास अधिकार कर नाइजर की स्थापना की । सन् १९२१ तक फ्रांसीसी साम्राज्यवादी पेरिस से शासन करते रहे । इसी वर्ष स्थानीय प्रशासन भी आंशिक रूप से प्रभावित हुआ । नवम्बर १९६० में नाइजर पूर्ण स्वतंत्र हुआ ।

१९६० में इसका संविधान प्रभावी हुँआ । यह संविधान सन् १९६१ मार्च, ६४ अगस्त तथा सितम्बर ६५ में संशोधित हुआ । आन्तरिक विद्रोह की स्थिति भी देश में चलती रही और राज्य शक्ति अस्थिर रही ।

संविधान के अनुच्छेद २ में गणतंत्र को सेकुलर घोषित किया गया । अनुच्छेद ६ के द्वारा विधि के समक्ष समता स्थापित की गयी । राज्य द्वारा सभी पांथिक विश्वासों को सम्मान प्रदान किया गया ।

पोलैण्ड

पोलैण्ड के इतिहास में इसके अस्तित्व का प्रश्न महत्वपूर्ण रहा है । दसवीं शती से पोलैण्ड के तृतीय विभाजन (१७९५) तक राजाशाही स्थापित रही है । १७९५ से १९१८ तक पड़ोसी राष्ट्रों-रूस, प्रशिया तथा आस्ट्रिया के अधिकार में पोलैण्ड बना रहा । प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ तक इसका अस्तित्व बना रहा। १९३९ में जर्मन सेनाओं ने पोलैण्ड पर अधिकार कर लिया । १९४५ में द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् पोलैण्ड रूसी प्रभाव में समाजवादी राज्य हो गया ।

१७९१ में पोलैण्ड का प्रथम लिखित संविधान बना । प्रथम नियमित संविधान मार्च १९२१ में अस्तित्व में आया ।

१९४७ में पोलैण्ड का लघु संविधान बना ।

१९५२ जुलाई में इसका समाजवादी संविधान प्रवर्तित हुआ ।

१९५३ में वारसा संविधान पर हस्ताक्षर हुए ।

१९७२ में कई अनुच्छेदों में संशोधन किये गये ।

संविधान के अनुच्छेद ६९ द्वारा पंथिक या धार्मिक विषयों में समानता के अधिकार को समाविष्ठ किया गया । प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी पंथ आदि के

विशेषाधिकार को, या अधिकार प्रतिबन्धन को विधिक प्रताड़ना का विषय माना गया। पांथिक धार्मिक मतभेद से घृणा आदि के प्रसार को निषिद्ध किया गया ।

अनुच्छेद ७० के द्वारा नागरिक को पांथिक या धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी । इसी अनुच्छेद से चर्च और राज्य के संबंधों को विधिक आधारों पर सुनिश्चित करने के प्रावधान हैं । किन्तु चर्च और राज्य अपने-अपने पृथक अस्तित्व के लिए स्वतंत्र हैं । वस्तुतः पोलैण्ड, रूसी और प्रोटेसटेन्ट चर्च से पृथक, रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय से प्रभावित है । वारसा पैक्ट के समाप्त होने पर रोमन कैथोलिक चर्च का सामान्य जनजीवन पर अत्यधिक प्रभाव इतिहास में स्पष्ट हो गया ।

पोलैण्ड के संविधान की भूमिका में जिन समाजवादी आदर्शों को स्थापित किया गया, उनका कोई विरोध चर्च की मान्य सत्ता से प्रकट नहीं है ।

फ्रांस

विश्व इतिहास में राजनीतिक क्रान्तियों का 'मक्का' फ्रांस कहा जाता है । फ्रांस की राज्य क्रान्ति (१७८९) विश्व इतिहास में क्रान्तिकारी मोड़ है । उस समय से फ्रांस में कम से कम पन्द्रह संविधान बनें । संविधानों के तुलनात्मक अध्ययन से महत्वपूर्ण सामग्री इतिहास को उपलब्ध हो सकती है । प्रस्तुत विश्लेषण में १९५८ अक्टूबर ४ को प्रवर्तित संविधान को आधार बनाया गया है । इसमें १९६०-१९६२ तथा १९६३ के संशोधन भी सम्मिलित हैं ।

उद्देशिका में लोकतांत्रिक विकास के संदर्भ में स्वातंत्र्य, समानता और सख्य भाव को स्वीकृति दी गयी । अनुच्छेद २ में फ्रांस अविभाज्य, सेकुलर, लोकतांत्रिक गणतंत्र घोषित है । सभी विश्वासों के सम्मान और स्वातंत्र्य का प्रावधान है । अनुच्छेद २० में ही जनता की सरकार, जनता के लिए और जनता के द्वारा का सिद्धान्त निरूपित है ।

अनुच्छेद ७७ के अनुसार पंथ या धर्म आदि की विविधता के बावजूद सभी नागरिक कानून के समक्ष समानता के अधिकारी रहेंगे ।

टोगो गणतंत्र

टोगो रिपब्लिक अफ्रीका का एक छोटा देश, १२वीं - १४वीं शताब्दी के मध्य निष्क्रमणार्थियों ने बसाया था । पन्द्रहवीं शती से पोर्तगीज खोजी आने प्रारम्भ हो गये थे। १८४० में जर्मन मिशनरी और व्यापारी आये, तथा अंग्रेजी में टोगोलैंड बन गया । १८८४ में जर्मनी ने दौत्य सम्बन्ध स्थापित किये । १८८५ के बर्लिन सम्मेलन ने इस देश की संरक्षित रूप में मान्यता दी । १९१४ के प्रथम विश्व युद्ध में जर्मन हार गये, और इस देश का ब्रिटेन और फ्रांस से पृथक-पृथक अधिकार में विभाजन हो गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् टोगो लैंड को यूनो की संरक्षता में फ्रांस ने व्यवस्थित किया । १९५६ मेंटोगो लैंड को स्वायत्तशासी गणतंत्र, फ्रांस ने घोषित किया। ब्रिटिश टोगो लैण्ड १९५६ में घना में मिल गया ।

१६५८ में यूनो का सदस्य बन गया। टोगोलैण्ड में कई संविधान बने। राजनीतिक उलटफेर के कारण कई संविधान समाप्त हुये। १६७६ में तीस दिसम्बर को नया संविधान बना। नये चुनाव हुये। १६८० में राष्ट्रीय सभा का जनवरी ११ से शुभारम्भ हुआ।

संविधान के अनुच्छेद १ में टोगोलैण्ड को सेकुलर घोषित किया गया। अनुच्छेद ४ में सभी नागरिकों को अभेद रूप से कर्तव्य और अधिकार प्रदान किये गये हैं। आस्था और विश्वास का स्वातंत्र्य संविधान ने उपलब्ध कराया है।

वर्मा(म्यंमार)

ग्यारहवीं शताब्दी (१०४४) में अनिरूद्ध नाम के व्यक्ति ने पेगान राज्य की स्थापना की। वर्मा का यह स्वर्ण युग कहा जाता है। सन् १२८७ में मंगोल कुबलाई खान ने इस राज्य पर अधिकार किया, जो १३०१ सन् तक स्थापित रहा। पश्चात् छोटे-छोटे राज्य वर्मा में बने रहे।

पन्द्रहवीं शती (१४३५) में इटालियन और पोर्तगीज उपनिवेशवादी वर्मा में आये।

सन् १५५१ में त्यूनगू राज्य की स्थापना हुई, और वर्तमान वर्मा का भूगोल इसके अन्तर्गत आया। सन् १७५२ में इस राज्य का अन्त हो गया। फ्रेंच और ब्रिटिश व्यापारी वर्मा में आ गये थे।

सन् १८२४ से १८८५ तक वर्मा और ब्रिटिश तीन युद्धों में संलग्न रहे। वर्मी स्वदेशी राज्य समाप्त हो गया, और अंग्रेजों का उपनिवेश स्थापित हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के कालखण्ड में वर्मा १६४२ से १६४५ तक स्वतंत्र हो गया था। अप्रैल १६४५ में वर्मा पुनः अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

४ जनवरी १६४८ को वर्मा स्वतंत्र हो गया, और इसका नया संविधान प्रवर्तित हुआ। वर्मा का इतिहास आन्तरिक विद्रोहों और साम्यवादी संघर्षों से आक्रान्त हो गया। जनरल ने विन के नेतृत्व में १६७४ में ४ जनवरी को नया संविधान स्थापित हुआ। एक समाजवादी गणतंत्र के रूप में वर्मा का अभ्युदय हुआ।

वर्मा के संविधान की उद्देशिका में समाजवाद की स्थापना का संकल्प है। अनुच्छेद २२ के द्वारा सभी को विधिक समानता प्रदान की गयी। अध्याय ग्यारह में नागरिकों के मूल भूत अधिकारों का प्रावधान किया गया। अनुच्छेद १८७ में पंथ आदि भेदों को अस्वीकार किया गया। अनुच्छेद १५६ में चेतना - चिन्तन के अधिकार स्वातंत्र्य की घोषणा है। इसी अनुच्छेद में पंथ और पांथिक संगठनों को राजनीतिक प्रयोग के निमित्त निषेध का प्रावधान है।

बेलजियम

१८३० में बेलजियम ने स्वतंत्र देश के रूप में यूरोप के मानचित्र में स्थान प्राप्त किया। १८१५ में विथना संधि से बेलजियम और हालैंड दोनों को मिलाकर

नीदरलैंड राज्य बनाया गया । १८३० में यूरोपीय महाशक्तियों ने लन्दन कान्फ्रेन्स द्वारा स्वतंत्र राज्य बनाया । इसमें कैथोलिक चर्च की भूमिका महत्वपूर्ण रही है ।

१८४६ में एक समाजवादी कांग्रेस ने समाजवादी मूल्यों के आधार पर एक कार्यक्रम बनाया । इसके आधार पर १८५० में शिक्षण संस्थाओं को प्रत्यक्ष रूप से राज्य निर्भर होने की, ओर चर्च के प्रभाव से मुक्त होने की प्रस्तावना थी । शिक्षण क्षेत्र में इसे सेकुलर नीति कहा गया । अन्त में प्रस्तावक सत्ता से हट गये । कैथोलिक चर्च की राजनीतिक भूमिका बेलजियम के संवैधानिक इतिहास में प्रभावी रही है । बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में समाजवादी शक्तियों से चर्च की चुनावी प्रतियोगिता चलती रही । १६२५ में समाजवादी चुनाव जीते । १६३२ में चुनाव कैथोलिक जीते । १६३६ के चुनाव में समाजवादी आगे बढ़े और कैथोलिक उनसे पीछे थे । १६४७ में चुनाव में क्रिश्चियन पार्टी को समाजवादियों से अधिक सीट प्राप्त हुई । किन्तु समाजवादी साझा सरकार बनी । १६५४-५८ सोशल क्रिश्चियन पार्टी पुनः हारी । १६५८ में सोशल क्रिश्चियन पार्टी की विजय हुई । १६६५ में सोशल क्रिश्चियन और समाजवादी साझा सरकार बनी । १६६५ में कुछ समय तक साझा सरकार रही । पुनः १६६८ में सोशल क्रिश्चियन पार्टी और समाजवादी पार्टी की साझा सरकार बनी । १६७२ में पुनः इन्हीं दलों की साझा सरकार बनी।

बेलियम संविधान (१६७१) के प्रावधान में भाषायी आधार पर क्षेत्रों का निर्धारण किया गया । फ्रेन्च, डच, बेलजियम और जर्मन भाषा भाषी प्रदेशों में बेलजियम विभाजित किया गया ।

संविधान के अनुच्छेद ६ के द्वारा सैद्धान्तिक और दार्शनिक स्वातंत्र्य तथा अधिकार दिया गया । अनुच्छेद ७ के द्वारा व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का प्रावधान किया गया । अनुच्छेद १४ में उपासना स्वातंत्र्य की व्यवस्था है ।

अनुच्छेद १६ के द्वारा किसी भी उपासना पद्धति में, राज्य के अधिकार को निषिद्ध किया गया ।

अनुच्छेद ६० में राजशाही को पैतृक अधिकार प्रदान किये गये । अनुच्छेद ६४ ने राजा की संवैधानिक सत्ता स्वीकार की ।

बेलजियम के संवैधानिक इतिहास में राजनीतिक संघर्ष, समाजवादी और पांथिक शक्तियों में होता रहा । किन्तु दोनों का अस्तित्व बना रहा और दोनों ने समझौते किये और साझा सरकार चलायी । यह महत्वपूर्ण है कि राजाशाही या नृपतंत्र में सैद्धान्तिक, दार्शनिक, पांथिक और भाषायी अधिकार तथा स्वातंत्र्य को संवैधानिक संरक्षण उपलब्ध हुआ । पांथिक आधार पर राजनीतिक दल निषिद्ध न होने का प्रावधान भी महत्व का है ।

मैक्सिको

मैक्सिको की प्राचीन सभ्यता समाप्त कर, १५२१ में स्पेन सर्वोपरि शासक बना।

१८१४ में मैक्सिको का प्रथम संविधान बना । इसके द्वारा नृपतंत्र या राजशाही समाप्त हो गयी । सन् १८२२ में फिर नया संविधान बनने का निर्णय हुआ। इस संविधान में सेकुलर शिक्षा और राज्य का पंथ दोनों घोषित किये गये । सन् १८३३ के सुधारों के अन्तर्गत आंशिक रूप से चर्च और राज्य शक्ति का पार्थक्य निश्चित किया गया । पश्चात् कई संविधान बने और समाप्त हुए । १८५३ में पंचम संविधान अधिक उदार बना । इसमें चर्च और राज्य के पार्थक्य का प्रावधान किया गया । १८६५ में एक अन्य व्यवस्था द्वारा कैथोलिक राजशाही की स्थापना हुई । १६१७ में छठा संविधान बना । इसमें परिस्थितिजन्य संशोधन होते रहे ।

१६४६ के संविधान द्वारा अनुच्छेद ३ में पांथिक स्वातंत्र्य की स्वीकृति देकर इसे प्रतिबंधित भी किया गया ।

अनुच्छेद २४ में प्रत्येक को अपनी रुचि के पांथिक विश्वासों और आचरणों को सम्पन्न करने का विधि सम्मत अधिकार दिया गया ।

मैक्सिको के संवैधानिक इतिहास में चर्च और राज्य के संघर्ष का कारण १६७२ के संशोधन द्वारा 'चेम्बर आफ डिप्टीज', जिसमें राष्ट्र के प्रतिनिधि प्रत्येक तीन वर्ष में चुने जाते हैं, अनुच्छेद २५ (vi) द्वारा, उसमें किसी पांथिक महन्त को प्रतिनिधित्व के अयोग्य घोषित किया गया ।

मंगोलिया

तेरहवीं शताब्दी के शुभारम्भ (१२०६) में चंगेज खान ने कुछ छोटे राज्यों को मिलाकर मंगोल राज्य की नींव डाली । किन्तु १४वीं तथा १५वीं शती में इसके तीन पृथक-पृथक भाग हो गये ।

सन् १६६१ में मंचू विजेताओं के अधिकारों में मंगोलिया चला गया ।

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध (१६११) में मंगोलिया स्वतंत्र हो गया । तभी यह पंथ सापेक्ष राज्य बना । राज्य ने बौद्ध धर्म को स्वीकृत किया । सन् १६१५ में मंगोलिया चीन के अन्तर्गत स्वशासित राज्य बना । सन् १६२१ जुलाई में मंगोलिया स्वतंत्र गणतंत्र बना । इसने पांथिक या धार्मिक शक्ति, राजनीति से पृथक कर दी थी ।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध (१६७६) में मंगोलिया राज्य का एक अधिकृत संविधान प्रवर्तित हुआ । रूस के साम्यवादी प्रभाव से, इसमें समाजवादी आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन की पुनर्रचना से, संविधान प्रेरित तथा प्रभावित है ।

संविधान की उद्देशिका में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के आधार पर नये राजनीतिक सामाजिक जीवन की संरचना की घोषणा है । अनुच्छेद २ में लोकतांत्रिक समाजवाद और अनुच्छेद १५ में मेहनतकश के सांस्कृतिक स्तर के उन्नयन का प्रावधान है । अनुच्छेद ८६ में पंथ या धर्म को शासन और शिक्षण से पृथक किया गया है । नागरिक को उपासना पद्धति का स्वातंत्र्य है । धर्म के विरुद्ध प्रचार का भी स्वातंत्र्य

इस अनुच्छेद में है । संविधान के ८७ अनुच्छेद में बुनियादी अधिकार, अभिव्यक्ति, प्रकाशन, संगठन आदि का भी स्वातंत्र्य है । मार्क्सवादी - लेनिनवादी परम्परागत धर्म या पंथ की चिन्ता से विलग रहे हैं, और एक नये राजपंथ को ही स्वीकृति दी है ।

मारीशस

मारीशस द्वीप हिन्द महासागर में अफ्रीकी तट के समीप है । सत्रहवीं शताब्दी (सन् १६३८) में फ्रांस के उपनिवेशवादियों ने इसका नामकरण किया । सन् १७१५ में मारीशस फ्रांस की एक व्यावसायिक कम्पनी के अधिकार में आ गया । सन् १७६२ में इस कम्पनी से फ्रांस सरकार ने क्रय किया । सन् १७८६ - फ्रांस के क्रान्ति - काल में मारीशस स्वशासी हो गया । सन् १८१४ की सन्धि के अनुसार मारीशस, ब्रिटेन को फ्रांस से प्राप्त हो गया ।

बीसवीं शती के विश्व युद्ध के पश्चात् मारीशस में सन् १६४७ में संविधान के अनुसार साक्षर को मताधिकार, तथा सन् १६५६ में वयस्क मताधिकार की स्थापना हुई ।

सन् १६६८ मार्च में मारीशस को स्वतंत्र व्यवस्था प्राप्त हो गयी । संविधान के अनुच्छेद ३ में मौलिक अधिकारों की घोषणा हुई । आस्था का स्वातंत्र्य, चिन्तन स्वातंत्र्य, पंथ का स्वातंत्र्य, पांथिक या धार्मिक विश्वास परिवर्तन का स्वातंत्र्य, उपासना या विचार पद्धति के स्वातंत्र्य की व्यवस्था की गयी । किसी भी पांथिक या धार्मिक संस्था को धार्मिक शिक्षण देने का भी प्रावधान है । अनुच्छेद १४ से किसी धार्मिक संस्था को अपने व्यय से शिक्षण संस्था के स्थापन का स्वातंत्र्य है । नवोदित देश अपनी परिस्थितियों के अनुकूल संवैधानिक व्यवस्था के औचित्य को स्वीकारते रहे हैं ।

मोजेम्बिक

मोजेम्बिक अफ्रीका के हिन्द महासागर के तट पर स्थित देश है । पन्द्रहवीं शती के अंत में सन् १४६८ में पोर्तगाली उपनिवेशवादी मोजेम्बिक में प्रविष्ट हुए । सोलहवीं शती तक पूर्वी अफ्रीकी तट अरब नियंत्रित व्यापार क्षेत्र रहा है । उन्नीसवीं शती के अंत में सन् १८८५ में फ्रांस और ब्रिटेन द्वारा मोजेम्बिक में पोर्तगाल की सर्वोपरिता को स्वीकार किया गया ।

बीसवीं शती के प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् सन्धि के अनुसार पूर्वी अफ्रीकी साम्राज्य पोर्तगाल को प्राप्त हुआ ।

मोजेम्बिक सन् १६५७ में पोर्तगाल के प्रदेश के रूप में माना गया ।

१६७४ में जाम्बिया के प्रमुख नगर लुकासा सम्मेलन के अनुसार मोजम्बिक को सन् १६७५ में पूर्ण स्वतंत्रता उपलब्ध हुई ।

मोजेम्बिक साम्यवादी राज्य के रूप में उभरा । मावोसेतुंग के आदर्शों पर सात्विक अनुशासित राज्य के रूप में मोजेम्बिक का उदय हुआ ।

मोजेम्बिक के संविधान के अनुच्छेद २६ में धर्म या पंथ के कारण किसी भी विशेषाधिकार के समापन की व्यवस्था है। क्योंकि इससे सामाजिक शान्ति और एकता का विकास होता है।

युगांडा

इतिहास में साम्राज्यवादी शक्तियों ने अफ्रीकी के युगांडा को भूगोल में अधिष्ठित किया। पश्चात् आधुनिक इतिहास की संरचना सितम्बर १६६७ से प्रारम्भ होती है, जब युगांडा के संविधान का शुभारम्भ होता है। ईदी अमीन का राज प्रमुख के रूप में अभ्युदय हो गया। ईदी अमीन जन असंतोष के घेरे में आये और पड़ोसी देश तंजानिया ने ईदी अमीन को पराभूत कर दिया। ईदी अमीन सऊदी अरब पलायन कर गये।

सन् १६८१ में राष्ट्रपति ओबटे सत्ता में आये। सन् १६६७ के संविधान की पुर्ननिर्मिति में ओबटे का योगदान है।

सन् १६६७ के संविधान के अनुच्छेद ८ में प्रत्येक नागरिक को कानून के समक्ष समान संरक्षण का प्रावधान है। किसी को विशेषाधिकार नहीं है। आस्था, अभिव्यक्ति, संगठन आदि का स्वातंत्र्य भी घोषित किया गया है। अनुच्छेद १११ में युगांडा की राजभाषा अंग्रेजी घोषित है।

अनुच्छेद १६ में पांथिक या धार्मिक, वैचारिक तथा पंथ या सम्प्रदाय परिवर्तन की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है। धार्मिक विश्वासों के साथ उपासना स्वातंत्र्य की भी गारंटी है। लोकतांत्रिक औचित्य की सीमा में किसी एक धार्मिक समारोह में दूसरे धर्म के हस्तक्षेप का निषेध है।

यूगोस्लाविया

६ गणराज्यों का संघ इतिहास में दीर्घकालिक संघर्ष से निकल कर युगोस्लाविया बना। यूगोस्लाविया बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में साम्यवादी जगत में नूतन शक्ति बनकर उभरा। इसके पूर्व साम्राज्यवादी शक्तियों से आक्रान्त और विघटित रहा है। बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में निसंग नीति, विश्व शान्ति तथा सहअस्तित्व आदि के द्वारा युगोस्लाविया का नेतृत्व ऐतिहासिक रहा है। यूगोस्लाविया के पुनः बिखर जाने पर भी इसके संविधान का उल्लेख उपादेय है।

फरवरी १६७४ में यूगोस्लाविया का नया संविधान बना। इसके द्वारा १६६३ का संविधान तथा १६६७, १६६८, १६७१ के संविधान आदि समाप्त हो गये। यूगोस्लाविया सोशलिस्ट फेडरल रिपब्लिक बना। यद्यपि वर्तमान में यूगोस्लाविया फिर विघटन और विग्रह के इतिहास में चल रहा है। किन्तु १६७४ के संविधान के पांथिक या धार्मिक संदर्भ के प्रावधान उल्लेखनीय है।

यूगोस्लाविया के १९७४ के संविधान में मनुष्य के व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए सम्भावनाओं और स्वातंत्र्य का संकल्प महत्वपूर्ण है । सभी मेहनतकश वर्ग और व्यक्ति की शक्ति पर सरकार और समाज के निर्माण की घोषणा है । शोषण की समाप्ति, सामाजिक स्वामित्व, उत्पादकों का स्वतंत्र समाज, एवं स्वप्रबंधित तथा स्वावलम्बी समुदाय और मानवता को विभूतिमानने की स्पष्ट स्थिति संविधान की विशेषता है ।

यूगोस्लाविया के संविधान में, पंथ या धर्म के संदर्भ में सभी नागरिकों के कर्तव्य तथा अधिकार समानता के स्तर पर रहे हैं । विधि-विधानों के समक्ष सभी समान होंगे । अनुच्छेद १६६ में विचार स्वातंत्र्य का प्रावधान है । अनुच्छेद १७४ में पंथ या धर्म का स्वातंत्र्य व्यक्ति के निजी जीवन के लिए है । पांथिक समुदाय, राज्य से पृथक, धार्मिक कार्यों के लिए स्वतंत्र हैं । किन्तु पंथ या धर्म या धार्मिक गतिविधियों का दुरुपयोग असंवैधानिक है । धार्मिक संस्थायें कानून के अनुसार सम्पत्ति आदि अधिग्रहीत कर सकती है । धार्मिक संस्थायें केवल पुरोहित प्रशिक्षण के लिए शिक्षण संस्थान संचालित कर सकती है । साम्यवादी संविधान पांथिक जीवन की उपेक्षा करते रहे हैं । वर्तमान में यूगोस्लाविया का इतिहास विघटन और विग्रह से आक्रान्त है । इसके एक अंश बोस्निया में इस्लाम सापेक्ष जनसंख्या की समस्या और समाधान विश्व व्यापी चिन्तन और चरित्र का महत्वपूर्ण विषय वर्तमान इतिहास का है ।

रूस

१८०६ से जार एलेक्जेन्डर ने संविधानवाद की दिशा में चरण बढ़ाये थे, जिससे प्रतिनिधिमूलक शासन का उदय हो सके ।

१९१७ से रूस में क्रान्तिकारी परिवर्तिन का युग प्रारम्भ हो गया । लेनिन के नेतृत्व में रूस का संविधान बना । रूसी संघ में सम्मिलित गणतंत्रों केभी कुछ पृथक संविधान बने । मार्क्सवाद के आधार पर संविधान का रूप स्थिर किया गया । संविधान निर्माताओं का लक्ष्य पूंजीवादी समाज के ढांचे को तोड़ना और नयी व्यवस्था की स्थापना थी ।

मार्क्स के सिद्धान्तों और लेनिन के स्वप्नों में साम्यवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था की अवतारणा संविधान का उद्देश्य रहा था । लेनिन मेहनतकश की तानाशाही और वास्तविक जनवादी - लोकतन्त्र का सामंजस्य स्थिर करने के आकांक्षी थे । किन्तु लेनिन ने परिस्थितियों की अनुकूलता न होने के कारण एक सीमा तक ही जनता की भागीदारी को वरीयता दी ।

सन् १९२२ में यूनियन आफ सोवियत सोसलिस्ट रिपब्लिक विभिन्न गणतन्त्रों से संधि के आधार पर बना । प्रत्येक गणतंत्र को समान रूप से प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ।

जनवरी १९२४ में १९१८ के संविधान का संशोधन कर दिया गया । इस संविधान में वयस्क मताधिकार का प्रावधान था । किन्तु पादरी आदि को मताधिकार से वंचित किया गया था । वस्तुतः १९२४ के संविधान का यह दोषपूर्ण पक्ष था कि,

पंथ या धर्म के आधार पर मताधिकार का निषेध लोकतांत्रिक नहीं था। पंथ या धर्म के अतिरिक्त, धन और विरासत के द्वारा मताधिकार की वंचना, तथा ग्रामीण क्षेत्र में सीमित मताधिकार द्वारा व्यापक जनतंत्र का विरोध था। यह संविधान लगभग बारह वर्ष तक चल पाया। स्टालिन के नेतृत्व में १६३६ में नया संविधान बना।

सन् १६६२ तक संविधान में संशोधन अधिक महत्व के नहीं थे। किन्तु सन् १६६४ में क्रुश्चेव के निकाले जाने के पश्चात् नये संविधान की संरचना के लिए एल०आई० ब्रजनेव की अध्यक्षता में आयोग बना। १७४ अनुच्छेदों के नये संविधान का प्रवर्तन हुआ। इस संविधान द्वारा रूस को समग्र जनता का समाजवादी राज्य घोषित किया गया।

अनुच्छेद १ में कामगारों और कृषकों का समाजवादी राज्य घोषित किया गया।

अनुच्छेद १२ में प्रत्येक को योग्यतानुसार और प्रत्येक कार्य के आधार पर सुविधा की व्यवस्था है।

अनुच्छेद १३ में १४ गणतंत्रों का फेडरल राज्य घोषित किया गया।

अनुच्छेद १७ में सभी गणतंत्रों को पृथक होने का अधिकार प्राप्त हुआ।

अनुच्छेद २५ में वाक्-स्वातंत्र्य, प्रेस - स्वातंत्र्य, सभा, प्रदर्शन आदि का अधिकार कामगारों के हित में और समाजवादी व्यवस्था को शक्ति प्रदान के लिए किया गया।

मौलिक अधिकार और नागरिकों के कर्तव्यों के संदर्भ में नागरिकों की आस्था स्वातंत्र्य के लिए चर्च को राज्य और शिक्षण से पृथक किया गया। पांथिक या धार्मिक स्वातंत्र्य और पंथ या धर्म प्रसार के विरोध का अधिकार भी दिया गया।

इस संविधान में बुनियादी अधिकारों के अध्याय (अनुच्छेद ३६ से ५६) में आस्था और उपासना स्वातंत्र्य का प्रावधान है। अनुच्छेद ५२ में आस्था के स्वातंत्र्य ने शासन और शिक्षण से पांथिक या धार्मिक मतवाद को विलग किया है। इस अनुच्छेद ने धार्मिक समारोह का स्वातंत्र्य प्रदान किया है, और साथ ही सभी को पंथ या धर्म विरोधी प्रचार के स्वातंत्र्य की स्वीकृति दी है। चर्च और पादरी को राज्य की सहायता का निषेध है। पादरी शिक्षालय में धार्मिक मतवाद का शिक्षण नहीं दे सकता। धार्मिक मतवाद का रूस में प्रोत्साहन न देने का कारण यह माना गया कि, मानवीय समाज और प्रकृति के रहस्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण हो सके। धार्मिक मतवाद के नाम पर अन्धशक्तियों का विकास न होने पाये। रूस में चर्च या विद्यालय में धार्मिक या पांथिक मतवाद के प्रचार पर रोक रही है। रूस का धार्मिक साहित्य भी नगण्य है। बहुत थोड़े परिवार ही उपासना की दिशा में रहे हैं।

उपासना स्वातंत्र्य का प्रावधान सैद्धान्तिक रहा है। व्यावहारिक रूप से अध्यात्म, नैतिकता, आस्था आदि जो धर्म के मूल में हैं, उनका कोई स्थान रूस में नहीं रहा है।

रूस और उसके वारसा संधि के मित्र देशों में बीसवीं शती के अन्तिम दशक में मौलिक परिवर्तन हुए हैं । समाजवादी सोवियत रूस के राजनीतिकस्वरूप में विघटन हुआ और पांथिक मतवादी शक्तियों को स्वातंत्र्य उपलब्ध हुआ । एशिया गणतन्त्रों के उपासना स्थलों का महत्व बढ़ गया । साम्यवादी दल अवैध हो गया । रूस के मित्र देशों के गिरजाघरों में पांथिक संगीत मुखर हो गया । रूस के अपने राजनीतिक पराभव से साम्यवादी राजपंथ को घातक चोट इतिहास में अंकित हुई है ।

वियतनाम समाजवादी गणतंत्र

वियतनाम का चार हजार वर्षों का इतिहास है । मध्यकालीन शताब्दियों में फ्रेंच उपनिवेशवादियों और बीसवीं शती में जापान और अमेरिकी साम्राज्यवादियों से वियतनाम ने वीरतापूर्वक संघर्ष किया है ।

सन् १६३० से होची मिन्ह के नेतृत्व में, रूस की १६१७ की क्रान्ति से प्रभावित होकर वियतनाम ने उपनिवेशवाद और सामंती व्यवस्था को समाप्त कर समाजवाद की दिशा में स्वतंत्र और अविभाज्य समाजवादी राष्ट्र का निर्माण किया ।

सन् १६५४ में जिनेवा समझौते के अन्तर्गत वियतनाम को स्वतंत्रता प्राप्त हुई है । किन्तु संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने दक्षिणी वियतनाम को नव उपनिवेश और सैन्य केन्द्र बनाने का प्रयास किया । तीस वर्षों के भीषण युद्ध के पश्चात् वियतनाम को सन् १६७५ के बसन्त में पूर्ण स्वतंत्रता उपलब्ध हुई । वीरतापूर्ण संघर्ष और समाजवादी संरचना के तथ्य और तत्वज्ञान का उल्लेख संविधान की उद्देशिका में है ।

संविधान के अनुच्छेद ४ में मार्क्सवाद लेनिनवाद के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति है । अनुच्छेद ५ में सभी को अपनी भाषा, लिपि, उत्तम रीति रिवाज, परम्परा तथा संस्कृति के अधिकार की व्यवस्था है ।

अनुच्छेद ३८ में मार्क्सवाद लेनिनवाद के सिद्धान्त से प्रतिबद्धता प्रकट की गयी है । इसमें राष्ट्र के सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों, विश्व की सर्वोत्तम सभ्यता आदि से समाजवादी जीवन की शैली की रचना का संकल्प है, जिससे पिछड़े जीवन मानों और अन्ध विश्वासों से सफल संघर्ष हो सके । अनुच्छेद ३६ में एक ऐसी नयी सभ्यता और नये समाज के अभ्युदय की आकांक्षा और अपेक्षा है, जिससे राष्ट्र और विश्व की इस दिशा में उत्तम उपलब्धि से सर्व जन लाभान्वित हो सकें ।

अनुच्छेद ४६ में एक ऐसी शिक्षण व्यवस्था की अवतारणा का उल्लेख है, जिससे क्रान्तिकारी नैतिकता, सोच और भावनाओं तथा सौन्दर्यानुभूति का विकास होकर सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके ।

अनुच्छेद ५७ में धर्म आदि के भेद के कारण किसी को मतदान के अधिकार से वंचित न करने की व्यवस्था है ।

अनुच्छेद ६७ में अभिव्यक्ति, प्रेस, संगठन, प्रदर्शन आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

अनुच्छेद ६८ में उपासना पद्धति का स्वातंत्र्य है । धार्मिक आस्थाओं के मानने या न मानने का अधिकार है । किसी को भी धर्म या पंथ के दुरुपयोग से वंचित किया गया है ।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

सत्रहवीं शती के शुभारम्भ से इंग्लैंड के नये उपनिवेश के रूप से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का महत्व है ।

सन् १६३६ में एक रोजर विलियम, रोड द्वीप में एक लोकतंत्रिक व्यवस्था की स्थापना करते हैं । जिसमें चर्च और राज्य को पृथक कर वाक्-स्वातंत्र्य और मतवाद की विभिन्नता की मान्यता स्थापित की गयी । यह पहला चार्टर था, जिसके द्वारा पांथिक या धार्मिक स्वातंत्र्य को मूल अधिकार के रूप में मान्य किया गया ।

ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सैन्य संघर्षों के परिणाम स्वरूप १७८३ में उभय पक्ष में पेरिस संधि के द्वारा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की स्वतंत्रता घोषित हुई । सन् १७८७ में संविधान निर्मात्री ने अपने कार्य का शुभारम्भ किया । १७८६ में अमेरिकी संविधान प्रवर्तित हुआ । मूल रूप से इसमें सात अनुच्छेद थे । २५ संशोधन हुए । सन् १७८६ में सर्वानुमति से जार्ज वाशिंगटन प्रथम राष्ट्रपति बने ।

सन् १७६१ में प्रथम संविधान संशोधन लाया गया । इसके द्वारा कांग्रेस को किसी भी ऐसे विधि-विधान को बनाने का निषेध किया गया, जिसमें किसी पंथ या धर्म को सम्मान दिया जाये । राष्ट्रवादी समाज की दिशा में यह महत्वपूर्ण कदम था। इसी संशोधन द्वारा अभिव्यक्ति, प्रेस और संगठन स्वातंत्र्य को मान्यता उपलब्ध हुई।

द्वितीय अनुच्छेद की धारा ४ में राष्ट्र में जन्मे व्यक्ति को ही राष्ट्रपति के योग्य होने का प्रावधान किया गया ।

अनुच्छेद ६ में संविधान के प्रति पद की वफादारी की शपथ का प्रावधान किया गया । किन्तु किसी भी पांथिक - धार्मिक परीक्षण, या पंथ - धर्म के नाम पर शपथ का निषेध किया गया ।

अमेरिकी संविधान में अपनी आस्था तथा विश्वास के आधार पर उपासना स्वातंत्र्य का प्रावधान है । अमेरिका में यूरोपियनों द्वारा अधिकार के समय, प्रारम्भ में बसने वाले चर्च द्वारा प्रताड़ित हुए हैं । इस कारण भी जनता का सोच पांथिक स्वतंत्रता की दिशा में रहा है । शासन, चर्च की कोई सहायता नहीं करता । जनता स्वेच्छया विभिन्न मतवादों का समर्थन करती है। चर्च और राज्य का पार्थक्य अमेरिकी संविधान का महत्वपूर्ण अंग है । वैसे अमेरिका में प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथोलिक दो सम्प्रदाय हैं ।

इतिहास में अपेक्षाकृत नया देश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका है । किसी पांथिक परम्परा का अभाव है । इंग्लैंड की भांति अमेरिका में अनुशासित एक समाज नहीं है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकी समाज में कोई वर्ग संरचना नहीं है । कोई पृथक परिवार की

शृंखला नहीं है । कोई सामान्य मतवादी स्थिति नहीं है । पांथिक, वैचारिक तथा सांस्कृतिक स्वातंत्र्य अमेरीकी जीवन का अपरिहार्य पक्ष है ।

साइप्रेस

साइप्रेस द्वीप भूमध्यसागर में हैं । इतिहास में ग्रीस और तुर्की का आधिपत्य साइप्रेस में रहा है । तुर्क साम्राज्य से साइप्रेस को सन् १८७८ में ब्रिटेन ने अपने अधिकार में लिया था ।

साइप्रेस में ग्रीक पुरातन पंथी चर्च का प्रभाव रहा है । साइप्रेस में लगभग ७६प्रतिशत ग्रीक और १८ प्रतिशत तुर्क रहे हैं । ग्रीक ईसाई और तुर्क इस्लाम धर्मावलम्बी रहे हैं । सन् १९६० में १९९ अनुच्छेदों का संविधान निर्मित हुआ ।

संविधान के १८वें अनुच्छेद में चिन्तन, आस्था और पंथ या धर्म के स्वातंत्र्य की व्यवस्था है । सभी पंथों को विधि-विधान के समक्ष समानता का स्तर प्रदान किया गया है ।

अनुच्छेद १९ के अन्तर्गत किसी भी रूप में वाक् तथा अभिव्यक्ति की आजादी की व्यवस्था है । पंथ या धर्म के कारण कोई भेदभाव नहीं है । प्रत्येक नागरिक को किसी पंथ या धर्म के प्रति विश्वास, उपासना आदि का स्वातंत्र्य है । पंथ या धर्म को राज्य के विधिविधानों की सीमा के अन्तर्गत सार्वभौमिक नैतिकता के आधार पर छूट दी गयी ।

अनुच्छेद ६२ के द्वारा ग्रीक तथा तुर्की सम्प्रदाय के आधार पर प्रतिनिधि संस्थाओं का निर्माण किया गया ।

साइप्रेस में ऐतिहासिक कारणों से संघर्ष को बचाने के लिए बहुसंख्यक (७० प्रतिशत) तथा अल्पसंख्यक (३० प्रतिशत) के प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया गया। पंथ निरपेक्षता की स्थिति ने भी तात्कालिक समाधान, और दीर्घकालिक समस्या को बनाया है ।

सिंगापुर

मलय संघ से पृथक होकर सिंगापुर की स्वतंत्र राज्य के रूप में स्थापना बीसवीं शती के उत्तरार्ध में हुई । सितम्बर १९६३ में सिंगापुर गणतंत्र घोषित हुआ ।

सिंगापुर के संविधान के अनुच्छेद १५ में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि वैचित्र्यके अनुसार पंथ या धर्म का स्वातंत्र्य दिया गया । प्रत्येक पंथ को अपनी धार्मिक गतिविधियों के प्रबंधन का अधिकार प्राप्त है । अपने पांथिक या धार्मिक संस्थाओं के पोषण के स्वातंत्र्य का भी प्रावधान है । अनुच्छेद १६ में पंथ के आधार पर अभेद की घोषणा है । दूसरे पंथ या धर्म के आदेशों के पालन का प्रतिबन्ध नहीं है। किसी व्यक्ति को अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म के पालन के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता । अनुच्छेद ६९ में अल्पसंख्यकों के अधिकार के लिए राष्ट्रपतीय परिषद का प्रावधान है ।

अनुच्छेद १५२ में सिंगापुर के मूलवासी मलय समूह को विशेष स्थान दिया गया है । राज्य द्वारा इसके राजनीतिक, शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक हितों तथा मलय भाषा के रक्षण की व्यवस्था है ।

अनुच्छेद १५३ में मुस्लिम धर्म की व्यवस्था सम्बन्धी प्रावधान है । पंथ निरपेक्ष दिशा भी अपनी वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु एक समुदाय के रक्षण तथा दूसरे के संरक्षण की व्यवस्था कर विश्वास करते हैं । सिंगापुर में मलय जाति के रक्षण का अभिप्राय देश की मुख्य धारा या मूल वंश को अन्याय से सुरक्षित करना मानवीय पक्ष का समाधानकारी प्रावधान है ।

स्विटरजरलैंड

यूरोप की राजनीति में स्विटजरलैंड का महत्व न्यूनाधिक कुछ भी हो, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में साम्राज्यवादी लिप्सा से पृथक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संरचना में इसके इतिहास और तदनुकूल संविधान का संक्षिप्त विश्लेषण उपादेय है ।

स्विटजरलैंड के उत्तर में जर्मनी, पश्चिम में फ्रांस, पूर्व में आस्ट्रिया तथा दक्षिण में इटली है । यह देश विविध पंथ, भाषा तथा सभ्यता से प्रभावित है । विभिन्न भाषाओं और मतमतान्तरों के होने पर भी यह एक समन्वित राष्ट्र है । पांथिक या धार्मिक सहिष्णुता स्विस नागरिकों की विशेषता है । एक दूसरे के अधिकारों पर अतिक्रमण न करने की स्थिति में पांथिक या साम्प्रदायिक सद्भावना स्विटजरलैंड की ऐतिहासिक विशेषता है ।

स्विटजरलैंड के संघीय राज्य संविधान में तेइस लघु राज्यों ने संघर्ष और संधि की राहों से निकलकर विश्व समुदाय में अपने स्थान की निर्मित की है । सन् १२९१ में तीन समुदायों कैन्टन, यूरी, स्विस और अन्टरवाल्डेन सदैव के लिए एक हो गये । सन् १३५३ में आठ कैन्टन एक बद्ध हो गये । सन् १५०३ में इनकी संख्या तेरह हो गयी । सन् १६४८ में वेस्टफालिया के समझौते में यह संघ स्वतंत्र हो गया ।

१८७४ में स्विटजरलैंड का नया संविधान बना । यह १२५ अनुच्छेदों का तीन अध्यायों का संविधान रहा है । स्विटजरलैंड में जर्मन, फ्रेन्च तथा इटालियन तीन जातियों का प्राधान्य है । इसके २३ प्रदेशों (कैन्टन) में पन्द्रह में जर्मन, पाँच में फ्रेंच और तीन में इटालियनों का निवास है । जर्मन प्रोटेस्टेन्ट समुदाय और अन्य दो समुदाय रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के हैं । पूर्व के ऑकड़ों में लगभग पैंसठ प्रतिशत जर्मन, तेरह प्रतिशत फ्रेंच और बारह प्रतिशत इटालियन हैं । किन्तु सभी स्विस नागरिक हैं। जातिगत विविधता की स्थिति में भी पृथकत्व का भाव नहीं है ।

उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में पांथिक समस्या तीव्र रूप से थी । रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट दोनों में संघर्ष था । इतिहास में एक सामंजस्य हुआ । किन्तु स्विस संविधान में जेसुएट सम्प्रदाय की गतिविधियों को छूट नहीं है । यह रोमन कैथोलिकों का एक सम्प्रदाय रहा है । इस सम्प्रदाय के पांथिक प्रसार ने अत्याचारों के इतिहास का अंकन किया

है । स्विस भूमि में ही नहीं, हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर तथा भारत, चीन, जापान आदि में इनके द्वारा बलात् धर्मान्तिरण का अप्रिय इतिहास है । स्विस संविधान में उग्र पांथिक प्रसार का निषेध लोकतांत्रिक व्यवस्था का अंश है ।

प्रस्तुत अध्ययन १६८१ के संविधान के आधार पर है । इस संविधान में कुल १२३ अनुच्छेद हैं । इस संविधान का शुभारम्भ सर्व शक्तिमान ईश्वर पर आस्था और विश्वास से है । इसके चतुर्थ अनुच्छेद में नागरिक की विधिक समानता का आश्वासन है । इसके द्वारा किसी विशेषाधिकार की स्थापना नहीं होती । सत्ताइसवें अनुच्छेद में आस्था और चेतना के स्वातंत्र्य का रक्षण पांथिक मतवाद से सुरक्षा की व्यवस्था है । संविधान के ४६ से ५२ अनुच्छेद तक पांथिक विश्वासों या मतवादों के प्रसंग हैं ।

४६वें अनुच्छेद में आस्था और विवेक चेतना स्वातंत्र्य उल्लघंनीय नहीं है। किसी को पांथिक समूह में रहने को बाध्य नहीं किया जा सकता । किसी को पांथिक शिक्षण के लिए विवश नहीं किया जा सकता । पांथिक विश्वासों के कारण कोई दंडनीय नहीं हो सकता । १६ वर्ष की आयु तक ही माता-पिता या अभिभावक धार्मिक शिक्षण का नियंत्रण कर सकते हैं । पांथिक या धार्मिक अनुबंधों के आधार पर किसी नागरिक या राजनीतिक अधिकार को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता । नागरिक कर्तव्यों पर कोई पांथिक विश्वास छूट नहीं दे सकता । उस किसी उपासना पद्धति का कोई मूल्य जिससे उसकी प्रतिबद्धता नहीं है, व्यक्ति के देय करों से भुगताया नहीं जा सकता ।

५०वें अनुच्छेद में शान्ति व्यवस्था और नैतिकता की सीमा में उपासना की गारंटी है । नागरिक और राज्य के अधिकारों में पांथिक सम्प्रदायों द्वारा अतिक्रमण का निषेध है ।

५१वें अनुच्छेद के द्वारा जेसुएट और उनसे सम्बन्धित सम्प्रदायों को राज्य में प्रवेश का निषेध किया जा सकता है । चर्च और स्कूल में इनके सदस्यों की गतिविधियों पर प्रतिबंध का प्रावधान है । अन्य पांथिक या धार्मिक व्यवस्थाओं पर भी प्रतिबंध के लगाये जाने का प्रावधान, है जो राज्य या विभिन्न पंथानुगामी के मध्य अशान्तिकारक हैं ।

५२वें अनुच्छेद के माध्यम से नये कानवेन्टस् - पांथिक संस्थाओं के स्थापन का निषेध है ।

अन्य अनुच्छेदों में प्रेस की स्वतंत्रता (अनुच्छेद ५५),संगठन रचना (अनुच्छेद ५६),स्वातंत्र्य आदि के प्रावधान है ।

स्विटजरलैंड के संविधान में यह स्पष्ट है कि परम्परागत आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के अन्तर्गत संवैधानिक प्रावधान मर्यादित होते हैं । स्विटजरलैंड का संविधान सर्वप्रथम अपने स्विस राष्ट्र के संघीय स्वरूप को स्थिर और स्थापित रखने को प्रतिबद्ध है । संघ ने किसी नियमित सेना का प्रावधान नहीं किया है (अनुच्छेद १३ (१)) । किन्तु अनुच्छेद १८ के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य सैनिक सेवा का है । अनुच्छेद २४ में देश की प्रकृति और उसके सौन्दर्य के रक्षण का प्रावधान महत्वपूर्ण है ।

पंथ निरपेक्षता की दृष्टि से संविधान आस्तिकता की घोषणा करता है । इसमें किसी नास्तिक पंथ की क्या संवैधानिक स्थिति होगी ? भारतीय सद्परम्परा और संविधान आस्तिक और नास्तिक दोनों को स्वातंत्र्य प्रदान करता है ।

सेनेगाल

अफ्रीका के पश्चिमी अतलांतिक तट पर स्थित सेनेगाल के इतिहास का शुभारम्भ नवीं शताब्दी से होता है । ग्यारहवीं शती से इसके इस्लामीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है । सन् १४४५ से पोर्तगीज व्यापारियों ने सेनेगाल में प्रवेश किया । सन् १५१७ में डचों ने कुछ क्षेत्र में अधिकार किया । सन् १६२६ में फ्रेंच आये, और बहुत कुछ व्यापार हस्तगत कर लिया । १७५६ से ६३ तक ब्रिटेन ने फ्रांसीसी अधिकार से सेनेगाल छीन लिया । इस प्रकार सेनेगाल उपनिवेशवादियों के कुचक्र में शताब्दियों तक फंसा रहा । पश्चात् फ्रांसीसी अधिकार में आ गया । सन् १९५८ नवम्बर में सेनेगाल स्वशासी बना । सन् १९५९ जनवरी में प्रथम संविधान का प्रवर्तन सेनेगाल में हुआ । इसमें संसदीय पद्धति प्रमुख बनी ।

सन् १९६३ में राष्ट्रपतीय प्रणाली का एक नया संविधान बना ।

सेनेगाल के संविधान की उद्देशिका में चिन्तन की स्वतंत्रता और पांथिक स्वतंत्रता की घोषणा है । इसमें अफ्रीकी एकता का भी संकल्प है ।

संविधान के प्रथम अनुच्छेद में सेकुलर (पंथ निरपेक्ष) लोकतांत्रिक गणतंत्र घोषित किया गया । किसी भी धर्म का आस्था आदि को विधि के समक्ष स्वातंत्र्य दिया गया । फ्रेंच अधिकृत भाषा बनी । अनुच्छेद ४ में किसी पांथिक भेदभाव का निषेध किया गया ।

अनुच्छेद ६ में शान्ति और न्याय के संदर्भ में सभी मनुष्यों को विभूति मानकर उनके मानवीय अधिकारों को स्वीकृति मिली । मानव के स्वातंत्र्य का पूरा सम्मान दिया गया । अनुच्छेद ७ के अनुसार सभी मनुष्य विधि के समक्ष समान माने गये ।

अनुच्छेद १९ में आस्था के स्वातंत्र्य, और पांथिक उपासना आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान किया गया है । धार्मिक संस्थाओं और समुदायों को बाधा रहित विकास का अधिकार दिया गया । पांथिक संस्थाओं की व्यवस्था तथा संचालन के स्वतंत्र अधिकार को मान्यता दी गयी ।

पंथ निरपेक्ष राज्य

विश्व परिप्रेक्ष्य में पंथ निरपेक्ष राज्यों की पंथ या धर्म के प्रति दृष्टि की एक संक्षिप्त समीक्षा आवश्यक है । अपर वोल्टा में समता और स्वतंत्रता की संवैधानिक व्यवस्था है । पंथ के आधार पर भेद से समता की अवधारणा के विखंडन की सम्भावना का निषेध किया गया है । आईवोरी कोस्ट गणतंत्र के संविधान में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों और मानवीय अधिकारों पर आस्था है । संविधान में स्वतंत्रता तथा समानता सुनिश्चित

की गयी है । पंथ निरपेक्ष धार्मिक विश्वासों के सम्मान का प्रावधान है । आस्ट्रेलिया में लोकतांत्रिक परम्परा के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । धार्मिक मतवाद के प्रति सहिष्णुता है । अंगोला में पंथ निरपेक्षता की संवैधानिक घोषणा है । आस्था-विश्वास के स्वातंत्र्य को सुनिश्चित किया गया है । समाजवादी समाज रचना की संवैधानिक आकांक्षा है। सभी पंथों के सम्मान की व्यवस्था है ।

इजरायल में औपचारिक संविधान नहीं है । किन्तु सभी पंथों के पवित्र स्थलों के संरक्षण की घोषणा है । पंथों और आस्था आदि की स्वतंत्रता की गारंटी है । इटली में संवैधानिक समता के प्रावधान से सभी नागरिकों के समग्र व्यक्तित्व के विकास की अपेक्षा है । चर्च और राज्य दोनों की स्वतंत्र और सार्वभौम सत्ता.की समानान्तर स्वीकृति है । पांथिक विश्वासों और आचरणों के स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

क्यूबा साम्यवादी देश है । क्यूबा पंथ निरपेक्ष की अपेक्षा पंथ विरोधी अधिक है । पांथिक आस्था विश्वास का वैधानिक सीमा के अन्तर्गत स्वातंत्र्य है । वामपंथी समाजवादी संविधान पांथिक शक्तियों को क्षीण करने पर विश्वास करते हैं । क्यूबा के संविधान नें राज्य द्वारा पंथ की भूमिका को महत्वहीन किया है ।

कनाडा संविधान की निर्मिति के पूर्व भी लोकतांत्रिक और स्वतंत्र समाज का पक्षधर रहा है । कनाडा में परम्परा से आस्था या मतवाद का स्वातंत्र्य सुनिश्चित किया गया है । संविधान द्वारा भी आस्था, सोच आदि का स्वातंत्र्य सुनिश्चित किया गया है । तार्किक सीमा के अन्तर्गत पांथिक अभेद की स्वीकृति है ।

दक्षिण कोरिया में राज्य का कोई पंथ नहीं है । कोरिया बौद्ध धर्मावलम्बी देश रहा है । द्वितीय विश्व के पश्चात् दक्षिण कोरिया एक स्वतंत्र राज्य बना । दक्षिण कोरिया ने पंथ निरपेक्षता को अपने प्राचीन गौरव या अखंडित इतिहास की परम्परा में स्वीकार किया है । सभी नागरिकों को पांथिक स्वातंत्र्य, एक मुक्त समाज का लक्षण है । सभी नागरिकों को उत्तम मानवीय जीवन का संवैधानिक अधिकार है ।

उत्तरी कोरिया ने साम्यवादी वैचारिक आस्था से सम्बन्ध जोड़कर, अतीत से सम्बन्ध तोड़ा है । वैज्ञानिक का विशेषण लगाकर समाजवाद ने पांथिक विश्वासों के स्वातंत्र्य को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार कर, व्यवहारिक रूप में उपेक्षा की है ।

चीन ने मार्क्सवाद और लेनिनवाद को स्वीकार कर नये पंथ मावोवाद का प्रवर्तन किया है । पांथिक भेदभाव की अस्वीकृति की सैद्धान्तिक मान्यता होने पर भी, एक उदासीनता और उपेक्षा का स्पष्ट दर्शन है । सामाजिक क्रान्ति या सांस्कृतिक क्रान्ति को लक्ष्य मानकर पुरातन पांथिक चेतना और जड़ता को नकारना एक यथार्थ स्थिति है । पांथिक स्वातंत्र्य द्वारा मानवीय मूल्यों और आस्थाओं की स्वीकृति दूसरी आदर्श स्थिति है । साम्यवादी संविधान विवेक की अपेक्षा बाध्यता पर विश्वास करते प्रतीत होते हैं । साम्यवादी राज्यों ने भौतिकवादी जीवन पंथ को सहज स्वीकृति प्रदान कर एक नये राजपंथ को विस्तार दिया है । इनके संविधान घोषणा पत्रक हैं । जमैका में मानवीय सम्मान के विरुद्ध प्रताड़ना का संवैधानिक निषेध है । पंथ आस्था आदि का स्वातंत्र्य है । पांथिक विश्वासों के अनुकूल स्वातंत्र्य है ।

जर्मनी (पूर्वी) समाजवादी संस्कृति के संरक्षण से मानवतावाद आदि का विकास संविधान की चालक शक्ति रही है । विधिक समानता की व्यवस्था मान्य रही है । पांथिक या सांप्रदायिक कारणों से अधिकार - कर्तव्य में भेदभाव नहीं है । पूर्वी-पश्चिमी जर्मनी के एकीकरण से संवैधानिक तथा सैद्धान्तिक परिवर्तन, अध्ययन का विषय है । जर्मनी (पश्चिमी) के संविधान में मानव की गरिमा की घोषणा है । मानवता के सम्मान और संरक्षण की घोषणा है । सामुदायिक और सैद्धान्तिक स्वातंत्र्य का प्रावधान है ।

जापान के संविधान में पांथिक या धार्मिक मतवाद का स्वातंत्र्य है । पांथिक या सामुदायिक संगठन को राज्य से कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है । राज्य द्वारा किसी पांथिक मतवाद का शिक्षण नहीं है ।

जाम्बिया में भागीदारी लोकतंत्र और मानवतावादी चिन्तन का संवैधानिक प्रावधान है । पांथिक विश्वासों का स्वातंत्र्य है । आस्था, अभिव्यक्ति आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । एक दलीय शासन तथा दल की नीतियों के अनुरूप पांथिक नीतियों की रचना का प्रावधान है ।

फिनलैंड में संवैधानिक विधिक समानता है । संविंधान में उपासना स्वातंत्र्य का प्रावधान है । संविधान प्रदत्त अधिकार द्वारा, चर्च विधि से नियंत्रित रहेगी ।

फ्रांस के संविधान की उद्देशिका में सेकुलर की घोषणा है । सभी विश्वासों का सम्मान है । स्वतंत्रता, समानता और सख्यभाव की संवैधानिक घोषणा है । पांथिक विविधता के कारण भेद-भाव का निषेध है ।

मंगोलिया के संविधान द्वारा पंथ या धर्म को शासन और शिक्षण से पृथक किया गया है । अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की व्यवस्था है । मार्क्सवाद - लेनिनवाद के प्रतिनिष्ठा है । संविधान में पंथ या धर्म से विरक्ति या विरोध है । भौतिकवादी जीवन-चिन्तन और श्रमिक संस्कृति का पक्षधर संविधान है ।

मारीसश के संविधान में आस्था, पांथिक विश्वास, उपासना पद्धति आदि की स्वीकृति है । पांथिक या धार्मिक शिक्षण आदि का स्वातंत्र्य है ।

मोजेम्बिक का संविधान मावों के साम्यवादी विचारों के समर्थन में है । पंथ या धर्म के किसी विशेषाधिकार के समापन की व्यवस्था है । साम्यवादी राज्य शान्ति, एकता और मानवी संस्कृति के नाम पर पांथिक सभ्यता से विरक्ति का पोषण करते हैं ।

युगांडा के संविधान में आस्था, अभिव्यक्ति आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । उपासना स्वातंत्र्य की व्यवस्था है । यूगोस्लाविया का संविधान मनुष्य के समग्र विकास की सभी सम्भावनाओं और स्वातंत्र्य की आकांक्षा से संकल्पित रहा है । मानव को विभूति मानने की संवैधानिक स्थिति है । उत्पादकों के स्वतंत्र समाज और सभ्यता का पोषक संविधान है । विधिक समानता और विचार स्वातंत्र्य संविधान का अंग है । पंथ या धर्म की स्वतंत्रता निजी जीवन के निमित्त है । राज्य से पृथक पांथिक समुदाय या पांथिक जीवन की उपेक्षा या इसके प्रति उदासीनता है । यूगोस्लाविया विखंडन और

विद्रोह तथा विसंगतियों की राहों से वर्तमान इतिहास में गुजर रहा है । पूर्ववर्ती यूगोस्लाविया के बोस्निया राज्य में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की समस्या संकटपूर्ण है ।

रूस में चर्च को राज्य और शिक्षण से पृथक किया गया है । पांथिक उपासना स्वातंत्र्य का प्रावधान है । पंथ या धर्म प्रसार के विरोध के अधिकार की भी व्यवस्था है ।

आस्था तथा वाक् - स्वातंत्र्य, प्रेस स्वातंत्र्य आदि का अधिकार श्रमिकों के हित और समाजवादी व्यवस्था के अन्तर्गत घोषित है ।

इतिहास का जीवित जाग्रत तथ्य है कि, साम्यवाद को सही दिशा देने के प्रयास में साम्यवादी पार्टी को अवैध घोषित कर बाध्यता को विवेक में परिवर्तित करने का अभियान रूस में प्रवर्तित हो गया है ।

वियतनाम के संविधान में मार्क्सवाद और लेनिनवाद के प्रति निष्ठा है । राज्य समाजवादी मूल्यों के अनुकूल नूतन समाज और सभ्यता की संरचना का आकांक्षी है । अभिव्यक्ति आदि के स्वातंत्र्य का अधिकार विधिक प्रक्रिया के अन्तर्गत है । उपासना पद्धति के स्वातंत्र्य के प्रावधान को विस्मृत नहीं किया गया है ।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संविधान में चर्च और राज्य के पार्थक्य का अठारहवीं शताब्दी से शुभारम्भ संविधान का महत्वपूर्ण तथ्य है । किसी भी पांथिक या धार्मिक परीक्षण या पांथिक शपथ का निषेध है ।

साइप्रेस के संविधान में पंथ, चिन्तन, आस्था, वाक् आदि के स्वातंत्र्य की व्यवस्था है । सभी पंथों की विधिक समानता है । उपासना स्वातंत्र्य भी है । बहुसंख्यक और अल्पसंख्यकों का आनुपातिक प्रतिनिधित्व संविधान का महत्वपूर्ण अंश है ।

सिंगापुर के संविधान में रुचि वैचित्र्य के अनुसार पांथिक स्वातंत्र्य है । विधि समक्ष पांथिक समानता भी है । मलय जाति का पांथिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तथा शैक्षणिक रक्षण, मूल चरित्र के अस्तित्व के तथ्य की सुरक्षा है । सिंगापुर के संविधान में अल्पसंख्यकों को संरक्षण,मानवीय मूल्यवत्ता की स्वीकृति है । स्विटजर लैंड लोकतांत्रिक लघु, किन्तु महत्वपूर्ण राज्य है । इसमें पांथिक स्वतंत्रता का संवैधानिक प्रावधान है ।

सेनेगाल के संविधान में पांथिक स्वतंत्रता की व्यवस्था है । आस्था आदि का स्वातंत्र्य है । विधि समक्ष स्वातंत्र्य और पांथिक अभेद संविधान में सुनिश्चित किया गया है ।

पंथ निरपेक्षता की प्रेरक शक्ति

विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों के संदर्भ में पंथ निरपेक्षता या सेकुलरवाद की प्रेरक शक्ति की पहिचान आवश्यक है । इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण शक्ति मानवता के सम्मान के संरक्षण की वृति है । पंथ सापेक्ष शक्तियां मानवता की गरिमा को अस्वीकार नहीं कर सकी है । किन्तु मानव के उस मुक्त और महान रूप की निर्मिति पर विश्वास नहीं कर सकी है, जिसमें बसुधा को कुटुम्ब मानने की वृति बलवती हो सके । पंथ सापेक्ष राज्य शक्ति

कहीं न कहीं मानवता की यात्रा पर विराम चिह्न लगाते प्रतीत होते हैं। पंथ सापेक्ष राज्य शक्ति मानवता की व्याप्ति को सीमित करती प्रतीत होती है। पंथ निरपेक्षता ने मानव व्याप्ति के घिरौंदे को तोड़ने का प्रयास किया है।

जमैका छोटा सुन्दर देश है। मध्यकाल के उपनिवेशवाद की दास प्रथा की त्रासदी से निकलकर जमैका ने मानवीय सम्मान के विरुद्ध प्रताड़ना का निषेध किया है। जमैका का निर्णय इतिहास सम्मत है। मानवता को, उसका सम्मान प्रदान करना राज्य शक्ति का कर्तव्य है। साम्राज्यवादी चिन्ता से मुक्त दक्षिण कोरिया के संविधान में उत्तम मानवीय जीवन का आश्वासन है।

पश्चिमी जर्मन के संविधान में मानव की गरिमा की घोषणा रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध में मानवता की भीषण क्षति का साक्षी जर्मन देश है। युद्ध फिर महायुद्ध मानवता की गरिमा का समापन करते रहे हैं। महायुद्ध की विकराल त्रासदी से निकल कर सब प्रकार का अपमान जर्मनी का भोगा हुआ यथार्थ है। जर्मन राष्ट्र के टुकड़े, वैचारिक दासता का आरोप और सब कुछ टूट जाने के प्रत्यक्षीकरण का समाधान केवल मानवता की गरिमा की पुर्नस्थापना में है। पश्चिमी जर्मनी के संविधान ने इसी दिशा में कदम बढ़ाये हैं। इतिहास से उपदेश ग्रहण करना आवश्यक था। इटली ने मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व के विकास की अपेक्षा अपने संविधान में अभिव्यक्त की है।

अफ्रीकी स्वातंत्र्य संघर्ष सेनानायक केनेथ कौंडा सत्ता में नहीं रहे। किन्तु इनके नेतृत्व में मानवतावादी जीवन दर्शन की संविधान में स्वीकृति प्रदान की गयी। मानवीय जीवन-चिन्तन के अन्तरिक्ष को अधिकाधिक व्यापकता प्रदान करने की भूमिका का निर्वाह मानवतावाद का लक्षण और लक्ष्य है।

पंथ निरपेक्षता की, समता की अवधारणा से एक बड़ी मात्रा में सहमति है। पंथ सापेक्षता में कलह हो सकती है, और होती है, किन्तु पंथ निरपेक्षता सुलह है। समतापूर्ण समाज की संरचना एक दिशा और दायित्व है। समता की आकांक्षा में लोकतंत्र और समाजवाद दोनों आक्रान्त हैं। अपनी पात्रता या अपनी पर्याप्तता या परिस्थिति के अनुरूप समता को संविधानों ने ग्रहण किया है। पंथ सापेक्ष संविधानों में भी विधि समक्ष समता स्वीकार की गयी है। किन्तु इसके दायरे सीमित रहे हैं। पंथ निरपेक्षता ने व्यापक धरातल पर समता का आह्वान किया है।

मानवता के गौरव और समता की गरिमा को शक्ति प्रदान करने के लिए पंथ निरपेक्ष संविधानों ने मनुष्य की आस्था, विश्वास, तथा मतवाद आदि के प्रति सहिष्णुता और सद्‌भावना को विकसित करने के लिए प्रावधान किये हैं। पंथ सापेक्ष राज्यों ने भी इस सहिष्णुता और सद्‌भावना को स्वीकार किया है। किन्तु व्यवहार में पंथ सापेक्ष राज्यों में प्रतिबन्ध स्पष्ट रूप से परिलक्षित या प्रतिबिम्बित होते हैं। प्रतिबन्ध की मात्रा में भेद, देश विशेष की परिस्थितियों के अनुकूल हो जाता है, किन्तु इस्लाम पंथ सापेक्ष देश सहिष्णुता को पर्याप्त मात्रा में प्रदर्शित नहीं कर सके हैं। विश्व परिप्रेक्ष्य में पंथ निरपेक्ष संविधान मानवीय औदार्य और औचित्य के सामंजस्य है।

आस्था, विश्वास, मतवाद आदि के स्वातंत्र्य का अधिकार, पंथों या पांथिक आचरणों को तार्किक स्वतंत्रता तथा सम्मान प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त करता है। पंथ निरपेक्ष राज्य किसी पंथ विशेष को मान्यता न देकर, सभी को, व्यक्ति और समाज की अन्तः रचना को, स्वस्थ तथा सशक्त रूप से, पुनर्निमित करने के पक्षधर हैं। व्यक्ति या समाज को तोड़ने वाली पांथिक स्वतंत्रता अर्थहीन है। संविधान राज्य और व्यक्ति के मध्य एक अनिवार्य अनुबन्ध है। इसके द्वारा विकृति परिभाषित होती है, और उस पर राज्य की नियंत्रक शक्ति प्रभावी बनती है।

पंथ या पांथिक विश्वासों से राज्य शक्ति की तटस्थता की अधिकांश संविधानों में व्यवस्था है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में राजनीतिक सत्ता और पंथ या चर्च पृथक-पृथक हैं। एक दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं होता है। राज्य से चर्च या पंथ विशेष को अनुदान उपलब्ध नहीं होता है। राजनीतिक समस्याओं के प्रति चर्च का हस्तक्षेप नहीं है। राज्य भी पंथ के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करता है। पंथ निरपेक्ष इटली के संविधान में पंथ और राज्य दोनों की समानान्तर सत्ता की स्वीकृति है।

इस्लाम पंथी देशों में पंथ निरपेक्षता प्रासंगिक नहीं है। किन्तु इन्डोनेशिया और तुर्की अपवाद है। इंडोनेशिया ने अतीत के इतिहास के दबाव में पंथ निरपेक्षता की घोषणा की है। तुर्की ने आधुनिकता के नाम पर वर्तमान इतिहास के दबाव में पंथ निरपेक्षता को स्वीकृति दी है।

पंथ सापेक्ष देशों ने अपने संविधान की परम्परा से सम्बद्धता के सन्दर्भ में अखण्डित इतिहास की अवधारणा पर विश्वास प्रकट किया है। पंथ निरपेक्ष देशों ने भी अपने अखण्डित इतिहास पर गौरव की अनुभूति संविधान में प्रकट की है। पंथ निरपेक्ष तथा सापेक्ष इटली और पंथ निरपेक्ष दक्षिण कोरिया के संविधान इसके उदाहरण है।

इजराइल एक पंथ निरपेक्ष देश है। इसके विधि-विधान में सभी पांथिक स्थलों के सम्मान का उल्लेख है। साम्यवादी देशों के संविधानों में पांथिक विश्वासों और आचरणों के प्रति उदासीनता प्रमुख रूप से है। ये देश पांथिक सभ्यता के विपरीत एक नितान्त भौतिकवादी सभ्यता पर विश्वास करते हैं। इस्लाम सापेक्ष देश लीबिया, और एक यमन में पंथ सापेक्षता और साम्यवादी प्रतिमान के प्रति ढीले सैद्धान्तिक गठबन्धन का प्रयास है। पंथ निरपेक्ष साम्यवादी देशों ने अपने इतिहास से विखण्डन को स्वीकृति दी है। पुरानी परम्परा को तोड़कर नयी परम्परा प्रदान करने की संवैधानिक आकांक्षा दृष्टव्य है। सोवियत रूस तथा वारसा संधि के देशों के संविधानों से यह स्पष्ट था, किन्तु ये सब यूरोपीय देश अपने नये रूप को गढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। पंथ निरपेक्षता के साम्यवादी संस्करण पूर्वी योरोप में अप्रासंगिक हो रहे हैं।

पंथ निरपेक्ष साम्यवादी उत्तरी कोरिया में इतिहास से पार्थक्य की स्पष्टता है। साम्यवादी पंथ निरपेक्ष चीन ने भी अपने अतीत और मध्यकाल के इतिहास से पार्थक्य की घोषणा की है। नये समाज की कल्पना और कामना, पुराने समाज के मूल्य और मर्यादा के समाधान की अभिव्यक्ति इनके संविधानों में हैं।

बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के सन्दर्भ में पंथ निरपेक्ष संविधानों की दृष्टि का अध्ययन तथा आकलन महत्वपूर्ण है। पंथ सापेक्ष देशों ने पांथिक, सांस्कृतिक और भाषा का अधिकार अल्पसंख्यकों को नाम मात्र का या नगण्य रूप से दिया है। पंथ निरपेक्ष देश साइप्रेस ने परिस्थितियों की बाध्यता से पांथिक बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक को पृथक-पृथक प्रतिनिधित्व किया है। पंथ निरपेक्ष देशों ने किसी भी प्रकार के अल्पसंख्यकों को संवैधानिक संरक्षण दिया है। भारत, जापान सिंगापुर, आदि इसके अच्छे उदाहरण हैं। पंथ सापेक्ष देशों ने बहुसंख्यकों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विशेषाधिकार प्रदान किये हैं। किन्तु पंथ निरपेक्ष देश बहुसंख्यकों के विशेषाधिकार पर विश्वास नहीं करते। भारत में भी सेकुलर या पंथ निरपेक्षता का अर्थ पांथिक बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक को विशेषाधिकार नहीं हो सकता।

पंथ निरपेक्ष सिंगापुर ने मूल मलय जाति को संरक्षण प्रदान किया है। अन्य देशीय जातियां सिंगापुर के मूल निवासियों की सभ्यता का समापन न कर सकें, इस कारण संवैधानिक व्यवस्था है। पंथ निरपेक्षता का यह अर्थ नहीं है कि, किसी देश के मूल निवासियों की आस्था, विश्वास, सभ्यता, भाषा आदि को नष्ट किया जाये। इस प्रकार पंथ निरपेक्षता के सिद्धान्त द्वारा विश्व मानवता को शान्तिपूर्ण सुखद तथा सम्पन्न सम्बन्धों का आश्वासन है।

8

पंथ निरपेक्षता और अखंडित इतिहास

पंथ निरपेक्ष राज्यों के संदर्भ में, पंथ निरपेक्षता और अखंडित इतिहास का प्रसंग भारतीय संविधान के दृष्टि से भी महत्व का है । भारतीय संविधान के प्रावधानों का, विशेषकर निर्दिष्ट विषय पंथ निरपेक्षता के संदर्भ में, व्याख्या और विश्लेषण भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि में उचित और उपादेय है । यह तथ्य है कि भारत देश अखंडित भूगोल और इतिहास का देश है । इस तथ्य की स्वीकृति भारतीय संविधान में है । भारत के संविधान की जो सर्वप्रथम प्रतियां प्रकाशित की गयी थी, उनमें भारतीय इतिहास के आदिकाल से तत्कालीन सभ्यता, सद्‌पुरुष, सद्‌विचार आदि का चित्रांकन है । संविधान में बाइस चित्र रेखांकित हैं - सभ्यता के आदिकाल के मोहेंजोदरो का वृषभ, वैदिक जीवन का चित्र, अयोध्या के राम की लंका विजय के पश्चात् का दृश्य, महाभारत का कृष्णार्जुन- गीता प्रसंग, महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर, सम्राट अशोक, गुप्तकाल की उत्कृष्ट कला, विक्रमादित्य का न्याय, नालन्दा विश्वविद्यालय, उड़ीसा की मूर्ति कला के नटराज, मुगल स्थापत्य, छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्द सिंह, टीपू सुल्तान, रानी लक्ष्मी बाई, गांधी जी की दांडी तथा नोवाखाली यात्रा, नेता जी जैसे देशभक्त, और भारत भूमि की पवित्र गंगा, सर्वोच्च हिमालय, मरूभूमि, सागर आदि । इन चित्रों में संविधान निर्माताओं की मानसिकता में इस देश के भूगोल की विविधता और इतिहास में महत्वपूर्ण मोड़ों तथा महापुरुषों के कृत्यों की स्वीकृति है । इनसे सहस्त्रों वर्षों से भारतीय भूमि से संलग्नता और इसके समाज के सिद्धान्तों, संघर्षों तथा संरचनाओं आदि का सातत्य स्पष्ट है ।

भारत का भूगोल

भारतीय इतिहास की अखंडताके संवैधानिक संकेत में भारत के भूगोल की गौरव गाथा का चित्रांकन कम महत्वपूर्ण नहीं है । पवित्र हिमालय और उससे जन्मी गंगा से सागर पर्यन्त भारत की अखंडित विशालता और विविधता की स्वीकृति है ।

भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद में राज्य क्षेत्र और उसके नाम का उल्लेख है - भारत अर्थात् इंडिया राज्यों का संघ होगा । भारत प्राचीन नाम है । लगभग इस्लाम अभ्युदय से हिंदिया या हिन्दुस्तान का नामकरण अंग्रेजी उच्चारण में इंडिया, भारत देश बन गया है । इतिहास के विविध कालों में राजनीतिक इतिहास से जैसे निरपेक्ष, भारत के अखंडित भूगोल की भी स्वीकृति सहस्त्राब्दियों पूर्व हो गयी थी ।

वैदिक साहित्य में हिमालय से सागर तक भारत देश की अखंडता का उल्लेख है । भारत की भौगोलिक अखंडता के प्रसार के लिए वैदिक साहित्य ने शताब्दियों तक राजनीतिक कौशल को अश्वमेघ यज्ञ के रूप में ग्रहण किया था ।

वेद प्रणीत धर्म से परिव्याप्त क्षेत्र को पुराणों में भारतवर्ष कहा गया है । विष्णु पुराण में भारतवर्ष के पूर्व, दक्षिण तथा पश्चिम में समुद्र और उत्तर में हिमालय बताकर भारत की सीमा का उल्लेख किया गया । विष्णु पुराण में भारत भूमि को मोक्ष या स्वर्ग प्राप्ति की कर्मस्थली कहा गया है । [१]

स्कंदपुराण के काशी खण्ड के पूर्वार्द्ध में काशी, कांची, माया, अयोध्या द्वारिका मथुरा और अवन्ति, इन सप्त पवित्र पुरियों का देश भारत माना गया । विभिन्न पुराणों तथा प्राचीन साहित्य में भारत देश के गिरिश्रृंगों और उनसे निसृत सरिताओं का भावभीना चित्रण है । वायुपुराण, मत्स्यपुराण तथा मारकंडेय पुराण आदि में भारत को कुमारी अन्तरीप से गंगा तक एक बताया गया है । [२]

सातवीं शती की रचना 'हर्ष चरित' में भारत के तत्कालीन इतिहास का प्रामाणिक साक्ष्य है । इसके रचनाकाल वाणभट्ट ने हर्ष की दिग्विजय प्रतिज्ञा के प्रसंग में पूर्व में उदयाचल, दक्षिण में त्रिकूट पर्वत, पश्चिम में अस्तगिरि और उत्तर में यक्षों का गंधमादन-बदरीनाथ के समीप हिमालय की एक चोटी-इन चार बिन्दुओं में समकालीन सीमा का उल्लेख किया है । [३]

मध्यकालीन साहित्य में भारत भूमि की सीमाओं में भौगोलिक अखंडता के सांस्कृतिक प्रसंग हैं । सोलहवीं शती में जायसी कृत "पद्मावत" महाकाव्य में वर्णित चार खूटें - हेम, सेत और गोर - गाजना - भारतीय भूगोल का सूत्र है । इस साक्ष्य से स्पष्ट है कि, जायसी के समय में भारत वर्ष की सीमा विस्तार में चारखूंटे भूगोल का संक्षिप्त सूत्र था । उत्तर में हेम या हिमालय, दक्षिण में सेत या सेतुबंध, पूरब में गौड़-बंगाल, और पश्चिम में गाजना या गजनी है । [४] इन चार स्थानों के मध्य में मध्यकालीन भारतीय जीवन्त संस्कृति का ताना बाना बुना था । लोक प्रचलित भौगोलिक सूत्र को महाकवि ने ग्रहण किया था । 'पद्मावत' महाकाव्य के 'बादशाह दूती खंड' में हिमालय के कैलाश पर्वत से लेकर सेतुबंध तक की यात्रा का वर्णन है । सांस्कृतिक एकता को बांधने वाले भारत के भूगोल का ही प्रसंग है ।

मध्यकालीन भारतीय अथवा हिन्दी साहित्य का साक्ष्य इतिहास में अधिक महत्वपूर्ण है । इस संदर्भ में रामकथा विशेषकर 'राम चरित मानस' में भारत के हिम मंडित गिरि श्रृंगों और उपत्यकाओं से सुदूर दक्षिण रामेश्वर तक शिव-कथा और राम-कथा का अंकन महत्वपूर्ण है । सत्रहवीं शती के एक महाकवि केशव की राम-कथा (रामचन्द्रिका) में भारतभूमि की नृप के रूप में कल्पना है । प्रयाग को भारतवर्ष रूपी नृप के मस्तक का टीका कहा गया है । [५]

साहित्य में अगणित प्रसंग हैं कि, भारतभूमि की सीमाओं का निर्धारण जो सहस्त्रों वर्षों पूर्व किया गया, वह मध्यकालीन सांस्कृतिक चेतना में व्याप्त रहा है ।

शिवाजी के समकालीन महाकवि भूषण ने भारत के भूगोल में भारत के अन्य क्षेत्रों के साथ असम, सिलहट आदि के सुदूरपूर्व क्षेत्रों का भी उल्लेख किया है ।[६]

भारतीय साहित्य में प्रकृति वर्णन अनिवार्य सांस्कृतिक मांग थी । साहित्य के धरातल पर भारतभूमि प्रकृति वर्णन की संज्ञा पाकर भावजगत की अनुरूपता को गहरे रंगों से रंगकर जनमन की स्फूर्तिदायी प्रेरणा रही है ।

अठारहीं शती में भारत के भूगोल की अखंडता में परम्परागत सांस्कृतिक चेतना की व्याप्ति महत्वपूर्ण है । १७०७ ई० में औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् विदेशी इस्लामी शासकों का राजनीतिक पराभव का प्रारम्भ हो गया था । भारत के अधिकांश विस्तृत भू-भाग में हिन्दू अधिसत्ता का वर्चस्व स्थापित हो गया था ।

भारतीय सांस्कृतिक एकता और अखंडित भूगोल का सम्बन्ध उन्नीसवीं शती में भी अक्षुण रहा । विदेशी साम्राज्यवाद ने राजनीतिक एकता के सूत्र इतिहास में पुनः स्थापित कर भारतीय भूगोल की अखंडता में परोक्ष सहायता की थी । किन्तु बीसवीं शती में पूर्वार्द्ध की समाप्ति तक पंथसापेक्ष शक्तियों ने राजनीतिक विखंडन की स्पष्ट रेखायें भारतीय भूगोल पर उत्कीर्ण की । भारत के भूगोल के बड़े भू-भाग को पांथिक मान्यताओं ने अधिकृत कर लिया । भारतीय संविधान के जन्म का कालखंड भारत के भूगोल के विभाजन की त्रासदी से आक्रान्त रहा है । इस विभाजन का एक ही कारण, पंथ सापेक्ष राज्य या राजनीति की अवधारणा है ।

अखंडितइतिहास

भारतीय संविधान में निहित प्रावधानों को अखंडित इतिहास से उपलब्ध सांस्कृतिक विरासत और संश्लिष्ट मूल्यवत्ता की पृष्ठभूमि पर व्यवस्थापित करना तर्कपूर्ण है। पंथ निरपेक्षता, मूलभूत अधिकारों तथा निदेशात्मक सिद्धान्तों के विश्लेषण में प्रामाणिकता की प्रतिष्ठा, भारतीय इतिहास की अखंडता के आधार पर करना विवेकपूर्ण है।

भारतीय अखंडित इतिहास को विभिन्न काल खंडों में विभाजन और लेखन प्रतिमान पुनर्विचार योग्य है । इतिहास को हिन्दू काल, मुस्लिमकाल और ब्रिटिश काल में बाँटना तर्कपूर्ण नहीं है । भारत के अखंडित इतिहास में कभी हिन्दू काल का समापन नहीं हुआ । विदेशी आक्रमणकारी इस्लाम धर्मावलम्बियों से एक दीर्घकालीन युद्ध की स्थिति में भारतीय इतिहास रहा है । मध्यकालीन शताब्दियों का राजनीतिक भूगोल आक्रान्ताओं से अपने स्वातंत्र्य तथा स्वाभिमान के लिए संघर्षरत रहा है । सन् ११९२ में पृथ्वीराज चौहान के परास्त होने से समस्त देशपरास्त नहीं हुआ । सन् १५२६ में कनवाहा के मैदान में राणा सांगा के पराभव से समग्र भारत की पराजय नहीं हुई । दिल्ली सुलतानों और मुगल बादशाहों से शताब्दियों तक स्वदेशी शक्तियां लोहा लेती रही । अन्त में १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् विदेशी आक्रान्ताओं की शक्ति सिमटती गयी । सन् १७६२ में पानीपत के रणक्षेत्र में देशी शक्तियों की, विदेशी आक्रमणकारी से संघर्ष हुआ । में पानीपत के रणक्षेत्र में देशी शक्तियों

की, विदेशी आक्रमणकारी से पराजय अवश्य हुई । किन्तु विदेशी इस्लामी शक्तियां आगे नहीं बढ़ सकीं । वस्तुतः भारतीय इतिहास के एक विशिष्ट कालखंड को मुस्लिम काल कहना भ्रममूलक है । इतिहास में यह भारत की पहिचान बनाये रखने का संघर्ष काल रहा है । भारत के अखंडित इतिहास के संदर्भ में मध्यकालीन शताब्दियाँ पराजय और पराभव की गाथायें हैं । किन्तु इतिहास की अखंडता अतः सलिला के रूप में प्रवाहित रहना महत्वपूर्ण है । आध्यात्मिक और भौतिक दोनों क्षेत्रों में संघर्ष पोषित होता रहा । समग्र रूप में यह संघर्ष स्वदेशी पंथ निरपेक्ष शक्तियों, और विदेशी पंथ सापेक्ष शक्तियों के मध्य था ।

भारत की उन्नीसवीं शती में अखंडित भारतीय इतिहास की सरिता का वेगपूर्वक प्रकटीकरण महत्वपूर्ण है । किन्तु शताब्दियों से विदेशी आक्रान्ताओं से संघर्ष करने वाली महान जाति जैसे थक गयी हो । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजी साम्राज्यवादी शक्तियों से भारतीय स्वाभिमान और स्वातंत्र्य पराभूत हो गया था । इस परतंत्र के कालखंड को ब्रिटिश आक्रान्ताओं के काल की संज्ञा भारत के इतिहास पर अपमानजनक चोट है । लगभग एक सौ वर्ष तक बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक भारतीय स्वाभिमान संघर्षरत रहा है । भारतीय अस्मिता ने अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए वैचारिक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर समर्पण नहीं किया । भारत का इतिहास शताब्दियों तक संघर्ष कर, बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के समापन पर विभाजित भारत के खंडित भूगोल के मंच पर भी अखंडित और कालजयी रूप में उभर कर आया ।

इतिहास यात्रा

भारत की इतिहास यात्रा के आदि बिन्दु वेद हैं । भारतीय इतिहास की गंगोत्री- वेद से गंगा का प्रवर्तन होता है । वेद की परम्परा सजीव सुरक्षित रखकर इतिहास, गंगा के उद्‌गम से पृथक नहीं हुआ । सम्भवतः किसी युग में यह गंगा अन्तःसलिला के रूप में हो गयी थी । वागदेवी सरस्वती के पुत्र अपान्तरतमा ने वेदों की शाखाओं में उद्‌भिन्न किया । शिशु कवि सारस्वत को इन शाखाओं का ज्ञान था। इसी हेतु वेद को भूले हुये ऋषि उनके पास पहुँचे, तो लुप्त हुए वेदों का ज्ञान उन्होंने उन ऋषियों को पुनः करा दिया ।[७]

'भारत का वेदकाल से लेकर आज तक सनातन राष्ट्र जीवन का प्रवाह रहा है । ऐसी स्थिति में भारतीय इतिहास की एक ऐसी रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है, जो उपर्युक्त विकृतियों से मुक्त हो, और भारतीय राष्ट्रजीवन को एक अखंड सांस्कृतिक प्रवाह की अभिव्यक्ति मानते हुए उसके उत्थान-पतन, जय-पराजय के प्रसंगों में प्रकट हुई उसकी सनातन जिजीविषा को चित्रित कर सके ।'[८]

दस सहस्त्र वर्षों से अधिक प्रागऐतिहासिक काल के आदि ग्रंथ ऋग्वेद के विचार, भावनायें, शब्द - भंडार तथा समाज संरचना आदि भी वर्तमान में अप्रासांगिक नहीं है ।[९] वैदिक साहित्य के केन्द्रबिन्दु से जीवन दर्शन, जीवन्त मूल्यों, मान्यताओं और आदर्श तथा आचरण के प्रारूप और प्रतिमान सहस्त्रों वर्षों तक भारतीय इतिहास

गढ़ता रहा है । वैदिक वाग्मंय ने जिस आत्मवत्ता और नैतिकता का अभ्युदय किया, उसको मूल बिन्दु मानकर भारत का इतिहास अखण्डित रहा है ।

भारतीय इतिहास में भगवान बुद्ध का अभ्युदय वेद विरोधी नहीं प्रतीत होता। वैदिक विचार धारा से भगवान बुद्ध ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सदाचार, संयम, त्याग, वैराग्य, कर्मविपाक, विशुद्ध ब्राह्मणत्व आदि ग्रहीत किया, और शील, समाधि तथा प्रज्ञा की धारा में प्रवाहित किया था । वैदिक यज्ञों के कर्मकांड पशुबध, ऊंच-नीच भेद आदि को बुद्ध ने व्यर्थ घोषित किया था । भगवान बुद्ध के सुभाषितों का पुष्पगुच्छ 'धम्मपद' है । इसमें स्पष्ट है कि, भले ही कोई बहुत सी संहिता (वेदमंत्र) कंठस्थ कर ले, किन्तु प्रमादवश उसका आचरण न करे तो वह दूसरो की गौएं गिनने वाले चरवाहे के समान है । 'बहु पिचे सहिंत भासमानों न तक्करो होति नरो पमत्तो । गोपो व गावो गणयं परेस न भागवा सामंजस्य होति ।' भले थोड़ी सी संहिता ही कंठस्थ हो, किन्तु उसमें उपदिष्ट धर्म का आचरण प्रामाणिक होना आवश्यक है ।

वैदिक और बौद्ध चिन्तन स्वतंत्र और समानान्तर रूप से भारतीय इतिहास में शताब्दियों से गतिशील रहे हैं । इनके द्वारा इतिहास का विखंडन नहीं हुआ । सातवीं शताब्दी में वेद-बुद्ध का सामंजस्य सम्राट हर्ष के राजस्व काल की घटनाओं से सिद्ध होता है । विदेशी चीनी बौद्ध चिन्तक को गौरवान्वित कर, भारतीय इतिहास में औदार्य की भूमिका प्रकट होती है ।

दसवीं शती में ऐतिहासिक वैदिक आदि बिन्दु की पुर्नप्रतिष्ठा शंकराचार्य द्वारा की गयी थी । वैदिक साहित्य के भाष्य द्वारा सनातन या नित्य नूतन तत्वज्ञान की स्थापना शंकराचार्य ने की थी । इसी क्रम को मध्यकालीन वैष्णव आचार्यों रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा वल्लभ ने अग्रसारित किया ।

बौद्ध जीवनदर्शन ने भारतीय इतिहास में नैतिकता तथा नीतिमत्ता की जो प्रतिष्ठा स्थापित की, परवर्ती विचार धारायें उससे प्रेरित और प्रभावित रही हैं । वेदान्त और वैष्णव विचार सरणियां बुद्ध के तत्वज्ञान से आक्रान्त होकर भी वेद को प्रामाण्य मानकर प्रवर्तित हुई हैं । बौद्ध चिन्तन ने मध्यकालीन सन्तों को परोक्षरूप से प्रभावित किया है । ज्ञानदेव, कबीर, नानक आदि सन्तों की सिखावन, इधर उपनिषद और गीता की सिखावन, दोनों के बीच 'धम्मपद' एक जोड़ने वाली कड़ी सा मालूम हुआ । [१०]

भारतीय मध्यकालीन साहित्य के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि इतिहास के केन्द्रबिन्दु में वैदिक आध्यात्मिक चिन्तन रहा है । इसके विवेक से सम्बद्धता और विसंगतियों से अबद्धता के सूत्र तत्कालीन चिन्तन में उपलब्ध हैं । मध्यकालीन सन्तों ने उपासना पद्धति में विवेकवत्ता की आकांक्षा में उपनिषदीय ज्ञान की अभिव्यक्ति की है । मध्यकालीन संतों की एक श्रेणी - कबीर, नानक रैदास आदि ने वेद पुराण आदि की अप्रशंसा भी की, और संतों की दूसरी श्रेणी तुलसीदास आदि ने लोकवेद दोनों को मान्य किया । समग्र जीवन धर्म को निगमागम-पुराण के आधार पर निरूपित किया ।

भारतीय इतिहास के आदि ग्रन्थ वेद के सारांश को कबीर ने भी ग्राह्य कहा था । [११] कबीर वेद नहीं जानते, भेद नहीं जानते, केवल गहरीआस्तिकता से राम को

समर्पित हैं ।[१२] कबीर के इस राम की स्तुति कोटि-कोटि ब्रह्मा वेद उच्चारण से करते हैं ।[१३] जायसी साहित्य में वेद के अंकुश न होने पर मनुष्य जाति के उन्माद में बह जाने पर आशंका प्रकट की गयी है । तुलसी साहित्य में वेद को ईश्वर का सहज निश्वास कहा गया है । मध्यकालीन जीवन, धर्म, साधना, तत्वज्ञान आदि का केन्द्र बिन्दु वैदिक साहित्य का अनुकरण या आलोचना रहा है । इसमें भारतीय इतिहास की अखण्डता जीवित जाग्रत रही है ।

उन्नीसवी शती भारतीय इतिहास की अखण्डता की पुनः स्थापना का मुखर साक्षी है । राजा राममोहन राय का ब्रह्म समाज तथा स्वामी दयानन्द का आर्य समाज, वैदिक साहित्य की मूल्यवत्ता और नीतिभत्ता के पोषण के लिए प्रवर्तित हुए । रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने भारत के प्राचीनतम तत्व ज्ञान से सम्बन्ध जोड़कर आधुनिक भारत की नींव डाली ।

विवेकानन्द ने कहा है कि, 'अतीत के इतिहास ने भारत के आन्तरिक जीवन का और पश्चिम ने सक्रियता (अर्थात बाहय जीवन) का विकास किया है ।'[१४] अखण्डित इतिहास ने भारत की मानसिकता को सागर के समान गहरा, और आकाश के समान विस्तृत करने में अपना योगदान दिया है ।

बीसवीं शती में भारतीय विचारकों ने प्राचीन परम्परा से सम्बन्ध और प्रगतिशीलता से अनुबन्ध का कौशल प्रकट किया है । लोकमान्य तिलक, अरविन्द, महात्मागांधी आदि के विचारों में अतीत का इतिहास जीवित जाग्रत है । इसके साथ ही वर्तमान का समाधान और भावी की सुखद संरचना है ।

महात्मा गांधी ने अपनी कृति 'हिन्द स्वराज्य' में भारत के गौरवपूर्ण अतीत और गतिवान आगत पर आस्था प्रकट की है । गांधी जी ने हिन्दुस्तान के इतिहास के उत्कर्ष को अतुलनीय बताया है । 'जो सुधार हिन्दुस्तान ने दिखाया है, उसको दुनिया में कोई नहीं पहुंच सकता । जो बीज हमारे पुरखों ने बोये हैं, उनकी बराबरी कर सके, ऐसी कोई चीज देखने में नहीं आयी । रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ नाम ही रह गया । लेकिन गिरा टूटा जैसा भी हो, हिन्दुस्तान आज भी बुनियाद में मजबूत है ।'

संविधान के प्रत्यावर्तन से भारत के अखण्डित इतिहास को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई । संविधान निर्माताओं ने अतीत तथा आधुनिक इतिहास के अति महत्वपूर्ण मान्य महापुरुषों के चित्रों को सजाकर अपनी आकांक्षा की अभिव्यक्ति की है । संविधान के भाग ४ के अनुच्छेद ४६ में राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं के संरक्षण का प्रावधान है । घोषित राष्ट्रीय महत्व के कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या वस्तु की यथास्थिति, लुंठन, निरूपण, विनाश, अपसारण, व्ययन या निर्यात से संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी । इसका अभिप्राय है कि, कोई भी वस्तु जो भारत के इतिहास का विखण्डन करती है, उसकी स्वीकृति संवैधानिक नहीं हो सकती ।

वर्तमान इतिहास या पूर्व इतिहास के ऐसे अपकृत्यों द्वारा जब इतिहास के विखण्डन का दुस्साहस किया गया है, संविधान के प्रावधान उस पर भी प्रभावी हो

सकते हैं । अखंडित इतिहास के देश में विगत की मर्यादाओं के विरुद्ध अन्याय का प्रक्षालन यदि न कर सके तो संविधान सक्षम नहीं समझा जा सकता ।

भारतीय संविधान के अंगीकृत होने के पश्चात् गांधी विचार सरणि के विनोबा का कथन है कि भारत देश पुराण है, शाश्वत है, और नित्य है ।[१५] विनोबा ने कहा है कि, "यहां वैदिक संस्कृति फली-फूली । जैन और बौद्ध ने यहां उत्तम विचार प्रकट किये । मुसलमानों का राज यहां आया, इसलिए लोकशाही का विचार फैला । ईसाई धर्म के परिणाम स्वरूप हिन्दुस्तान में सेवावृति और मिठास पैदा हुई ।"[१६]

एकात्म मानववादी विचार सरणि ने आदर्श मूल्यवत्ता की निष्ठा में अखण्डित इतिहास की प्रतिष्ठा की है । 'अपने जीवन पंथ का विकास हमारे प्राचीन ऋषियों द्वारा आविष्कृत तर्क, अनुभव एवं इतिहास की कसौटी पर कसे हुए सत्य के आधार पर ही करना चाहिए ।[१७]

अखण्डित भारतीय इतिहास की सतत् प्रवहमानता की मुख्य धारा धर्म-बोध की उत्कृष्ट आकांक्षा है । जिसने वेद से वर्तमान तक मानवीय मूल्यवत्ता की अटूट स्वीकृति प्रदान की है । धर्म की मुख्य धारा के विश्लेषण के पूर्व भारतीय पंथ निरपेक्षता के परिप्रेक्ष्य में धर्म की परिभाषा तथा परिव्याप्ति का विवेचन आवश्यक है ।

संदर्भ संकेत

१- विष्णुपुराण २/३/१
२- धर्मशास्त्र का इतिहास - डॉ० वामनकाणे पृ० १०८
३- हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन - डॉ० वासुदेव शरण पृ० ५
४- पद्मावत् - संजीवनी भाष्य - डॉ० वासुदेव शरण पृ० ४३१
५- रामचन्द्रिका - केशवदास - २०/३०
६- भूषण ग्रंथावली - पृ० ४६ छंद १५४
७- चतुर्वेद मीमांसा - डॉ० मुंशीराम शर्मा पृ० २०
८- भारतीय इतिहास माला - भाग २ - कुप०सी० सुदर्शन - प्रस्तावना
९- भूदान गंगा - विनोबा - भाग ४ - पृ० २३
१०- धम्मपद - विनोबा प्रास्ताविक पृ० ५
११- कबीर ग्रंथावली - साखी भाग १७/६
१२- वही - पद २२०
१३- वही - पद ३४०
१४- विवेकानंद साहित्य - भाग ४ - पृ० २६४
१५- भूदान गंगा - भाग ४ - विनोबा पृ० २३
१६- वही पृ० १४१
१७- विचार नवनीत - गुरु गोलवलकर पृ० १६२

◆ ◆ ◆

9

धर्म-परिभाषा और परिव्याप्ति

धर्म शब्द का अर्थ भारतीय इतिहास की परम्परा, प्रवाह तथा परिस्थितियों के अनुकूल ग्रहण करना विवेक सम्मत है । इतिहास ने धर्म शब्द में ऊर्जा और औदार्य को समाविष्ट किया है । विभिन्न कालखण्डों में जिस अर्थवत्ता से धर्म को पुष्ट किया गया, उसका आकलन भी तर्क संगत है । भारतीय इतिहास में धर्म जिन परिभाषाओं, परिसीमन तथा परिवर्धन-परिवर्तन आदि की प्रक्रियाओं से निसृत है, उनका विहंगावलोकन वर्तमान तथा आगत की सामाजिक संरचना और संवैधानिक सीमाओं के निर्धारण के लिए उचित तथा उपादेय है ।

धर्म का समानार्थक अन्य शब्द उपलब्ध नहीं है । धर्म, मजहब, पंथ, सम्प्रदाय आदि से अत्यधिक व्यापक है । धर्म, सत्य, पावित्र्य, आस्था, अहिंसा आदि से अधिक विराट है । धर्म, विधि-विधान से अधिक अर्थगर्भित है । समस्त सद्पंथों, सम्प्रदायों, सद्गुणों तथा विधि-विधानों का आधार धर्म है । भारतीय समाज की संरचना, संगठन तथा नैतिकता और नीतिमत्ता का नियामक धर्म रहा है ।

धर्म के समकक्ष शब्द रिलीजन अंग्रेजी भाषा में है । रिलीजन का पर्याय पंथ शब्द हो सकता है । रिलीजन या पंथ, धर्म का पर्याय नहीं हो सकता । रिलीजन उपासना पद्धति है । इसमें ईश्वर के प्रति सम्बन्धों का निरूपण है । रिलीजन में नैतिकता भी समाविष्ट है । रिलीजन में आचार संहिता, रीतियां और रूढ़ियां भी संलग्न हैं । रिलीजन में तत्सम्बन्धी पौराणिक आख्यान आदि भी हैं । लगभग सभी पंथों में आस्तिकता या नैतिकता समान रूप से है । देश-काल-समाज के अनुसार नाम-रूप में अन्तर है । किन्तु धर्म इससे वृहत्तर अर्थगर्भित शब्द है । धर्म विराट है । रिलीजन वामन है । रिलीजन या पंथ आस्था, श्रद्धा, निष्ठा तथा कृति के आधार पर निर्मित होता है । धर्म में ये सब हैं, किन्तु इससे अधिक गहरायी और गाम्भीर्य है । धर्म, तर्क और विवेक से भी संपोषित, संरक्षित तथा सुरक्षित है । भारतीय इतिहास के परिप्रेक्ष्य में इसे सहज रूप में समझा जा सकता है ।

धर्म प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रेरक, प्रणेता तथा इसके प्रारूप का नियंत्रक रहा है । इस धर्म के मानवीय, मंगलकारी और मार्गदर्शक रूप का विवेचन वर्तमान और भावी राजनीति की पुर्नरचना या परिष्कार पर गहरे तथा गम्भीर प्रभाव को स्पष्ट कर सकता है । भारतीय राजनीति ने प्राचीन काल में विभिन्न राज्य प्रतिमानों का प्रयोग और परीक्षण भी किया है । प्राचीन काल के भारत में सुव्यवस्थित शासन

प्रणाली का विकास हुआ था । सामान्यतः भारतीय राजनीति में निरंकुशता और न्याय हीनता का विरोध किया गया । इसमें धर्म की प्रमुख भूमिका, राजनीति में मानवीय मूल्यों के संरक्षण की रही है ।

भारतीय धर्म की परिभाषा, परिव्याप्ति और परिसीमन महत्वपूर्ण है । धर्म की विभिन्न परिभाषाओं में मानव जीवन के सम्पूर्ण पक्षों से इसका सम्बन्ध महत्व का है । भारतीय जीवन में धर्म का शुभारम्भ किसी पवित्र नदी के निर्मल स्रोत के समान है । इतिहास में धर्म की उत्पत्ति और उसके विभिन्न मोड़ों में इसके स्वरूप का दर्शन, मानवीय जीवन की विवेकवत्ता का निर्धारक है ।

इतिहास का शुभारम्भ

पाश्चात्य इतिहासविदों ने मानव समाज का प्राकृत जीवन या पशु - जीवन से शुभारम्भ माना है । पश्चिमी इतिहास पद्धति ने मानव समाज की पाशविक परिस्थितियों से धीरे-धीरे उभर कर सभ्य समाज में उभरने का अंकन किया है । पाषाण युग से धातु युग आदि में मानव समाज की यात्रा का वर्णन आधुनिक इतिहास की तार्किकता है । किन्तु भारतीय मनीषी मानव समाज का शुभारम्भ सत्ययुग से करते हैं। प्राचीन भारतीय वांग्मय में सतयुग का वर्णन मानवीय समाज के स्वर्णिम काल के समान है । जैसे गंगोत्री के जल को अति शुद्ध रूप में होना आवश्यक है, उसी प्रकार मानव समाज का उद्गम भी सहज रूप में परिष्कृत और पवित्र होना तर्क संगत है । मानव समाज ने अपने शुभारम्भ काल में जिस सद्भाव पूर्ण सहजीवन शैली की शोध की, उसे धर्म की संज्ञा दी गयी । मानवीय समाज का शुभारम्भ काल इसी धर्म के आधार पर सतयुग बना था । यह धर्म, प्रथा या पंथ नहीं है । यह सामाजिक कौशल या सद्भाव युक्त क्रिया कलाप है । जिन आधारों पर मानव समाज मानवीय बना रहे, वे धर्म के रूप हैं । धर्म वस्तु का वस्तुत्व है- जैसे सूर्य का धर्म सतत परिक्रमा द्वारा सृष्टि को उष्णता तथा प्रकाश देना, और जैसे अग्नि का धर्म जलाना है । उष्णता तथा प्रकाश की शक्ति सूर्य से, और जलानें की शक्ति अग्नि से समाप्त होने पर उनका वस्तुत्व या अस्तित्व का समापन हो जायेगा । धर्म के बिना किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है । मानवता ही मानव का सहज धर्म है । यदि मानवता का समापन होता है, उसके धर्म का समापन हो जायेगा । इस प्रकार व्यापक अर्थ में धर्म का प्रयोग प्राचीनकाल से भारतीय इतिहास में हुआ है ।

निरपेक्षता - सापेक्षता

धर्म निरपेक्ष तथा सापेक्ष सत्ता के रूप में भी, भारतीय वांग्मय में अंकित है। धर्म स्वयंसिद्ध तथा निरपेक्ष और परम स्वतंत्र सत्ता है । प्रत्येक स्थिति या वस्तु धर्म की मुखापेक्षी है । धर्म प्रकाशमान परमतत्व है ।

धर्म, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या प्रत्येक क्षेत्र में तत्सम्बन्धी आदर्शों का स्रोत है । धर्म आदर्शों का अधिष्ठाता है । धर्म आदि का आधार है । धर्म आदि का कारण है । धर्म परम सत्य तथा शाश्वत सत्य है । इस प्रकार धर्म निरपेक्ष सत्ता के साथ-साथ सापेक्ष सत्ता भी है ।

धर्म नाम, रूप, गुण या देश तथा काल आदि की सीमाओं से बद्ध अभिव्यक्ति तथा आचरण भी हैं। धर्म, असीम और नित्य सत्ता के रूप में देश-काल को गति तथा बंधन देकर भी, बंधन मुक्त है। धर्म अपरिवर्तनकारी और अविकारी होकर भी नित्यनूतन है। धर्म, कर्म का सिद्धान्त, और नैतिक व्यवस्था का कारण है। धर्म, अव्यवस्था होने पर या समाज सन्तुलन के नष्ट होने पर, सर्वोच्च सत्ता की अवतारणा द्वारा व्यवस्था की पुर्नस्थापना करता है।

धर्म, सृष्टि की गतिशीलता का अदृश्य कारण है। धर्म, सृष्टा के साक्षात्कार की प्रक्रिया भी है। धर्म सृष्टा के रूप - अरूप, निराकार - साकार, तथा सगुण - निर्गुण का निर्णायक है। धर्म मानवीय जीवन के सभी पक्षों का नियामक है। धर्म निस्सीम - ससीम है। धर्म चेतन तथा अतिचेतन है। धर्म पूर्णता तथा अपूर्णता, और पूर्णत्व की दिशा है।

धर्म एक ही है, जिस पर मानवता स्थापित होती है। किन्तु धर्म की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में होती आयी है, तथा हो सकती है। जितने विराट परिप्रेक्ष्य में धर्म की अभिव्यक्ति हो सकेगी, वह मानवता के उतने ही निकट स्थिर होगा। धर्म में जितनी संकीर्णता की अभिव्यक्ति होगी, उतना ही धर्म संकीर्ण होगा। संकीर्ण अर्थ में धर्म के ग्रहण करने पर, यह मानवता के अनिवार्य और आवश्यक आधारों से दूर होता रहेगा। प्राचीन काल से भारतीय धर्म शब्द संकीर्ण के विरोध में विराट का पर्याय है।

वैदिक धर्म

भारतीय सभ्यता के शुभारम्भ का प्रथम साक्ष्य वेद है। वेदों में धर्म की स्थापना विराट रूप में है। धर्म का मानवीय रूप भी, वैदिक धर्म की व्याप्ति की तुलना में वामन है। इस कारण शताब्दियों से धर्म - जिज्ञासा के परम प्रमाण वेद ही हैं। भारतीय धर्म की प्राणवायु वेद ही हैं। भारतीय धर्म में जो अक्षय शक्ति प्रतीत होती है, उसका मूल कारण वेद हैं। समस्त मानवता के इतिहास में वेद सर्व प्रथम ग्रंथ है। धर्म का साक्षात्कार करने वाले मनीषियों के अनुभूत परम तत्व का प्रकटीकरण वेद में है।

वैदिक युग के धर्म के स्वरूप का विवेचन तत्कालीन संहिता और अन्य साहित्य में है। वैदिक संहिताओं का रचनाकाल ईसा से चार सहस्त्र वर्ष पूर्व से अधिक का है। काल निर्धारण में विवाद अभीष्ट नहीं है। भारतीय इतिहास की प्राचीनता, संहिता से संविधान तक इसकी अखण्डता तथा इसके धर्म की विवेकता की स्थापना महत्व के विषय हैं।

वेद अनन्त आदि भाव राशि के समष्टि हैं। पौराणिक गाथा के अनुसार मीनावतार, प्रथमावतार हैं। मीनावतार द्वारा वेद का उद्धार वर्णित है। पौराणिक कथायें प्रतीकों द्वारा अपने मंतव्य प्रकट करती रही हैं। इसका स्पष्ट अर्थ है कि, सृष्टि की कारण रूप आदि सत्ता जिसे ईश्वर की संज्ञा दी गयी, उससे वेदों का प्रकटीकरण हुआ। वेद का अभिप्राय ही है; आदि और अनन्त धर्म का संचय तथा अनादि सत्यों का समुच्चय। वेद से अभिप्राय केवल पांथिक ग्रंथ ग्रहण करना उचित और उपादेय

नहीं है । इनका अर्थ है, आध्यात्मिक नियमों का संचित कोष, जिनकी खोज विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न कारणों से की है ।[१]

ऐतिहासिक काल के पूर्व में वेदव्यास ने वैदिक सूक्तों का संहिता रूप में संग्रह किया । ये संकलित वैदिक संहितायें चार हैं । वैदिक संहिताओं में ऋषि वंशों की श्रुति संग्रहीत हैं । वैदिक संहितायें प्राचीन यूनान तथा इजराइल दोनों के साहित्य से प्राचीन हैं । जिन्होंने इसमें अपनी उपासना की अभिव्यक्ति दी थी, उनकी सभ्यता के ऊंचे स्तर को ये प्रकट करती हैं । संहिता में मंत्रों, प्रार्थनाओं, स्वस्तिवाचन, यज्ञविधियों और निवेदन गीतों का संग्रह है ।[२] ग्रंथ रूप में वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ हैं । वेद हिन्दू धर्म के सभी विभिन्न सम्प्रदायों के आधार हैं । वेद के अभाव में हिन्दू धर्म का ज्ञान सम्भव नहीं है । वैदिक युग के धर्म के स्वरूप का विवेचन संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् में हैं । वेद संहिताओं के संकलन हैं । ये संहितायें मंत्र हैं, जिन्हें पद्य में लिखा गया है । संहिता का अभिप्राय है, सूक्तों या मंत्रों का संग्रह । पद्य का नाम ऋचा या ऋक है । चार वेदों में प्रथम ऋग्वेद, दस मंडलों में विभक्त है । इसमें एक सहस्त्र से अधिक ऋचा संग्रहीत हैं । यजुर्वेद के चालीस अध्याय हैं । इसके शुक्ल और कृष्ण दो विभाग हैं । सामवेद बत्तीस अध्यायों में है । अर्थववेद के बीस कांड हैं ।

बाजसनेयी संहिता को वास्तविक यजुर्वेद कहा जाता है । इसका चालीस अध्यायों में विभाजन है । इसका अन्तिम अध्योय ईशोपनिषद है । धर्म की उत्कृष्ट दार्शनिक व्याख्या इसकी विशिष्टता है । यह धर्म समस्त विश्व को ईश के आवास की भावुक अनुभूति और आकांक्षा से ओत प्रोत है ।

सामवेद में सहस्त्रों संहिताओं का उल्लेख पाया जाता है । किन्तु कौथुम, शाखा, जैमिनीय शाखा और राणायनीय शाखा उपलब्ध हैं । कौथुम शाखा सर्वाधिक प्रसारित है । इसकी अधिकांश ऋचायें ऋग्वेद की हैं ।

अर्थववेद की दो शाखायें उपलब्ध हैं - शौनक तथा पिपप्लाद । शौनक शाखा प्रचलित रही है । इसमें भी अधिकांश ऋग्वेद की ऋचायें संग्रहीत हैं ।

ब्राह्मण गद्य लेख हैं । ब्राह्मण ग्रंथ वेदों के अंग हैं । इनमें उपासना का कर्मकांड के रूप में विस्तार है । इनमें अनुष्टानों और यज्ञों का वर्णन है । प्रत्येक वेद से कुछ ब्राह्मण ग्रंथ सम्बद्ध हैं । ब्राह्मणों का विश्वास है कि. पार्थिव जीवन कुल मिलाकर अच्छा ही है। मनुष्य के लिए आदर्श. इस पृथ्वी पर पूर्ण आयु तक जीना है ।[३] ब्राह्मणों के बहुत से भाग में कर्मकांड के विभिन्न तत्वों का रहस्यवादी महत्व स्पष्ट किया गया है ।

ऋग्वेद से सम्बन्धित दो ब्राह्मण ग्रंथ हैं - ऐतरेय और कौशीतकी अथवा सांख्यायन । ऋषि ऐतरेय इसके रचनाकार या संकलन कर्ता थे । इसमें राज्यभिषेक का वर्णन प्रमुख है । एतरेय ब्राह्मण में धर्म शब्द सकल धार्मिक कर्तव्यों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

यजुर्वेद के कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रंथ तैत्तिरीय ब्राह्मण है । इसमें याज्ञिक विधियों का वर्णन प्रमुख है ।

कृष्ण यजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रंथ शतपथ ब्राह्मण है । यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण ब्राह्मण ग्रंथ १४ कांडों तथा १०० अध्यायों में विभाजित है । इसमें धर्म की दार्शनिक व्याख्या है । यह याज्ञवल्क्य ऋषि की कृति समझी जाती है । शतपथ ब्राह्मण ने मनुष्य के तीन जन्मों का उल्लेख किया है । प्रथम जन्म माता-पिता से, द्वितीय यज्ञादि के अनुष्ठान से, और तृतीय जो मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होता है । मृत्यु अंत नहीं है । यह नूतन अस्तित्वों का निमित्त है । सामवेद के तीन ब्राह्मण ग्रंथ हैं - ताण्डव महा ब्राह्मण, षडविंश ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण । अर्थववेद से सम्बद्ध गोपथ ब्राह्मण है ।

वेदों से सम्बद्ध आरण्यक और उपनिषद्, धर्म की तात्विक मीमांसा के लिए दार्शनिक जगत के लोकप्रिय ग्रंथ हैं । आरण्यक, वनों में रचित ग्रंथ हैं । इनका कुछ भाग ब्राह्मणों के अन्तर्गत और कुछ स्वतंत्र है । आरण्यक और ब्राह्मण में कोई शुद्ध और अत्यन्त स्पष्ट अन्तर नहीं है ।

ऋग्वेद से सम्बद्ध है - कौशितिकी आरण्यक तथा कौशितिकी उपनिषद् और ऐतरेय उपनिषद् । यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग वृहद् आरण्यकोपनिषद के रूप में है । यह शुक्ल यजुर्वेद का आरण्यक या उपनिषद ग्रंथ है ।

कृष्ण यजुर्वेद के आरण्यक या उपनिषद ग्रंथ हैं - कठोपनिषद् श्वेताश्वतरोपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद तथा मैत्रायणीय उपनिषद् । सामवेद के दो उपनिषद् हैं - केनोपनिषद् और छान्दोग्य । छान्दोग्य उपनिषद का प्रथम खण्ड एक आरण्यक मात्र है । अर्थववेद से सम्बद्ध उपनिषद है - मुंडक, प्रश्न तथा मांडूक्य ।

धर्म शब्द धृ धातु से निर्मित है । इसका स्पष्ट अभिप्राय धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना आदि है । धर्मशास्त्र के एक इतिहास प्रणेता के अनुसार, वेद की भाषा में उन दिनों इस शब्द का वास्तविक अर्थ क्या था, कहना अशक्य है। अधिक स्थानों पर धर्म, धार्मिक विधियों या धार्मिक क्रिया संस्कारों के रूप में प्रयुक्त हुआ है । ऋग्वेद की 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' ऋचा उपर्युक्त कथन को प्रमाणित करती है । इसी प्रकार प्रथम धर्मा तथा 'सनता धर्माणि' का अर्थ क्रमशः प्रथम विधियां तथा प्राचीन विधियाँ हैं । कहीं-कहीं यह अर्थ नहीं भी प्रकट होता है, जहां पर धर्म का अर्थ निश्चित नियम (व्यवस्था या सिद्धान्त) या आचरण नियम है । ऋग्वेद के बहुत से मंत्र अथर्ववेद में मिलते हैं । जिनमें 'धर्मन' शब्द का प्रयोग हुआ है ।[८] अथर्ववेद में धर्म शब्द का प्रयोग धार्मिक क्रिया संस्कार करने से अर्जित गुण के अर्थ में भी हुआ है ।

वैदिक वांग्मय में धर्म संज्ञान है । संज्ञान का अभिप्राय समज्ञान या सम्यक ज्ञान है । अर्थववेद के काण्ड तीन, सूक्त तीस में सात मंत्र हैं । इन मंत्रों में व्यक्ति-व्यक्ति, परिवार-परिवार, गृह-समाज, देश-विश्व सभी के लिए सौहार्द, सामंजस्य, स्नेहपूर्ण व्यवहार और सहयोग-सहकार के साथ सहजीवन या साथ-साथ रहने, चलने तथा कर्म करने का उपदेश है । सम का अर्थ है - साथ-साथ, सबसे मिला हुआ, पूर्ण अविरोधी, सामने । जिस ज्ञान से सहजीवन,सहकार, सम्पूर्णता तथा स्नेहपूर्ण वातावरण का सृजन हो, वह संज्ञान है ।[५]

"येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्यों ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेम्यः ॥"

अर्थववेद के इस मंत्र में देवी शक्तियों को अपनी-अपनी मर्यादा के अनुकूल गतिशील होने का उल्लेख है । सूर्य-चन्द्रादि देव अपनी-अपनी कक्षा में चल रहे हैं । कोई किसी का विरोधी नहीं है । निश्चित दिशा में इनकी सक्रियता है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक ऐसे गृह, परिवार या समाज के समान है, जो स्वकर्म द्वारा अपनी-अपनी भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं । इस वैदिक संज्ञान की संज्ञा धर्म है ।

वैदिक धर्म सत्य की शोध की दिशा में है । ऋग्वेद में उल्लेख है कि सृष्टि के उद्‌भव के पूर्व ऋतं और सत्यं उत्पन्न हुए । सत्य से आकाश, पृथ्वी, वायु आदि पंच महाभूत स्थिर हैं ।

'सत्येनोत्तमिता भूमिः', सत्य शब्द का धातर्त्वथ भी यही है कि, जिसकाअभाव न हो । इसलिए सत्य के अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं है ।

वैदिक साहित्य में जिस धर्म की व्याख्या है, उसमें मानवतावादी या सामाजिक दृष्टिकोण प्रमुख है । ऋग्वेद में अपेक्षा है कि जैसे अपने प्रति व्यवहार के आकांक्षी है, उसी प्रकार का व्यवहार दूसरे से भी करनाहै ।

"संगच्छध्वं संवद्ध्वं संयो मनासि जनताम,
देव भागं यथा पूर्व सं जानान उपासते ।"

वैदिक धर्म ने प्राणी मात्र को विराट आत्मा के अंग रूप में समझा है । सभी प्राणी मित्र हैं । एकात्मता के आधार पर सामाजिक सम्बन्धों में मानवतावादी दृष्टि है। इसमें भी आगे बढ़कर सृष्टि के साथ एकात्मता है । वेद-विचारों का सर्वात्मवादी दृष्टिकोण सभी को मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को आमंत्रण देता है ।

ऋग्वेद में सभी मनुष्यों को एक ही जाति का घोषित किया है - 'एकैव मानुषी जातिः ।'

अर्थववेद के पृथ्वीसूक्त में महत्वपूर्ण मानवतावादी दृष्टिकोण का विवेचन है । [६]

"जनं विभ्रति बहुधा बिवाचसम् ।
नाना धर्माणं पृथ्वी यथौकसम ।"

इस धरती पर विभिन्न विचारों, मतवादों तथा बिविध भाषाओं को आश्रय उपलब्ध हैं । सभी के कल्याण की कामना है । इसी वेद में पृथ्वी से उस शक्ति की कामना है, जिससे धरती माता के ही पुत्रों के रूप में पारस्परिक सम्बन्धों में सद्‌भावनापूण संवाद प्रवाहित रहे । एक दूसरे से सम्पर्क और स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि हो ।

संहिता में धर्म की संतुलित परिभाषा है कि, जिससे इस लोक में अभ्युदय हो, और जो मोक्ष की प्राप्ति में सहायक हो, वही धर्म है । वह धर्म अपूर्ण है, जो केवल सांसारिक समृद्धि प्राप्ति की दिशा प्रशस्त करता है । इस धर्म की आकांक्षा है कि नये से और भी नये, और ऊंचे से भी ऊंचे जीवन की ओर मनुष्य जाति बढ़ती रहे - 'प्रतार्यायुः प्रतरं नवीयः ।'

उपनिषदीय धर्म

उपनिषदीय साहित्य का रचनाकाल ईसा के जन्म से पूर्व की कई शताब्दियों का है । भारतीय परम्परा एक सौ आठ उपनिषदों को मान्यता देती है । प्रमुख उपनिषद् दस हैं- ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुंडक, मांडूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय, छांदोग्य और वृहदारण्य।

'उपनिषदें अपनी स्थापनाओं की आध्यात्मिक अनुभूति पर आधारित हैं । आज जो धर्म विमुखता है, वह बहुत हद तक आध्यात्मिक जीवन पर धार्मिक रीति या पद्धति के हावी हो जाने का परिणाम है । उपनिषदों के अध्ययन से धर्म के उनमूल तत्वोंको, जिनके बिना धर्म का कोई अर्थ ही नहीं रहता, सत्य के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने में सहायता मिल सकती है ।' [७]

उपनिषदों में प्रतिपाद्य धर्म का विवेचन इसके तात्विक और सात्विक तथा विवेकपूर्ण और वैश्विक रूप में है । इस संसार के प्रवाह के पीछे वास्तविकता क्या है? यह वह क्या है, जिसके ज्ञान से प्रत्येक वस्तु का ज्ञान हो जाता है ? [८]

उपनिषदों में धर्म के नाम पर निस्सार और व्यर्थ कर्मकांडों की आलोचना है। स्वार्थमय तथा संकीर्ण और ज्ञानहीन मार्ग की अपेक्षा, शाश्वत जीवन के मार्ग को उपनिषदों ने प्रशस्त किया है । इसमें स्थूल यज्ञादि गौण हैं । वेदों के स्थूल धर्म से अधिक व्यापक धर्म का उपनिषदों ने साक्षात्कार किया है । उपनिषदों में यह स्वीकार किया गया है कि, वेदों का ज्ञान पर्याप्त नहीं, उस आत्मज्ञान की प्राप्ति करनी है, जिससे आत्मा की सर्वव्यापकता के सिद्धान्तों की मानव जीवन की चरम सीमाओं तक व्याप्ति हो जाती है। [९]

उपनिषदीय चिन्तन में धर्म की उत्पत्ति समाज को व्यवस्थित करने के कारण हुई थी । वृहदारण्यकोषनिषद में एक मंत्र है । इसके अनुसार सर्व प्रथम एक ही वर्ण ब्राह्मण था । अपर्याप्तता के कारण क्षत्रिय वर्ग की उत्पत्ति हुई । पश्चात् दोनों वर्णों से कार्य न पूर्ण होने पर वैश्य वर्ग की उत्पत्ति की जाती है। पर्याप्तता के अभाव में फिर शूद्र वर्ण अस्तित्व में आया । इन चारों [illegible] अस्तित्व होने पर भी व्यवस्था नहीं हो सकी। तब चारों वर्ण के कार्य संचालन के लिए धर्म की उत्पत्ति की गयी । 'तत्श्रेयों रूपं अत्यसृजत धरमम् ।' धर्म के कारण सभी अनुशासित हो गये, और समाज व्यवस्थित हो गया । धर्म की उत्पत्ति समाज को अनुशासित और व्यवस्थित करने के लिए हुई । धर्म सामाजिक अनुबन्ध के रूप में अवतरित तथा विकसित हुआ । अनुबन्ध के सामाजिक शिल्प धर्म में केवल अधिकार तथा कर्तव्य नहीं है । इसमें मनुष्य की अन्तः प्रेरणा, अनुशासन और आस्था की निर्मिति या आन्तरिक जीवन को सुव्यवस्थित करने का कर्म कौशल है ।

धर्म को, क्षत्रिय का भी क्षत्रिय या राजा का भी राजा उपनिषद् में कहा गया है । 'तस्मात धरमात परं नास्ति' धर्म से श्रेष्ठ कुछ नहीं है । यह धर्म कौन सा है ? सत्य ही धर्म है । सत्य बोलता है, ऐसा कहते हैं । क्योंकि सत्य ही दोनों होता है । धर्म और सत्य एक हीं सिक्के के दो पहलू या अभिभाज्य हैं । धर्म के अन्तर्गत समाज की उचित व्यवस्था का सम्पादन उपनिषदों ने किया है । यह धर्म निरन्तर विवेकयुक्त

गत्यात्मक और प्रगतिशील है। धर्म का प्रवर्तन समग्र समाज के कर्तव्यों के बोध के लिए इतिहास में हुआ।

'उपनिषदें पुस्तक है ही नहीं। वह तो एक प्रातिभ दर्शन है। उस दर्शन को यद्यपि शब्दों में अंकित करने का प्रयत्न किया गया है, फिर भी शब्दों के कदम लड़खड़ा गये हैं। परन्तु सिर्फ निष्ठा के चिह्न उभरे हैं। उस निष्ठा को भरकर शब्द की सहायता से शब्दों को दूर हटाकर अनुभव किया जाये तभी उपनिषदों का बोध हो सकता है।[१०]

निर्विकार नग्न बालक के समान अपलक अनन्त आकाश के प्रति जिज्ञासा ने आत्मा का काव्य, मनीषियों ने उपनिषदों के रूप में प्रकट किया है। उपनिषदों में धर्म की आत्मा का प्रकटीकरण है। धर्म की इस आत्मा का रहस्य आवृत्त चक्षु से स्पष्ट नहीं होता। बर्हिमुखी इन्द्रियों के कारण बाहर देखते हैं, अन्तर में नहीं।

केन उपनिषद् में शिष्य कहता है कि, गुरु उपनिषद् कहिये। गुरु कहते हैं कि तुम्हें उपनिषद बता दिया है - 'उपनिषद भी ब्रूहीति। उकताते उपनिषद् वावते उपनिषद् अब्रूमेति।' उपनिषद् अर्थात् उपासना के लिए साधना है। मुंडकोपनिषद् में उपनिषद् को महाशास्त्र रूप धनुष बताया गया है। इससे उपासना द्वारा तीक्ष्ण वाण की प्रत्यंचा खींच कर भावनायुक्त चित्त से अक्षर का बोध करने का उपदेश है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में उपनिषद् को वेदों का गुरु कहा गया है। उपनिषदों में धर्म के दर्शन का समावेश है।

नारायणोपनिषद् में साधनाष्टक के रूप में सत्य, तप, दम, शम, दान धर्म, मानस और न्यास का वर्णन है। धर्म को समस्त जगत का आधार उपनिषद्कार ने बताया है। धर्म ने सर्व को व्याप्त किया है। धर्म से पाप दूर होते हैं। धर्म श्रेष्ठ है।

"धर्‌म इति, धरमेण सर्व्विदं परिगृहीत्म। - - - धरमो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। लोके धरमिष्ठ प्रजा उपसर्‌पन्ति। धर्मेण पांप अपनुदन्ति। धरमें सर वं प्रतिष्ठतम्। तस्मात् धर्‌म परमं वदन्ति।"

उपनिषदीय चिन्तन में धर्म को, व्यक्ति या वृति या वर्ग को दृष्टिगत रखकर बृहदारण्यक में प्रभावी कथा का वर्णन है। एक ही पिता (प्रजापति) की तीन सन्तानें देव, मनुष्य और असुर, जब आयु और ज्ञान के स्तर पर वयस्क होते हैं, तब समावर्तन विधि में उपदेश या आदर्श की तीनों पुत्र आकांक्षा करते हैं। यह दीक्षांत समारोह है। जिसके उपरान्त विविध वृत्तियों वाले व्यक्ति या वर्ग सामाजिक जीवन या गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। समापन उपदेश में प्रजापति तीनों से 'द' कहते हैं। देव इसे दमन के रूप में समझते हैं। दमन, पाशविक वृतियों का है। दमन, संयमित जीवन यापन का शुभारम्भ है। दमन सात्विक जीवन की प्रस्तावना है।

मनुष्य वर्ग जिसमें संग्रह की या सम्पत्ति संचय की, सुरक्षा आदि की लालसा है, उसे भी उपदेश 'द' का है। इसमें दान करने का संकेत है। मनुष्य जाति 'द' से दान का अभिप्राय ग्रहण करती है। दान द्वारा अपरिग्रह या असंचय या आर्थिक संतुलन की अपेक्षा है।

प्रजापति के तीसरे पुत्र असुर हैं। असुर को भी दीक्षांत में 'द' का उपदेश है। 'द' का अर्थ असुर दया से ग्रहण करते हैं। दया, दूसरे के दुखों के प्रति समर्पित जीवन है। इस प्रकार उपनिषद्कार ने दमन, दान तथा दया द्वारा संयमित, संतुलित और समर्पण वृत्ति को सार्वभौमिक धर्म के रूप में उद्घोषित किया है। इच्छाओं का दमन, आवश्यकताओं का नियमन और परहित में नमन सार्वकालिक और वैश्विक धर्म है।

कठोपनिषद् में यम और नचिकेता का आख्यान है। यम धर्मराज है। नचिकेता शब्द का अभिप्राय है, जो बाह्य रूप से ज्ञात प्रकट न हो, अपितु भीतर छिपा हो। जैसे काष्ठ में अग्नि या मनुष्य की बुद्धि में विवेक जैसे छिपा रहता है। धर्म के बाह्याचारों से सौम्य संघर्ष नचिकेता का है। बाजश्रवस पिता के रूप में धर्म के आडम्बर से ग्रस्त है। धर्म के बाह्याचार भी महत्वपूर्ण हैं। किन्तु बाह्याचारों से तर्क और विवेक के आधार पर, धर्म के श्रेष्ठत्व की शोध कठोपनिषद् का वैचारिक केन्द्र बिन्दु है। बाजश्रवस धर्म के अहंकार से पीड़ित है। नचिकेता धर्म के तत्वज्ञान का जिज्ञासु है।

नचिकेता यम के पास जाता है। विश्व में धर्म का स्वामी यम है, धर्मराज। 'यम जो मृत्यु का प्रभु है, विश्व में धर्म (नियम व्यवस्था) का भी प्रभु (धर्मराज) है, और इसलिए वह सूर्य का, सत्य के ज्योतिर्मय प्रभु का, जिससे कि धर्म उत्पन्न होता है, पुत्र है।' यम के घर-द्वार पर तीन रात्रि नचिकेता को बितानी पड़ी। तत्पश्चात् धर्मराज प्रकट होते हैं। ये तीन रात्रि तीन प्रकार के अज्ञान की प्रतीक हैं। ये तीन अज्ञान हैं - स्थूल सृष्टि सम्बन्धी, सूक्ष्म सृष्टि विषयक तथा सबका मूल कारण आत्म या ब्रह्म विषयक। धर्मराज से नचिकेता की अपेक्षा है, धर्म के बाह्याचारों के क्षोभ की शान्ति, आक्रोश का शमन तथा स्नेह - सम्मानपूर्ण संवादिता। नचिकेता की धर्मराज से याचना आत्मविद्या या ब्रह्म विद्या की प्राप्ति की है। धर्मराज ने इसे सूक्ष्म धर्म बताकर, इसके माँगने का निषेध किया। धर्मराज ने इस सूक्ष्म या श्रेयस्कर धर्म के रहस्य को अनावृत करने की अपेक्षा, उससे धरती के समस्त भोगों के माँगने के लिए नचिकेता को प्रेरित किया। किन्तु नचिकेता ने धर्म के मूल स्रोत ब्रह्मज्ञान जानने की बलवती आकांक्षा को ही अभिव्यक्त किया। ब्रह्म ज्ञान विश्व के समस्त नियम और व्यवस्था-धर्म-का मूल स्रोत है। यह प्रवर्तक आधार है। इसलिए इसे धर्म्य कहा गया। यह एक ऐसी स्थिति है, जिसे धर्म निरपेक्ष कहा जा सकता है। आत्मतत्व या ब्रह्म तत्व न धर्म करता है, और न अधर्म। न यह धर्म का फल भोगता है, न अधर्म का। धर्म और अधर्म करने वाले, और पश्चात् उसका फल भोगने वाले मनुष्य के मन और तन है। आत्मा इनसे पृथक है। धर्म-अधर्म से आत्मा पृथक है। किन्तु उपनिषदकार आश्वस्त है कि, जो अधर्म या दुष्कर्म करता है, उसे आत्मतत्व प्राप्त नहीं होता। नचिकेता ने धर्मराज से धर्म, जो अधर्म से रहित है, उसका स्वरूप पूँछा।

कठोपनिषद् में मनुष्य जीवन को एक अर्थपूर्ण धर्मयात्रा के रूप में निरूपित किया गया है। शरीर रथ है। आत्मा रथ की स्वामी है। बुद्धि सारथी है। मन लगाम है। कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां अश्व हैं। पथ विषय है। रूप, रस, गंध आदि विषयों वाला यह संसार यात्रा स्थल है। श्रेयस्कर धर्म या आत्मज्ञान के अभाव में अश्व,

सारथी के प्रभाव में नहीं रहते । मार्ग और मंजिल के ज्ञान से जीवन का रथ उद्देश्यपूर्ण रहता है ।

उपनिषदीय धर्म यात्रा का अर्थ है, कि विश्व के सभी पदार्थ एक तत्व के ही नाना रूप हैं । समस्त जीवों के भीतर रहने वाला, और सबको अपने वश में रखने वाली एक शान्त आत्मा है । जो कि एक ही रूप को अनेक आकार वाला बनाता है । उपनिषदीय धर्म जिज्ञासा की यात्रा विराट दर्शन के गंतव्य तक गतिशील है ।

कठ उपनिषद् में धर्म-अधर्म से पृथक सत्ता की शोध दृष्टव्य है । 'अन्यत्र धर्मात अन्यत्रा धर्मात', जो धर्म से पृथक और अधर्म से पृथक है, उसके ही जानने की जिज्ञासा है । धर्म के नाम से प्रामाणिक और प्रतिष्ठित मूल्यवत्ता से अधिक विवेकपूर्ण और विराट तत्वज्ञान की जिज्ञासा, धर्म निरपेक्षता के सन्निकट है ।

विभिन्न उपनिषदों (केन - छांदोग्य - मैत्रायणी) में प्रतिपाद्य धर्म को जीवन में समाहित और स्वीकृत करने की स्थापना है । उपनिषद् का प्रतिपाद्य सर्व ब्रह्म है । उपनिषदीय धर्म, ब्रह्म की जिज्ञासा है ।

धर्म के तीन स्तम्भ छांदोग्य उपनिषद्कार ने बताये हैं - त्रयो धर्म स्कंधा । प्रथम स्तम्भ यज्ञ, अध्ययन और दान है । द्वितीय स्तम्भ तप है । तृतीय स्तम्भ आचार्य, कुलवासी ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मचारी हैं । यज्ञ, अध्ययन दान, तप तथा ब्रह्म विद्या आदि के परिप्रेक्ष्य में व्यापक कर्मभूमि तथा भावभूमि से धर्म की निष्पति का कथन महत्व का है । इसमें धर्म शब्द से अभिप्राय है, व्यक्ति जीवन प्रवाह में जो मोड़ अपेक्षित है, उनका संकेत उपनिषद् में है ।

वैदिक धर्म रूप यज्ञ की व्याख्या वामन और विराट दोनों रूपों में है । यज्ञ, लोकोपरक कार्य या दान की उपासना को, जीवन का कृष्ण पक्ष कहा गया है । वर्ष के उस अर्द्धभाग को जिसमें सूर्य दक्षिणायन है, वह यज्ञादि पितृयान मार्ग है । कर्मों के अनुकूल जीवन में भोग की वृति है । तप की उपासना देवयान मार्ग है । यह जीवन का शुक्ल पक्ष है । उत्तरायण सूर्य के छः मास हैं । यह ब्रह्म साक्षात्कार या विराट का दर्शन है । यह धर्म का साध्य है ।

छांदोग्य उपनिषद में नारद तथा सनत्कुमार का संवाद महत्व का है । नारद ने चतुर्वेद, पंचम वेद (इतिहास पुराण), वेदों का वेद, व्याकरण तथा श्राद्धकल्प, गणित, भूगर्भशास्त्र, नीतिशास्त्र, देवता ज्ञान, शिक्षण - शास्त्र, भूत विद्या, राजनीति, ज्योतिष, सर्वविद्या, देव विद्या, जन विद्या आदि सभी का अध्ययन किया था । किन्तु ब्रह्म विद्या के तत्ववेत्ता न होने के कारण शोक ग्रस्त नारद को सनत्कुमार ने उपदेश किया । धर्मों का धर्म ब्रह्म ज्ञान या आत्मज्ञान है ।

वेद आदि सदग्रंथ तथा विभिन्न उपयोगी विषय आवश्यक हैं । ये नाम रूप हैं, इनकी उपासना होनी है । किन्तु धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, शुभ-अशुभ आदि वाणी से प्रकट होते हैं । उपनिषद्कार ने नाम से वाणी की उपासना को श्रेष्ठ कहा है । पश्चात् एक उपासना सोपान का उपनिषद् में वर्णन है । धर्म-अधर्म का सम्यक ज्ञान सद्ग्रंथों और सद्विषयों में सीमित नहीं है । जीवन की विभिन्न वृतियों के द्वारा धर्म-अधर्म का

विवेक हो पाता है । सद्ग्रंथों आदि में सत्य का साक्षात्कार कर सुख के तत्वज्ञान तक की यात्रा कृति, निष्ठा, श्रद्धा, मन तथा ज्ञान के मार्ग से सम्भव है । यह सुख क्षुद्रइन्द्रिय सुखों में नहीं है । विराट-विशाल या भूमा के दर्शन में सुख है । यह भूमा अल्प नहीं, अमृत है । विराट के साक्षात्कार में सद्ग्रंथ सहायक या साधन हैं । धर्म सद्ग्रंथों में सीमित नहीं है ।

ईशावास्योपनिषद् में हिरण्यमय पात्र से सत्य के मुख को आच्छादित कहा गया है । विश्व के पोषक प्रभु से सत्य को धर्म के उपासक के लिए निरावृत करने की प्रार्थना है । 'ततूत्वं पूषन् अपावृणु सत्य धरमाय दृष्टये' । धर्म, सत्य के साक्षात्कार की प्रक्रिया है। धर्म के द्वारा सत्य का आच्छादन है, और इसी से सत्य का उद्घाटन भी है । सत्य के द्वारा धर्म की उपलब्धि है । हिरण्यमयपात्र मानवीय मूल्यों का प्रतीक है । मानवीय मूल्यों के वाहक सामाजिक मान्यतायें - मर्यादायें आदि हैं । सत्य की शोध मूल्यों का भेद करके होती है । स्थापित मूल्य अपरिवर्तनीय या शाश्वत नहीं है। धर्म का प्रकटीकरण भी उदात्त तथा उत्कृष्ट मूल्यों का भेदन कर, और सत्य का दर्शन करके सम्भव है ।

तैत्तिरीय उपनिषद् में सत्य भाषण और धर्म का आचरण करने का उपदेश दिया है । सत्यपालन तथा धर्म पालन में प्रमाद नहीं करना है ।

सत्यं वद् । धरमं चर ।

सत्यात् न प्रमदित व्यम् ।

धर्माते न प्रमदित व्यम ।

उपनिषद्कार ने वेद - विद्या सिखाकर उपदेश दिया कि धर्म आचरण की वस्तु है । धर्म व्यक्ति के जीवन में आचरण द्वारा ही प्रकट होगा । आचरण में मर्यादा, मूल्यवत्ता और मान्यता धर्म द्वारा अनुशासित है । सत्य पालन द्वारा तत्वज्ञान की दिशा, शरीर धर्म का दायित्व, कल्याण कार्य के प्रति समर्पण, तथा स्वाध्याय - प्रवचन, देवकार्य, पितृ कार्य आदि के निर्वाह में उपनिषद्कार ने धर्मपालन की स्थिति का निरूपण किया है ।

तैत्तरीयोपनिषद् में अच्छे कर्म करने वाले मनुष्यों के अनुकरण का उपदेश है। जब सन्देह हो तब वैसा ही बर्ताव करो, जैसा ज्ञानी और धर्मिष्ठ ब्राह्मण करते हैं।[11] यदि किसी महापुरुष में कोई दुर्गण है, उसका अनुकरण नहीं ,केवल सद्कर्मी के अनुगमन में धर्म की निष्पत्ति हो जाती है । किन्तु अच्छे बुरे का निर्णय कठिन है । अतः प्रत्येक अवसर पर विवेक द्वारा सही धर्म का निर्णय हो सकता है । धर्म का निर्णायक विवेक है ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में धर्म का आधार भगवान को बताया गया है । हृदयस्थ भगवान को जान लेने पर अमृत स्वरूप विश्वधाम की प्राप्ति होती है - 'धरमावहं पापनुदं भगेशं ।'

इस धरती को सर्वभूतों का सार मधु कहा गया है - 'इयं पृथिवा सर्वेषां भूतानां मधु ।' आकाश भी सब भूतों का मधु सार है । मानवता सब भूतों का मधु है। इसी प्रकार धर्म भी सब भूतों का मधु या सार है । 'अयं धरमः सर्वेषां भूतानां मधु।

अस्य धरमस्य सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चायमस्मिन् धरमे तेजो मयो 'ऽमृतमयः पुरुषः।' सब भूत इस धर्म के सार हैं । धर्म के सार सर्व भूत, और सर्वभूत का सार धर्म है । उपनिषद्कार ने इस धर्म में तेजोमय अमृत पुरुष निहित बताया है । यह अमृतमय पुरुष आत्मा है, अमृत है, ब्रह्म है तथा सर्व है । बृहदारण्यक उपनिषद में (इदं मानुषं सर्वेषा भूतानां मधु) धर्म को सर्वभूत, मानवता तथा आत्मवत्ता का पर्याय कहा गया है । धर्म की परिधि में सर्वभूत हैं । धर्म का प्रकट रूप मानवता या सौजन्य है ।[१२] धर्म का मंतव्य आत्मवत्ता है ।

बृहदारण्यकोपनिषद् में आत्मा को धर्ममय - अधर्ममय, किन्तु सर्वमय कहा गया है - धरममयः अधरमयः सर्वमयः । धर्म-अधर्म सभी ब्रह्म में समाहित हैं । धर्म-अधर्म कालातीत नहीं है । ब्रह्म शाश्वत है ।[१३]

मुंडकोपनिषद ने सदग्रंथ निरपेक्ष और सद्विषय निरपेक्ष आत्मवत्ता या ब्रह्मवत्ता का परा विद्या के नाम से उल्लेख किया है । यह परा विद्या ग्रंथ निरपेक्ष है । धर्म के आवश्यक तत्वों में सद्ग्रंथ और सद्विषय महत्वपूर्ण हैं । किन्तु इससे निरपेक्ष जिस आत्मविद्या या ब्रह्म विद्या का विवेचन है, वह एक स्तर पर सहज धर्म निरपेक्षता है ।

उपनिषद् विराट धर्म के संचय है । उपनिषदों ने एक अति विशाल आध्यात्मिक प्रवाह को जन्म दिया है । इसके आधार पर पांथिक सापेक्षता गौण हो जाती है । इस आत्मप्रसार के समक्ष आस्तिकता वामन हो जाती है ।[१४] उपनिषदों ने एक मानववादी विराट धर्म को वैश्विक धरातल पर प्रकट किया है । उपनिषदों की अध्यात्म विद्या की एक इस प्रकार की प्रणाली यह बताती है कि, धर्म के मूल सिद्धान्त, अर्थात् दिव्य सत्य में कोई अन्तर्निहित अन्तर्विरोध नहीं है ।[१५]

महाकाव्य रामायण और धर्म

रामायण तो प्रमुखतः एक काव्य ग्रंथ है । किन्तु आदर्श ग्रंथ होने के कारण, यह धर्म का उपादान माना जाता है । रामायण का रचनाकाल इतिहासकारों ने विवादास्पद बनाया है । फिर भी ईसा के पूर्व सहस्रों वर्षों की कथा में धर्म का वह व्यापक और विराट कालजयी रूप है, जिससे वर्तमान इतिहास भी प्रभावित है । एक आधुनिक विद्वान का कथन है कि, जब तक हमारी मातृभूमि में गंगा-कावेरी बहती रहेगी, तब तक सीता राम की कथा भी आबाल स्त्री-पुरुष सबमें प्रचलित रहेगी, और माता की तरह हमारी रक्षा करती रहेगी । राम कथा का मूल रूप बाल्मीकि रामायण में है । इस कथा ने वैयक्तिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को उदात्त और उत्कृष्ट मूल्यों से परिवेष्टित किया है, जिसकी संज्ञा मानवीय धर्म है ।

रामायण की कथा के नायक राम धर्म के श्रेष्ठ प्रतिरूप हैं । धर्म उनके सामने विभिन्न रूपों में आया, कभी पिता के वचन पूर्ति के रूप में, कभी कुल गौरव की रक्षा हेतु और कभी शत्रु को दण्ड देने के रूप में उसे उन्होंने भली भांति निभाया । राज्याधिकार तथा पत्नी के परित्याग से उनका जीवन चिरकाल के लिए धर्म का स्तम्भ बन गया ।[१६]

रामायण महाकाव्य में धर्म को प्रमुखतम् स्थान है । समस्त कथा धर्म के केन्द्रबिन्दु से निसृत है । धर्म की व्यापकता स्वतः कथा से ही परिभाषित है । राजनीति, शासन, प्रशासन नैतिकता आदि सभी धर्म की परिधि में हैं । धर्म, राज्य से श्रेष्ठ है । धर्म सर्वश्रेष्ठ है ।

महाभारत और धर्म

भारतीय वाङ्मय में महाभारत को पंचम वेद कहा गया है । महाभारत सोलह अध्यायों में विभक्त है । महाभारत भारत देश की धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओं की यश गाथा है । यह भारत की प्राचीन राजनीति का अपूर्व ग्रंथ है । महाभारत में धर्म की व्यापक व्याख्या है । इस ग्रंथ में विविध धर्मों का विवेचन है । सामान्य धर्म, वर्णाश्रम धर्म, गृहस्थ धर्म तथा आपद धर्म आदि के महत्वपूर्ण प्रसंग हैं ।

महाभारत ने धर्म-अर्थ आदि में धर्म को सर्वोत्कृष्ट माना है । महाभारतकार के अनुसार मनुष्य मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का समन्वित रूप है । मन, इच्छा या काम की उत्पत्ति, और बुद्धि, धर्म या विधि - निषेध का सृजन, तथा इन्द्रियाँ, अर्थ की उत्पत्ति करती हैं । महाभारत ने धर्म-अर्थ और काम के त्रिवर्ग को निरूपित किया है । [१७]

धर्म सर्वोत्कृष्ट है । किन्तु विधिक धर्मों में श्रेष्ठ धर्म क्या है, इसका उल्लेख महाभारत के शान्ति पर्व में है । शौनक ऋषि, राजा जनमेजय से कहते हैं कि - यज्ञ, दान, दया, वेद, तप और सत्य यह छः पवित्र कार्य है । इनके पालन करने पर श्रेष्ठतम धर्म की उपलब्धि होती है । महाभारत ने धर्म को मानवीय मूल्यवत्ता तथा विवेकवत्ता का साधन माना है ।

'धर्म-अधर्म, कार्य या अकार्य या नीति की दृष्टि से महाभारत की योग्यता रामायण से कहीं बढ़ कर है । महाभारत केवल आर्य काव्य या केवल इतिहास नहीं है, किन्तु वह एक संहिता है, जिसमें धर्म-अधर्म के सूक्ष्म प्रसंगों का निरूपण किया गया है ।' [१८]

महाभारत में धर्म को व्यापक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया गया है । महाभारत के शान्ति पर्व में धर्म के तीन स्रोत बनाये गये हैं - श्रुति, स्मृति और शिष्टाचार। अनुशासन पर्व में श्रुति को धर्म का प्रथम स्रोत कहा गया है । [१९] आरण्यक पर्व में श्रुति की तुलना में शिष्टाचार का महत्व है । महाभारत में धर्मराज युधिष्ठर का कथन है कि, श्रुतियों में विविधता है । एक ऋषि नहीं है, केवल जिसका ही मत मान्य हो । वस्तुतः जिस पथ का महाजन अनुसरण करते हैं, वही धर्म का समुचित मार्ग है । शान्ति पर्व में भीष्म पितामह ने धर्म को समाधानकारी रूप में परिभाषित किया है । भीष्म के अनुसार धर्म एक ही है । सभी स्रोतों से एक ही धर्म का बोध होता है । किन्हीं विभिन्न धर्मों का प्रतिपादन तीनों स्रोतों से नहीं होता है । भीष्म का कथन है कि श्रुति, स्मृति और शिष्टाचार पर आधारित धर्म ही यथेष्ठ धर्म है ।

महाभारत के शान्तिपर्व में तुलाधार और जाजलि के संवाद में भी धर्म का विवेचन है । इसमें धर्म को अति सूक्ष्म और चक्कर में डालने वाला कहा गया है । इस

कारण इसका बोध कठिन है । महाभारत के कर्ण पर्व में श्री कृष्ण के बचन हैं कि धर्म शब्द धृ (धारण करना) धातु से है । जिससे सब प्रजा की धारणा होती है, वह धर्म है।

महाभारत के अन्त में है कि, भुजा उठाकर कह रहा हूँ कि कोई भी नहीं सुनता कि धर्म से ही अर्थ और काम की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार से धर्म का आचरण करो । वस्तुतः धर्म का प्रमुख उपयोग समाज धारणा ही है । धर्म की सूक्ष्म, संश्लिष्ट और सुपरिभाषित व्यापक अवधारण का साक्षी महाभारत है ।

पूर्व मीमांसा और धर्म

महर्षि जैमिनि का 'पूर्व मीमांसा सूत्र' धर्म जिज्ञासा की दृष्टि से भारतीय परम्परा में महत्वपूर्ण है । ईसा से लगभग पाँच सौ से दो सौ वर्ष पूर्व तक किसी काल की रचना है । 'अथा तो धर्म जिज्ञासा' सूत्र से इसका शुभारम्भ है । 'पूर्व मीमांसा सूत्र' में जैमिनि ने धर्म को वेद विहित प्रेरक लक्षणों के अर्थ में स्वीकार किया है । अर्थात् वेदों में प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चलना ही धर्म है । धर्म का सम्बन्ध उन क्रिया - संस्कारों से है, जिनसे आनन्द मिलता है और जो वेदों द्वारा प्रेरित एवं प्रशंसित हैं । [२०]

मीमांसा शास्त्र में जैमिनी के मतानुसार वैदिक तथा श्रोत यज्ञ-याग करना प्रधान और प्राचीन धर्म है । 'अथा तो धर्म जिज्ञासा' सूत्र से मीमांसकों के वर्ग ने स्वर्ग प्राप्ति के लिए यज्ञ आदि को साधन मानकर, धर्म शब्द की यही मीमांसा की है। धर्म शब्द से नीति धर्म का अभिप्राय अधिक तर्कसंगत है । मीमांसकों की स्वर्ग प्राप्ति को मोक्ष के समकक्ष स्थापित करेंगे । धर्म से अतिरिक्त पुरुषार्थ मोक्ष है । कर्तव्य, नीति, सदाचार आदि धर्म के विभिन्न अंग हैं, पारलौकिक कल्याण के मार्ग को मोक्ष की संज्ञा तर्कपूर्ण है।

मीमांसा शास्त्र में विधि-निषेध धर्म का लक्षण है । इन्द्रियों के प्राकृत धर्म को मर्यादित करने से सहज मानव धर्म प्रतिपादित होता है । मीमांसकों के अनुसार मर्यादाओं का संग्रह, विधि - निषेध बनकर, धर्म का स्वरूप बन जाता है ।

उत्तर मीमांसा सूत्र

उत्तर मीमांसा सूत्र या ब्रह्म सूत्र, उपनिषदों की भांति, अति प्राचीन कृति है। ब्रह्म सूत्र का रचनाकाल और उसके रचनाकार निर्विवाद नहीं है । किन्तु सामान्यतया यह मत मान्य है कि , भगवान बादरायण इसके रचनाकार हैं ।

शांकराद्वैत के दो प्रमुख आचार्य सर्वज्ञात्ममुनि तथा मधुसूदन सरस्वती ने ब्रह्म सूत्रकार के रूप में वादरायण व्यास को स्वीकार किया है । इसका रचना काल ईसा के कई सौ वर्ष पूर्व तथा दो-चार सौ वर्ष पश्चात् भी बताया गया है । [२१]

डॉ० राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन में एक साक्ष्य के अनुसार ब्रह्मसूत्र का काल छः सौ ईसा पूर्व को मान्य किया है । एक विदेशी विद्वान चार सौ वर्ष ईसा पूर्व रचनाकाल मानते हैं ।

मैक्सकूलर ने इसका समय तीन सौ वर्ष ईसा पूर्व स्वीकार किया है । ब्रह्म सूत्र, भारतीय तत्वज्ञान या षट्दर्शन शास्त्रों की श्रृंखला में अन्तिम कड़ी है । किन्तु निश्चित रूप से ईसा से कई शताब्दी पूर्व की रचना है ।

ब्रह्मसूत्र में सर्व धर्मों की उत्पत्ति ब्रह्म से है - 'धर्म धर्मोपपत्यधिकरण ।'[२२] धर्म-सर्वज्ञता, सर्वशक्ति सम्पन्नता और महामापिता-जगत के मूल कारण हैं । ये तीनों धर्म ब्रह्म में है । ब्रह्म जगत का मूल कारण है - सर्व धर्मोपयत्तेश्च ।

ब्रह्म सूत्र धर्म जिज्ञासा या धर्म के यथार्थ स्वरूप से परिचित होने के पश्चात् ब्रह्म जिज्ञासा या ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप के साक्षात्कार का शास्त्र है । इस कारण भी उसे उत्तर मीमांसा कहा गया है । धर्म जिज्ञासा में बाह्य उत्कर्ष या समृद्धि प्राप्ति के अनुष्ठान या आचरण की अपेक्षा है । इसके उपरान्त 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' है। ब्रह्म जिज्ञासा, आत्म साक्षात्कार की भूमिका प्रशस्त करती है ।

आचार्य शंकर ने उपनिषदों को तत्व चिन्तन की दृष्टि से प्रामाणिक रूप से स्थापित किया है । परम सत्ता की अनुभूति या अनुभवात्मक उद्गार उपनिषद् के विषय हैं । इन उद्गारों में मत वैभिन्न्य का भी आभास है । भगवान शंकर ने ब्रह्म सूत्र का भाष्य इसी कारण किया कि, उपनिषदों में परस्पर विरोध या मत भिन्नता नहीं है । आचार्य ने उपनिषदों के आधार पर ब्रह्म ज्ञान या वेदान्त को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है ।

ब्रह्म सूत्र में चार अध्याय हैं । प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं । सूत्रों के अधिकरण या प्रकरण पहले से ही निश्चित किये गये हैं । कोई अधिकरण एक सूत्र का है, तो कोई दो सूत्रों का है । कोई तीन सूत्रों का है, तो कोई छः सूत्रों का है । कोई दस या अधिक सूत्रों का भी है ।

ब्रह्म सूत्र को उत्तर मीमांसा दर्शन कहते हैं । इसके पूर्ववर्ती चिन्तन को पूर्व मीमांसा दर्शन कहा जाता है । पूर्व मीमांसा का शुभारम्भ "अथा तो धर्म जिज्ञासा" से है ही, ब्रह्म सूत्र का शुभारम्भ ब्रह्म जिज्ञासा से है । ब्रह्म जिज्ञासा से यात्रा प्रारम्भ होकर ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म के पहिचान तक हैं । ब्रह्म प्राप्ति शब्द नहीं है । क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने की वस्तु न होकर, पूर्व से ही प्राप्त वस्तु है । इस कारण यह सिद्ध वस्तु है। धर्म का शुभारम्भ भी जिज्ञासा से ही है । फिर यह यात्रा, धर्म ज्ञान के स्तर पर आती है । किन्तु धर्म, ज्ञान काल में अस्तित्व में नहीं आ पाता । उदाहरणार्थ सत्य भाषण करना चाहिए। यह ज्ञान होने पर भी सत्य जब तक बोलते नहीं, तब तक धर्म आचरण में नहीं आता । ज्ञान से आचरण में आने पर धर्म अस्तित्व में आता है । अतः धर्म साध्य वस्तु है । सिद्ध वस्तु पहले से ही प्राप्त है । साध्य वस्तु प्राप्त करनी पड़ती है । सिद्ध वस्तु अनुभव तथा पहिचान के अधीन रहती है । साध्य वस्तु क्रिया के आधीन रहती है । धर्म और अधर्म रूप कर्म के अनुष्ठान से प्राप्त होने वाले सुख-दुख आदि फल अनित्य हैं ।[२३]

धर्म अपने पारमार्थिक या उत्कृष्ट रूप में एक है । किन्तु औपाधिक रूप से नाना है । धर्म में एकत्व और नानात्व परस्पर विरोधी नहीं है । भिन्न दृष्टित्व से परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं । धर्म का पारमार्थिक स्वरूप अविद्या से आवृत होने पर विसंगतियों का आभास देता है । ब्रह्म सूत्र ने धर्म के नित्य और अनित्य दो रूपों का आभास दिया है । धर्म जिज्ञासा और ब्रह्म जिज्ञासा में, जिज्ञासा वस्तु का भेद है । धर्म मीमांसा, ब्रह्म मीमांसा का अंग नहीं है । धर्म मीमांसा का अधिकार ही ब्रह्म मीमांसा

का अधिकार नहीं है । धर्म मीमांसा और ब्रह्म मीमांसा में क्रम भी नहीं है । दोनों की फलश्रुति में भी वेद है । धर्म मीमांसा के स्वर्गादि रूपफल या अभ्युदय फल वाले धर्म का ज्ञान होता है । यह फल धर्म रूप कर्म के अनुष्ठान या आचरण की अपेक्षा करता है । धर्म जिज्ञासा से पूर्व भी ब्रह्म जिज्ञासा हो सकती है, और इसके पश्चात् भी हो सकती है । उपनिषदों की भांति ब्रह्म सूत्रों ने एक नित्य धर्म का प्रतिपादन किया है । नित्य आत्म वस्तु और अनित्य अनात्म वस्तु है । उपनिषद्, ब्रह्म सूत्र और गीता नित्य धर्म के प्रतिपादक हैं । धर्म शास्त्र या स्मृतिशास्त्र या पुराण आदि अनित्य धर्म को प्रकट करते हैं । अनित्य धर्म ऐसे साधन रूप हैं, जिनके बिना जिज्ञासा सफल भी नहीं हो सकती । किन्तु अनित्य का अभिप्राय स्पष्ट है कि, गन्तव्य नित्य धर्म है ।

ब्रह्म सूत्र ने एक ऐसे धर्म का प्रर्वतन किया है, जिसकी अपनी कोई आचरण संहिता नहीं है । सभी अनित्य विचारों भावों और आचरणों से परे जाकर एक ऐसे धर्म की प्राप्ति है, जो समस्त भेदों को नकार देता है । समस्त भेद आभासवाद या प्रतिबिम्बवाद बन जाते हैं । इस विराट नित्य धर्म के समक्ष अनित्य धर्म वामन रूप हो गये हैं । इस नित्य धर्म के द्वारा सर्वत्र एकत्व का दर्शन है । सभी सम्प्रदाय, पंथ और धर्म इस अभेद अद्वैत धर्म के अन्तर्गत है । सभी इसके रूप हैं । ब्रह्म सूत्र ने एक विशाल मानवीय धर्म वेदान्त का प्रवर्तन किया है । भारतीय इतिहास में पंथ निरपेक्षता एक सामान्य और सहज फलश्रुति, इस वेदान्त धर्म की है ।

ब्रह्मसूत्र भारतीय वैदिक षट्दर्शन में उत्तर मीमांसा या वेदान्त का प्रामाणिक ग्रन्थ है । भारत में साधारणतः वेद शब्द से वेदान्त ही समझा जाता है । यहां के टीकाकार जब धर्म ग्रन्थों से कुछ उद्धत करना चाहते हैं, तो साधारणतः वे वेदान्त से ही उद्धत करते हैं । ये लोग वेदान्त को श्रुति कहते हैं । व्यावहारिक रूप में वेदान्त ही हिन्दुओं का धर्म है ।[२४]

वेदान्त विश्व का प्राचीनतम जीवन दर्शन है । भौतिकता से उठाकर, आध्यात्मिक आधार पर विश्व के समग्र अस्तित्व के एकत्व का सन्देश वेदान्त ने दिया है । वेदान्त के अनुसार एकत्व ही ज्ञान है । वेदान्त ने बाह्य जगत की तात्विकता और अर्न्तजगत की तात्विकता में एकत्व और अभिन्नता स्थिर की है । वेदान्त वह विशाल सागर है, जिसके वक्ष पर युद्धपोत और साधारण बेड़ा दोनों पास-पास रह सकते हैं । वेदान्त में यथार्थ योगी, मूर्ति पूजक और नास्तिक इन सभी के लिए पास-पास रहने को स्थान है । इतना ही नहीं वेदान्त सागर में हिन्दू, मुसलमान, इसाई या पारसी सभी एक हैं । सभी उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की सन्तान हैं ।[२५] मानव जाति से पृथक कोई मनुष्य नहीं है । सम्पूर्ण जगत एक ही सत्ता है । सभी एक आत्मा हैं ।

वेदान्त की किसी एक ग्रन्थ पर आस्था नहीं है । एक ग्रन्थ के दूसरे ग्रन्थ पर अधिकार को वेदान्त मान्यता नहीं देता । कोई एक धर्म ग्रन्थ या व्यक्ति, वेदान्त की आराधना का पात्र नहीं है । वेदान्त का ईश्वर सर्वथा सबसे पृथक और दूर-दूर रहने वाला शासक नहीं है । वेदान्त का अभिप्राय सर्वव्यापी सर्वत्र ईश दर्शन का है । वेदान्त ईश्वर रूप में सभी की उपासना स्वीकार करता है । प्रत्येक प्राणी या समस्त आकार

उसी के मन्दिर हैं । वेदान्त का कोई सम्प्रदाय नहीं है । किसी सम्प्रदाय से संघर्ष नहीं है । समस्त विश्व एक है । वेदान्त किन्हीं व्यक्तियों या वर्गों के विशेषाधिकार को स्वीकार नहीं करता । एक मनुष्य दूसरे से जन्मना श्रेष्ठ नहीं है ।

वेदान्त के अच्छे प्रभावों में से एक यह कि, धार्मिक विचारों में स्वतंत्रता रही है, जिनका उपभोग भारत ने अपने इतिहास के सभी कालों में किया है । यह एक गौरव की बात है कि यह एक ऐसा देश है, जहां कभी धार्मिक उत्पीड़न नहीं हुआ और जहाँ लोगों को पूर्ण पांथिक या धार्मिक स्वतंत्रता दी जाती है ।[२६] वेदान्त सत्य की शोध और उसके साक्षात्कार पर आधारित है । सार्वभौम सत्य की जिज्ञासा ने धार्मिक उत्पीड़न के समापन और धार्मिक सहिष्णुता-सद्भावना का समादार किया है । धार्मिक या पांथिक विचारों की अनन्त विविधता वेदान्त ने स्वीकार की है ।

भगवद्गीता और धर्म

भगवद्गीता ऐतिहासिक कालक्रम में ब्रह्म सूत्र से पूर्व की रचना है या पश्चात् की है, विवादास्पद है । किन्तु उपनिषदों और वेदान्त सूत्रों के धार्मिक तत्वज्ञान को पूर्णता प्रदान करने वाला ग्रंथ भगवद्गीता है । उपनिषदों, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र को प्रस्थानत्रयी की संज्ञा दी गयी है । वैदिक धर्म के आधारभूत ये तीन मुख्य ग्रंथ हैं। इनमें प्रवृति और निवृति दोनों धर्मों का तात्विक विवेचन है ।

वैदिक धर्म के सम्प्रदाय, तत्वज्ञान की विविधता पर आधृत हैं । अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि सम्प्रदाय चिन्तन की भिन्नता के आधार पर हैं । प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य ने प्रस्थानत्रयी के तीनों प्रमाणिक ग्रंथ के भाष्य के आधार पर अपने सम्प्रदाय को स्थापित किया था । प्रस्थानत्रयी धर्म ग्रंथ के रूप में प्रामाणिक है । इसके आधार पर सम्प्रदाय स्थापित हुए । गीता भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की समर्थक मानी जाती है । गीता में प्रतिपाद्य धर्म की व्याख्या और विश्लेषण भारतीय चिन्तन का प्रिय विषय है । तर्क और युक्ति द्वारा उसके भाष्य से नित्य नूतन अर्थ प्रकट किये गये हैं । सभी सरिताओं का गंतव्य सागर, और सभी विश्वासों-आस्थाओं, पंथों, तथा सम्प्रदायों का अन्तिम आश्रय स्थल विराट धर्म, गीता का विषय है ।

सम्प्रदाय जो धार्मिक होगा, उसके स्थूल रूप में दो विभाग होंगे - सिद्धान्त और सदाचरण या साध्य और साधन । भगवद्गीता ने सिद्धान्तों की मीमांसा कर, साध्य या गंतव्य को स्थापित किया है । यह गंतव्य धर्मक्षेत्र या धर्मयुद्ध की उपलब्धि है ।

भगवद्गीता भारतीय मनीषा के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु रहा है । 'भगवद्गीता अर्थात् भगवान से गाया हुआ उपनिषत् । इस नाम ही से बोध होता है कि, गीता में अर्जुन को जो उपदेश दिया गया है, वह प्रधान रूप से भागवत धर्म-भगवान के चलाये हुए धर्म के विषय में होगा ।[२७]

गीता के तृतीय अध्याय में कृष्ण, अर्जुन को मानव धर्म स्पष्ट करते हैं । आवश्यक संयम द्वारा इन्द्रियों की वृत्तियों को लोक संग्रहार्थ उपयोग करना मानव धर्म है ।[२८]

भगवद्गीता में धर्म के व्यापक रूप का उल्लेख है । भगवान कृष्ण ने अपने को ही शाश्वत धर्म तथा अनन्त सुख का मूल स्थान कहा है - शाश्वतस्यच धर्मस्य

सुखस्यैकांतिकस्यच । धर्म की रक्षा के लिए भगवान का अवतार होता है । [२९]'अनृत और अव्यय ब्रह्म या शाश्वत धर्म का एवं एकान्तिक अथवा परमावधि के अत्यन्त सुख का अन्तिम स्थान मैं ही हूँ ।' भगवद्गीता में शाश्वत धर्म के द्वारा मानवीय मूल्यों का उद्घाटन महत्वपूर्ण है । इस संदर्भ में सभी धर्मों की आसक्ति का विसर्जन कर शाश्वत धर्म के प्रति शरणागति का आमंत्रण है । [३०] धर्म के चरम रूप की अभिव्यक्ति है।

भगवद्गीता इतिहास से अधिक धर्म के व्यापक विराट स्वरूप की व्याख्या और विश्लेषण है । धर्म के क्षेत्र में युद्ध है । जीवन रणस्थली है । धर्म की भूमिका जीवन के युद्ध क्षेत्र में है । एक महायोद्धा धर्माधर्म के संकट में हैं । धर्म संस्थापनार्थ प्रकट होने वाले कृष्ण इसके सूत्रधार हैं - 'धर्म संस्थापनार्थय संभवामि युगे युगे ।'[३१] यह धर्म लोक संग्रह का पुरुषार्थ है । भगवद्गीता, समाज में अनीति, अन्याय, अराजकता आदि का प्रक्षालन करने वाले धर्म के प्रतिष्ठापन का सोच, सिद्धान्त और संवाद है ।

समाज व्यवस्था का समस्त सृष्टि में व्याप्त एक स्वीकृत रूप चातुर्वर्ण्य को विविध नामों से भगवद्गीताकर ने स्पष्ट किया है ।[३२] जाति-धर्म तथा कुल-धर्म को स्वधर्म का रूप देकर, सत्य की अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य, आस्था की विविधता का स्थापना, तर्क संगत मतवाद आदि के लिए व्यवस्था जन्य मुक्ति का आह्वान है ।[३३]

स्मृतिशास्त्र और धर्म

नीति, स्मृतिशास्त्र और धर्म ग्रंथ स्मृति के विषय माने गये हैं । संकीर्ण अर्थ में स्मृति, धर्मशास्त्र का पर्यायवाची है । [३४] स्मृति को धर्म का उपादान माना गया है। स्मृतिकार मनीषी युग धर्म के नियामक तथा निर्धारक रहे हैं ।

प्रामाणिक स्मृतियां कई युगों की देन हैं । स्मृतियां अधिकांश पद्य में रचित हैं । स्मृतियों का कालखण्ड कई शताब्दियों का है । ईसा से पूर्व शत-शत वर्ष प्राचीन स्मृतियों में मनुस्मृति प्रभावी रही है । मनुस्मृति का उपलब्ध स्वरूप २०० वर्ष ईसा पूर्व का माना जाता है । ईसा की प्रथम शताब्दी याज्ञवल्क्य, पराशर तथा नारद की स्मृतियों का रचनाकाल माना गया है । ग्यारहवीं शताब्दी तक उत्तरकालीन स्मृतियों की रचना का इतिहास में प्रमाण है । धर्मशास्त्र के इतिहास में स्मृतियों के भाष्यकारों की परम्परा अठारहवीं शती तक जाग्रत रही है ।[३५]

स्मृतियां और स्मृतिकारों की लम्बी श्रृंखला है । वैसे अठारह मुख्य स्मृतियां, और अठारह उपस्मृतियों का उल्लेख इतिहास में है ।[३६] मुख्य स्मृति, मनुस्मृति या मनुसंहिता है । इसका बहुलांश प्राचीन है । किन्तु समय-समय पर इसमें परिवर्धन या संशोधन होता रहा है । मनु स्मृति में बारह अध्याय हैं । इनमें पारलौकिक मीमांसा के साथ-साथ सामाजिक व्यवहार के संदर्भ में नियमों का विवेचन है। युग की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं से स्मृतियों का आक्रान्त होना आवश्यक या अपरिहार्य है । किन्तु मनुस्मृति ने एक उद्देश्यपूर्ण धर्म की अवतारणा या स्थापना की है, जिसमें सर्वभूतहित के सम्पादन की स्पष्ट घोषणा है । धर्म की व्यापक परिधि में कर्तव्यों की विवेचना है । संकुचित दृष्टि से स्मृतियों की अर्थवत्ता को विकृत करना अबुद्धिमतापूर्ण प्रयास होगा।

'एवं यः सर्व - भूतेषु पश्यति आत्मानमात्मा
स सर्व - समतां एत्य ब्रह्मभ्येति परं पदम् ।'

मनु स्मृति में वर्ण-धर्म का नीर-क्षीर विवेक है । समाज संगठन के इस कौशल ने भारतीय जीवन को समन्वित, समरस और सहजीवन के योग्य बनाये रखने में अतुलनीय योगदान दिया है । विभिन्न युगों में विभिन्न धर्मों की व्याख्या तथा व्यवहार आदि के विवेचन से अधिक महत्वपूर्ण धर्म की परिभाषा मनुस्मृति में है । मनुस्मृति के व्याख्याकार मेधातिथि ने नवम् शताब्दी (८०५-६००) में स्मृतियों के अनुसार धर्म के पांच स्वरूप माने हे - वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, नैमित्तिक धर्म तथा गुण धर्म । मनुस्मृति में धर्म के उपादान रूप में वेद, स्मृति, महाजनों का आचरण तथा आत्म तुष्टि का उल्लेख है । वर्णाश्रम-धर्म, शरीर-धर्म तथा राज-धर्म का मनु स्मृति में विवेचन है -

'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रिय मात्मनः
एतत् चर्तुरविधं साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ।'

धर्मानुकूल व्यवस्था के निमित्त स्मृतियों की रचना हुई थी । मनुस्मृति के एक प्रसंग के अनुसार मनीषियों ने मनु से संगठित समाज, वर्ण - धर्म की विभिन्न श्रेणियों के कर्तव्यों, व्यक्तियों के विभिन्न जीवन स्तरों - आश्रम धर्म - पर जीवन यापन की पद्धतियों, दोनों (वर्ण - आश्रम) धर्मों के व्यवस्थित सम्बन्धों, वैयक्तिक जीवन की आवश्यकताओं (नैमित्तिक धर्म) और अभिषिक्त सत्ता के संरक्षण-सुरक्षा आदि के प्रावधान का आग्रह तथा आवेदन किया था । इन व्यापक कर्तव्यों - अधिकारों से धर्म के सृजन और स्थिति की मीमांसा और मूल्यांकन स्मृतियों में है ।

स्मृतियों में कालातीत धर्म का अंश रूप में समावेश है । 'मनु ने जो ग्रंथ लिखा है, वह समाज शास्त्र का है । अंग्रेजी में तो 'लाज आफ मनु' कहते हैं । इसलिए मनु के वाक्य आज वैसे के वैसे नहीं चलेंगे, बल्कि कुछ तो विरुद्ध भी पड़ेंगे। इसलिए हमको विवेक से चुनाव करना होगा ।'[३७]

मनु ने सर्वसमता, अद्रोही जीवन, अर्थशुचिता, अधर्म विमुखता, धर्मवर्जित अर्थ और काम के परित्याग आदि के द्वारा धर्म को मर्यादा प्रदान की है । मनु ने धर्म के दस लक्षणों का निरूपण किया है - धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ।

ये लक्षण - वानप्रस्थ या संयास जीवन के संदर्भ में हैं । किन्तु मनु ने गृहस्थ धर्म को भी उत्कृष्ट जीवन प्रदान करने की व्यवस्था दी है । मनुस्मृति में एक विराट धर्म है, जिसका अभिप्राय प्रामाणिक जीवन, और अभिधेय परम समता है । सर्वभूतों में आत्मा को, और आत्मा में सर्वभूतों को समान देखने के प्रतिष्ठित और प्रामाणिक श्रेष्ठधर्म के प्रारूप तथा प्रतिमान का प्रतिपादन मनुस्मृति में है - सर्व-भूतेषु च आत्मानं सर्व-भूतानि च आत्मनि ।

मनु ने धर्म को व्यक्ति और समाज की परिपूर्ण मुक्ति या स्वातंत्र्य के साधन रूप में परिभाषित किया है । उनके समाज-दर्शन में धार्मिक, नैतिक, विधि-दर्शन, और

आत्मिक व सदाचार सम्बन्धी आदेशों के साथ, जीवन और उसकी प्रगति से सम्बन्धित सभी विज्ञानों का समावेश है । मनु ने स्पष्ट किया है कि, वही करो जो अन्तरात्मा को शान्ति दे । मनुष्य जाति का सहजीवन केवल सदाचार से सम्भव है ।

धर्म-सूत्र

धर्मशास्त्र के इतिहास में प्रथम धर्म-सूत्रों का विवेचन किया गया है । 'कम से कम ईसा पूर्व ६०० से ३०० के पूर्व तो वे थे ही, और ईसा की द्वितीय शताब्दी में वे मानव आचार के लिए सबसे बड़े प्रमाण माने जाते थे । धर्मसूत्रों के विषयों की परिधि आधुनिक संविधानों के निकट है । धर्म-सूत्र, विधिं-नियम (कानून) के अतिरिक्त वैयक्तिक आचार और सभ्यता के संस्कार की प्रक्रिया के स्रोत हैं । अधिकतम धर्म-सूत्र, अधिकतम स्मृतियों से प्राचीन हैं । धर्म सूत्रकारों ने धर्म के विरोध में आने वाली सुख-सुविधा का विरोध कर धर्म को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया है ।

प्राप्त धर्म सूत्रों में गौतम धर्म-सूत्र सर्वाधिक प्राचीन है । ईसा पूर्व ४०० से ६०० वर्ष पूर्व इसकी रचना हो चुकी थी । इसके २८ अध्यायों में वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, राज-धर्म, वैयक्तिक जीवन जीने की शैली आदि का विवेचन है । वर्तमान संविधानों की सीमा से अधिक व्यापक दिशा, दायित्व आदि का दर्शन सूत्रकार ने निरूपित किया है । सामाजिक सम्बन्धों, आर्थिक अनुबंधों और राजनीतिक प्रबंधों को धर्म की विशाल बाहों से आवेष्टित करने का कौशल धर्मसूत्र में है । मनुष्य के मन तथा महत्वकांक्षाओं और मान्यताओं तथा मूल्यों को आन्तरिक और बाह्य अनुशासन का शिल्प सूत्रकार ने प्रकट किया है । गौतम सूत्र की यह व्यवस्था उल्लेखनीय है कि दयां, शान्ति, अनसूया, शौच, अनायास, मंगल, अकर्पण्य, अस्पृहा नामक आठ गुण नहीं आये, तो शास्त्रीय कर्मकाण्ड के उपरान्त भी गंतव्य की प्राप्ति नहीं हो सकेगी ।

बौधायन धर्मसूत्र ने नीतिपूर्ण और नैतिक जीवन जीने की बृहत सीमा रेखायें अंकित की हैं । बौधायन का जीवनकाल ईसा पूर्व २०० से ५०० वर्ष का माना जाता है । आपस्तम्ब धर्मसूत्र से यह स्पष्ट है कि वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का प्रत्येक स्तर धर्म के क्षेत्र में है । जीवन से मृत्यु तक, और शरीर से संसार तक सभी कुछ धर्म के विराट क्षेत्र में है । व्यवस्थित, नियमित, अनुशासित और आध्यात्मिक समग्र जीवन जीने की कला धर्मसूत्र का विषय है । धर्म का व्यापक परिसीमन है ।

वशिष्ठ धर्मसूत्र ईसा पूर्व ३००-२०० वर्ष का कहा गया है । वशिष्ठ धर्मसूत्र में धर्म की परिभाषा, वर्ण-धर्म, नैतिक-धर्म, राजधर्म की मर्यादा, उत्तम धर्म, धर्म की प्रशंसा आदि ६ से ३० तक अध्यायों से प्रकाशित है । मनु ने भी सर्वप्रथम इस धर्मसूत्र को धर्म का प्रमाण माना है ।

विष्णु धर्मसूत्र की विषय सूची में वर्ण-धर्म, राज-धर्म, शरीर का पवित्रीकरण, मनोविकार से मुक्ति, आत्म संयमन आदि का विस्तार है । यह ईसा पूर्व ३०० से १०० वर्ष की संरचना है ।

धर्मसूत्रों के विषयों पर दृष्टिपात करने से विदित हो जाता है कि, प्राचीनकाल में धर्म सम्बन्धी धारणा बड़ी व्यापक थी, और वह मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करती थी। धर्म शास्त्रकारों के मतानुसार धर्म किसी सम्प्रदाय या मत का द्योतक नहीं है। प्रस्तुत यह जीवन का एक ढंग या आचरण संहिता है, जो समाज के किसी अंग एवं एक व्यक्ति के रूप में मनुष्य के कर्मों एवं कृत्यों को व्यवस्थापित करता है, तथा उसमें क्रमशः विकास लाता हुआ उसे मानवीय अस्तित्व को लक्ष्य तक पहुंचने के योग्य बनाता है। गौतम एवं अन्य शास्त्रकारों के मतानुसार यज्ञ कर्म तथा अन्य शौच एवं शुद्धि सम्बन्धी धार्मिक क्रिया-संस्कार आत्मा के नैतिक गुणों की तुलना में कुछ नहीं हैं - 'बाह्याचरणों के अगणित नियमों के अन्तर्गत पुरुष या अन्तःकरण पर बल दिया गया है।'[३८]

पुराण और धर्म

पुराण को पंचम वेद कहा गया है।[३६] प्रारम्भ में एक ही पुराण था। फिर कई पुराण और उप पुराण कब इतिहास में आये, विवाद का विषय है। किन्तु ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में इनका संशोधन और परिवर्तन हुआ था। परम्परा से अष्टादस पुराण और इतने ही उप पुराण हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत्, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ एवं ब्रह्माण्ड पुराण हैं।

पुराणों में वर्ण-धर्म, राज-धर्म, युग-धर्म आदि का विवेचन है। पुराणों में प्रतिपाद्य विषय विशद हैं। पुराणों की कथाओं में धर्म, अध्यात्म, इतिहास आदि हैं। कथाओं के सामान्य और विशिष्ट अर्थ भी हैं। धर्म की तात्विक मर्यादाओं और मूल्यों को रूपकों में भी अभिव्यक्त किया गया है। स्मृतिशास्त्रों के समर्थन और विरोध दोनों में एक सहज और सामान्य जन के निकट का धर्म भी पुराणों द्वारा प्रमाणित किया गया। इस प्रकार धर्म सामान्य जन के स्तर पर परिभाषित करने का कौशल भी पुराणों में संग्रहीत है। पुराणों में निहित अवतारवाद, देववाद आदि सिद्धान्तों ने भारतीय धर्म को व्यापक और लोकप्रिय रूप दिया। इससे धर्म का प्रसार सर्वत्र हुआ। पुराणों के धर्म ने वैदिक धर्म को अभिभूत कर लिया। पौराणिक धर्म, लोक-धर्म बन गया।

पुराणों की शैली अतिरंजित है। अतिशयोक्तिपूर्ण कथन पुराणों में अवश्य हैं। वैदिक धर्म की दुरूहता के स्थान पर धर्म के बोधगम्य रूप का प्रकाशन पुराणों में हैं। स्मृतिधर्म की शुष्कता तथा संश्लिष्टता के प्रतिकार में पुराणों में मानव को सहज धर्म का आमंत्रण है। पुराण, वैदिक धर्म के लोक संस्करण हैं।

भागवत् पुराण में सामान्य मनुष्यों के धर्म की स्पष्ट घोषणा उल्लेखनीय है -

'अहिंसा सत्यमस्तेय काम क्रोध लोभता ।
भूतप्रिय हितेहा च, धर्मोऽस्यं सार्ववर्णिकः ।' [४०]

अहिंसा, सत्य तथा अस्तेय का ग्रहण, काम-क्रोध तथा लोभ का त्याग और सर्वभूतहित की इच्छा सर्व सामान्य का धर्म है। पुराण में वेद-उपनिषद् से पृथक किसी धर्म का प्रतिपादन नहीं है। वेद और उपनिषद् से पुराण को पृथक कर, वैदिक धर्म और

पौराणिक धर्म का नाम से भेद करना भ्रममूलक है । वेद और उपनिषद् के ज्ञान को पुराण सर्व सामान्य के लिए व्याख्यायित करते हैं । पुराण, धर्म के प्रमाण ग्रंथों में हैं । [४१]

पुराणों में धर्म-चिन्तन का गाम्भीर्य, धार्मिक आस्था का शौर्य, तथा धर्माचरण का उत्कृष्ट धैर्य है । मानव मन या सामान्य जन को एक साथ अत्यन्त सरल और संश्लिष्ट या सहज तथा दुर्लभ धर्म का विचार-आचार पुराणों ने प्रकट किया है । धर्म के द्वारा मानवता को प्रतिष्ठित करने के लिए महापुराण श्री मद्‌भागवत् की अजामिल की कथा पर्याप्त है । समाज के जटिल और जड़ विधि-विधानों से पुराण स्वातंत्र्य और सम्मान से जीवन जीने का शंखनाद है । पुराण, धर्म के इस रहस्य को अनावृत करते प्रतीत होते हैं ।

बौद्ध धर्म

धर्म को व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करने का कार्य महात्मा बुद्ध ने किया था । 'बौद्ध धर्म के साहित्य में धर्म शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । कभी-कभी इसे भगवान बुद्ध की सम्पूर्ण शिक्षा का द्योतक माना गया है । इसे अस्तित्व का एक तत्व अर्थात् जड़ तत्व, मन एवं शक्तियों का एक तत्व भी माना गया है ।' [४२]

महात्मा बुद्ध ने एक सद्‌धर्म का प्रवर्तन ईसा पूर्व ६००-५०० वर्ष में किया था। बौद्ध धर्म के प्रमुख ग्रंथ 'धम्मपद' में स्पष्ट प्रकट है कि, धर्म में आनन्द मानने वाला पुरुष अत्यन्त प्रसन्न चित्त से सुखपूर्वक सोता है । निश्चिंत जीवन जीता है । पंडित जन सदैव आर्योपदिष्ट धर्म में रत रहते हैं ।

'धम्मपीति सुखं सेति विप्प सन्नेन चतेसा
अरियप्पवेदिते धम्मे तदा रमति पण्डितो ।'

अधर्म के द्वारा अपनी उन्नति नहीं चाहता, वही शीलवान, प्रज्ञावान और धार्मिक है - 'ने इच्छेयूय अधम्मेन समिद्धिमत्तनो । स सीलवा पंचवा धमिमको सिया।' धर्म की शरण में आकर, धर्म में रमता और धर्म का निरन्तर चिन्तन करता, या धर्म का अनुसरण करता हुआ कभी सद्‌धर्म से विलग नहीं होता ।

'धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिनायं
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्‌धम्मान परिहायति ।'

भगवान् बुद्ध ने अनुयायिओं को एक उदात्त और उत्कृष्ट धर्म का दिव्य सन्देश दिया था । 'एस धम्मों सनन्तनो' एक सनातन धर्म का प्रवर्तन, निर्वैर की तीव्र अनुभूति द्वारा भगवान बुद्ध ने किया था ।

महात्मा बुद्ध ने धर्म चक्र का प्रवर्तन किया । इसका आशय समाजचक्र परिवर्तन रहा है । समग्र समाज संरचना में मूलभूत परिवर्तन द्वारा जड़ता के समापन, और बुद्धि के आधार पर नूतन नीतिमत्ता और नैतिकता का सृजन महात्मा बुद्ध का अभिधेय रहा है । महात्मा बुद्ध ने मानवता के धर्म की संस्थापना का कार्य इतिहास में किया । एक धर्म विचार की समाज में स्थापना की थी । बुद्ध के मत में मानवता के

उत्थान के लिए एक नूतन विचार उपलब्ध हुआ । नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई । मानवता के बौद्धिक जीवन या नैतिक जीवन का ही नहीं, भौतिक जीवन के समाधान का प्रश्न भगवान बुद्ध ने उठाया था । मानवता के समाधान में उसके विविध पक्ष समान रूप से महत्व के हैं । बुद्ध ने मानव समाज को ऐसा धर्म प्रदान किया, जो सर्वस्पर्शी रहा है । मानवता स्वयं धर्म में रूपांतरित हो गयी है ।

बौद्ध धर्म की विशिष्टता उसकी सार्वभौमिकता थी । जन्म से विशेषाधिकार की अस्वीकृति ने मानवीय समानता का मार्ग प्रशस्त किया । तत्कालीन प्रचलित जीवन मूल्यों की विवेचना द्वारा करुणा के आधार पर धर्म की पुर्नपरिभाषा बुद्ध ने की थी ।

धर्म और अशोक

बौद्ध धर्म का साहित्य, इस धर्म के महान प्रचारक प्रियदर्शी अशोक के पश्चात् या दो शताब्दी ईसा पूर्व लिखा या संकलित-सम्पादित किया गया । इस सम्पूर्ण साहित्य को त्रिपिटक का नाम दिया गया । बौद्ध धर्म के प्राचीन धार्मिक साहित्य के भण्डार को देश-विदेश के मनीषियों द्वारा समृद्ध किया गया था । सम्राट अशोक भारतीय धार्मिक इतिहास में अद्वितीय राजपुरुष हैं । सम्राट अशोक ने धर्म के अनुशासन तथा आचरण द्वारा मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की थी । अहिंसा, स्नेह, करुणा दया आदि द्वारा मनुष्य-मनुष्य के मध्य उचित सम्बन्धों का प्रतिपादन अशोक के शिला अभिलेखों में है ।[४३] सम्राट अशोक ने धर्म की परम्पराओं और रूढ़ियों के संबंधों पर आघात किया था ।[४४] सम्राट अशोक ने धर्म के माध्यम से सुखद मानवता के अभ्युदय की कल्पना तथा कामना की थी । सम्राट अशोक ने धर्म को व्यक्ति और विश्व के कल्याण का प्रमुखतम साधन माना था । उदार तथा उत्कृष्ट धर्म द्वारा मानवता का अभ्युदय, अशोक का लक्ष्य था ।

वैष्णव धर्म

मौर्य सम्राटों के पश्चात् बौद्ध धर्म के उत्कृष्ट जीवन मूल्यों पर विश्वास की क्षीणता भारतीय इतिहास में प्रकट हुई । पुष्यमित्र शुंग ने वैदिक पद्धति पर आस्था के अनुसार दो अश्वमेघ यज्ञ किये । दक्षिण भारत के सातवाहन राजाशातकर्णि ने भी कई यज्ञ सम्पन्न किये । ईसा पूर्व एक शताब्दी में वैदिक विष्णु को आराध्य मानकर भागवत धर्म या वैष्णव धर्म का प्राबल्य हुआ । ईसा पश्चात् की चतुर्थ शताब्दी में उत्तर भारत के गुप्त वंश के सम्राटों ने इस मानव धर्म का अनुकरण किया । ये राजे परम् वैष्णव थे । विष्णु के पौराणिक वाहन गरुड़, गुप्तवंश का राज्य चिहन था । विष्णु के विभिन्न अवतारों पर आस्था के द्वारा व्यापक औदार्य का पोषण हुआ । बौद्ध धर्म के प्रवर्तक भगवान बुद्ध भी विष्णु के अवतार माने गये थे ।

भागवत् धर्म ने वैदिक धार्मिक कर्मकांडों की जटिलता को क्षीण करने का कार्य किया । बौद्ध धर्म की अवनति के साथ ही उसका प्रसार तीव्रता से हुआ । गुप्त वंश के उपरान्त वैष्णव धर्म भारत और अन्य देशों में प्रतिष्ठित हो गया । इस धर्म ने अवतारवाद की अवधारणा को गहराई और गंभीरता प्रदान की । विष्णु के विभिन्न अवतारों की पूजा-अर्चना में वैष्णव धर्म भारत और अन्य देशों में प्रतिष्ठित हो गया ।

विष्णु के विभिन्न अवतारों की पूजा-अर्चना में वैष्णव धर्म ने अकारण कृपा करने वाले ईश्वर की खोज की थी। इसके पश्चात् भारतीय इतिहास की मध्यकालीन शताब्दियों ने इसी वैष्णव धर्म के औदार्य का साक्षात्कार किया। परम् वैष्णव भगवान राम तथा भगवान कृष्ण की जीवन गाथाओं में धर्म के विविध तथा पूर्णरूपों का प्रकटीकरण इतिहास में महत्व का है। वैष्णव धर्म के जनप्रिय रूप या इसके लोक संस्करण ने भक्ति धर्म को इतिहास में प्रबलता से प्रतिष्ठित किया। धर्म का साधारणीकरण या सामान्य जन के निकटतम लाने का कौशल मध्यकालीन इतिहास का भक्ति आन्दोलन या आरोहण है। इसके द्वारा धर्म की परिभाषा में संश्लिष्टता का निराकरण हुआ। धर्म सामान्य जन को सुलभ हो गया।

बौद्ध धर्म के अनीश्वरवाद से समान्य जन को धर्म के माध्यम से जिस ईश्वर की आवश्यकता थी, वह अप्राप्य हो गया था। भारत के इतिहास में मोड़ आया और एक नूतन वैष्णव धर्म का प्रवर्तन हो गया, और एक कृपालु सुलभ ईश्वर का अवतरण हो गया।

धर्म और मध्यकाल

वैष्णव धर्म ने वेदान्त के आधार पर ही सामान्यजन को प्रेरक और प्रभावी आस्था प्रदान की। वैष्णव धर्म ने एक सरल भावुकता से प्लावित अध्यात्म, एक सहज कृपा का संचय ईश्वर, एक सात्विक-संवेदनशील जीवन और समर्पित व्यक्तित्व के सृजन का पथ प्रशस्त किया। वेदान्त धर्म और वैष्णव धर्म के सामंजस्य से भारतीय इतिहास की मध्यकालीन शताब्दियों में संत परम्परा का उद्भव हुआ। संत परम्परा ने भक्ति धर्म का एक भव्य और भावुक आरोहण इतिहास में प्रस्तुत किया। भक्ति धर्म ने ईश्वर के प्रति अतिशय अनुराग द्वारा जगतगत बन्धनों को तनाव मुक्त दिशा दी। वस्तुतः भक्ति सभी धर्मों में है, कहीं ईश्वर भक्ति है, तो कहीं महात्माओं के प्रति भक्ति का आदेश है। भक्ति धर्म ने धार्मिक नव जागरण का कार्य किया। सिद्धान्तों या दर्शनों के ऊँचे गगन में विचरण करने वाले धर्म को साधारण मनुष्यों के लिए जीवनोपयोगी एवं व्यावहारिक बनाने का कार्य भक्ति ने किया। भक्ति द्वारा धर्म मनुष्य के नित्य के जीवन में प्रकट हुआ। भक्ति ने एक सात्विक, सहज, समतावादी और समर्पण वृत्ति के धर्म का प्रवर्तन किया। इस धर्म में समस्त मनुष्य जाति को मुक्त आमंत्रण था।

मध्यकालीन शताब्दियों में इस्लाम पंथ का अरब में अभ्युदय हुआ। भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक स्थिति पर आक्रामक इस्लाम ने विध्वंस और विग्रह का मार्ग प्रशस्त किया। भारत की धरती पर उपजे धर्म सुरक्षात्मक स्तर पर आ गये थे। तेरहवीं शती में इस्लाम का प्रभुत्व उत्तर भारत में हो गया। भारतीय भक्ति धर्म की परम्परा ने अपनी मान्यताओं और मूल्यों के संरक्षण में बृहत् समाज को जीवित, जाग्रत रखने में अतुलनीय योगदान किया। सामान्यजन विदेशी आक्रान्ता से विशेष प्रभावित नहीं हुए।

वैष्णव धर्म या भक्ति आरोहण ने भारत की धार्मिक स्वतंत्रता को सुरक्षा कवच दिया। सत्ता प्रतिष्ठानों और सम्पत्ति के अधिष्ठानों से विरक्त सामान्य जीवन के निकटतम

एक सहज सुलभ धर्म स्थापित हुआ । इस धर्म के गायकों ने मध्यकालीन इतिहास को गौरवान्वित किया । ज्ञानदेव, नामदेव, रामानन्द, चैतन्य, कबीर, नामक रैदास, तुलसी, मीरा आदि संतों की इस दीर्घ श्रृंखला ने हिन्दू-मुसलमानों के मध्य संघर्ष की निंदा कर, तथा धर्म के बाह्याचारों को महत्व न देकर, ईश्वर के प्रति सर्व समर्पण के मार्ग को प्रशस्त किया। इन संतों की कड़ी में इस्लाम पंथी सूफी संत भी विराट धर्म की शोध में सहयात्री बने थे ।

महाराष्ट्र में तेरहवीं शती के अन्त में संत ज्ञानदेव का अभ्युदय हुआ । भगवद्गीता का लोक भाषा में अनुवाद कर ज्ञानदेव ने सामान्य जन को धर्म के वैभव के राजद्वार पर खड़ा किया ।

संत नामदेव, ज्ञानदेव के समकालीन थे । संत रामानंद का चौदहवीं शती में आर्विभाव हुआ । रामानंद के एक शिष्य कबीर ने पन्द्रहवीं शती में धर्म को विवेकोन्मुखी दिशा और लोकोन्मुखी दायित्व दिया । कबीर ने अपने युग में धर्म के क्षेत्र में व्याप्त बाह्यचारों का खंडन किया । वेदपाठ, वर्णाश्रम, अवतारोपासना, मूर्तिपूजा, मस्जिद, निर्माण, अजान आदि की कबीर ने आलोचना की थी । कबीर ने तर्कजनित सदाचार का प्रतिपादन किया । तर्कजनित सदाचार जब केवल लौकिक सुख के लिए प्रयत्नशील होता है, तब वह धर्मविहीन तर्क जनित सदाचार हो सकता है । किन्तु कबीर का सदाचार धर्म निहित या धर्म सम्मत तर्कजनति सदाचार है । कबीर का धर्म सामाजिक सद्गुणों सत्य, अहिंसा, आस्तिकता, सदाचरण, निष्कामता, निर्वैरता, अनासक्ति आदि का पक्षधर है। कबीर ने भक्ति को सर्वप्रथम और सर्वोपरि धर्म के रूप में निरूपित किया है ।

कबीर ने वैष्णव धर्म के जीवन चिन्तन के आधार पर अहिंसा पर अटूट विश्वास प्रकट किया है । मानवीय सम्बन्धों में ही धर्म भावना स्थापित करने की वृति ही अहिंसा नहीं है, अहिंसा मानवेतर जीवन से सम्यक्क सम्बंधों की दिशा तथा दायित्व है । एक आतुर करूणा, या अटूट दया या अनुरागयुक्त धर्म की अभिव्यक्ति अहिंसा है ।

जीव बधत अरू धरम कहत है, अधरम कहाँ है भाई ।[४५]

धर्म समर्पित जीवन में ही ईश्वर की प्राप्ति है । ईश्वर विस्मरण में सर्वस्व विनाश है - आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेट्या सब जाये ।[४६] कबीर का धर्म गहरी-गम्भीर आस्तिकता से प्लावित और पूर्ण है । आस्तिकता के बिना समस्त जीवन नीरस और निस्सार है । मनुष्य जाति चारों ओर अग्नितापों से त्रस्त है । मनुष्य जाति दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से झुलस रही है । इससे आस्तिकता ही रक्षा कर सकती है।[४७] मनुष्य जीवन में अतिशय नम्रता धारण कर ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। पाखंड और अभिमान का परित्याग कर मार्ग की कंकड़ी के रूप में जब मनुष्य बनता है , तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है ।[४८] कबीर का धर्म ईश्वर के प्रति सर्व समपर्ण की भावना है - हरि बिना अपना को नहीं देखे ठोक बजाई ।[४९]

कबीर के समकालीन नानक, रैदास आदि ने दृश्य जगत में मानवीय सम्बन्धों में गुणात्मक सुधार और अदृश्य जगत की अन्तःरचना को धर्म का क्षेत्र स्वीकृत किया है । संतुलित सामाजिक सम्बन्धों और तदनुकूल मानस पुनर्रचना का मार्ग धर्म के प्रागंण में है। इन संतों ने सृष्टि, समाज और तन- मन में सत्य की शोध की धर्म यात्रा

का विवरण पद्य शैली में किया है । इनके विचारों में सत्य स्वरूप ईश्वर की उपासना और सत्यनिष्ठा का आग्रह सर्वत्र है । सच खंडि बसे निरकारू - सत्यखंड में ईश्वर का साक्षात्कार है । [५०]

सत्य के अन्तर्गत हैं - संयम, धैर्य , बुद्धि, अनुभव का ज्ञान , ईश्वर भय, तप, प्रेम-भक्ति और भगवन्नाम । गहरी आस्तिकता से ओत-प्रोत भावनाओं और विचारों से गुरू नानक ने धर्म को मनुष्य जाति की आशा का आधार बना दिया । 'ना ओहि मरहिं न ठागे जाहि । जिनके रामु बसै मन माहिं ।'[५१]

सद्गुरू नानक ने प्रकट किया है कि 'काल और स्थल के बीच भगवान ने धरती की स्थापना, उसे धर्मशाला कह कर की है । धर्मशाला यानी अतिथियों के लिये मकान नहीं, बल्कि धर्माचरण करने का स्थान । भगवान ने धरती को काल और स्थल के बीच रखा है । हम सबके लिये धर्माचरण के तौर पर पृथ्वी की स्थापना की गयी है। तो, देशकाल का विचार करके हमें धर्माचरण करना चाहिये, यह सुझाना चाहते हैं - 'तिसु विचि धरती धामि रखी धरम साल ।'[५२]

सत्रहवीं शती में तुलसी ने धर्म की अपराजेय गाथा का अंकन 'रामचरित मानस' में किया है । रामकथा ने भारतीय जीवन चिन्तन के शाश्वत्, सार्वभौमिक तथा मानवतावादी धर्म का पोषण किया है । रामकथा का नायक अधर्म के समापन के लिये प्रकट होता है । तुलसी के 'राम चरित मानस' के नायक धर्म धुरीण हैं । नायक राम का जीवन धर्म से प्लावित है । तुलसी के 'रामचरित मानस' में पृथ्वी अधर्म के बोझ से विकल होकर ब्रह्मा से प्रभु-अवतारणा के लिये प्रार्थना करती है (अयोध्या काण्ड)। इस कथा में पृथ्वी मानव समाज का प्रतीक है । तुलसी ने असुरवृति को अधर्म कहा है । यह अधर्म सदाचरण का अभाव, देव-विप्र- गुरू की अमान्यता तथा भक्ति, यज्ञ, तप, ज्ञान आदि का अंत है ।

तुलसी साहित्य में धर्म का सामाजिक, व्यक्तिगत और आध्यात्मिक दृष्टिकोणों से विवेचन है । धर्म का सामाजिक रूप प्राचीन धर्म -ग्रन्थों (निगमागम पुराण) की व्यवस्था, और चातुर्वर्ण्य के स्वधर्म की मान्यता में है । व्यक्ति में धर्म की स्थिति सदाचार के नियमन में है । सदाचार शारीरिक शुद्धि से लेकर तप, दया और सत्य क्रमशः या उत्तरोत्तर मानसिक स्थिति और कर्तव्य या अकर्तव्य की मीमांसा है । तुलसी साहित्य में इन्हीं को धर्म के चार चरण कहा गया है ।

धर्म का चरमोत्कर्ष है - ईश्वर की शरण में समस्त धर्मों का परित्याग, क्योंकि ईश्वर धर्म का धाम है । [५३] ईश्वर की शरणागति में जब व्यक्ति अपना जीवन दूसरों के लिये अर्पित करता है, तब मानवता का अभ्युदय होता है ।

तुलसी साहित्य में धर्म मानवीय सम्बन्धों में सन्तुलन का सामाजिक सद्गुण है । सहानुभूति की मानसिकता से अन्य की सहायतार्थ किये गये कार्य या परहित का प्रत्येक कर्म शुभ है - परहित सरस धरम कोउ नाहीं । इस धर्म से व्यक्ति के क्षुद्र अहंम का समापन अपेक्षित है । परहित का आचरण त्याग की वृति है । यह त्याग समस्त

नैतिकता की नीवं है । परहित की भावना से व्यक्ति का नैतिक आरोहण होता है, तथा सभ्य समाज ऊर्जस्वित होता है । यह नैतिकता समग्र धर्म का आधार है।

धर्म को अपनी समग्रता में परिभाषित करने के लिये तुलसी ने 'रामचरित मानस' के लंका काण्ड में धर्म के रथ पर आरूढ़ मानव जीवन का, युद्ध भूमि में, संघर्ष का चित्रण किया है । इस धर्म रथ के पहिये हैं - शौर्य और धैर्य । इसके चार अश्व हैं - बल, विवेक, दम और परोपकार । ये अश्व क्षमा,दया और समता की डोर से रथ से संयुक्त हैं । धर्म रथ का कुशल चालक है - भक्ति भाव । इस धर्मयुद्ध में वैराग्य की ढाल, संतोष की तलवार, दान का फरसा, बुद्धि की मारक शक्ति, विज्ञान का प्रचन्ड धनुष, निर्मल तथा स्थिर मन के तरकश में शम, यम और नियम के बाण हैं । धर्म-योद्धा के कवच हैं -ब्राह्मण और गुरू की पूजा । इस धर्मयुद्ध में आसुरी वृत्तियों का विनाश होकर देवत्व की प्राप्ति का वर्णन है ।

जीवन संघर्ष में सामाजिक सद्गुणों को ग्रहण कर मनुष्य जिस प्रक्रिया से उत्कृष्ट जीवन की ओर अग्रसर होता है, उसे धर्म की संज्ञा दी गयी है । मध्यकालीन संतों कबीर, नानक, रैदास आदि के अनुयायियों ने धर्म की भारतीय परम्परागत नैतिकता और नीति को स्वीकार करके सत्य की शोध, सोच के स्वातंत्र्य, सदाचरण की सात्विकता, सामाजिक सम्बन्धों में समरसता आदि को नूतन आयाम और आकार दिये हैं । इन सद्गुरूओं के वैचारिक और सैद्धान्तिक आश्रय से विशिष्ट पंथों का प्रवर्तन हो गया ।

सार्वभौम नैतिकता के आधार पर सन्तों ने धर्म की समीक्षा की है । वैदिक धर्म को आदि बिन्दु मानकर चलने वाले संतों की धर्म मीमांसा अतीत की परम्परा से अखण्डित रही है । कुछ प्रमुख संतों कबीर , नानक, रैदास आदि संतों ने एक समानान्तर परम्परा की भी निर्मिति कर दी । किन्तु विचार, व्यक्तित्व और व्यवहार के स्वतन्त्र पथ का अनुसरण भारतीय चिन्तन परम्परा के अनुकूल ही रहा - एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।

धर्म और आधुनिककाल

धर्म की पुर्नपरिभाषा के परिप्रेक्ष्य में भारत के इतिहास की उन्नीसवीं शती महत्वपूर्ण है । इस शताब्दी में भारत के सम्बन्ध विदेशी भूमि और भावनाओं से व्यापक रूप से जुड़े थे । इस कारण वैचारिक आदान-प्रदान का प्रभावी क्रम इतिहास में अंकित हुआ । यह शताब्दी आधुनिक युग की सन्देशवाहक बनी । वैदिक,उपनिषदीय तथा वेदान्त आदि में निहित प्राचीन धर्म चेतना को नूतन स्तर और नवीन स्वर उपलब्ध हुए। राजा राम मोहन राय से रामकृष्ण परमहंस तक धर्म को अधिक विवेकपूर्ण सामाजिक- सांस्कृतिक जीवन से संलग्न करने की परम्परा का निर्वाह हुआ । स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म को नूतन आयाम दिया । इस शती के अन्तिम कालखण्ड में स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को भव्य दर्शन , दिशा और दायित्व प्रदान किया ।

धर्म के प्रवाह, इसकी परिभाषा तथा परिव्याप्ति के सन्दर्भ में विवेकानन्द के धर्म विचार की मीमांसा प्राचीन वैभव और आधुनिक विवेक के मध्य शक्तिशाली सेतु है । विवेकानन्द के अनुसार धर्म शब्द-जाल नहीं है । धर्म कोई विशेष कल्पना नहीं

है। धर्म अन्धविश्वास नहीं है । धर्म सिद्धान्तों का समूह मात्र नहीं है । धर्म का यथार्थ तत्व समझ कर, उसे सामाजिक नियमों में अवतरित करना है । धर्म भारत देश में एक ऐसा शब्द है जिसका पर्यायवाची शब्द अन्य देशों में नहीं है । विवेकानन्द ने कहा था कि धर्म, ग्रन्थों या उपदेशाष्टाओं अथवा उद्धारक या मसीहा पर निर्भर नहीं रहता । धर्म इस जीवन में या अन्य किसी जीवन में दूसरों पर आश्रित नहीं बनाता । लेकिन धर्म में ग्रन्थों - अनुष्ठानों आदि का अपना स्थान है । ये बहुतों को सहायक हो सकते है।[५४] धर्म मनुष्य के चिन्तन और जीवन का सबसे उच्च स्तर है । धर्म जगत में ही इन दो शक्तियों की क्रिया सबसे अधिक प्रस्फुटित हुई है । मानवता को जिस तीव्रतम प्रेम का ज्ञान है, वह धर्म से ही प्राप्त हुआ है, और वह घोरतम पैशाचिक घृणा भी, जिसे मानवता ने कभी अनुभव किया, वह भी धर्म से प्राप्त हुई है ।[५५]

विवेकानन्द ने धर्म के व्यापक रूप को स्वीकृति दी है । 'धर्म सम्बन्धी सभी संकीर्ण, सीमित, युद्धरत धारणाओं को नष्ट होना चाहिये । सम्प्रदाय , जाति या राष्ट्र की भावना पर आधारित सारे धर्मों का परित्याग करना होगा । हर जाति या राष्ट्र का अपना-अपना अलग ईश्वर मानना और दूसरों को भ्रान्त कहना एक अन्धविश्वास है, उसे अतीत की वस्तु हो जाना चाहिये । ऐसे सारे विचारों से मुक्ति पाना होगा ।'[५६]

विवेकानन्द ने कल्पना की थी कि, आने वाले धर्म को विश्वव्यापी बनना पड़ेगा। सम्पूर्ण मानवता में जो शुभ और सुन्दर है, सभी को स्वीकार करने वाला यह धर्म होगा । धर्म के इस औदार्य से कल्याण की शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हो सकेगी । विश्वव्यापक धारणा पर प्रतिष्ठित होकर धर्म वास्तविक और विवेकपूर्ण रूप ग्रहण कर सकेगा ।

विवेकानन्द ने धर्म को सम्पूर्ण मानव जीवन में व्यापक कहा है, न केवल वर्तमान में, अपितु भूत और भविष्य में भी । धर्म के माध्यम से मनुष्य अनन्त जीवन का साक्षात्कार कर सकता है ।

धर्म अन्तर्दृष्टि द्वारा मानव हृदय में प्रवेश कर ईश्वर तथा अमरत्व सम्बन्धी सत्यों की खोज निकालने का चिन्तन और चरित्र है ।[५७] 'सभी धर्मों में कोई एक सर्वव्यापी सत्य है, तो मैं कहूँगा कि वह है ईश्वर को पाना ।' मानव मात्र के लिये स्नेह और दया ही सच्ची धार्मिकता की परख है ।[५८] 'पृथक-पृथक मणियां एक-एक धर्म हैं, और प्रभु सूत्र रूप से उन सबमें वर्तमान हैं ।'[५९]

विवेकानन्द ने धर्म को सकारात्मक बताकर, निरन्तर शुभ एवं सद्कार्य करने की शिक्षा दी है । सच्चा धर्म सकारात्मक होता है, नकारात्मक नहीं, अशुभ एवं असत से केवल बचे रहना ही धर्म नहीं- पर वास्तव में शुभ एवं सत्कार्यों को निरन्तर करते रहना ही धर्म है ।[६०] विवेकानन्द ने आत्मज्ञान को धर्म, और आत्म ज्ञान की उपलब्धि करने वाले को धार्मिक कहा है । आत्मज्ञान ही धर्म है, और जिसे उसकी उपलब्धि हो चुकी है, इसके अन्तर्गत सभी धर्म आ जाते हैं । इसमें असहिष्णुता के अतिरिक्त सब कुछ सहनीय है ।[६१] विवेकानन्द के अनुसार सभी अच्छे धर्मों की केन्द्रीभूत प्रेरणा सहिष्णुता और स्नेह की भावना है । सभी धर्म मनुष्य की पवित्रता की अन्तःप्रेरणा के प्रतीक हैं । इसलिये सभी का सम्मान आवश्यक है । विभिन्न धर्म भिन्न-भिन्न आकार

के बने घड़ों के प्रतीक रूप में हैं । इनको लेकर विभिन्न व्यक्ति एक निर्झर में जल भरने जाते हैं । घड़ों के रूप तो बहुत से हैं, किन्तु जिस चीज को सभी लोग अपने घड़ों में भरना चाहते हैं, वह सत्य रूप जल है ।[६२] धर्म के विविध घट सत्य रूप जल को भरना चाहते हैं । धर्म सत्य की शोध है । इस प्रकार सभी धर्म मनुष्य जाति को पूर्णता की ओर ले जाने के आकांक्षी हैं । भारत में धर्मों के सम्मिलन की प्रवृत्ति रही है ।[६३]

भारत के धर्म की सिखावन है कि मनुष्य को प्रेम के लिये ईश्वर प्रेम करना चाहिए, और स्वयं की अपेक्षा पड़ोसी के प्रति प्रेम रखना चाहिए ।[६४] ग्रंथ या सद्ग्रंथ आदि धर्म नहीं है । 'अन्तर्दृष्टि द्वारा मानव- हृदय में प्रवेश कर तथा अमरत्व सम्बन्धी सत्यों को ढूँढ़ निकालने को धर्म कहते हैं । ऋषि बन जाना धर्म का सर्वस्व है' ।[६५]

विवेकानन्द ने भारत के धर्म को एक मतवाद नहीं माना है । जीवन जीने की प्रत्यक्ष शैली धर्म है ।[६६] विवेकानन्द का धर्म विश्व की तरह व्यापक है, जिसमें सभी धर्मों और कहीं भी पाये जाने वाले सत्य का समावेश है । भारत के धर्म में अन्ध विश्वास या जड़ विधि - विधान का कोई स्थान नहीं है । विवेकानन्द ने भारतीय परम्परा के अनुकूल धर्म की विराट व्याप्ति और विश्वसनीय विवेकपूर्ण परिभाषा सर्वत्र की है । धर्म व्यावहारिक और यथार्थ है ।[६७] धर्म केवल दर्शन शास्त्र का विषय नहीं है ।

विवेकानन्द ने धर्म के तीन भाग किये हैं - दार्शनिक, पौराणिक तथा कर्मकांड।[६८] दार्शनिक भाग धर्म का सार है । धर्म के दो तत्व हैं - सकारात्मक (धर्म का सार) तथा नकारात्मक ।[६९] धर्म के दार्शनिक रूप का अभिप्राय आध्यात्मिक अनुभूति है । धर्म का पौराणिक रूप कवित्वमय, तथा सुन्दर है । सभी धर्मों के पौराणिक और प्रतीकात्मक अंश स्वाभाविक विकास के स्तर हैं ।[७०] ये ईश्वर की ओर बढ़ने में सहायता देते हैं । कर्मकांड का सम्बन्ध धार्मिक अनुष्ठानों से है । अनुष्ठान दर्शन का ही स्थूलतर रूप है । धर्म का अर्थ है - प्रत्यक्ष अनुभूति । आत्मा के गम्भीरतम प्रदेश में हम जो अनुभव करते हैं, वही प्रत्यक्षानुभूति है ।[७१] आध्यात्मिक अनुभूति और धर्मानुष्ठान अज्ञानता या मतान्धता नहीं है ।

विवेकानन्द ने मानवीय जीवन को उदात्त, और मानवता के उन्नयन के शिल्प के रूप में धर्म को स्वीकार किया है । धर्म की आस्था मनुष्य जीवन के उद्देश्यपूर्ण और उत्कृष्ट रूपान्तरण पर है । 'जीवन का मूल्य ही क्या रहा ? यदि धर्म के सम्बन्ध में हमारे अपने कुछ विचार, हमारी कुछ जीवन्त धारणायें न हों ।'[७२]

विवेकानन्द ने धर्म को इसी लौकिक तथा भौतिक जीवन के लिये आवश्यक कहा है । धर्म को पारलौकिक या पलायनवादी कहने का औचित्य नहीं । धर्म इसी जीवन की वस्तु है, इसी वर्तमान जीवन की ।[७३] मनुष्य जाति को धर्म की और सिद्धान्तों की आवश्यकता है, जिससे वह मनुष्य बन सकें । हमें ऐसे सिद्धान्तों की जरूरत है, जिससे हम मनुष्य हो सकें ।[७४] जिसें धर्म का ज्ञान नहीं है, वह निरा पशु है ।'[७५]

विवेकानन्द ने धर्म को व्यावहारिक जीवन दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया है । किसी धर्म के सिद्दान्त या दर्शन कितना ही उदात्त या सुगठित क्यों न हो, जब तक वह कुछ ग्रंथों और मतों तक ही सीमित है, विवेकानन्द उसे स्वीकार नहीं करते ।[७६]

विवेकानन्द को उस धर्म पर विश्वास नहीं, जो विधवाओं के आंसू नहीं पोंछ सकता, और न अनाथों के मुँह में एक टुकड़ा रोटी ही पहुँचा सकता है । [७७]

विवेकानन्द के अनुसार धर्म वह विज्ञान है, जो मनुष्य में स्थित अतीन्द्रिय माध्यम से प्रकृति में स्थित अतीन्द्रिय का ज्ञान प्राप्त करता है । मनुष्य जाति वस्तुतः उस ध्रुव सत्य की खोज में है, जो परिवर्तित न होता हो, और सतत प्रयत्नशील हो । धर्म वह विज्ञान है, जो हमें यह सिखाता है कि अपरिवर्तनशील की यह आकांक्षा कहाँ से पूरी हो ? [७८]

विवेकानन्द ने स्पष्ट किया है कि धर्म का अर्थ है आत्मा की ब्रह्म स्वरूपता को जान लेना, उसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेना, और तद्रूप हो जाना । [७६]

विवेकानन्द ने धर्म को वैश्विक धरातल पर प्रतिष्ठित कर, मानवीय मूल्यों का संरक्षण और पोषण किया है । धर्म मनुष्य जाति का उत्कर्ष करने वाला है । धर्म द्वारा पशुता बहिष्कृत होती है और मानवता दिव्यता की दिशा में गतिशील होती है ।

गांधी जी और धर्म

गांधी जी के अनुसार धर्म वह वस्तु है, जिसके अभाव में मनुष्य जी नहीं सकता । गांधी जी ने बुद्धि के अहंकार में धर्म से सम्बन्ध न रखने वाले को हास्यास्पद कहा है । गांधी जी का कथन है कि जो मनुष्य धर्म को नहीं जानता, वह भी धर्म के बिना नहीं रह सकता, और नहीं रहता । गांधी जी ने धर्म को अपरिहार्य विषय -वस्तु माना है । मनुष्य धर्म के बिना नहीं रह सकता । [८०]

गांधी जी ने धर्म का सच्चा उद्देश्य ईश्वर या सृष्टा से साक्षात्कार कहा है । 'सबका सच्चा उद्देश्य एक हीं है । खुदा या ईश्वर का दर्शन कराना । अतः उद्देश्य की दृष्टि से धर्मों में भेद नहीं है '। [८१] गांधी जी ने धर्म को मनुष्य के जीवन की प्राण वायु कहा है ।

'धर्म के सम्बन्ध में व्यक्ति की कोई गणना नहीं है । व्यक्ति आज है, कल नहीं, धर्म सनातन है, और सनातन रहेगा । उसके बारे में नित्य नवीन कल्पनायें होती आई हैं, और होती रहेंगी । धर्म की मर्यादा अनन्त हैं ।' [८२] धर्म से ही समाज और व्यक्ति का अस्तित्व है । व्यक्ति अथवा समाज धर्म से जीवित रहते हैं और अधर्म से नष्ट होते हैं । [८३] गांधी जी ने धर्म को शाश्वत तथा अविनासी माना है । वास्तव में धर्म का नाश नहीं हो सकता । यदि अधर्म, धर्म का स्वांग बना ले, तो ऐसा नकली धर्म निश्चय ही नष्ट हो जायेगा ।' [८४]

धर्म को महात्मा गांधी ने इस सृष्टि या समाज की नींव के पत्थर रूप में मान्यता दी है । धर्म से धरती का अस्तित्व है । धर्म की नींव पर यह संसार दुर्ग खड़ा है । अगर नींव खोद कर फेंक दी जाये, तो इस इमारत के ध्वस्त हो जाने में क्या सन्देह है ? [८५] धर्म को व्यवस्था या व्यक्ति की बहुत सी प्रवृत्तियों में एक को मानने वाला, धर्म से परिचित नहीं है । [८६] जीवन में धर्म का तत्व प्रविष्ट करना अत्यावश्यक है । [८७] धर्म मनुष्य के जीवन का आधार है । [८८]

गांधी जी ने धर्म या स्वधर्म को स्पष्ट किया है कि, 'आप मेरी सारी जिन्दगी को गौर से देखिये, मै कैसे रहता हूँ, कैसे खाता हूँ, कैसे बातचीत करता हूँ, और आम तौर पर मेरा बर्ताव कैसा रहता है, सो सब आप पूरी तरह देखिये । इस सबको मिलाकर जो छाप आप पर पड़े वही मेरा धर्म है ।'[६६] धर्म गांधी जी के जीवन की प्रत्येक साँस के साथ उनके आचरण का विषय रहा है । [६०]

गांधी जी ने धर्म के अर्थ को स्पष्ट किया है । 'धर्म का अर्थ है, जो धारण करे । फिर भले ही वह धर्म नास्तिक का हो, मूर्ति पूजा करने वाले का हो या निराकार की उपासना करने वाले का हो ।' धर्म बाह्य कर्मकांड में नहीं है । बल्कि मनुष्य की ऊँची से ऊँची वृत्तियों का अधिक से अधिक अनुसरण करने में हैं ।[६१]

गांधी जी के समक्ष प्रश्न था कि धर्म है क्या ? गांधी जी का उत्तर था कि वह धर्म नहीं जो संसार के धर्म ग्रंथ को पढ़ने के पश्चात् प्राप्त होता है । वास्तव में धर्म, बुद्धि ग्राह्य नहीं, ह्दय ग्राह्य है । यह हमारे बाहर की कोई चीज नहीं है । इस तत्व को तो हमें अपने अन्तर से उद्भूत और विकसित करना पड़ेगा । यह सदा हमारे अन्तर में स्थित है । कुछ को उसकी चेतना होती है, कुछ को नहीं होती ।[६२] गांधी जी ने धर्म, बुद्धि पर आधारित नहीं माना था । गांधी जी ने कहा था कि धर्म ह्रदय का विषय है । इस कारण धर्म की चर्चा बुद्धि द्वारा नहीं, ह्रदय के द्वारा करना आवश्यक है । गांधी का यह भी कथन है कि वस्तुतः जो बुद्धि ग्राह्य वस्तु नहीं है , और बुद्धि के विपरीत है, वह कभी धर्म नहीं हो सकती । धर्म आस्था के क्षेत्र में है, इस कारण भावनाओं या भावुकता या ह्रदय का विषय है । धर्म, सत्य की शोध होने के कारण बुद्धि के विपरीत नहीं हो सकता ।

गांधी जी ने धर्म को सत्य के प्रति श्रद्धा का विषय माना है । सत्य के कारण मनुष्य अपने धर्म पर अटल रहता है । धर्म का रहस्य किसी सुख- सुविधा अथवा सामाजिक-आर्थिक सुधार में नहीं है । अन्य समस्त अवलम्बों को छोड़कर केवल ईश्वर के या सत्य के प्रति श्रद्धा कायम रखने वाला यह धर्म ही है । सत्य के अनुकूल आचरण धर्म है । धर्म सत्याश्रयी है ।[६३] धर्म सनातन सत्य है । धर्म के समक्ष व्यक्ति की गिनती नहीं है ।

गांधी जी के अनुसार धर्म ही कर्तव्य में बांधता है । धर्म का धात्वर्थ, धारण करना है । धर्म ही मनुष्य का पोषण करता है । जब मनुष्य में सदाचार का अभ्युदय होता है, तब वह धर्म का रूप धारण कर लेता है । संकट काल में मनुष्य को धर्म रूप सदाचार ही धारण करता है, और धर्म ही उसका रक्षा करता है ।[६४]

गांधी जी ने धर्म को आस्था और आचरण का विषय माना है । जब मनुष्य में सदाचार या सच्चरित्रता का उदय होता है, तब वह धर्म का रूप धारण कर लेता है।[६५] सद्आचरण धर्म का केन्द्र बिन्दु है । धर्म के द्वारा मनुष्य स्वार्थ के मोहजाल का समापन कर पाता है । गांधी जी का धर्म तो सदा परमार्थ सिखाता है । परमार्थ के द्वारा मानवीय सम्बन्धों में सद्भाव-सम्मान आदि का अभ्युदय होता है । इससे सत्य और अहिंसामय जीवन तथा संयमपूर्ण जीवन की उपलब्धि सम्भव है । भोग कभी धर्म नहीं बन सकता। धर्म की जड़ तो त्याग ही में है ।[६६]

गांधी जी ने समस्त सदाचार में सत्य और अहिंसा को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है । 'सत्य के अनुकूल आचरण करना मैं अपना धर्म समझता हूँ। धर्म को कैसे छोड़ दूँ । ईश्वर क्या कहेगा ?'[९७]

सदाचार धर्म का रक्षक है । धर्म की रक्षा उसके अनुयायिओं के सदाचरण से ही सम्भव है । पाशविक बल के सहारे किसी धर्म का पोषण नहीं हो सकता ।[९८] धर्म हिंसा या बल प्रयोग की वस्तु नहीं है । धर्म का रक्षण आत्मत्याग और आत्मसंयम द्वारा सम्भव है ।[९९]

गांधी जी ने धर्म द्वारा मनुष्य जाति को उदात्त और उत्कृष्ट वृत्रियों के अनुसरण का सन्देश दिया है । धर्म वह वस्तु है, जो आत्मा को शुद्ध करता है । धर्म के द्वारा फलासक्ति या स्वार्थ का समापन होता है । धर्म का साक्षात्कार आत्म पारतंत्र्य के द्वारा नहीं, आत्म स्वातंत्र्य के द्वारा होता है । धर्म का अभिप्राय है - आत्म बोध या आत्मज्ञान ।[१००]

गांधी जी ने एकादश व्रतों का निर्धारण किया था । इनमें एक सर्व-धर्म-समभाव था । इसका अभिप्राय है कि विश्व के सभी धर्मों या पंथों का समान आदर, क्योंकि सभी सत्य पर आधारित हैं । गांधी जी ने धर्म को नितान्त मानवीय मानकर, मानव-मानव को पृथक करने वाली सभी दीवालों को गिराने की प्रस्तावना की थी । भारत की प्राग् ऐतिहासिक काल से यह विचार और वृति रही है । सभी धर्मों या पंथों को समान समझना भारत की परम्परा है । एक पंथ को दूसरे पंथ से श्रेष्ठ समझने का औचित्य नहीं है ।[१०१]

गांधी जी के कथनानुसार धर्म में सर्व सेवा और सर्व मैत्री महत्वपूर्ण है ।[१०२]

गांधी जी स्पष्ट थे कि मनुष्य अपूर्ण है । इस कारण उसकी कल्पना का धर्म भी अपूर्ण है । धर्म सदा विकसित रहेगा, और बारम्बार इसके नये अर्थ किये जाते रहेगें ।[१०३] सभी धर्म ईश्वर प्रदत्त हैं, किन्तु मनुष्य द्वारा प्रचार से अपूर्ण हैं । धर्म, मनुष्य की अपूर्णता से पूर्णता की यात्रा है ।

महात्मा गांधी जी के पश्चात् भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में धर्म की परिभाषा न कर, केवल परिव्याप्ति का सामान्य उल्लेख है । उच्चतम-न्यायालय ने एक अवसर पर धर्म की परिभाषा करने का प्रयास किया । इसमें भारतीय परम्परा में धर्म की विराट व्याप्ति की अनुभूति की अभिव्यक्ति स्पष्ट है । इस युग में धर्म की उदार और उत्कृष्ट परिभाषा-परिव्याप्ति में गांधी विचार सरणि का योगदान उल्लेख योग्य है। इसी प्रकार भारतीय परम्परा में आस्था, विश्वास से पोषित एकात्म मानववादी विचार सरणि में धर्म की परिभाषा और परिव्याप्ति का प्रकरण महत्व का विषय है ।

गांधी-विचार सरणि और धर्म

गांधी-विचार सरणि के प्रमुखतम विचारक विनोबा ने धर्म के दो रूपों का विवेचन किया है - सनातन तथा नित्य । सनातन, धर्म का अपरिवर्तनीय पक्ष है । नित्य धर्म परिवर्तनीय है । सनातन धर्म है - सत्य, स्नेह, ज्ञान, वात्सल्य, दया, भक्ति, सर्वत्र एकता तथा विवेकपूर्ण समता आदि । मानवीय मूल्यों और वैश्विक मान्यताओं के

संदर्भ में धर्म की भारतीय परिभाषा नितान्त तर्कपूर्ण है । सनातन का अभिप्राय है, सनातनो धर्मः, सनातनों नित्य नूतनः - जो नित्य नया रूप ले, वही सनातन है । जो पुराना रूप पकड़ रखेगा । वह कभी नहीं टिकेगा । सनातन कायम टिकने वाला, यानी प्रतिक्षण बदलने वाला ।[१०४] नित्य धर्म को विनोबा ने परिवर्तनवादी माना है - जैसे राजधर्म, प्रजाधर्म आदि । समय के अनुसार राजधर्म में या प्रजा धर्म में या राज्य और प्रजा के संबंधों या अधिकारों - कर्तव्यों में परिवर्तन होता रहा है । पहले प्रजा धर्म यही था कि राजाओं की बातें मानें, परन्तु अब राजा का काम नहीं रहा है, लोग अपने प्रतिनिधि चुनते हैं और वे लोगों की हिदायतों पर अमल करते हैं ।

पहले राजा 'कालस्य कारणम' कहा जाता था । पर अब प्रजा कालस्य कारणम हो गया है ।[१०५]

विनोबा ने भूमि समस्या के समाधान के लिए भूदान आन्दोलन का प्रवर्तन किया, और इसे धर्म प्रसार की संज्ञा दी । विनोबा ने धर्म भावना को मानवता से ऊंची वस्तु माना है । जिसे हम धर्मभावना करते हैं, वह मानवता से छोटी चीज नहीं है, मानवता से बड़ी चीज है । धर्म के नाम पर जब हम मानवता से भी छोटे बन जाते हैं । तो हम धर्म को भी संकुचित करते हैं, और धर्म की जो मुख्य चीज है, उसे छोड़ते हैं । विनोबा सच्चे अर्थों में धर्म की स्थापना के लिए समर्पित रहे हैं । विनोबा का कथन धर्म के विविध पक्षों या इसके विराट स्वरूप को स्पष्ट करता है । 'धर्म मेरा व्यक्तिगत सखा है । सारे समाज का सखा है । इस दुनियाँ के जीवन का सखा है, परलोक के लिए भी सखा है ।'[१०६]

विनोबा विचार में धर्म के अन्य तीन रूप हैं - परिवार धर्म, राष्ट्र धर्म और मानव धर्म । परिवार धर्म प्राथमिक धर्म है । इससे मनुष्य का हृदय विकसित होता है। विनोबा ने राष्ट्र धर्म को, राज्य शक्ति से सहकार और प्रतिकार से सम्बद्ध किया है। किन्तु मानव धर्म सर्वोपरि है । परिवार धर्म को समाज धर्म में लीन करना, हर एक का कर्तव्य है । इसी तरह राष्ट्र धर्म को धीरे-धीरे विवेक से, मानव धर्म में या कारूण्य धर्म में लीन करना होगा ।[१०७]

धर्म के अभाव में विनोबा ने मनुष्य के अस्तित्व पर शंका प्रकट की है । विनोबा ने धर्म की मानवीय मूल्यवत्ता का प्रतिपादन किया । जिसे सच्चा धर्म कहते हैं, उसे समझा नहीं गया । धर्म में श्रद्धा है । तो क्या श्रद्धा है ? धर्म पचास नहीं हो सकते। मानव के लिए एक ही धर्म हो सकता है, और वह है मानव-धर्म । मानव धर्म से ही व्यक्ति और समाज को आश्रय मिलता है । विनोबा ने समाज धर्म की, मानवता के आधार पर स्थापना की अपेक्षा की है । 'समाज धर्म स्थापित करो, मानव धर्म की प्रतिष्ठा करो - - - - मानवता के आधार पर मानव धर्म स्थापन करो ।'[१०८]

विनोबा ने धर्म के तत्वज्ञान की मीमांसा के संदर्भ में स्पष्ट किया है कि, व्यक्ति का वही धर्म है, जिससे सारे समाज में उसकी प्रतिष्ठा हो । परलोक के आधार पर धर्म नहीं टिक सकता । धर्म एकांगी नहीं है । विनोबा ने आज जिसे धर्म कहा जाता है, उसको धर्म नहीं, केवल आस्था माना है । धर्म की निर्मिति अभी होनी है । धर्म की परिपूर्णता के लिए उसे विज्ञानसम्मत या, तर्कपूर्ण और विवेकपूर्ण होना आवश्यक है।[१०९] वह

धर्म जो अन्धविश्वासों का पोषक है, उसे विनोबा ने श्रद्धापूर्वक अग्नि में समर्पित करने को कहा था।

धर्म और एकात्म मानव दर्शन

एकात्म मानववाद अखंडित सहस्त्रों वर्षों की भारतीय परम्परा से सम्बद्ध है। इसमें धर्म की परिभाषा और परिव्याप्ति प्राचीन चिन्तन के अनुकूल है । 'सदाचरण की संहिता है धर्म, जो समान आन्तरिक बन्धों को जाग्रत करता है, स्वार्थपरता को संयमित करता है तथा बिना किसी बाह्य प्रभुत्व के जनता को सामंजस्य की स्थिति में एक साथ बनाये रखता है । - - - - यह धर्म ही मानव जीवन का विशिष्ट लक्षण है। धर्महीन मानव पशु के समान होता है । - - - - मानव जीवन में धर्म के पूर्ण उदय से ही, स्वाभाविक असमानताओं के रहते हुए भी मानव प्राणी उच्चतम सामंजस्य की अवस्था में रहने की योग्यता प्राप्त करेगा ।' [११०]

एकात्म मानववादी विचार सरणि ने धर्म की द्विपक्षीय परिभाषा की स्वीकृति दी है । प्रथम, मानव मन को आत्मसंयम आदि महान गुणों से संस्कारित करने की विधा धर्म है । धर्म का यह वैयक्तिक पक्ष है । धर्म का द्वितीय पक्ष सामाजिक स्वरूप है । इस स्तर पर धर्म मनुष्य के सम्पूर्ण समाज के व्यापक हितों के साथ सामंजस्य स्थिर करता है । इस प्रकार 'धर्म एक प्रकार की व्यवस्था है, जो मनुष्य को अपनी इच्छाओं पर संयम रखने को प्रोत्साहित करती है, और सम्पन्न भौतिक जीवन का उपभोग करते हुए भी दैवी तत्व अथवा शाश्वत सत्य की अनुभूति के लिए क्षमता का निर्माण करती है । - - - - वह शक्ति जो व्यक्ति को एकत्रित लाती है और उन्हें समाज के रूप में धारण करती है, धर्म है । - - - - धर्म की स्थापना का अर्थ एक ऐसे सुसंगठित समाज का निर्माण है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अपने एकत्व का अनुभव करता है, तथा दूसरों के भौतिक जीवन को अधिक सम्पन्न, अधिक सुखमय बनाने के लिए त्याग की भावना से अनुप्राणित होता है । एवं उस आध्यात्मिक जीवन का विकास करता है जो उसे चरम सत्य की अनुभूति की दिशा में ले जाता है। - - - - धर्म अपने दुहरे स्वरूप में मनुष्य को उसके अन्तिम लक्ष्य, ईश्वरत्व - - - मोक्ष प्राप्ति के अन्तिम लक्ष्य की ओर ले जाता है ।' [१११]

एकात्म मानववाद ने धर्म को सम्पूर्ण जीवन के प्रति एक संयमित दृष्टिकोण के रूप में मान्यता दी है । एकात्म मानववादी विचार सरणि समस्त विश्व में धर्म की प्रतिष्ठापना के विवेक से गुम्फित है । [११२] धर्म का किसी संकीर्ण घिरौंदे में आकलन नहीं है । एकात्म मानव दर्शन के प्रसारक मनीषी दीनदयाल ने धर्म को रिलीजन से पृथक समझने का विचार स्थापित किया । धर्म की लड़ाई दूसरी है, और रिलीजन की लड़ाई दूसरी होती है । रिलीजन यानी मत, पंथ, मजहब । वह धर्म नहीं है । धर्म तो एक व्यापक तत्व है । वह जीवन के सभी पहलुओं से सम्बन्ध रखने वाला तत्व है । उससे समाज की धारणा होती है और आगे बढ़े तो सृष्टि की धारणा होती है । यह धारणा करने वाली जो वस्तु है, वह धर्म है । धर्म का आशय इतना व्यापक है, किन्तु कई बार बिल्कुल गौण बात को ही धर्म मान लिया जाता है । [११३]

धर्म का सम्बन्ध केवल मन्दिर-मस्जिद से नहीं है । उपासना व्यक्ति धर्म का एक अंग हो सकती है । '- - - मंदिर-मस्जिद लोगों में धर्माचरण की शिक्षा का प्रभावी माध्यम भी रहे हैं । किन्तु जिस प्रकार विद्यालय विद्या नहीं है, वैसे ही मन्दिर धर्म से भिन्न है । - - - मन्दिर-मस्जिद में जाना मत, मजहब, रिलीजन है ।'[११४]

मनीषी दीन दयाल ने धर्म के आधार पर सम्पूर्ण जीवन पर विचार करने का आग्रह किया है ।[११५] व्यक्ति जीवन में धर्म आधारभूत पुरुषार्थ है । धर्म साधन है । धर्म साध्य भी है ।[११६] एकात्म मानववाद ने ऐसे धर्म की कल्पना और कामना की है, जिससे सम्पूर्ण मानव समाज सभी कालखण्डों में सुख तथा सम्पन्नता की उपलब्धि से आश्वस्त हो सके ।[११७]

मनीषी दीन दयाल ने धर्म के मूलभूत तत्व को सनातन और सर्वव्यापी कहा है। देश, काल तथा परिस्थिति के अनुकूल धर्म में विविधता की स्वीकृति एकात्म मानववादी विचार सरणि में है । इस विचार प्रतिमान में साम्प्रदायिक और पांथिक संकीर्णता से धर्म की परिभाषा तथा परिव्याप्ति लेशमात्र भी आक्रान्त नहीं है । धर्म में हिन्दू का विशेषण, इस विचार पद्धति ने लगाया है । हिन्दू के विशेषण ने धर्म को पंथ निरपेक्ष औदार्य और मानवीय मूल्यों की ऊंचाईयां अवश्य प्रदान की हैं । हिन्दू के विश्लेषण के पूर्व भारतीय इतिहास में धर्म के प्रवाह की भूमिका का विहंगावलोकन अपेक्षित है ।

संदर्भ संकेत

१- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ६ पृ० १५१
२- हिन्दू स्क्रिपचर्स - डॉ० निकोल मेकिन कोल - पृ० १४
३- उपनिषदों की भूमिका - डॉ० राधाकृष्णन - पृ० ४५
४- धर्मशास्त्र का इतिहास - डॉ० वामन काणे - पृ० ३
५- चतुर्वेद मीमाँसा - डॉ० मुंशीराम शर्मा - पृ० १८५
६- नवभारत टाइम्स - डॉ० शंकर दयाल शर्मा ११ जुलाई ६२
७- उपनिषदों की भूमिका - डॉ० राधाकृष्णन - पृ० ६
८- मुण्डकोपनिषद - १/१/३
९- उपनिषदों की भूमिका - डॉ० राधाकृष्णन - पृ० ५०
१०- अष्टादशी - विनोबा - प्रस्तावना पृ० ६
११- तैत्तिरीयोपनिषद - १/११/२
१२- अष्टादशी - विनोबा - पृ० १६१
१३- बृहदारण्यकोपनिषद - ४/६३/६४
१४- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ३ पृ० २११
१५- उपनिषदों की भूमिका - डॉ० राधाकृष्णन पृ० १०६
१६- रामायण में राजव्यवस्था - डॉ० प्रेमा० पृ० १२१
१७- महाभारत - शान्तिपर्व - ५६-२६-३०

१८- गीता रहस्य - लोकमान्य तिलक - पृ० ५२३
१६- महाभारत में राज व्यवस्था - डॉ० प्रेमा - पृ० २१५
२०- धर्मशास्त्र का इतिहास - डॉ० वामन काणे - पृ० ४
२१- ब्रह्मसूत्र - शांकर भाष्य - (चौखम्भा प्रकाशन) भूमिका पृ० १०
२२- " - २ अध्याय - १ पाद - पृ० ३७
२३- ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य विवेचन - बालकोवाभावे - पृ० १७
२४- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ६- पृ० ६३
२५- "- " - " ६- " ७६
२६- " - " - " ६ - " १०२
२७- गीतारहस्य - लोकमान्य तिलक - प्रस्तावना - पृ० ८
२८- भगवद्गीता - अध्याय ३ - ३३/३४
२६- " - " १४ - २७
३०- " - " १८ - ६६
३१- " - " ४ - ८
३२ - " - " ११ - १८
३३- " - " १२-२०
३४- धर्मशास्त्र का इतिहास - डॉ० वामण काणे - पृ० ४०
३५- " - " - " पृ० ६५
३६ " - " - " पृ० ४१
३७- मनुशासनम् - विनोबा - पृ० ६
३८- - " - " - ११८
३६- छांदोग्योपनिषद् ७/१/२
४०- श्रीमद्-भागवत् पुराण - ११/१७/२१
४१- धर्म और जातीयता - श्री अरविन्द - पृ० ४७
४२- धर्म शास्त्र का इतिहास - डॉ० वामन काणे पृ० - ५
४३- शिला अभिलेख - सम्राट अशोक - क्रमांक ३
४४- " - " - " -३
४५- कबीर ग्रंथावली पद ३६
४६- " - " जीवन मृतक कौ अंग - साखी १०
४७- " - " सम्रथाई कौ अंग " ७
४८- " - " जीवन मृतक कौ अंग - " १
४६- " - " - " विकर्ताई कौ अंग - " अंग - " १०
५०- जपुजी - नानक - सच खंड
५१- " - " - करमखंड
५२- " - " - " - धरम खंड

५३- विनयपत्रिका - तुलसीदास - पद ८०
५४- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ८- पृ० ३४०
५५- " - " - " ३ - " १३६
५६- " - " - " २ - " १६६
५७- " - " - " १० - " २८२
५८- " - " - " २ - " २३५
५९- " - " - " ६३ - " १४५
६०- " - " - " १ - " २५६
६१- " - " - " १० - " २४४
६२- " - " - " १० - २४७
६३- " - " - " १० - " २६६
६४- " - " - " १० - " २६६
६५- " - " - " १० - " २८२
६६- " - " - " १० - " ३६३
६७- " - " - " ६ - " २६८
६८- " - " - " ३ - " ४७
६९- " - " - " ३ - " २६५
७०- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ४ - पृ० १५
७१- " - " - खंड ४ - पृ० २६
७२- " - " - " ७ - पृ० १८५
७३- " - " - " २ - पृ० २७४
७४- " - " - " ५ - पृ० ११६
७५- " - " - " ४ - पृ० २७
७६- " - " " ३ - पृ० ३२३
७७- " - " - " ३ - पृ० ३२२
७८- " - " - " ६ - पृ० २८४
७९- " - " - " ३ - पृ० २४८
८०- नीति धर्म और दर्शन - महात्मा गांधी - पृ० १६३
८१- " - " - " ४४०
८२- " - " - " ४४५
८३- " - " - " ६३५
८४- " - " - " २६०
८५- " - " - " १६४
८६- " - " - " १०३
८७- " - " - " २३६

१८- गीता रहस्य - लोकमान्य तिलक - पृ० ५२३
१९- महाभारत में राज व्यवस्था - डॉ० प्रेमा - पृ० २१५
२०- धर्मशास्त्र का इतिहास - डॉ० वामन काणे - पृ० ४
२१- ब्रह्मसूत्र - शांकर भाष्य - (चौखम्भा प्रकाशन) भूमिका पृ० १०
२२- " - २ अध्याय - १ पाद - पृ० ३७
२३- ब्रह्म सूत्र शांकर भाष्य विवेचन - बालकोवाभावे - पृ० १७
२४- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ९- पृ० ६३
२५- "- " - " ९- " ७६
२६- " - " - " ९ - " १०२
२७- गीतारहस्य - लोकमान्य तिलक - प्रस्तावना - पृ० ८
२८- भगवद्गीता - अध्याय ३ - ३३/३४
२९- " - " १४ - २७
३०- " - " १८ - ६६
३१- " - " ४ - ८
३२ - " - " ११ - १८
३३- " - " १२-२०
३४- धर्मशास्त्र का इतिहास - डॉ० वामण काणे - पृ० ४०
३५- " - " - " पृ० ६५
३६ - " - " - " पृ० ४१
३७- मनुशासनम् - विनोबा - पृ० ६
३८- - " - " - ११८
३९- छांदोग्योपनिषद् ७/१/२
४०- श्रीमद्-भागवत् पुराण - ११/१७/२१
४१- धर्म और जातीयता - श्री अरविन्द - पृ० ४७
४२- धर्म शास्त्र का इतिहास - डॉ० वामन काणे पृ० - ५
४३- शिला अभिलेख - सम्राट अशोक - क्रमांक ३
४४- " - " - " -३
४५- कबीर ग्रंथावली पद ३९
४६- " - " जीवन मृतक कौ अंग - साखी १०
४७- " - " सम्रथाई कौ अंग " ७
४८- " - " जीवन मृतक कौ अंग - " १
४९- " - " - " विकर्ताई कौ अंग - " अंग - " १०
५०- जपुजी - नानक - सच खंड
५१- " - " - करमखंड
५२- " - " - " - धरम खंड

५३- विनयपत्रिका - तुलसीदास - पद ८०
५४- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ८- पृ० ३४०
५५- " - " - " ३ - " १३६
५६- " - " - " २ - " १६६
५७- " - " - " १० - " २८२
५८- " - " - " २ - " २३५
५९- " - " - " ६३ - " १४५
६०- " - " - " १ - " २५६
६१- " - " - " १० - " २४४
६२- " - " - " १० - २४७
६३- " - " - " १० - " २६६
६४- " - " - " १० - " २६६
६५- " - " - " १० - " २८२
६६- " - " - " १० - " ३६३
६७- " - " - " ६ - " २६८
६८- " - " - " ३ - " ४७
६९- " - " - " ३ - " २६५
७०- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ४ - पृ० १५
७१- " - " - खंड ४ - पृ० २६
७२- " - " - " ७ - पृ० १८५
७३- " - " - " २ - पृ० २७४
७४- " - " - " ५ - पृ० ११६
७५- " - " - " ४ - पृ० २७
७६- " - " " ३ - पृ० ३२३
७७- " - " - " ३ - पृ० ३२२
७८- " - " - " ६ - पृ० २८४
७९- " - " - " ३ - पृ० २४८
८०- नीति धर्म और दर्शन - महात्मा गांधी - पृ० १६३
८१- " - " - " ४४०
८२- " - " - " ४४५
८३- " - " - " ६३५
८४- " - " - " २६०
८५- " - " - " १६४
८६- " - " - " १०३
८७- " - " - " २३६

८८- ” - ” - ” २४१
८९- गांधी जी की दिल्ली डायरी - भाग २ पृ० ६३८
९०- नीति धर्म और दर्शन - महात्मा गांधी - पृ० ७०६
९१- ” - ” - ” १८०
९२- ” - ” - ” २३४
९३- ” - ” - ” १६४
९४- ” - ” - ” १६२
९५- ” - ” - ” १६२
९६- ” - ” - ” १६२
९७- ” - ” - ” १६४
९८- ” - ” - ” १६३
९९- ” - ” - ” १६४
१००- आत्म कथा - महात्मा गांधी भाग १ अध्याय १०
१०१- नीति धर्म और दर्शन - महात्मा गांधी ३०६
१०२- ” - ” - ” ३०६
१०३- गांधी जी की दिल्ली डायरी - भाग १७७
१०४- भूदान गंगा भाग १ विनोबा भावे - पृ० १५६
१०५- धर्म चक्र प्रवर्तन -विनोबा भावे - - पृ० ११
१०६- भूदान गंगा भाग ५ विनोबा भावे- पृ० १८२
१०७- ” - ” - ”६ - पृ ० ३१
१०८- ” - ” ८ - पृ० ४८
१०९-- ” - ” ८ - पृ० ४८
११०- विचार नवनीत - पृ० २१
१११- विचार नवनीत - पृ० ३५/३६
११२- विचार नवनीत - पृ० २६५
११३- एकात्म मानव दर्शन - दीन दयाल - पृ० ४४/४५
११४- ” - ” - पृ० ४३
११५- ” - ” - पृ० २२
११६- ” - ” - पृ० २७
११७- ” - ” - पृ० १०६

◆ ◆ ◆

10

धर्म-भारत की मुख्य धारा

धर्म की परिभाषा और परिव्याप्ति के अवलोकन में यह स्पष्ट है कि भारतीय चेतना और चरित्र के अखंडित इतिहास में धर्म व्यापक अर्थगर्भित शब्द है । यह धर्म दर्शनशास्त्र द्वारा सुनिश्चित आध्यात्मिक तथ्यों पर दृढ़ता से प्रतिष्ठित है । [१] मानव समाज के अन्तर और बाह्य जीवन, तथा व्यष्टि और समष्टि के जीवन के समस्त पक्षों में संतुलन-सामंजस्य स्थापित करना भारतीय धर्म का उद्देश्य है । इस भारतीय धर्म के अन्तर्गत सद्ग्रंथ, सदाचरण, साधना और सिद्धान्त हैं । यह महत्वपूर्ण है कि, यह धर्म उन नियमों का संग्रह बना है, जिनसे जनहित की प्राप्ति होती है और लोगों का जीवन विकसित होता है । [२] यह धर्म भारत के अखंडित इतिहास के सहस्त्रों वर्षों के प्रवाह की मुख्य धारा है ।

भारतीय इतिहास ने जिस सनातन या नित्य नूतन धर्म का सहस्त्रों वर्ष तक पोषण किया, उसको नकारने की मानसिकता जैसे भारत की आत्मा को आहत करने का प्रयास है ।

भारतीय इतिहास के तथ्यों से निसृत तत्व ज्ञान से स्पष्ट है कि, भारतीय जीवन के केन्द्र बिन्दु में धर्म है । धर्म भारत का प्राण तत्व है । भारत के इतिहास में धर्म प्रेरक तथा प्रभावी शक्ति के रूप में रहा है । धर्म में भारतीय इतिहास की अखंडता स्थापित है । धर्म मानवीय जीवन में सह अस्तित्व की प्रक्रिया है । धर्म इस देश में सहजीवन या सामुदायिक जीवन की चेतना है । धर्म के बिना राजनीति षड्यंत्रों की दुसहः व्यवस्था, और शस्त्र-संहार की दमन कथा है । धर्म के बिना समाजनीति, अनैतिकता की दिशा में पलायन है । धर्म के बिना अर्थनीति उद्देश्यहीन है ।

भारत में धर्म की अवधारणा के विकास के सहस्त्रों वर्षों के इतिहास में स्पष्ट है कि, सृष्टि और सृष्टा के सत्य को अनावृत करने की प्रक्रिया, पाशविक जीवन से अनासक्ति की आराधना, तथा मानवीय सम्बन्धों में अनुरागपूर्ण विवेकवत्ता के स्थापित मूल्यों से धर्म सकारात्मक और संरचना के अद्वितीय कर्म कौशल के रूप में प्रामाणिक तथा प्रतिष्ठित है।

भारतीय धर्म की नित्य नूतन बने रहने की अतृप्त दृढ़ता ने विवाद तथा विवेक को स्वीकृति दी है । भारतीय धर्म ने शब्दों, सिद्धान्तों और उनमें निहित अर्थों को अन्तिम नहीं माना । सतत शोध-बोध, प्रयोग, पुरुषार्थ आदि से धर्म प्रवहशील - प्राणवन्त शक्ति है ।

भारत धर्म-भूमि है. । भारत के अखंडित इतिहास में धर्म भावना का प्रमुख प्रवाह रहा है । प्राचीन भारतीय चिन्तन पद्धति में धर्म सर्वोपरि शक्ति रही है । सभी

शक्तियाँ धर्म के अन्तर्गत मानी जाती रही है। राज्य शक्ति भी धर्म के अन्तर्गत है। भारतीय धर्म, राजनीतिक प्रबन्धों, सामाजिक सम्बन्धों और आर्थिक अनुबंधों में विवेकपूर्ण व्यवस्था प्रविष्ट करने की अवधारणा तथा आचरण संहिता है।

भारतीय चिन्तन में मानव जाति के उत्थान में धर्म, अर्थ, काम तीन मूलभूत वृतियां निरूपति हैं। इन तीन मूलभूत वृतियों में धर्म उच्चतम है। भारतीय इतिहास में धर्म एक विशाल, वास्तविक और विवेकपूर्ण जीवन जीने का कौशल रहा है। भारतीय धर्म, समग्र जीवन जीने को ऊर्जायुक्त तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने का साधन है। भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में धर्म के स्वरूप का निर्धारण हुआ है। इस विवेचन में धर्म को उदात्त तथा उत्कृष्ट जीवन शैली का प्रवर्तक माना गया है। भारतीय धर्म ने मनुष्य जाति को पशुत्व के स्तर के समापन का ही नहीं, इसमें निहित देवत्व को जाग्रत करने का आमंत्रण दिया है।

इतिहास के अंधेरे में कब धर्म का उद्भव हुआ, यह विवादास्पद हो सकता है। किन्तु भारत में सभ्यता की गंगोत्री धर्म के आविष्कार तथा अभ्युदय से प्रवाहित हुई है। इस धर्म के आदि रूप की अन्तःरचना में सृष्टि के रहस्य को अनावृत करने की जिज्ञासा, बौद्धिकता का आवेश, किसी अनिवर्चनीय सत्ता की प्रतीति, एक अबूझ गंतव्य की अनुभूति, बोध और विश्वास में नियमन तथा सार्वजनिक मान्यताओं-मूल्यों के अधिष्ठान आदि हैं। यह धर्म, मानव जीवन की उत्कृष्ट सम्भावनाओं की उपलब्धि का माध्यम है। देश के इतिहास में कतिपय तथ्य तथा तत्वज्ञान, ऊत्स और ऊर्जा का रूप ग्रहण कर लेते हैं। भारत के इतिहास में धर्म एक तथ्य और तत्वज्ञान के रूप में जीवित जाग्रत शक्ति है। धर्म शब्द भारत के इतिहास में एक जीवन प्रतिमान या एक जीवन्त परम्परा ही नहीं, जागतिक सहजीवन का पर्याय है। भारत के इतिहास में धर्म ने मानवीय जीवन को परिभाषित ही नहीं, परिमार्जित और परिष्कृत किया है। इतिहास साक्षी है कि भारत की आत्मा, मन, बुद्धि तथा विवेक की संज्ञा धर्म है।

प्राचीन इतिहास

धर्म शब्द और इसकी शक्ति को प्राग् ऐतिहासिक काल में ही विराट अर्थगर्भित रूप में मान्यता प्रदान की गयी। सहस्त्रों वर्षों के भारत के अखंडित इतिहास में धर्म ने निर्णायक और निश्चयात्मक रूप धारण किया है। उत्कृष्ट, उदात्त और उद्देश्यपूर्ण जीवन की संज्ञा धर्म बनता गया। इतिहास के अंधेरे में पाषाणी परिस्थितियों को तोड़ कर एक अजस्त्र निर्झर सा धर्म, मानवता की तृप्ति और तुष्टि तथा तेजस्विता और तत्परता का प्रेरक बना।

धर्म के आदि वैदिक स्वरूप के अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि, सृष्टि के पूर्व ऋतं और सत्य की उत्पत्ति हुई। जिसका कभी अभाव न हो, वही सत्य है। सत्य त्रिकाल अबाधित है।

महाभारतकार ने मनुष्य समाज की अन्य मूल प्रबृत्तियों अर्थ तथा काम से अधिक महत्व धर्म का स्थापित किया है। मनुष्य मात्र का कार्य उसके मन, इन्द्रियों और बुद्धि द्वारा सम्पन्न होता है। मनुष्य का मन काम या इच्छा का उद्गम स्थल है। इन्द्रियों

के द्वारा अर्थ की उत्पत्ति है। बुद्धि, मन और इन्द्रियों की निर्णायक शक्ति है। मनुष्य जाति की बुद्धि को विवेक की दिशा तथा दायित्व प्रदान करने वाली शक्ति धर्म है।

ऋग्वेद के ऋषियों, अर्थववेद आदि के विज्ञों, उपनिषदों के दार्शनिकों, साहित्य के सृष्टाओं और समाज के सामान्यों ने धर्म को, मानवीय मूल्यों तथा मान्यताओं के संचय में रूपान्तरित कर दिया। भारत के इतिहास में धर्म का रथ एक ऐसे मोड़ पर आया, जहां स्वयं भगवान कृष्ण पार्थ सारथी-सूत्रधार बने। मनुष्य मन के विशाल कुरुक्षेत्र में धर्म का प्रथम शंखनाद किया गया। धर्म की ज्वलन्त शक्ति बुझने न पाये, धर्म का अपकर्ष न हो जाये, तथा मानव जीवन असंगतियों और आसक्तियों से अवमूल्यित न हो और मानवता की ग्लानि न हो, इस कारण एक विराट दर्शन धर्मक्षेत्र में हुआ। भारत के इतिहास में जहां वैदिक साहित्य धर्म की गंगोत्री बना है, वहीं भगवद्गीता ने धर्म को दर्शन की ऊंचाइयों से अवतरित कर, जीवन की गहराइयों में प्रविष्ट कराया।

भगवद्गीता ने धर्म के प्रवाह को सनातन सत्य के रूप में घोषित किया है। गीता के चतुर्थ अध्याय में घोषणा है कि, जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब साधु पुरुषों का उद्धार करने के निमित्त और असाधुओं का नाश करने के लिए ईश्वरीय शक्ति का अवतरण होता है। धर्म का सातत्य शाश्वत सत्य है। गीता के अनुसार धर्म से मर्यादित जीवन चिन्तन श्रेयस्कर है। इस जीवन की प्राप्ति के लिए धर्म मुख्य प्रवाह बना है। धर्म के विरुद्ध न जाने वाले काम को भी ईश्वर का स्वरूप कहा गया है - हे भरत श्रेष्ठ धर्म विरुद्ध न जाने वाला काम मैं ही हूँ।[3] गीता के कृष्ण, धर्म की संस्थापना के लिए प्रत्येक युग में प्रकट होते हैं - 'धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।'

इतिहास ने धर्म के प्रवाह में पुनः एक मोड़ उपस्थित किया। महात्मा बुद्ध ने सारथि छन्दक से कहा - रथ रोको। रथ को जनपथ के मैदानों में मोड़ा गया। एक विशाल मानवीय धर्म-शरण की शोध हो गयी - धम्म शरणम् गच्छामि।

धर्म सामान्य मानव के लिए सदाचरण की संहिता बन गया। महात्मा बुद्ध ने वैदिक धर्म के बाह्याचारों से विद्रोह कर दिया था। धर्म का रथ निवृति और निर्वाण की दिशा में मुड़ गया। इस मानवीय धर्म चक्र प्रवर्तन ने भारत के सांस्कृतिक विस्तार को वैश्विक आयाम प्रदान किया।

जिस प्रकार वैदिक जटिलता को बौद्ध जीवन्त धर्म ने स्तब्ध कर दिया था, उसी प्रकार बौद्ध धर्म की विकृति ने वेदान्त के विवेक का अभ्युदय किया। वेदान्त ने एक नूतन सर्वस्पर्शी, सर्वग्राही और सर्वभूतहित के एकात्मवादी धर्म का मार्ग प्रशस्त किया। वेदान्त एक ऐसे धर्म के रूप में आया जिसका अपना कोई धर्म-पंथ नहीं, किन्तु सभी धर्म इसमें समाहित हुए।

वेदान्त की संश्लिष्टता ने इतिहास में वैष्णव के सरल धर्म का सृजन किया। वैदिक धर्म के आधार और अंग माने जाने वाली स्मृतियों के कठोर धर्म को वैष्णवों ने नकार दिया। वैदिक स्मृतियों के प्रायश्चित-धर्मके अन्तहीन आचारों - को वैष्णवों ने पराभूत किया। वैष्णव धर्म ने मानवीय चरम मूल्यों से ईश्वरत्व की पहिचान इतिहास में स्थापित की।

धर्म की सर्वोपरिता प्राचीन भारतीय तत्वज्ञान में निर्विवाद रूप से है। कौटिलीय अर्थशास्त्र की रचना से अर्थ को सर्वोपरि मानने का भ्रम उत्पन्न होता है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में स्वयं स्पष्ट है कि -

'मनुष्याणां वृत्ति रर्थः ।
मनुष्य वती भूमिरित्यर्थः ।
तथ्याः पृथित्या लाभ पालनो
पायः शास्त्रमर्य शास्त्रमिति ।' [४]

मनुष्यों से बसी हुई भूमि ही अर्थ है। इसको प्राप्त और रक्षण करने के उपायों को बताने वाला शास्त्र, अर्थशास्त्र है। राजनीति, अर्थशास्त्र के अन्तर्गत प्रतीत होती है। अर्थ वह वस्तु है, जिससे सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं। अर्थ के द्वारा अप्राप्य को प्राप्त करना, प्राप्त का रक्षण करना तथा रक्षण का परिवर्तन अर्थानुबंध है। अर्थ का अभिप्राय अव्यक्त को व्यक्त करना है। सुयुक्ति से अर्थोपार्जन के उपाय का बोध अर्थशास्त्र से है, और श्रुति-स्मृति से अविरुद्ध राजकार्य का नाम शासन है। कौटिलीय अर्थ, धर्म का अनुगामी है।

भारतीय इतिहास के मध्यकाल में वेदान्त और वैष्णव धर्म के सामंजस्य से एक ज्वाजल्यमान संतों की श्रृंखला का उदय हुआ। नामदेव, ज्ञानदेव, कबीर, रैदास, नानक, तुलसी आदि संतों ने मानवीय धर्म की रचना की दिशा में प्रभावी ऐतिहासिक योगदान दिया है। सूफी संतों, मलिक मोहम्मद जायसी आदि ने भी धर्म को नूतन अन्तरिक्ष प्रदान किया।

आधुनिक इतिहास

भारतीय इतिहास की उन्नीसवीं शती ने धर्म के क्षेत्र में आन्दोलन और आरोहण से नव्य मीमांसा तथा नये मूल्यों का सृजन किया। राम मोहनराय का ब्रह्म-समाज, स्वामी दयानन्द का आर्यसमाज तथा रामकृष्ण परमहंस का सेवा-साधना-धर्म, पराजित राष्ट्र में प्रकाश स्तम्भ के रूप में स्थापित हुए।

उन्नीसवीं शती के अन्त में विवेकानन्द ने घोषणा की है कि सर्वोपरि भारत धर्म का देश है। [५] भारत देश का प्राण धर्म है, भाषा धर्म है, तथा मानव धर्म है। भारत के इतिहास में एक मुख्यप्रवाह है - धर्म। विवेकानन्द का स्पष्ट कथन है कि, 'प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है, भारत में वह धर्म है। उसे प्रबल बनाइये, बस दोनों ओर के अन्य स्रोत उसी के साथ-साथ चलेंगे। यह मेरी विचार प्रणाली का एक पहलू है।' [६] सहस्त्रों वर्षों से भारत की एकता का सूत्र भाषा, जाति आदि न होकर धर्म है। एशिया के अन्य देशों की भांति, भारत में एकता का सूत्र भाषा या जाति न होकर धर्म है। यूरोप में जाति से राष्ट्र बनता है, किन्तु एशिया में विभिन्न मूल और विभिन्न भाषाओं के लोग, यदि उनका धर्म एक हो, राष्ट्र बन जाते हैं। [७] इतिहास प्रत्येक राष्ट्र को एक जैसे मार्ग प्रदान कर देता है। प्रत्येक राष्ट्र का एक विशेष निर्धारित मार्ग होता है, और भारत का विशेषत्व है - धर्म। '--- भारतवर्ष में धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्मस्थल है, इसी को राष्ट्र की रीढ़ कह लो, अथवा वह नींव

समझो जिसके ऊपर राष्ट्र रूपी इमारत खड़ी है । - - - भारत में धर्म को सर्वोपरि समझा जाता है - - - धर्म और आध्यात्मिकता ही ऐसे मुख्य आधार रहे हैं, जिनके ऊपर भारतीय जीवन निर्भर रहा है, तथा फला फूला है । इतना ही नहीं, भविष्य में भी इन्हीं पर निर्भर रहता है ।'[८] भारतीय अतीत, वर्तमान और भविष्य की प्राणवंत निर्मिति धर्म के आधार पर है । 'हमारे पास एक मात्र है - हमारी पवित्र परम्परा धर्म । - - - भारतीय मन में धार्मिक आदर्श से बड़ा कुछ नहीं है ।'[९] भारत की सबलता या तेजस्विता तथा सामाजिक जीवन की मूलभित्ति धर्म है । 'अच्छा हो या बुरा, धर्म ही हमारे जातीय जीवन का प्राण है । चिरकाल के लिए भी तुम्हें उसी का अवलम्ब ग्रहण करना होगा और तुम्हें उसी के आधार पर खड़ा होना होगा, - - - इसे छोड़ दो तो चूर हो जाओगे। वही हमारी जाति का जीवन है, और उसे अवश्य सशक्त बनाना होगा। तुम जो युगों के धक्के सहकर भी अक्षय हो, इसका कारण केवल यही है कि धर्म के लिए तुमने बहुत कुछ प्रयत्न किया था ।'[१०]

विवेकानन्द ने विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिरों के ध्वसं करने का उल्लेख कर कहा है कि, 'विदेशी विजेताओं द्वारा मन्दिर के बाद मन्दिर तोड़े गये, परन्तु परन्तु उस बाढ़ के बह जाने से देर नहीं हुई कि मन्दिर के कलश फिर खड़े हो गये । - - - - वे जाति के इतिहास के भीतर वह गहरी अन्तर्दृष्टि देंगे, जो ढेरों पुस्तकों से भी नहीं मिल सकती । - - - - ये मन्दिर सैकड़ों आक्रमणों और सैकड़ों पुनरूत्थानों के चिह्न धारण किये हुए हैं, ये बार-बार नष्ट हुए और बार-बार ध्वसांवशेष से उठकर नया जीवन प्राप्त करते हुए, अब पहले ही की तरह अटलभाव से खड़े हैं ।'[११] विवेकानन्द ने इसे ऐतिहासिक निष्कर्ष रूप में अभिव्यक्त किया है कि, धर्म ही भारतीय जीवन का मूल मंत्र है ।[१२] धर्म को जातीय जीवन के प्रवाह रूप में स्वीकृति से गौरवपूर्ण जीवन है, अन्यथा मृत्यु निश्चित है।

विवेकानन्द का विश्वास रहा है कि, भारत देश में धर्म की पृष्ठभूमि में कार्य करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है । धर्म के माध्यम से मानवीय जीवन की समझ, सार्थकता आदि का प्रकटीकरण सम्भव है । हमारे लिए धर्म की पृष्ठभूमि लेकर कार्य करने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है । अंग्रेज राजनीति के माध्यम से धर्म भी समझ सकते हैं । अमरीकी शासक समाज सुधार के माध्यम से भी धर्म समझ सकते हैं । परन्तु हिन्दू, राजनीति, समाज-विज्ञान और दूसरा जो कुछ है, सब धर्म के माध्यम से ही समझ सकते हैं । जातीय जीवन का मानों यही प्रधान स्वर है ।[१३] विवेकानन्द ने भारतीय जीवन में धर्म रूप मेरूदंड के स्थान पर, अन्य किसी को स्थापित करने में विनाश को इंगित किया है । भारत की विशिष्टता ही धर्म है ।

भारत अपने इतिहास के अधः पतन के मध्य में भी धर्म को प्राथमिकता देता रहा है । भारत के इतिहास को सजीवता का कारण भी धर्म है । इस भारत देश का ध्येय भी धर्म है ।[१४] धर्म के लोप होने के कारण भारत की अवनति हुई है ।[१५] धर्म के अभाव के कारण भारत देश की दुर्गति हुई है ।[१६] भारत धर्म प्रधान देश है। जिस दिन भारत की प्राणदायिनी शक्ति का अन्त हो जायेगा, या जिस दिन भारत अपने धर्म का परित्याग कर देगा, उस दिन भारत समाप्त हो जायेगा ।[१७] भारत देश की भाषा-भाव धर्म है ।

धर्म के द्वारा भारत की राजनीति तथा समाजनीति आदि नियंत्रित होगी, अन्यथा नहीं।[१८] विवेकानंद का यह विश्वास रहा है, कि जब तक भारत अपने प्रति और अपने धर्म के प्रति सच्चा है, भारत अक्षुण या अमर रहेगा । भारत देश में धर्म सभी का रक्षक या अधिपति है । धर्म, राजों का राजा है । धर्म वह आश्रय है, जिसमें सभी स्वाधीन रहते हैं।[१९] भारत का प्राण धर्म ही है । भारत के समग्र इतिहास में धर्म एक विशाल संस्थान के रूप में व्याप्त रहा है । भारत में धर्म का स्थान प्रथम है।[२०]

विवेकानन्द आश्वस्त रहे हैं कि, जब भारत का सच्चा इतिहास लिखा जायेगा, तब यह सिद्ध होगा कि भारत समस्त विश्व का प्रथम सद्‌गुरू है ।[२१] भारत के इतिहास की सजीवता का कारण भी धर्म है । भारत देश का ध्येय भी धर्म है । धर्म के कारण भारत राष्ट्र में एकात्मता रही है । भारत की कर्मण्यता धर्म में प्रकट हुई है । धर्म ही भारत का सर्वस्व है ।[२२] भारत के पास संसार का महानतम धर्म है ।[२३] भारत धर्म और दर्शन की लीलाभूमि है ।[२४]

बीसवीं शती और धर्म

उन्नीसवीं शती के अन्त में धर्म - चिन्तन को अपनी तीव्रता और तेजस्विता में विवेकानन्द ने प्रमुख प्रवाह के रूप में स्थापित किया था । बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में तिलक, अरविन्द, महात्मा गांधी आदि ने भारतीय धर्म को अपने चिन्तन और चरित्र द्वारा देश के प्रमुख प्रवाह रूप में प्रतिष्ठित किया । इस कालखण्ड में भारतीय इतिहास की मुख्य धारा स्वातंत्र्य संघर्ष है । इस दृष्टि से महापुरुषों की दीर्घ श्रृंखला के विचारों का विवेचन प्रासंगिक है । महात्मा गांधी की भूमिका अधिक परिणामकारी रही है ।

महात्मा गांधी की स्पष्ट मान्यता रही है कि, 'भारतवर्ष प्रधानतः धर्म भूमि है। उसे धर्म-भूमि बनाये रखना भारतवासियों का सबसे बड़ा कर्तव्य है ।' भारत पुण्यभूमि है । धर्म का अनुचित अर्थ लगाकर या धर्म का परित्याग कर भारत को अधर्म भूमि बनाने का प्रयास किया गया ।[२५] भारत राम की भूमि है । भारत धर्मराज युधिष्ठिर की भूमि है । भारत भोग-भूमि नहीं है, कर्म भूमि है ।[२६] भारत के प्राचीन धर्म में, वर्तमान में भी देने के लिए बहुत कुछ है ।[२७]

महात्मा गांधी को स्वीकारोक्ति है कि, उन्हें राजनीतिज्ञ की अपेक्षा धार्मिक व्यक्ति के रूप में मान्यता उपलब्ध हुई है । मैं करोड़ों लोगों के बीच वर्षों से भटकता रहा हूँ । उनके सामने राजनीतिक मनुष्य के रूप में नहीं, बल्कि एक धर्म-परायण पुरुष के रूप में गया हूँ, और उन्होंने भी मुझे धर्म परायण पुरुष के रूप में स्वीकार किया है।[२८]

भारत की उदात्त तथा उत्कृष्ट धर्म नीति और नैतिकता के प्रकटीकरण के कारण गांधी जी को देश और दुनिया में मान्यता प्राप्त हुई है । गांधी जी ने एक अवसर पर कहा है कि, '- - - - मैं करोड़ों की मानव मेदिनी के पास गया हूँ और उन्होंने मेरी बात सुनी है, सो मेरी राजनीतिज्ञता के कारण अथवा मेरी वाणी की छटा के कारण नहीं, बल्कि मेरा विश्वास है कि मुझे अपना, अपने धर्म का मानकर सुनी है ।'[२९]

गांधी जी ने उस आधुनिक सभ्यता को निस्सार कहा है, जिसने धर्म को नकारने का साहस किया है । धर्मयुक्त सभ्यता को गांधी जी ने स्वीकृति दी है । 'सभ्यता

के हिमायती साफ कहते हैं कि, उनका काम लोगों को धर्म सिखाना नहीं है । कुछ लोग मानते हैं कि धर्म तो ढोंग है । अन्य कुछ लोग धर्म को दया कहते हैं, नीति की भी बात करते हैं । फिर भी मैं बीस वर्ष के अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि नीति के नाम पर अनीति सिखाई जाती है । यह सभ्यता तो अधर्म है और यूरोप में इस सीमा तक फैल गयी है कि वहां के लोग अर्द्धविक्षिप्त दिखाई देते हैं । यह ऐसी सभ्यता है कि इसकी लपेट में पड़े हुए हुए लोग अपनी ही सुलगायी अग्नि में जल मरेंगे ।'[३०]

बीसवीं शती के पूर्वाद्ध में मान्य राजनीतिज्ञों ने भारतीय धर्म की अखण्ड परम्परा को पुनः पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया । तिलक, अरविन्द, महात्मा गांधी, राजगोपालचारी, राधाकृष्णन, विनोबा आदि ने भगवद्गीता का अपने-अपने स्तर से भाष्य कर धर्म को सार्थक तथा सक्षम रूप में प्रामाणिक और प्रतिष्ठित किया। इससे यह तथ्य प्रकट है कि, राजनीति की नियन्त्रक शक्ति विराट और विवेकपूर्ण धर्म की स्वीकृति प्राप्त कर रही है ।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में धर्म को देश के मुख्य प्रवाह से पृथक करने का प्रयास कतिपय राजनीतिज्ञों द्वारा किया गया । किन्तु गांधी विचार सरणि और एकात्म मानववादी विचारकों ने इस प्रवाह को अधिक गति प्रदान की है ।

विनोबा ने कहा है कि भारत धर्म भूमि है । अति प्राचीन काल से आज तक यहाँ पर धर्म भावना बराबर काम करती आ रही है । फिर बीच-बीच में कभी-कभी प्रकाश और कभी-कभी अंधकार हो जाता था । '----जब-जब धर्म-भावना मंद पड़ती है, तब धर्म को चालना देने के लिए भगवान समाज को एक नया विचार देता है । एक नया शब्द देता है । उस शब्द के और उस विचार के आधार पर फिर से धर्म का उत्थान होता है ।'[३१]

विनोबा ने वेद से बापू तक धर्म के प्रवाह का अध्ययन किया था । 'ऋग्वेद आदि से लेकर राम कृष्ण परमहंस और महात्मा गांधी तक धर्म विचार की जो परम्परा यहां पर चली आयी है, सबका मैंने बहुत भक्तिपूर्वक अध्ययन किया है ।'[३२]

विनोबा ने धर्म को व्याप्ति के संदर्भ में अधिक विस्तृत अन्तरिक्ष प्रदान किया है । विनोबा ने वेदान्त धर्म को स्वीकार कर किसी भी उपासना पद्धति का निषेध नहीं किया । वेदान्त धर्म के तत्वज्ञान (अध्यात्म) को विज्ञान युग में सक्षम मानकर भारत की वैश्विक मर्यादा को विनोबा ने मानवीय धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया । भारतीय इतिहास की धर्म की अखंड परम्परा को विनोबा ने पुनर्रचना का आमंत्रण देकर, इसके प्रवाह को दिशा और दायित्व प्रदान किया ।

एकात्म मानववादी चिन्तन ने धर्म को भारत देश का प्राण माना है । 'महत्ता किसी वस्तु की है, तो वह धर्म है । यदि हमारा प्राण कहीं है तो धर्म में है । धर्म गया कि प्राण गया । इसलिए जिसने धर्म छोड़ा वह राष्ट्र से च्युत हो गया । उसका सब कुछ चला गया ।'[३३]

धर्म भारत की मुख्य धारा है । किन्तु धर्म को, पंथ या सम्प्रदाय का पर्याय समझने का भ्रम भी उत्पन्न किया गया है । पंथ, सम्प्रदाय, या धर्म की परिभाषा भारतीय संविधान में नहीं है । अतः पंथ और सम्प्रदाय का भारतीय परम्परा के संदर्भ में विवेचन प्रासंगिक है।

संदर्भ संकेत

१- भारतीय दर्शन- बलदेव उपाध्याय - पृ० ११/१२
२- हिन्दुओं का जीवन दर्शन - डॉ० राधाकृष्णन - पृ० १०५
३- श्रीमद् भगवद्गीता - अध्याय ७ - श्लोक ११
४- कौटिलीय अर्थशास्त्र - ५/१/१/२३
५- विवेकानन्द साहित्य विवेकानन्द - खंड ६ - पृ० ३७०
६- वही - खंड ३ - पृ० ३६६
७- वही - खंड १ - पृ० २७३
८- वही - खंड ५ - पृ० ६६
९- वही - खंड ५ - पृ० १८१
१०- वही - खंड २ - पृ० १८२
११- वही - खंड ५ - पृ० १८३
१२- वही - खंड ५ - पृ० १८३
१३- वही - खंड ५ - पृ० २०८
१४- वही - खंड १० - पृ० ४
१५- वही - खंड १० - पृ० ५
१६- वही - खंड १० - पृ० २७
१७- वही - खंड १० - पृ० १६
१८- वही - खंड १० - पृ० ६०
१९- वही - खंड १० - पृ० १७०
२०- वही - खंड १० - पृ० ४
२१- वही - खंड १० - पृ० २२४
२२- वही - खंड ५ - पृ० ३५
२३- वही - खंड ४ - पृ० २६१
२४- वही - खंड ६ - पृ० २५७
२५- नीति - धर्म - दर्शन - महात्मा गांधी - पृ० ८०४
२६- वही - पृ० ३२८
२७- वही - पृ० ५६६
२८- वही - पृ० ६६१
२९- वही - पृ० ५१८
३०- वही - पृ० ६०१
३१- धर्म चक्र प्रवर्तन - विनोबा भावे - पृ० १५
३२- वेद चिन्तन - विनोबा - पृ० १३
३३- एकात्म मानव दर्शन - दीन दयाल - पृ० ४३

◆ ◆ ◆

11

पथ और सम्प्रदाय

भारतीय या हिन्दू परम्परा प्रत्येक समय और सही रूप मेंधार्मिक है, पांथिक या साम्प्रदायिक नहीं है । पंथ, व्यक्ति विशेष या व्यवस्था विशेष का अनुकरण या अनुयायित्व सूचित करता है । भारतीय चिन्तन में धर्म किसी व्यक्ति विशेष पर आधृत या आश्रित नहीं है । यह असंदिग्ध है कि किसी सद्पुरूष से केन्द्रित होकर धार्मिक विचारों और आचारों को प्रामाणिकता उपलब्ध होती है । हिन्दू जीवन चिन्तन किसी व्यक्ति विशेष के विचार-आचार पर निर्भर नहीं है । इसका अभिप्राय है कि, कृष्ण ने संसार को कोई बात नई अथवा मौलिक नहीं बतायी और न रामायण में कोई ऐसी बात कही गयी है, जो धर्म शास्त्रों में नहीं है । यह ध्यान देने की बात है कि ईसाई मत ईसा के अभाव में, इस्लाम मुहम्मद के बिना, बौद्ध मत बुद्ध के बिना खड़ा नहीं रह सकता, पर हिन्दू धर्म किसी व्यक्ति पर आश्रित नहीं है ।[१] हिन्दू धर्म की निष्ठा धर्म के तत्वों पर है । किन्तु यह स्पष्ट है कि, सद्पुरूषों और सद्ग्रंथों ने हिन्दू धर्म की दिशा और दायित्व का निर्वहन किया है । हिन्दू धर्म नें सद्पुरूषों या सद्ग्रंथों या अपने इष्ट चुनने की स्वतंत्रता देकर सभी पंथों को जैसे संरक्षण दिया है । इन्हीं किसी एक के या कई के आधार पर सम्प्रदाय का प्रवर्तन होता है ।

सम्प्रदाय मतवाद पर स्थिर होता है । सम्प्रदाय एक सिद्धान्त समूह के अनुयायिओं की संज्ञा है । भारत भूमि की धार्मिक स्वाधीनता से आस्तिक, नास्तिक, ईश्वरवादी, भौतिकवादी, आदि सभी प्रकार के धर्म, पंथ सभी प्रकार के सम्प्रदाय, तथा मत मतान्तर साथ-साथ रहे हैं । सभी सम्प्रदाओं के प्रचारक अनुयायी आदि सह अस्तित्व पर विश्वास करते रहे हैं । इस पांथिक स्वाधीनता के कारण भारत में प्रबल औदार्य का विकास हुआ है । इस औदार्य ने मानवीय मूल्यवत्ता को प्रतिष्ठित किया है। विचारशील व्यक्तियों में मतभेद होना स्वाभाविक है । विचारशीलता या विचारों से समाज को नूतन गति तथा गंतव्य और नये आदर्श आदि उपलब्ध होते हैं । मत की भिन्नता मानवीय गरिमा से संलग्न होती है । भारत भूमि के इतिहास के शुभारम्भ से यह वृति स्पष्ट परिलक्षित है ।

वैदिक कालीन व्यवस्था में धर्म का स्वरूप मानव धर्म का ही था । अतः वेदानुकूल शासन में साम्प्रदायिकता की भावना आने की समस्या गौण रही है । वैदिक समाज और चिन्तन, सत्य की शोध में विचार स्वातंत्र्य का पक्षधर रहा है । विचार स्वातंत्र्य द्वारा समाज को नूतन दिशा तथा दायित्व, और नित्य नवीन जीवन दर्शन आदि उपलब्ध होते रहे हैं । विचारशील व्यक्तियों में मतभेद विचार स्वातन्त्र्य का प्रथम लक्षण

है । वैदिक व्यवस्था की उपासना पद्धति में स्वातंत्र्य या मतभेद, सत्य की शोध तथा विचार स्वातंत्र्य मानवीय गरिमा के अनुकूल है ।

ऋग्वेद में प्रजा को पाँच जन्य कहा गया है । वेद में मनुष्यों और प्रजा के लिये क्रमशः पंचजनाः और पांचजन्याः शब्दों का प्रयोग यह सूचित करता है कि, वेद में इस सम्भावना को ध्यान में रखा गया है कि, किसी राष्ट्र में ऐसी भी अवस्था हो सकती है कि, उसके कुछ व्यक्ति - क्योंकि मनुष्य स्वभाव कर्म और विचार में स्वतंत्र है - वैदिक वर्ण मर्यादा और धर्म बन्धन को न स्वीकार करते हों ? [२]

ऋग्वेद में सम्राट को सत्पति पांच जन्य कहा गया है । सम्राट पांचों जनों की रक्षा और पालन करता है, यदि वे सत् हों, सज्जन हों । यदि वर्णेतर पांचवे जन कोई ऐसा काम नहीं करेगें, जिससे किसी प्रजाजन को क्लेश पहुँचता हो या सार्वजनिक हित के राष्ट्रीय नियम भंग होते हों, तो वैदिक धर्मी सम्राट उन्हें केवल विचार भेद के कारण दण्डित नहीं करेगा । न केवल दण्डित ही नहीं करेगा, प्रत्युत उनके उचित अधिकारों की रक्षा भी करेगा । उन्हें दूसरे के हाथों क्लेशित होने से भी बचायेगा ।[३]

पांचवे जन में प्रजा का वह वर्ग है, जो विचार भेद के कारण वैदिक मर्यादा को स्वीकार नहीं करते । विचार भेद के कारण किसी को दण्डित न करने की व्यवस्था वैदिक साहित्य में है । ऋग्वेद में'पंचजना मम होतां जुसध्वम्' अर्थात् पांचों जन मेरे यज्ञ में प्रेम पूर्वक आवें । पांचवें जन को परमात्मा की भक्ति या उपासना से रोका नहीं गया है । पांचवें जन के साथ कोई भेदभाव नहीं है । सम्प्रदाय या पंथ निरपेक्षता का एक आधार महत्व का है, सब प्राणियों में स्नेह की अनुभूति । 'हे मनुष्यों, तुममें हृदय की एकता हो,मन की एकता हो, मैं परमात्मा, तुम्हारे अन्दर अविद्वेष की भावना चाहता हूँ, तुम एक दूसरे को प्रेम से चाहो जिस प्रकार कि एक गौ अपने नये उत्पन्न बछड़े को प्रेम से चाहती है ।'

सहृदयं, सामजंस्यम विद्वेष कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्थत वत्सं जातामिवाध्न्या ॥

प्रत्येक प्रजानन ईश्वर से प्रार्थना करता है कि, उसके हृदय में ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा सब प्राणियों के लिये प्रेम की वृति उत्पन्न होती रहे । सब वर्णों के लोगों में पारस्परिक प्रेम उत्पन्न करने का उपाय भी ऋधि प्रगीव मंत्र में है कि, तुम दूसरों में रूचि दिखांओ । तुम दूसरों से प्रेम करो । दूसरे तुम में रूचि दिखायेंगे । दूसरे तुमसे प्रेम करेंगे । 'भगवान कहते हैं कि हे मनुष्यों, मैं आपस में तुम्हारा विद्वेष नहीं चाहता हूँ - मैं चाहता हूँ कि तुम आपस में द्वेष भर कर कभी लड़ो और झगड़ों नहीं । इसके लिये तुम सदा अपने हृदयों और मनों को एक बनाकर रहो ।' [४]

ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में इन्द्र और अग्नि को पांचजन्य कहा गया है । इन्द्र और अग्नि सम्राट के वाचक कहे गये हैं ।

'वेद में सम्राट को पांचजन्य कहा गया है, ऐसा समझना चाहिए । पांचजन्य का अर्थ होता है जो पांच जनों के लिए या पांच प्रकार के आदमियों के लिए हितकारी, उनका रक्षक हो । - - -पाँचजन्य शब्द में सम्राट द्वारा पांच जनों की रक्षा का भाव स्पष्ट है ।' [५]

ऋग्वेद में प्रजा को पांचजन्या माना गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अर्थववेद में मनुष्य समाज चातुर्वर्ण्य में वर्णित है। परन्तु मनुष्य स्वतंत्र विचार वाला प्राणी है। यह सम्भव है कि, किसी राष्ट्र के कुछ लोग वेद की वर्ण-मर्यादा को अपने विचारों के अनुसार पसन्द न करें। चार जन ब्राह्मण - क्षत्रियादि वैदिक धर्मी और पांचवेजन में वर्णेतर और वैदिक वर्गेतर लोग मिलकर पांच जन कहलाते हैं।[6]

वेद में मनुष्यों और प्रजा के लिये पंचजनाः या पांचजन्या शब्दों का प्रयोग यह भी सूचित करता है कि, वेद में इस सम्भावना को ध्यान में रखा गया है कि, किसी राष्ट्र में ऐसी भी अवस्था हो सकती है कि,उसके कुछ व्यक्ति (क्योंकि मनुष्य स्वभाव से कर्म और विचार में स्वतंत्र है) वैदिक वर्ण मर्यादा और धर्म बन्धन को न भी स्वीकार करते हों।[7] वेदों के अनुसार राज्य शक्ति को उनकी भी रक्षा करनी है, जो विचार भेद के कारण चार्तुवर्ण्य की उपासना पद्धति को अस्वीकार करते हैं। अर्थववेद के बारहवें कांड के एक मंत्र में यह स्पष्ट है कि,

'जनं बिभ्रती बहुधा विवचसं नानाधर्माणि पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य में दुहां धुवेव धेनु रनपस्फुरन्ती ॥'

इस मातृभूमि में विविध प्रकार की वाणियों को बोलने वाले और नाना धर्मों को रखने वाले लोग इस तरह मिलकर रहते हैं, जैसे कि एक घर के व्यक्ति मिलकर रहा करते हैं। मिलकर रहने में ऐश्वर्य वर्षण होता है। विचार भेद या व्यवहार भेद या भाषा भेद या उपासना भेद के कारण संघर्ष करने का औचित्य नहीं है।

अनेक धर्मों के अनुयायी परस्पर एक परिवार की भाँति प्रेम से रह सकते हैं। नाना धर्माणि का अभिप्राय है कि, अनेक प्रकार के व्यवहार करने वाले।

प्राचीन काल से भारत में शैव तथा वैष्णव वेद धर्मी सम्प्रदाय लोकप्रिय रहे हैं। जैन तथा बौद्ध पंथ या सम्प्रदाय वेदधर्मी नहीं रहे हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय इतिहास विभिन्न सम्प्रदायों के अभ्युदय, विकास और विलोपन का साक्षी है। समय और समाज की गतिशीलता में रूपांतरण या परिवर्तन की आवश्यकता के अनुरूप सद्पुरुष और सद्ग्रंथ विवेक की संरचना करते रहे हैं। किन्हीं महापुरुषों के विचार-आचार आदि से सम्प्रदाय प्रवर्तित होते रहे हैं। इतिहास के आदिकाल से सम्प्रदाय जन्म लेकर धरती पर घिरौदें भी बनाते रहे हैं। किन्तु भारतीय विचार- विवेक का आकाश विभाजित नहीं हुआ। सम्प्रदायवादी धर्म जब वह कहता है कि, केवल यही मुक्ति का मार्ग है, और अन्य सब मिथ्या है, तो ऐसा ही करने की चेष्टा करता है। लक्ष्य इन छोटे घरौंदों को हटाने का, सीमा को इतना विस्तृत करने का है कि, वह दिखायी ही न दे, और यह समझने का होना चाहिए कि सभी धर्म ईश्वर की ओर ले जाते हैं।

प्राग् ऐतिहासिक काल में महाभारत के एक अंश 'विष्णु सहस्र नाम' समस्त सम्प्रदायों के भेदों को महत्व नहीं देता है। ईश्वर को सहस्रों नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है। पृथक नामों से ईश्वर विभाजित नहीं होता। पार्थक्य से संशय और घृणा का मार्ग बनता है। प्रत्येक नाम में ईश्वर की पूर्णता है। समस्त सम्प्रदाय धर्म के सुकुमार पौधे की रक्षार्थ झाड़ियों के घेरों के सदृश हैं।

महाभारत के पूर्वकाल में और महाभारतकाल में शैव सम्प्रदाय का वर्णन वामन पुराण में है । इसमें शैवों के चार सम्प्रदायों का उल्लेख है । इन धार्मिक सम्प्रदायों के मूल ग्रंथों को शैवागम की संज्ञा है । शैव आगमों में वैदिक और अवैदिक भी है । शैव आगम दार्शनिक आधार पर भी द्वैतपरक, द्वैताद्वैतपरक तथा अद्वैतपरक भी है । विभिन्न शैवागमों के प्रवर्तकों में जीवन दर्शन में अपने मतभेद रहे हैं । इनके प्रभाव क्षेत्र भी भिन्न भिन्न रहे हैं । वेद के समान ही सम्माननीय तमिल भाषा के ग्रंथोमेंशैव सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया । भक्ति आपूरित काव्य ग्रंथों की रचना भी शैव सम्प्रदाय की विशेषता है ।

वैष्णव सम्प्रदाय का आविर्भाव भी परिचित इतिहास के पूर्व हुआ था । इसके द्वारा परमेश्वर की भक्ति वैदिक यज्ञों के जटिल कर्मकांड से अधिक महत्वपूर्ण हो गयी। भारत में बौद्ध धर्म की प्रसार में क्षीणता होने पर यह भारत का प्रमुख सम्प्रदाय बन गया। तत्वज्ञान के आधार पर वैष्णव सम्प्रदाय में अनेक पंथों का प्रसार हुआ । शैव और वैष्णव सम्प्रदाय में सामंजस्य और परस्पर स्वातंत्र्य तथा सम्मान का अंकन भारत के मध्यकालीन इतिहास तथा साहित्य में हैं (अध्यात्म रामायण - रामचरित मानस आदि) मध्यकालीन साहित्य में विभिन्न सम्प्रदायों के सह अस्तित्व का प्रसंग है । शताब्दियों के इस सह-अस्तित्व से संदर्भ से यह प्रकट है कि, भारत में पंथ या सम्प्रदाय पर प्रतिबंध नहीं रहा है। प्रत्येक को अपने सम्प्रदाय या सद्‌गुरू या सद्‌ग्रंथ विशेष के चयन का स्वातंत्र्य भारत के इतिहास में सहज है । इस कारण धर्म भाव की अद्वितीय वृद्धि भारतभूमि में हुई हैं ।

मध्यकालीन शताब्दियों में भारत में सद्‌पुरुषों की गौरवपूर्ण शृंखला का साक्षी इतिहास है । इसमें मानवीय समानता का आध्यात्मिक सामंजस्य, सामाजिक समरसता, आर्थिक सम्बन्धों की सात्विकता और साम्प्रदायिक सद्‌भावना- सहअस्तित्व आदि की अभिव्यक्ति इतिहास की धरोहर है । संत रविदास, सदगुरु नानक, संत कबीर आदि इतिहास पुरुषों ने नैतिकता और नीतिमत्ता को वैश्विक प्रतिमान प्रदान किया । यह महत्वपूर्ण है कि, इसमें परम्परागत भारतीय चेतना, चिन्तन और चरित्र का उदार तथा उज्वल पक्ष समाहित है । इनमें किन्हीं आस्थाओं पर स्नेह आक्रमण भी हैं ।

मध्यकाल (पन्द्रहवीं शती) में सम्प्रदाय के विरोध में कबीर वाणी बलवती है। आचार्य रामचन्द्र जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह स्पष्ट किया है कि, साम्प्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्त के उपदेश मुख्यतः कबीर साहित्य-साखी- के भीतर हैं । उनकी सम्मति में कबीर ने किसी से ज्ञान, और किसी से प्रेम उधार मांग कर एक नया सम्प्रदाय या पंथ खड़ा कर दिया है । परन्तु वस्तुस्थिति इससे नितान्त भिन्न है । वास्तव में सम्प्रदायवाद के विरोध में तथा हिन्दू और मुसलमानों को सत्य की राह बताने के प्रयत्न में ही कबीर की वाणी उत्तेजित हो उठी थी । वे सम्प्रदायवादी नहीं थे । उनके असाम्प्रदायिक रूप की प्रमाण स्वरूप तो स्वयं साखी साहित्य है । [८]

सोलहवीं शती में जायसी साहित्य (सन् १५४० - पद्‌मावत महाकाव्य) में एक ऐसे द्वीप का वर्णन है, जिसमें उद्यानों (अमराइयों) में 'आपनि आपनि भाषा लेहिं दइऊ कर नाऊँ', अपनी अपनी भाषा में देव का नाम लेने का सहज दृश्य है । उस

द्वीप में चारों ओर मठ और मंडल हैं । इनमें विभिन्न उपासना पद्धति या विविध साधना पंथों के राही सह अस्तित्व की जैसे घोषणा कर रहे हैं । ऋषि, वर्णाश्रमी, रामभक्त सम्प्रदाय, योगी, शैव, शाक्त सम्प्रदाय, जैन सम्प्रदाय आदि अपनी आस्थाविश्वास के अनुकूल उपासना स्वातंत्र्य का उपभोग करते हैं । जायसी का यह एक लोकप्रिय उद्धरण है कि, 'सरग नखत तन रोवाँ जेते, विधिना के मारग हैं तेते ।'

भारत की अठारहवी और उन्नीसवीं शती में व्यक्ति विशेष के उपदेशों और उनके प्रवचनों के संग्रहों के आधार पर अनेक पंथों का प्रवर्तन हुआ था । इनमें भारतीय स्मृतिशास्त्रों या परम्परागत पौराणिक मान्यताओं से भिन्न आस्थाओं तथा आचरणों की मर्यादा स्थाप्ति की गयी । विविध समाज या सम्प्रदायों की रचना हुई । वृहत भारतीय समाज के अंग या अंश रूप से किसी पृथक अस्तित्व का दावा नहीं किया गया। उन्नीसवीं शती के अन्त में विविध सम्प्रदायों के सामंजस्यपूर्ण हिन्दुत्व का विवेकपूर्ण विवेचन स्वामी विवेकानंद के प्रवचनों में स्पष्ट है । स्वामी विवेकानन्द के द्वारा प्रतिपादित मूल्यवत्ता और मान्यताओं ने पूर्ववर्ती सद्‌विचारों को आत्मसात कर परवर्ती समाज को प्रेरक शक्ति प्रदान की है ।

विवेकानन्द के सद्‌गुरू रामकृष्ण परमहंस विभिन्न सम्प्रदायों की साधनाओं में लगे, तथा विभिन्न सम्प्रदायों के अनुभवों के पश्चात, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समस्त सम्प्रदाय सही हैं । किसी सम्प्रदाय में दोष नहीं हैं । प्रत्येक सम्प्रदाय एक ऐसा मार्ग है, जिससे एक निश्चित केन्द्र पर ही पहुँचते हैं । परमहंस की घोषणा है कि,'यह कितने गौरव की बात है कि यहां इतने अधिक मार्ग हैं । क्योंकि यदि केवल एक ही मार्ग होता, तो शायद वह केवल एक ही व्यक्ति के अनुकूल होता । इतने अधिक मार्ग होने से हर एक व्यक्ति को सत्य तक पहुँच सकने का अधिक से अधिक अवसर सुलभ है ।' परमहंस तथा विवेकानन्द ने प्रत्येक सम्प्रदाय को आर्शीवाद दिया ।[९] हिन्दुत्व का अध्यात्म, बौद्धों की करूणा, ईसाइयों का सेवाभाव, तथा इस्लाम के बन्धुत्व आदि से एक सार्वभौम धर्म के निर्माण की कल्पना और कामना विवेकानन्द ने की थी। सहिष्णुता, सर्वधर्म समभाव, तथा समन्वय से भी आगे बढ़कर सकारात्मक सम्प्रदाय निरपेक्षता की शोध में विवेकानन्द अग्रसर रहे ।[१०] विवेकानन्द किसी सम्प्रदाय या पंथ के विरोध में नहीं थे । कितने ही सम्प्रदायों का निर्माण रुचि वैचित्र्य के अनुकूल हो जाये, इसमें कोई अहित नहीं है । किन्तु विवेकानन्द का स्पष्ट मत रहा है कि एक पंथ बनाते ही तुम विश्व बन्धुता के विरूद्ध हो जाते हो ।[११] पंथवादी या सम्प्रदायवादी अपने से भिन्न विश्वास करने वाले को पददलित और बहिष्कृत करने के लिये कटिबद्ध रहते हैं ।[१२] जब धर्म सम्प्रदायों में विभक्त होता है, तब प्रत्येक अपने को सत्य कहता है, और दूसरे को असत्य ।[१३]

'किन्तु हिन्दू चाहें जिस सम्प्रदाय का अनुयायी क्यों न हो, वह यह नहीं कहता कि मेरा ही धार्मिक विश्वास सही है, और अन्य सबका अवश्यमेव गलत है । जो सच्चा धार्मिक है वह सम्प्रदायों तथा मत-मतान्तरों क्षुद्र विवाद से परे रहता है ।'[१४] विवेकानन्द का यह मत रहा है कि, 'विद्या बुद्धि आदि सभी विषयों में प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक - पृथक देखा जाता है । इसी कारण उनके उपयुक्त धर्म का भी भिन्न भिन्न होना

आवश्यक है । अन्यथा वह किसी भी तरह उनके लिये सन्तोषप्रद न होगा। - - - अपने अपने स्वभाव से अनुकूल धर्म मत को स्वयं ही देखभाल कर, सोच विचार कर चुन लेना चाहिए ।'[१५] सम्प्रदाय मनुष्य जाति के आस्था-विश्वास स्वातंत्र्य के प्रतीक हैं । भारतीय धर्म आस्था - विश्वास के स्वातंत्र्य का समर्थक है । यह स्वातंत्र्य एक अनुशासन है,जो दूसरे के विश्वास स्वातंत्र्य के लिये समर्पित है । यह स्वातंत्र्य सद्भावना ही नहीं, सद्मैत्री की प्रस्तावना है । विवेकानन्द द्वारा एक विराट हिन्दुत्व की अभिव्यक्ति में सहिष्णुता से भी उदात्त वृति की स्वीकृति है ।

सहिष्णुता अपर्याप्त और अप्रामाणिक है । विवेकानन्द ने कहा है कि, 'केवल परधर्म - सहिष्णुता नहीं, क्योंकि तथा कथित सहिष्णुता प्रायः ईश निन्दा होती है । इसलिए मैं उस पर विश्वास नहीं करता । मैं ग्रहण (स्वीकृति) में विश्वास करता हूँ। मैं क्यों परधर्म सहिष्णु होने लगा ? परधर्म सहिष्णु कहने से मैं यह समझता हूँ कि, कोई धर्म अन्याय कर रहा है, और मैं कृपा पूर्वक उसे जीने की आज्ञा दे रहा हूँ । प्रत्येक सम्प्रदाय जिस भाव से ईश्वर की आराधना करता है, मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ही ठीक उसी भाव से आराधना करूँगा । मैं मुसलमानों के साथ मस्जिद जाऊँगा, ईसाइयों के साथ गिरजे में जाकर क्रूसित ईसा के सामने घुटने टेकूँगा । बौद्धों के मन्दिर में प्रवेश कर बुद्ध और संघ की शरण लूँगा, और अरण्य में जाकर हिन्दुओं के पास बैठ ध्यान में निगम्न हो उनकी भाँति हृदय को उद्भासित करने वाली ज्योति के दर्शन करने में सचेष्ट होऊँगा ।' एतद्द्वारा भारतीय परम्परा ने समस्त सम्प्रदायों को विराट सहृदयता का आमंत्रण दिया है । इस प्राचीन मातृभूमि में हमें सब धर्मों और सम्प्रदायों को सादर स्थान देने का अधिकार प्राप्त हुआ है ।[१६]

विवेकानन्द ने पंथों और सम्प्रदायों की क्षुद्रता से मुक्त होने का विचार दिया है । धर्म, धर्म के बीच जो क्षुद्र मतभेद हैं, वे केवल शाब्दिक हैं, उनका कोई अर्थ नहीं।[१७] विवेकानन्द सभी सम्प्रदायों को जीवित रहने का अधिकार मिलने के पक्षधर है । कारण प्रत्येक सम्प्रदाय में एक उद्देश्य, एक महानभाव निहित है, जो जगत के कल्याण के लिये आवश्यक है ।[१८] विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में एकता के बिन्दुओं का साक्षात्कार किया है । हमारे धर्म के सम्प्रदायों में अनेक विभिन्नतायें एवं अन्तर्विरोध होते हुए भी एकता के अनेक क्षेत्र हैं ।[१९] किन्तु विवेकानन्द हिन्दू धर्म से भिन्न सम्प्रदायों से भी तात्विक एकता के पक्षधर रहे हैं ।

वस्तुतः नींव उसी धर्म की दृढ़ होती है, जो हर एक को विचार की स्वतंत्रता देता है और इस तरह उसे उच्चतर मार्ग पर आरूढ़ कर देता है ।[२०] विवेकानन्द ने यह विश्वास प्रकट किया है कि, सम्प्रदायों की संख्या बढ़ने से धार्मिक जीवन लाभ करने की सुविधा का विस्तार होगा ।[२१] सम्प्रदायों के परस्पर संघर्ष से यह सिद्ध होता है कि धर्म के सम्बन्ध में वे कुछ नहीं जानते । संघर्ष रत पक्षों के लिये धर्म केवल ग्रंथों में लिखने योग्य शब्द जाल मात्र है ।[२२]

स्वामी विवेकानन्द ने धर्मान्धता से ऊपर उठने का विचार देकर सम्प्रदायों के घिरौंदों से निकलने के विवेक का प्रसार किया है । जब विभिन्न पन्थों का सम्मान

करना मनुष्य सीख लेगा, तब धर्मान्धता से मुक्त हो सकेगा।[२३] मनुष्य को व्यक्तित्व और विचार को विस्तारित करने के लिये सम्प्रदायों की सीमा के बाहर आना पड़ेगा। सम्प्रदाय, नियम और प्रतीक तो बच्चों के लिये ठीक है। पर जब बच्चा सयाना हो जाये तो उसे चाहिए कि यह तो वह सम्प्रदाय ही को अतिशय विस्तृत बना दे, या स्वयं उसके बाहर चला जाये।[२४] विभिन्न धर्मों के विविध सम्प्रदाय उसी प्रभु की महिमा की विविध अभिव्यक्तियां हैं। विभिन्न आस्तिक सम्प्रदायों में विभिन्न नामों तथा विभिन्न रूपों में एक ही उपास्य है।[२५]

महात्मा गांधी का विश्वास रहा है, कि, सभी धर्मों की आत्मा एक है। किन्तु विभिन्न आकृतियों में धर्म मूर्तिमान होता है। पांथिक या साम्प्रदायिक स्वातंत्र्य पर गांधी जी की गहरी आस्था थी। आवश्यकता इस बात की नहीं कि सबका धर्म एक बना दिया जाय, बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी और प्रेमी परस्पर आदर भाव और सहिष्णुता रखें।[२६] गांधी जी ने मूर्तिपूजक और मूर्तिभंजक दोनों भूमिकाओं का विवेचन किया है। इससे अभिप्राय, एक सुगंधित सहिष्णुता की स्थापना है। 'मूर्तिपूजा के अन्दर जो भाव है, उसका मैं आदर करता हूँ। मनुष्य जाति के उत्थान में उससे अत्यन्त सहायता मिलती है। और मैं अपने प्राण देकर भी उन हजारों देवालयों की रक्षा करने की सार्मर्थ्य रखना पसन्द करूँगा, जो हमारी इस जननी जन्मभूमि को पुनीत कर रहे हैं। मुसलमानों के साथ मेरी जो भिन्नता है, उसके अन्दर पहिले से ही यह बात स्वीकार की हुई है, कि वे मेरी मूर्तियों और मेरे मन्दिरों के प्रति पूरी सहिष्णुता रखेंगें।'[२७]

गांधी जी ने कहा है कि, सारे धर्म प्रेम से रहना सिखाते हैं। गांधी जी की आस्था थी कि सभी धर्म अच्छे और सच्चे हैं। ऐसी कोई बात नहीं हो सकती है कि, कोई विशेष धर्म ही सच्चा हो और दूसरे सब झूठे हों।[२८] एक भी धर्म ऐसा नहीं जो सब दृष्टि से पूर्ण हो। धर्म की अपूर्णता को समझ कर गांधी जी ने सहिष्णुता की आवश्यकता का अनुभव किया। 'इसलिये सहिष्णुता की जरूरत है। इसका अर्थ यह नहीं कि हम अपने धर्म के प्रति उदासीन हो जायें, परन्तु यह है कि उसके प्रति हमारा प्रेम अधिक बुद्धिपूर्ण और शुद्ध हो। सहिष्णुता से हमें आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। धर्म का सच्चा ज्ञान, मत- पन्थों के बीच की दीवारों को हटाकर सहिष्णुता उत्पन्न करता है।'[२९]

गांधी जी के अनुसार अपने धर्म या मजहब को बड़ा और दूसरे के धर्म या मजहब को छोटा मानना, सच्चे धर्म को गलत शक्ल में पेश करना है, उसका मजाक उड़ाना है। सभी धर्मों में सब जगह मौजूद एक ही ईश्वर की पूजा करने की बात कही गयी है।[३०]

'हम सब, क्या हिन्दू और क्या मुसलमान एक हैं - अखंड है'।[३१] गांधी जी के विचार -आचार भारतीय परम्परा से प्रतिबद्ध रहे हैं। गांधी जी ने कहा था कि, 'मैं मुसलमानों या गैर हिन्दूओं को अपना सगा भाई समझता हूँ। यह मैं किसी को खुश करने के लिए नहीं कहता, बल्कि इसलिए समझता हूँ कि वे भी उसी भारत माता के

बच्चे हैं, जिनका एक बच्चा मै हूँ । चूँकि वे मुझसे नफरत करते हैं, या मुझे अपना भाई नहीं समझते, इसलिये यह नही कहा जा सकता कि वे मेरे भाई नहीं है । बावजूद उनकी नाराजगी के मुझे उन्हें मुहब्बत से जीतना ही है ।'[३२]

गांधी जी एक तत्ववेत्ता की असंदिग्ध भूमिका से भारतीय इतिहास की परम्परा के अनुकूल पांथिक स्वातंत्र्य या उपासना स्वातंत्र्य के पक्षधर रहे हैं ।

गांधी जी इस्लाम की अनुदारता और असहिष्णुता से परिचित थे । किन्तु गांधी जी को विश्वास था कि, 'इस्लाम के अन्दर इस अनुदारता और असहिष्णुता को निकाल डालने की पूरी क्षमता है । - - - आवश्यकता इस बात की नहीं है कि सबका धर्म एक बना दिया जाये बल्कि इस बात की है कि, विभिन्न धर्मों के अनुयायी और प्रेमी परस्पर आदर भाव और सहिष्णुता रखें ।''

'हम सब धर्मों को मृतवत एक सतह पर लाना नहीं चाहते, बल्कि विविधता में एकता चाहते हैं । - - - आत्मा सब धर्मों की एक है - हाँ वह विभिन्न आकृतियों में मूर्तिमान होती है ।[३३] 'भारतीय परम्परा और मानवीय प्रगतिशीलता के सन्दर्भ में, सम्प्रदायों या पंथों को,सत्य की शोध में, अभिव्यक्ति और आचरण की मुक्ति के प्रावधान के गांधी जी पूर्ण समर्थक रहे हैं । एक ही सत्य की विविध अभिव्यक्तियाँ, पंथ या सम्प्रदाय के रूपों में है । विविधता में एकत्व दर्शन के कौशल ने मानवीय गरिमा का मार्ग प्रशस्त किया है ।

गांधी ने रामधुन में सभी को सम्मिलित करने की बात कही थी । तब उनसे प्रश्न हुआ । 'गैर हिन्दू इसमें कैसे शामिल हो सकते हैं ?' गांधी जी का उत्तर था कि, 'जब कोई यह एतराज पेश करता है कि, राम का नाम लेना या रामधुन गाना तो सिर्फ हिन्दुओं के लिए है, तब मुझे मन ही मन हंसी आती है । - - - - क्या मुस्लमानों का भगवान हिन्दुओं, पारसियों, या ईसाइयों के भगवान से जुदा है ? नहीं । सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी ईश्वर तो एक है । उसके कई नाम हैं । - - - मेरा राम, हमारी प्रार्थना के समय का राम, वह ऐतिहासिक राम नहीं है, जो दशरथ का पुत्र और अयोध्या का राजा था । वह तो सनातन अजन्मा और अद्वितीय राम है । मैं उसी की पूजा करता हूँ । - - - लेकिन यह कोई जरूरी नहीं कि वह राम नाम के रूप में ही भगवान को पहचाने, उसका नाम ले ।'[३४] गांधी जी से प्रश्न था कि, रामधुन में राजाराम-सीताराम का कीर्तन होता है - - - - क्या ये दशरथ के सपुत्र नहीं हैं ?

गांधी जी का उत्तर था कि, 'सैकड़ों लोग रामकृष्ण को ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं, और मानते हैं कि जो राम दशरथ के पुत्र माने जाते हैं, वे ही ईश्वर के रूप में पृथ्वी पर आये । और यह कि उनकी पूजा से आदमी मुक्ति पाता है । - - - -इतिहास कल्पना और शुद्ध सत्य आपस में इतना ओत प्रोत है कि इन्हें अलग करना प्रायः असम्भव है । - - - -इन सबमें निराकार, सर्वस्व राम को देखता है ।'[३५]

महात्मा गांधी पांथिक या साम्प्रदायिक स्वातंत्र्य के पक्षधर, मानवीय मूल्यों के संदर्भ में, सदैव रहे हैं । महात्मा की यह वृति या विचार भारतीय जीवन चिन्तन की अखंडित ऐतिहासिक परम्परा के अनुकूल हैं । सत्य के शोध-प्रयोग से पंथों तथा सम्प्रदायों

के सहअस्तित्व से ओत प्रोत, विवेकपूर्ण और स्नेह से प्लावित सामाजिक जीवन की संरचना, गांधी जी के चिन्तन का उत्कृष्ट उद्देश्य रहा है । अपने युग की पाषाणी परिस्थितियों में भी गांधी जी इस उद्देश्यपूर्ण जीवन-चिंतन में अडिग रहे हैं। यह महत्वपूर्ण है कि गांधी जी ने अपने युग के सर्वोपरि धार्मिक -राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका का निर्वाह किया । किन्तु किसी नये पंथ या सम्प्रदाय का प्रवर्तन नहीं किया। गांधी जी ने परम्परागत भारतीय प्रवाह को तत्परता, तीव्रता और तेजस्विता प्रदान की है ।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में गतिशील रहे, सद्पुरुषों, राजनीतिज्ञों, विधि-वेत्ताओं आदि ने भारतीय संविधान की संरचना की है । संविधान की पंथ निरपेक्षता या अन्य प्रावधानों को भारतीय परम्परा के परिवेश, और गांधी जी के वैचारिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करने का सहज औचित्य है ।

भारतीय परम्परा को हिन्दू परम्परा कहने का आधार तर्कपूर्ण है । हिन्दू परम्परा के प्रवाह में जो भी विदेशी तत्वज्ञान आया, उसको पवित्र गंगा की भाँति आत्मसात करने की सहज प्रक्रिया में भारतीय इतिहास और भारत भूमि अखंडित रही है । इस आधार पर एकात्म मानववादी चिन्तन उल्लेख योग्य है ।

एकात्म मानववादी परम्परा ने मानव भातृत्व के स्थायी आधार रूप हिन्दुत्व के तत्वज्ञान की भूमिका को स्वीकृति दी है । संसार की एकता को सम्पादन करने वाला यह केवल हिन्दुओं का ही महान विचार है, जो मानव भातृत्व के लिये स्थायी आधार प्रदान कर सकता है । हिन्दुत्व में प्रत्येक छोटे से छोटे जीवन में विशिष्टता को अपनी पूर्ण क्षमता पर्यन्त विकास के लिये पूरा और स्वतंत्र अवसर को स्वीकार किया गया है। इस विचार सरणि ने हिन्दू समाज के बिखरे तत्वों को संगठित करने का अभिप्राय प्रकट किया कि, आत्मिक और भौतिक जीवन, दोनों को सजीव तथा सशक्त कर जागतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये अपराजेय शक्ति की निर्मिति करना है ।[३६]

एकात्म मानववादी विचार सरणि ने भारत भूमि की अजेय शक्ति को पहचान कर, इस्लाम और ईसाई आदि सम्प्रदायों के सह-अस्तित्व को स्वीकृति दी है । मुसलमान को 'मोहम्मदी हिन्दू' और ईसाई को 'मसीही हिन्दू' एकात्म मानववादी परम्परा में कहा गया है । हिन्दू या भारतीय समाज द्वारा सम्प्रदायों या पंथों की विविधता की स्वतंत्रता क़हीं बाधित नहीं होती । एकात्म मानववाद, विघटन -विभाजन की विरोधी मानसिकता और सृजनात्मक राष्ट्रवादी सक्रियता का पर्याय है ।

एकात्म मानववादी चिन्तन ने साम्प्रदायिकता की परिभाषा की है कि - 'राष्ट्र की आशा - आकांक्षाओं से विपरीत, उनके विरूद्ध आकांक्षाओं को धारण कर , अपने पृथक अधिकारों की माँग करने वाले समूह कम्यूनल (साम्प्रदायिक) कहे जाने चाहिए। - - - -भारत के राष्ट्र जीवन के आदर्श (व्हैल्यूज) हिन्दू जीवन से ही प्रस्थापित हुए हैं। अतः यह राष्ट्रीय है, कम्युनल (साम्प्रदायिक) कदापि नहीं ।'

'बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता यह कल्पना निरी भूल है । जनतंत्र में बहुसंख्यकों के मत को व्यावहारिक जीवन में सर्वमान्य मानना आवश्यक है । अतः बहुसंख्यकों का व्यावहारिक अस्तित्व राष्ट्रीय अस्तित्व माना जाना उचित है । बहुसंख्यकों की साम्प्रदायिकता, यह प्रयोग जनतांत्रिक भाव के विरूद्ध है ।'[३७]

एकात्म मानव दर्शन के उत्कृष्ट प्रवक्ता गुरू गोलवलकर ने सात प्रकार की साम्प्रदायिकता का विवेचन कर स्पष्ट किया है कि, सम्प्रदायवाद के 'कुछ प्रकार धर्ममत या पंथ को आधार बनाकर पनपते हैं, तो शेष शुध्द ऐहिक जीवन के (सेक्युलर) स्वार्थ के आधार पर निर्माण होकर चलते हैं । अतः यह कहना कि सेक्युलैरिज्म का विरोधी भाव कम्युनलिज्म है, भ्रमपूर्ण है । वास्तविकता तो यही है कि धर्म के क्षेत्र में धर्ममत भिन्नता से कोई संघर्ष साधारणतया नहीं होता । संघर्ष भौतिक स्वार्थ के जीवन में - सेक्युलैरिज्म में ही परस्पर स्पर्धा के कारण उत्पन्न होता है ।'[३८]

एकात्म मानवतावादी सोच में यह स्पष्ट है कि अहिन्दू व्यक्तियों की उपासना पद्धति को सम्मान्य और सुरक्षित रखते हुए राष्ट्र की परम्परा, इतिहास की जीवनधारा, आदर्शों-श्रद्धाओं के प्रति आत्मीयता एवम् आदर रखने का, अपनी आकांक्षाओं को राष्ट्र की आकांक्षाओं में विलीन करने का संस्कार उन्हें प्रदान करने का प्रबंध करें ।[३९] एकात्म मानववादी विचार ने भारत राष्ट्र में समरसता निर्माण करने के निमित्त किसी उपासना पद्धति विशेष का नाश करने की कभी कोई प्रस्तावना नहीं की है । इसकी उद्देश्यपूर्ण यात्रा असहिष्णुता के समापन की दशा में है । दुरभिमान से उत्पन्न विभक्तता या विखंडन की भावना का विनाश इसका लक्ष्य है । पंथ या सम्प्रदाय के किन्हीं विशेषाधिकारों के लिए छीना झपटी नहीं, का समर्थन है । सर्व सामान्य के प्रति समानता-स्नेह - सहिष्णुता का व्यवहार इसका स्वभाव है । राज्य का व्यावहारिक जीवन सेकुलर (भौतिक) स्तर पर रहना आवश्यक है । पंथों के आधार पर पक्षपातपूर्ण विशेष अधिकारों का विचार एकात्म मानवदर्शन के प्रतिकूल है ।[४०]

भारतीय संविधान के संदर्भ में एकात्म मानव दर्शन ने पंथ और सम्प्रदाय की तर्क-संगत और विवेक-समस्त विवेचना प्रस्तुत की है ।

एकात्म मानववादी विचार सरणि ने भारतीयकरण द्वारा साम्प्रदायिकता की समाप्ति के सूत्र निश्चित किये हैं । ये सूत्र हैं - संस्कृति जन्य एकता, द्विराष्ट्रवाद की समाप्ति, तथा एकता और राष्ट्रीयता के लिये भारतीयकरण की आवश्यकता । एकात्मता नागरिक को एक राष्ट्र के घटक होने की अनुभूति प्रदान करती है । इस्लाम को पृथक संस्कृति मानने से, और उसके संरक्षण या संवर्धन के विशेषाधिकार से द्विराष्ट्रवादी प्रवृति का पनपना सहज है । भारतीय जीवन की विविधतायें तथा उपासना- स्वातंत्र्य के रहते हुए भी घटकों में एक संस्कृति की पोषक,यह विचार सरणि है । 'केवल इसी प्रकार साम्प्रदायिकता का अन्त हो सकता है और राष्ट्र की एकनिष्ठता तथा दृढ़ता निष्पन्न हो सकती है ।'[४१] इस विचार सरणि ने लोकतंत्र के संदर्भ में साम्प्रदायिकता को अमान्य किया है । 'एक लोकतंत्रवादी देश में जहाँ प्रत्येक वयस्क को बिना मजहबी या साम्प्रदायिक भेद-भाव के आधार पर मताधिकार का उन्मुक्त उपयोग करने की गारंटी दी गयी है, सांप्रदायिकता, जातिवाद तथा क्षेत्रीयता के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता ।'[४२]

वस्तुतः दुर्भावनाओं का प्रकटीकरण राष्ट्रीयता और लोकतंत्र के लिये घातक रूप में मानकर एकात्ममानववादी दर्शन ने इसकी निन्दा की है । इस विचार सरणि ने राजनीतिक दलीय स्वार्थों के लिये साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने का विरोध किया है ।[४३]

भारतीय स्वातन्त्र्य के पूर्व साम्प्रदायिक दंगे अंग्रेजों की कूटनीति का परिणाम समझे गये थे। साम्प्रदायिक त्रिभुज की तीसरी भुजा- विदेशी शासन मिटते ही सम्प्रदायों के बीच शांति और सौमनस्य के आर्विभाव की कल्पना की गयी थी। भारत के विभाजन का समर्थन भी इसी आधार पर किया गया था, कि ऐसा हो जाने के बाद देश साम्प्रदायिक दंगों और साम्प्रदायिक कटुता से मुक्त हो जायेगा। किन्तु साम्प्रदायिक विष बीज तथा दुर्भावना से भारतीय समाज और राज्य वर्तमान में भी संकटग्रस्त चल रहा है। इतिहास ने एक चुनौती दी है, और भावी इतिहास को प्रत्युतर का अवसर उपलब्ध करना है। भारतीय धरती का विभाजन हिन्दू बहुसंख्यक या मुसलमान अल्पसंख्यक के आधार पर इतिहास में हुआ। इस हिन्दू को व्याख्यायित करना आवश्यक है।

संदर्भ संकेत

१- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ४ पृ० २४७
२- वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त - पृ० १६१
३- वही - पृ० १६२
४- वही - पृ० ६३
५- वही - पृ० १८७
६- वही - पृ० १६१
७- वही - पृ० १६२
८- कबीर वचनामृत - डॉ० सोमनाथ शुक्ल - भूमिका पृ० ६
६- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड १० - पृ० ८
१०- वही - खंड १० - पृ० ६
११- वही - खंड १० - पृ० २१४
१२- वही - खंड १० - पृ० २४४
१३- वही - खंड १० - पृ० २५४
१४- वही - खंड १० - पृ० २८२
१५- वही - खंड १० - पृ० ३३०
१६- वही - खंड ५ - पृ० १३
१७- वही - खंड ३ - पृ० २६०
१८- वही - खंड ३ - पृ० १२५
१६- वही - खंड ५ - पृ० ३४६
२०- वही - खंड ३ - पृ० २६०
२१- वही - खंड ३ - पृ० १३२
२२- वही - खंड ३ - पृ० २४८

२३- वही - खंड २ - पृ० ५६
२४- वही - खंड ४ - पृ० २३५
२५- वही - खंड ४ - पृ० ३७
२६- नीति-धर्म और दर्शन - महात्मा गांधी पृ० ५४४
२७- वही - पृ० ३६७
२८- वही - पृ० ५६७
२९- वही - पृ० १६४
३०- गांधी जी की दिल्ली डायरी - खंड २ पृ० ३८
३१- वही - खंड २ - पृ० ३०७
३२- वही - खंड २ - पृ० ३५३
३३- वही - खंड २ - पृ० ५४४
३४- वही - खंड २ - २६६
३५- वही - खंड २ - पृ० ३१२
३६- विचार नवनीत - पृ० ४४/४५
३७- श्री गुरु जी समग्र दर्शन - गोलवलकर - खंड ३ - पृ० १२४/१२५
३८- वही - खंड ३ - पृ० १२७
३९- वही - खंड ३ - पृ० १२४
४०- वही - खंड ३ - पृ० १३०
४१- जनसंघ घोषणायें और प्रस्ताव - पृ० ४४/४५
४२- वही - पृ० ११२
४३- वही - पृ० १२०

12
हिन्दू

भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद में भारत देश के नाम को इंडिया कहा गया है। इंडिया, हिंदिया का विकृत विदेशी उच्चारण है। भारत,हिन्दिया या हिन्दुस्तान है। संविधान में "धर्म (रिलीजन) की स्वतंत्रता का अधिकार" के प्रसंग में २५ अनुच्छेद (२ख) में हिन्दू शब्द का प्रयोग है। इस अनुच्छेद के अनुसार हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों, और अनुभागों के लिये खोलने का उपबंध है। अनुच्छेद २५ के स्पष्टीकरण में कहा गया है कि खंड (२) के उपखंड (ख) में हिन्दुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जायेगा कि इसके अन्तर्गत सिक्ख, जैन या बौद्धधर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा। इन प्रावधानों से स्पष्ट है कि भारत देश हिन्दू स्थान है। भारत के रहने वाले या नागरिक हिन्दू हैं। भारतीय और हिन्दू पर्यायवाची हैं। भारतीय शब्द और हिन्दू शब्द दोनों की संवैधानिक तथा सांस्कृतिक स्थिति है। यदि पांथिक दृष्टि से हिन्दू शब्द का विवेचन किया जाये, तो यह विभिन्न पंथों के समुच्चय या सहअस्तित्व का सूचक है। हिन्दू पंथ या सम्प्रदाय नहीं है। सांस्कृतिक स्तर से हिन्दू शब्द साझा संस्कृति का बोध कराता है। हिन्दू शब्द का संकीर्ण या साम्प्रदायिक अर्थ में प्रयुक्त करना संविधान सम्मत नहीं हो सकता। हिन्दू शब्द से भूल- भ्रम उत्पन्न हुआ है, या भ्रममूलक स्थिति बनायी गयी है। संविधान में हिन्दू शब्द की कोई पृथक परिभाषा नहीं की गयी है। संविधान के हिन्दू शब्द की परिभाषा या परिव्याप्ति का निर्णय संविधान पूर्व भारत के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है। संविधान निर्मिति के पश्चात् हिन्दू शब्द का इतिहास सम्मत, विधिक तथा विवेकपूर्ण अर्थ किया जाना उपादेय है।

सहस्त्रों वर्ष पूर्व एक उदार मानव धर्म, जो कुछ भौगोलिक सीमाओं तथा ऐतिहासिक स्थितियों में विकसित हुआ, वह हिन्दू धर्म है। कतिपय भौगोलिक सीमाओं में आर्विभाव होने पर भी, जागतिक परिप्रेक्ष्य के प्रति जागरूकता इस धर्म में है। इसकी विशेषता, अनाक्रमक अखिल विश्व भाव है।

हिन्दू धर्म का प्रवर्तन किसी व्यक्ति या विचार विशेष के कारण नहीं है। हिन्दू धर्म का आवर्तन इतिहास के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ वेद पूर्व से है। हिन्दू धर्म किसी सद्गुरू या पैगम्बर के नाम पर नही है। हिन्दू धर्म में एक से एक महान विभूतियों का अभ्युदय हुआ। सभी को मान्यता प्राप्त हुई।

हिन्दू प्राचीनतम धर्म

भारत और विश्व का यह प्राचीनतम धर्म है । इस धर्म का अपेक्षाकृत नया विशेषण हिन्दू है । धर्म को मानवीय मानकर इसे मानव धर्म कहा गया है । धर्म को शाश्वत या नित्य नूतन मानकर इसे सनातन धर्म भी कहा गया है । एक देश विशेष की परम्परा तथा प्रवाह में सहस्त्रों वर्षों, से पोषित, पल्लवित तथा पुष्पित होने के कारण इतिहास के उतार चढ़ाव से हिन्दू धर्म ने यात्रा की है ।

हिन्दू शब्द की किस कालखण्ड में उत्पत्ति हुई यह इतिहास वेत्ताओं के शोध का विषय है । आर्यायण (ईरान) के प्राचीन साहित्य में हिन्दू शब्द का उल्लेख है । संस्कृत के एक शब्द कोष' शब्द कल्पद्रम' में हिन्दू शब्द का समावेश है । फारसी कोषों में हिन्दू शब्द को बताया गया है । हिन्दी, हिन्दसा, हिन्दुस्तान, हिन्दिया आदि शब्द इसी हिन्दू शब्द के या इससे सम्बन्धित पर्याय हैं । 'हिन्दुत्व' ग्रन्थ में गौड़ रामदास ने इसका विवेचन किया है । पारसी धर्म के प्रचार काल में इस पूर्वी प्रदेश का नाम 'हस्त हेन्तु' या लाघव से हेन्दु मात्र था । धीरे-धीरे 'हेन्दु' का हिन्द रह गया, और यहाँ के रहने वालों का नाम हैन्दव से हेन्दू या हिन्दू हो गया ।[१] हिन्दू शब्द भारतीय शब्द का समानार्थी है । हिन्दू धर्म केवल एक पंथ नहीं है, जो केवल उपासना पद्धतियों अथवा उन पद्धतियों की विशिष्ट सामाजिक प्रथाओं से सम्बद्ध हो । इस संदर्भ में हिन्दू शब्द का एक राष्ट्रीय स्वरूप है । वह भारतीय (इंडियन) शब्द का समानार्थी है - अर्थात उन लोगों से संलग्न है, जो सिन्धु नदी के समीप रहते हैं । यह भारत की भूमि पर प्रागैतिहासिक काल से सहस्त्राब्दियों में विकसित भारतीय राष्ट्र की सम्पूर्ण संस्कृति और सभ्यता को सूचित करता है ।[२]

हिन्दू धर्म और वेद

हिन्दू धर्म या भारतीय धर्म का उद्गम वेद पूर्व और विकास वेद से है । इस कारण इसे वैदिक धर्म भी कहा जा सकता है । वैदिक धर्म के नाम पर कुछ आस्था-विश्वासों या रूढ़ियों को अस्वीकार कर, बौद्ध तथा जैन धर्म का प्रवर्तन हुआ। अधिकांश में परम्परा भुक्त धर्म के बाह्य रूपों की उपेक्षा, और धर्म के मूल तत्व पर बल दिया गया है । वैदिक धर्म की उपेक्षा हुई । बौद्ध और जैन ने धर्म के क्षेत्र में नूतन तत्व ज्ञान का अभ्युदय किया । किन्तु वैदिक धर्म की इतिहास में प्रवहमानता अखंडित रही । हिन्दू शब्द के व्यापक अर्थ में सभी जो भारत भूमि पर रहते हैं, हिन्दू हैं ।[३] यह भी निश्चित है कि, जो व्यक्ति वेदों की सर्वोच्च प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता, उसे अपने को हिन्दू कहने का अधिकार है भी और नहीं भी है । वेदों की स्वीकृति का एक पक्ष है, सहस्त्रों वर्षों के अखंडित इतिहास की स्वीकृति, और दूसरा पक्ष है, इसके उदात्त तथा उत्कृष्ट चिन्तन से सहमति ।

वैदिक साहित्य में हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है । किन्तु हिन्दुत्व की परिभाषा का एक अंश चार्तुवर्ण्य की व्यवस्था की स्वीकृति है । संहिता से संविधान तक हिन्दुत्व चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का पोषक है । जाति व्यवस्था का नहीं । ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ईश्वर के वर्णन में चारों वर्णों में ब्राह्मण को मुख, क्षत्रिय को भुजायें, वैश्य को उदर,

शूद्र को पदों के रूप में, एक विराट समाज का निरूपण है । इसका अर्थ है कि समाज तथा जिसमें यह चतुर्विध व्यवस्था है, अर्थात् हिन्दू समाज, हमारा ईश्वर है ।[४]

हिन्दू धर्म विराट दार्शनिक आधार पर है । इस कारण तार्किकता और इससे निसृत विवेक हिन्दू धर्म में अनुमन्य है । सहस्त्रों वर्षों से यह विवेक, समस्त विश्व में एकत्व की स्थापना से आश्वस्त रहा है । हिन्दू धर्म का मूल आधार सर्वत्र आत्मवत्ता की अनुभूति है, जिसे अध्यात्म की संज्ञा दी गयी है । वैदिक साहित्य के अमूल्य ग्रंथ उपनिषद्, हिन्दू तत्वज्ञान के साक्षी हैं ।

हिन्दू धर्म का श्रेष्ठत्व अध्यात्म का तत्वज्ञान है । यह एकात्मता का सिद्धान्त है । प्रत्येक धर्म के तीन भाग हैं - दर्शन, पुराण तथा कर्मकांड । दर्शन का अभिप्राय है - धर्म का तत्वज्ञान । प्राप्तव्य और प्राप्ति के साधन पुराण, दृष्टान्तों,कथाओं तथा आख्यानों आदि द्वारा स्थूल वर्णन करते हैं । कर्मकांड में अनुष्ठानिक प्रक्रिया आदि का विवरण होता है । हिन्दू धर्म सभी भागों से परिपुष्ट है । दार्शनिक स्तर की सम्पन्नता अद्वितीय है । पौराणिकभाग, प्रतीकों - प्रतिमाओं से, लोक संस्करण के रूप में है । कर्मकांड में विविधता और विवेक इसकी कालजयी प्रतिष्ठा का कारण है ।

हिन्दू और मध्यकाल

भारतीय इतिहास में हिन्दुत्व के कालजयी रूप को चुनौती मध्यकालीन शताब्दियों में प्राप्त हुई थी । दसवीं - ग्यारहवीं शती में इस्लामी अफगान शासक महमूद गजनवी ने हिन्दू आस्था - विश्वास पर पांथिक उन्माद से आधात किया था । इस्लाम के हिंसक आक्रामक अभ्युदय ने हिन्दुत्व से संघर्ष का सूत्रपात किया । हिन्दू इस्लाम के इस संघर्ष का एक ऐतिहासिक मोड़ तब आया, जब बारहवीं शती के अन्त में मोहम्मद गोरी ने दिल्ली का शासन हस्तगत किया था । इसके सेनापति कुतुबद्दीन ने तेइस हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर (११६३-११६६) दिल्ली में मीनार और मस्जिद बनायी। पश्चात् संघर्ष काल अठारहवीं शती के प्रारम्भ तक चलता रहा । तभी हिन्दुत्व के गौरव की पुनर्स्थापना काल का प्रवेश हो गया । उन्नीसवीं शती हिन्दुत्व के गौरव की पुनर्स्थापना काल के रूप में प्रतिष्ठित की जा सकती है । बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध हिन्दुत्व और इस्लाम के विभाजन की त्रासदी का साक्षी है । इस विभाजन से हिन्दू-मुस्लमान एकता में गतिरोध की मानसिकता का पोषण हुआ । बींसवीं शती के उत्तरार्द्ध के इतिहास में इस विषम स्थिति के चलते रहने का क्रम उल्लेख योग्य है ।

इतिहास साक्षी है कि, हिन्दू का अभिप्राय हिन्दुस्तान में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति से रहा है । विचार प्रतिमान तथा उपासना पद्धति की विविधता से हिन्दू-हिन्दुस्तान में कोई बंधन नहीं है । बंधन केवल नैतिकता और नीतिमत्ता का है । यह हिन्दू धर्म का अंश है । पूजा पद्धति और इसमें उपासना प्रतिमान का स्वातंत्र्य है । इस धर्म के अन्य-अंग दर्शन तथा अध्यात्म आदि हैं । इस धर्म को व्यक्ति आधारित नहीं कहा जा सकता । समस्त सद्पुरुषों या सद्गुरूओं के विचारों और भावनाओं तथा सिद्धान्तों का श्रद्धा पूर्वक ग्रहण करने की विशेषता हिन्दू धर्म की है । इस कारण हिन्दू धर्म कोई पंथ या सम्प्रदाय नहीं है । हिन्दू धर्म का निषेध नहीं, कोई भी सम्प्रदाय बना सकता है। हिन्दू धर्म का आग्रह नहीं, कोई भी सम्प्रदाय बने । वैचारिक स्वातंत्र्य के आधार

पर भिन्न-भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचना एक सहज प्रक्रिया है । इस मतभेद को अस्वीकार न कर, सामंजस्य और समन्वय की वृति हिन्दू धर्म की है । हिन्दू धर्म में विभिन्न उपासना पद्धतियों का स्वातंत्र्य है । पूजा प्रतिमान की दृष्टि से हिन्दू धर्म का अस्तित्व सर्वव्यापी है । हिन्दू धर्म किसी पंथ का विरोधी नहीं है । इस कारण इसे साम्प्रदायिकता से संलग्न करना अनावश्यक है । हिन्दुत्व के संदर्भ में पंथ निरपेक्षता सार्थक शब्द है । हिन्दुत्व के संदर्भ में धर्म निरपेक्षता का प्रयोग भ्रममूलक है ।

अरब में इस्लाम के अभ्युदय और मध्यकालीन भारत में उसके आक्रामक प्रसार ने हिन्दू शब्द को यहाँ के निवासियों ने स्वीकार किया । हिन्दू शब्द से मात्र हिन्दू उपासना पद्धति विशेष का बोध अपर्याप्त है । सभी निवासियों को व्यापक अर्थ में हिन्दू समझा गया । हिन्दू धर्म विविध प्रतिमान के पांथिक विश्वासों, विचारों, अनुष्ठानों तथा कर्मकांडों का समष्टि स्वरूप है । किन्तु इस्लाम के अनुयायियों ने इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया । इस्लाम व्यक्ति विशेष को पैगम्बर की मान्यता देकर उसी व्यक्तित्व से केन्द्रित रहा । हिन्दू धर्म व्यक्ति विशेष पर आघृत नहीं है । शाश्वत मानवीय मूल्यों या चिरंतन तत्वज्ञान पर हिन्दू अधिष्ठित है ।

हिन्दू धर्म का श्रेष्ठ तत्वज्ञान वेदान्त है । वेदान्त ने मानव मात्र की मूलभूत एकता की घोषणा की है । इस्लाम की आकांक्षा रही है कि,सारा विश्व मुसलमान हो जाये । ईसाई धर्म की अपेक्षा रही है कि सभी ईसाई हो जायें । किन्तु हिन्दुत्व की घोषणा है कि, विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को[5] अगर वह चाहता है, तो अलग रहने दो, सबकी मूलभूत एकता तो बनी ही रहेगी ।[5]

इसी हिन्दुत्व ने मध्यकालीन इस्लामी आक्रमण के आधातों को सहन किया। इसी काल में सन्तों की एक श्रेष्ठ श्रृंखला का उदय हुआ, जिसने हिन्दुत्व के विवेक का शंखनाद किया । संतों में लोकप्रियता की दृष्टि से नामदेव, ज्ञानदेव, रैदास, नानक, कबीर आदि उल्लेखनीय हैं । इन संतों के साहित्य से यह स्पष्ट है कि विभिन्न मतवाद भिन्न -भिन्न प्रणालियाँ हैं । केवल मतवाद धर्म नहीं है । धर्म तो सत्य का साक्षात्कार है । मतवाद पंथ मात्र है । संतों के साहित्य के अध्ययनपूर्ण निष्कर्ष ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकट करने वाले हैं । संतों के चिन्तन और चरित्र ने हिन्दुत्व को सुरक्षा कवच प्रदान किया । हिन्दुत्व में निहित सद्भाव, शान्ति, सहिष्णुता, शाश्वत मूल्यवत्ता, आदि का प्रकटीकरण सन्त साहित्य में है।

दसवीं-ग्यारहवीं शती से महमूद गजनी द्वारा भारत में मजहबी युद्ध से हिन्दू समाज को गहरा धक्का लगा । इस्लाम की इस पांथिक आक्रामक वृत्ति में, पूर्व के आक्रमणकारियों से भिन्नता थी । इसके पूर्व भी भारत भूमि निरन्तर पश्चिम से आने वाले जनसमूहों से आक्रान्त रही है । आगन्तुकों ने अपने विचारों, विश्वासों, भावनाओं आदि से भारतीय समाज को सहज रूप से प्रभावित किया था । भारत भूमि ने उन्हें आत्मसात किया । किन्तु इस्लाम अपने सोच और सिद्धान्तों के प्रसार की उद्दाम उमंगों से अति चंचल था । उनके आचरणों में कट्टरता और विजय का उन्माद था । कट्टरता में अनुदारता और उन्माद में अन्याय था । हिन्दू विचार स्वातंत्र्य में उदार था। इस्लाम की अनुदारता विचार स्वातन्त्र्य के प्रसंग में अवश्य थी । हिन्दुत्व की उदारता ने भी विजातीय विचार ग्रहण करने में विश्वास नहीं किया । मुसलमान समाज

अपने पंथ के प्रचार में था । इसी कालखंड में भारत् भूमि के जन सामाय एवं धर्म को अभिव्यक्त करने के लिये हिन्दू शब्द ग्रहीत हुआ ।[६]

बारहवीं शती के अन्त में उत्तर भारत में हिन्दुत्व की राजनीतिक पराजय ने भारत के सामाजिक परिवेश में तीव्र परिवर्तन किया । हिन्दू अपनी प्राचीन धार्मिक मान्यताओं के समर्थन से प्रतिबद्ध था । किन्तु हिन्दुत्व के चार्तुवर्ण्य के अन्तिम छोर के उपेक्षित वर्ग को, मानवीय आधार पर, संतों की श्रृंखला ने सम्मान और स्वातंत्र्य के मार्ग का दर्शन कराया । कबीर आदि संतों ने हिन्दू की सहज परिभाषा भी प्रस्तुति की । कबीर ने हिन्दू को परिभाषित किया - 'सो हिन्दू जिसका दुरूस रहे ईमान ।'[७] कबीर के वे ही हिन्दू - मुसलमान है, जिनका मन मैला नहीं है, तथा जो विषय - वासना से मुक्त हैं । वस्तुतः मध्यकालीन हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र का साहित्य, इतिहास के साक्ष्य रूप में अति महत्व का है ।

हिन्दू मुसलमानों की संघर्षरत राजनीतिक परिस्थितियों को एक सूफी कवि ने अपनी रचना (सन् १५४०) में स्पट किया था । इन मलिक मोहम्मद जायसी ने हिन्दू-मुसलमानों के इस राजनीतिक संघर्ष को 'पद्मावत' महाकाव्य में बारम्बार हिन्दू-तुर्क संघर्ष कहा है । तुर्क, इस्लाम धर्मावलम्बी का पर्याप्त था । दोनों को मानवीय आधार पर एक मान कर सूफी संत ने कहा था कि, 'मातु के रक्त पिता के बिन्दु । उपजे दुबौतुरूक और हिन्दू ।'[८]

जायसी ने स्पष्ट कहा है कि, चित्तौड़ हिन्दुओं की मातृभूमि है । मातृभूमि पर संकट है । चित्तोड़ के राजा ने जौहर की घोषणा की । जौहर की अग्नि में कूदने के लिये पतंगों की भाँति हिन्दू दौड़ पड़े । मुसलमान शासन की विजय गौरवपूर्ण मार्ग से नहीं होती है । जायसी ने हिन्दुओं की शूरवीरता की प्रशंसा की है ।[९] इतिहास लेखन के साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि सोलहवीं शती में मुसलमान भारतीयकरण की ओर था ।[१०] अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों तथा सेनापति रहीम खानखाना का साहित्य इस तथ्य के साक्ष्य है ।

मलिक मोहम्मद जायसी की पद्मावत में हिन्दू पात्रों के कथोपकथन में मुसलमान शासकों के प्रति रोष और तिरस्कार का संकेत है ।[११] सत्रहवीं शती के साहित्य के साक्ष्य से स्पट है कि म्लेच्छों की दासता को धिक्कारा गया है । संत सुंदर दास ने अपनी वाणी में मुसलमान शासकों के अत्याचार हिंसा और विलासिता के कारण उनकी भर्त्सना की है।[१२] कवि बिहारीदास ने हिन्दुओं से मुसलमान शासक शाहजहाँ की ओर से लड़ने वाले मिर्जा राजा जयसिंह पर व्यंग किया है ।[१३] भूषण कवि ने हिन्दू और मुसलमानों के इस राजनीतिक संघर्ष का चटकीला वर्णन किया है । भूषण की लेखनी में हिन्दुत्व की अधीरता और असहिष्णुता का प्रकाशन है । राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दुत्व के जातीय गौरव का निखार, या हिन्दुत्व का राजनीतिक क्षेत्र में पराभव का क्रम परिवर्तित होने का संकेत भूषण के साहित्य में है । मुसलमानी शासकों के प्रतिरोष और कुछ अंशों में घृणा के प्रकाशन का अधिकांश दायित्व विजेता शासक वर्ग के अन्याय को है ।

भूषण की कविता सत्रहवीं शती के अन्तिम और अठारहवीं शताब्दी के शुभारम्भ की है । भूषण की कविता में क्षत्रपति शिवाजी की विजयों से हिन्दुओं पर प्रभाव

पड़ने का संकेत है - 'राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान की, तिलक राख्यों स्मृति पुरान राखे, वेद विधि सुनी मैं ।'[१४] भूषण ने लिखा है कि 'कासिहु ते कला जाती, मथुरा मसीद होती, शिवाजी न हो तो तौ सुनाति होत सबकी ।'[१५] भारत भूमि की सभ्यता और साहित्य, परम्परा और प्रगति, तथा स्वातन्त्र्य और स्वाभिमान के संरक्षण और संरचना का ऐतिहासिक साक्ष्य भूषण का साहित्य है । सामन्ती संदर्भ में हिन्दुत्व के रक्षण की गाथा, मानवीय अधिकारों के ऐतिहासिक संघर्ष का साक्ष्य, भूषण का काव्य है । हिन्दुत्व की रक्षा के लिये शिवा जी जहाज थे ।[१६] शिवाजी ने दुशासन रूपी मुसलमान शासकों सेहिन्दुत्व रूप, द्रोपदी की रक्षा की ।[१७] भूषण के साहित्य से स्पष्ट है कि, यह संघर्ष राजनीतिक क्षेत्र का था । मक्का जाने वाले इस्लाम धर्मावलम्बियों को शिवा जी ने जो संरक्षण दिया, उसकी भूषण के काव्य में प्रशंसा है ।[१८]

मुसलमान शासकों के अत्याचार के विरोध में राजनीतिक चेतना जाग्रत थी। यह भी महत्वपूर्ण है कि हिन्दू मुसलमान की तात्विक एकता के भी प्रसंग मध्यकालीन साहित्य के साक्ष्य से उपलब्ध है । कबीर, नानक, दादू, प्राणनाथ आदि संतों का इस दिशा में मानवीय धर्म के प्रवर्तन का साक्षी इतिहास है । संतों की विचार धारा में हिन्दुत्व के औदार्य का समावेश है । इस्लाम का प्रभाव नगण्य प्रतीत होता है । किन्तु इस्लाम में धर्मोपासना और समान सामाजिक अधिकार के प्रभाव के संदर्भ में उन्नीसवीं शती का नव जागरण इतिहास की एक उपलब्धि है ।

वस्तुतः अठारवीं शती में भारत का राजनीतिक भूगोल इस्लामी शासन के पराभव का प्रमाण है । वर्तमान केरल, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मध्यभारत, बुन्देलखण्ड, बिहार, उड़ीसा आदि के अधिकांश भाग में हिन्दू शासन था । नाम मात्र को दिल्ली में इस्लामी शासन था । सन् १७६१ में अफगानिस्तान के आक्रमणकारी अहमदशाह अब्दाली से पानीपत में मराठा सैन्य शक्ति से ही टक्कर हुई थी । मराठा सैन्य शक्ति परास्त हो गयी थी । किन्तु आक्रामक अहमदशाह जीत कर भी स्वदेश लौट गया । अठारहवीं शती के अन्त तक सम्पूर्ण भारत में हिन्दू राजनीतिक शक्ति इस्लामी शासकों को परास्त करने में सफल हो गयी थी ।

हिन्दू और आधुनिक काल

उन्नीसवीं शती के शुभारम्भ में भारत के राजनीतिक क्षितिज में एक तीसरी शक्ति बाजार से उठकर सरकार बन गयी थी । अंग्रेजों ने व्यापार के आधार से भारत के अधिकांश भाग में अपनी राजनीतिक शक्ति जमा ली थी । उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में भारत के बड़े भू भाग पर छल-बल से अंग्रजों ने अधिकार कर लिया । सन् १८५७ में हिन्दू-मुसलमान सैन्य शक्ति की मिली जुली शक्ति भी कई कारणों से पराभूत हो गयी। राजनीतिक पराभव होने पर भी हिन्दुत्व के उत्कृष्ट अतीत पर गहरी आस्था और उज्वल आगत पर गम्भीर आशा क्षीण नहीं हुई थी । स्वामी दयानन्द, परमहंस रामकृष्ण तथा इनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द आदि ने हिन्दुत्व को युग के अनुरूप तथा इसके श्रेष्ठत्व को स्थापित करने का प्रयास किया । हिन्दुत्व के मानवीय मूल्यों पर आस्था की अभिव्यक्ति की दृष्टि से, स्वामी विवेकानन्द का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है ।

विवेकानन्द ने धर्म और हिन्दू दो शब्दों को समानार्थी कहा था।[१९] विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के सन्दर्भ मेंकहा था कि, 'हिन्दू नाम ऐसी प्रत्येक वस्तु का द्योतक रहे, जो महिमामय हो, आध्यात्मिक हो - - - संसार की कोई भी भाषा उससे ऊँचा, इससे महान शब्द का आविष्कार नहीं कर सकी है '।[२०] हिन्दू को संकीर्ण घेरे से बाहर निकलने का विवेकानंद ने आमंत्रण दिया, और सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिये कार्य करने का संदेश दिया। विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म को पूर्णतः आध्यात्मिक घोषित किया था।[२१] विवेकानन्द ने कहा था कि, हिन्दू धर्म संसार का सर्वाधिक पूर्ण संतोषजनक धर्म है।[२२] 'क्योंकि जब समस्त साम्प्रदायिक संघर्ष दूर होंगे, तभी हम हिन्दू शब्द की तथा प्रत्येक हिन्दू नामधारी व्यक्ति को यथार्थतः समझने,हृदय में धारण करने तथा गम्भीर रूप से प्रेम करने व आलिंगन करने में समर्थ होंगे । - - - - केवल तभी तुम सच्चे हिन्दू कहला सकोगे, तब तुम किसी भी प्रान्त के कोई भी भाषा बोलने वाले प्रत्येक हिन्दू संज्ञा के व्यक्ति को एकदम अपना सगा और स्नेही समझने लगोगे । - - - पारस्परिक विरोध भाव को भूलकर चारों ओर प्रेम का प्रवाह बनाना होगा ।'[२३]

विवेकानन्द ने हिन्दुत्व की शुभवत्ता की प्रशंसा कर अन्य समुदायों से सामंजस्य की अपेक्षा की थी। संसार मे केवल एक ही देश है जो धर्म को समझ सकता है - वह है भारत । हिन्दू अपनी सम्पूर्ण बुराइयों के बावजूद नीति एवं अध्यात्म में दूसरे राष्ट्रों से बहुत ऊँचे है एवं उसके निःस्वार्थी सुपुत्रों की समुचित सावधानी, प्रयास एवं संघर्ष के द्वारा पाश्चात्य देशों के वीरोचित तत्वों को हिन्दुओं के शान्त गुणों के साथ मिलाते हुए एक ऐसे मानव समुदाय की सृष्टि की जा सकती है, जो इस संसार में अब तक पैदा हुई किसी भी जाति से यह समुदाय कई गुना महान होगा ।[२४]

हिन्दुत्व की सहअस्तित्व की अभयवृति का स्वामी नेसमर्थन किया था । 'आज आवश्यकता इस बात की है कि, सभी तरह के धर्म परस्पर बन्धुत्व का भाव रखें, क्योंकि अगर उन्हें जीना है तो साथ-साथ, और मरना है तो साथ-साथ । सख्य-बन्धुत्व की यह भावना पारस्परिक स्नेह और आदर पर आधारित होनी चाहिए ।'[२५] 'मेरा धर्म ही सिखाता है कि भय ही सबसे बड़ा पाप है ।'[२६]

हिन्दुत्व के संदर्भ में विवेकानन्द ने वैश्विक धर्म की आकांक्षा प्रकट की है । वर्तमान विश्व की एकता और सुखद मानवीय सम्बन्धों के विकास के लिये हिन्दू धर्म की अपने जागतिक रूप की स्थापना के प्रति विवेकानन्द ने विश्वास व्यक्त किया था । 'मात्र भौतिक साधनों से हमने सम्पूर्ण जगत को एक बना डाला है । इसीलिए स्वभावतः ही आने वाले धर्म को विश्वव्यापी होना पड़ेगा ।' 'भविष्य के धार्मिक आदर्शों को सम्पूर्ण जगत में जो कुछ भी सुन्दर और महत्वपूर्ण है, उन सबों को समेटकर चलना पड़ेगा, और साथ ही भाव- विकास के लिए अनंत क्षेत्र प्रदान करना पड़ेगा '।[२७]

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू परम्परा के श्रेष्ठ और श्रेयस्कर पक्षों का विवेचन कर भारतभूमि को ऊर्जा और उमंग प्रदान की । भारत की पंथ निरपेक्षता के संदर्भ में विवेकानन्द के विचारों के ऐतिहासिक महत्व की स्वीकृति निर्विवाद है ।

विवेकानन्द के पश्चात् बीसवीं शती के घटनाचक्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि, भारत भूमि के राजनीतिक नेतृत्व ने देश के अखंडित इतिहास में सम्बन्ध जोड़े

रहने का प्रयास किया । इसके साथ ही औदार्यपूर्ण भारतीय मानवीय मूल्यवत्ता को कभी विस्मृत नहीं किया । इसे हिन्दू परम्परा के निर्वाह के अतिरिक्त कोई शीर्षक नहीं दिया जा सकता । यह हिन्दू परम्परा इतिहास में मानवीय एकता, स्वतंत्रता, साम्प्रदायिक समरसता, सामाजिक संतुलन आदि की पक्षधर रही है । हिन्दू परम्परा और भारतीय परम्परा अभिन्न है । इस सन्दर्भ में महान राजनीतिज्ञों की एक श्रृंखला बीसवीं शती में गौरवान्वित हुई । लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, अरविन्द, महात्मा गांधी आदि राजनीतिज्ञों ने उत्कृष्ट हिन्दू परम्परा को गरिमा प्रदान की । पंथ निरपेक्षता के सन्दर्भ में महात्मा गांधी के विचारों का विश्लेषण आवश्यक है ।

हिन्दू और महात्मा गांधी

महात्मा गांधी (१८६६-१६४८) हिन्दू परम्परा के अद्भुत विचारक थे । महात्मा ने बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में एक विशिष्ट जीवन चिन्तन का प्रवर्तन किया । इसमें भारतीय या हिन्दू परम्परा का श्रेष्ठ तत्वज्ञान सन्निहित है । महात्मा ने भारत के अखंडित इतिहास की परम्परा के निर्वाह की घोषणा की थी । 'मैं हिन्दू हूँ, और चाहता हूँ कि गीता का एक श्लोक पढ़ते -पढ़ते मर जाऊँ और मोक्ष प्राप्त करूँ । - - -मैं तुलसी और राम चन्द्र का भक्त हूँ, और शुद्ध सनातनी होने का दावा करता हूँ '।[२८] महात्मा गांधी अपने को सनातनी इस कारण कहते थे कि, उनको वेदों, उपनिषदों, पुराणों और पवित्र सुधारकों के लेखों में विश्वास था ।[२६] महात्मा गांधी ने हिन्दू धर्म को सही परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया और कहा था कि, यदि हिन्दू धर्म को ठीक अर्थ में समझा जाये, तो सभी जीव समान और एक हैं ।[३०] गांधी जी के अनुसार स्थूल रूप से वह आदमी हिन्दू है, जो ईश्वर में विश्वास करता है और अपने दैनिक जीवन में सत्य-अहिंसा का अभ्यास करता है । इसके लिए व्यापक अर्थ में गोरक्षा और वर्णाश्रम धर्म को समझ कर उस पर चलने का प्रयास करने वाले हिन्दू है ।[३१]

गांधी जी पूर्णतः विशुद्ध हिन्दू थे । गांधी जी ने कहा था कि मेरे शरीर और मन का एक-एक कण हिन्दू है ।[३२] गांधी जी ने दावा किया था कि, 'मैं सच्चा कट्टर हिन्दू हूँ । इसके अलावा महर्षि व्यास के मतानुसार भी मैं कट्टर हिन्दू हूँ ।[३३] गांधी जी अपने को हिन्दू कहने में गौरव मानते थे ।[३४] इतिहास में हिन्दू धर्म के विकास का क्रम सहस्त्रों वर्ष चला है । गांधी जी ने हिन्दू शब्द को विशाल, और विवेकगर्भित माना है । यह शब्द इतना विशाल है कि यह पृथ्वी की चारों दिशाओं के पैगम्बरों के उपदेशों के प्रति सहिष्णुता रखता है, इतना ही नहीं बल्कि उन्हें आत्मसात कर सकता है ।[३५] गांधी जी कट्टर सनातनी हिन्दू वैष्णव थे । गांधी जी ने सनातनी हिन्दू की परिभाषा की है । 'मेरे विश्वास के अनुसार हिन्दू वह है जो भारत के हिन्दू परिवार में जन्मा है, वेदों उपनिषदों और पुराणों को पवित्र पुस्तक के रूप में स्वीकार करता है, जिसे सत्य-अहिंसा आदि पाँच यमों पर विश्वास है, और जो अपनी श्रेष्ठतम क्षमा से उनका अभ्यास करता है । जो आत्मन् और परमात्मन के अस्तित्व में विश्वास रखता है और इससे भी आगे यह विश्वास करता है कि आत्मा का कभी जन्म और मरण नहीं होता। - - - -जो विश्वास करता है कि मानव प्रयत्नों का उच्चतम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है, और जो वर्णाश्रम तथा गोरक्षा में विश्वास रखता है । - - - मैं अपने को सम्पूर्ण दृढ़ता, किन्तु

नम्रता के साथ कट्टर सनातनी हिन्दू और वैष्णव कहने में नहीं हिचकता । मैं मानता हूँ कि हिन्दू धर्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण बाह्यरूप गो रक्षा है । - - - मैं मानूँगा कि हिन्दू धर्म से ब्राह्मण और क्षत्रिय भावना गायब हो गयी है '।[३६]

गांधी जी हिन्दू धर्म के किसी रूढ़िबद्ध रूप से आश्वस्त नहीं थे । 'वैयक्तिक रूप से मेरे लिये केवल एक धर्म है, और वह हिन्दू धर्म है । मैं अपने को हिन्दू कहलाने में गर्व का अनुभव करता हूँ । किन्तु मैं रूढ़िग्रस्त कर्मकाण्ड आबद्ध हिन्दू नहीं हूँ '।[३७]

गांधी जी ने हिन्दू धर्म को उदाहरण और उत्कृष्ट रूप में समझ कर कहा था कि, 'जहाँ तक मैं हिन्दू धर्म को समझ पाया हूँ, यह एक ठोस धर्म है । इसमें सहिष्णुता है और अन्य धर्मों के प्रति आदर रखता है ।'[३८]

हिन्दू धर्म में विचार स्वातंत्र्य[३९] के कारण इसके सद्ग्रंथों और सद्विचारों के अर्थों के सतत विकास का साक्षी इतिहास है । 'हिन्दू धर्म की खासियत यह है कि, उसमें काफी विचार स्वातंत्र्य है । और उसमें हर एक धर्म के प्रति उदार भाव होने के कारण उसमें जो कुछ अच्छी बातें रहती हैं, उनको हिन्दू धर्मी मान सकता है । - - - - हिन्दू धर्म ग्रंथों के अर्थ का दिन प्रतिदिन विकास होता रहा है ।'[४०]

हिन्दू धर्म की विशेषता, इसकी सहिष्णुता की है । इस सहिष्णुता के कारण जो सम्पर्क में आये उसकी अच्छी बातों को हिन्दू धर्म ने आत्मसात किया । गांधी जी को हिन्दू धर्म में, सभी धर्मों के आने पर आस्था थी । 'मेरे हिन्दू धर्म में सब धर्म आ जाते हैं । हिन्दू धर्म में सब धर्मों का सार मिलता है । अगर हिन्दू धर्म सबको पचा लेने का काम न करता, तो वह इतना ऊँचा न उठ सकता '।[४१] गांधी जी ने हिन्दू धर्म को इस कारण एक महासागर समझा है । महासागर कभी गन्दा नहीं होता ।[४२]

गांधी जी ने हिन्दू धर्म का जीवन्त स्वरूप देश के सामने रखा, जो अपने दुखी बालक को सान्त्वना देने वाली माता के समान है । इससे गांधी जी ने भारतीय परम्परा का पोषण किया है । 'मैंने अपने पूर्व पुरूषों के चरण चिह्नों का ही अनुगमन किया है' । गांधी जी में हिन्दू धर्म की सिखावन के अनुरूप, सब पर समान प्रेम करने की वृति आजीवन बनी रही ।[४३] हिन्दू धर्म की समग्रता से गांधी जी सहमत थे ।[४४] सत्य का साक्षात्कार, सहिष्णुता, सद्विचार स्वातंत्र्य, सर्वप्रेम, सदाचरण आदि हिन्दू धर्म के विशिष्ट अंग हैं । इन्हीं के कारण हिन्दू धर्म, पूर्ण धर्म रहा है ।

हिन्दू धर्म में सत्य का स्थान सर्वोच्च है । अन्य समस्त अवलम्बों को छोड़कर केवल ईश्वर के ही या सत्य के प्रति श्रद्धा कायम रखने वाला यह धर्म है ।[४५] गांधी जी ने हिन्दू धर्म का सार तत्व सत्य -अहिंसा को स्वीकार किया है ।[४६] 'यदि मुझसे हिन्दू धर्म की परिभाषा पूछी जाये तो सिर्फ इतना कहूँगा कि अहिंसात्मक साधनों से सत्य की खोज करना ही उसका अर्थ है । हर कोई ईश्वर में विश्वास न करके भी अपने को हिन्दू कह सकता है । हिन्दुत्व सत्य के लिए घोर परिश्रम का नाम है '।[४७]

भावी समाज की संरचना की दृष्टि से हिन्दू धर्म का आकलन गांधी जी ने किया था । 'मेरी कल्पना का हिन्दू धर्म केवल एक संकुचित सम्प्रदाय नहीं, वह एक महान और सतत विकास का प्रतीक, और काल की तरह ही सनातन है । उसमें जरयुस्त, मूसा, ईसा, मुहम्मद, नानक और ऐसे कई धर्म संस्थापकों के उपदेशों का

समावेश है । - - - जिस धर्म को रागद्वेषविहीन ज्ञानी सन्तों ने अपनाया है, और जिसे हमारा हृदय और बुद्धि भी स्वीकार करती है, वह सद् धर्म है '। [४८]

गांधी जी ने हिन्दू धर्म की व्यापकता और विशालता का प्रतिपादन किया । गांधी जी ने कहा था कि, हिन्दू धर्म इतना महान और व्यापक है कि आज तक कोई उसकी व्याख्या करने में कृत कार्य नहीं हो सकता । [४९] गांधी जी ने हिन्दू धर्म की पुनः परिभाषा की है कि हिन्दू धर्म सही अर्थ में दो परिभाषाओं द्वारा व्यक्त किया गया है अहिंसा परम अर्थ और सत्य से बढ़कर अन्य बल नहीं । हिन्दू धर्म की परिपूर्णता पर गांधी जी को विश्वास रहा है । [५०]

महात्मा गांधी ने जिस विचार गंगा का भगीरथ की भांति प्रवर्तन किया, उसके स्रोत सहस्त्रों वर्षों की भारत की धरती से उपजा और अर्जित, सोच, सिद्धान्त,सद्पुरूष, सद्ग्रंथ, सदाचरण आदि हैं । इसी कालखण्ड और इसके पश्चात् एक अन्य विचार सरणि समग्र और समृद्ध हिन्दू परम्परा से प्रवाहित रही । इसे एकात्म मानव दर्शन की संक्षा दी गयी है । इसमें इतिहास से उपलब्ध वैचारिक उदारता और उत्कर्ष स्पष्ट हैं ।

हिन्दू और एकात्म मानववाद

एकात्म मानववादी सोच ने हिन्दू और भारतीय शब्द को समानार्थक माना है ।[५१] हिन्दू शब्द को,इस विचार सरणि ने, प्रेम प्रसार का पर्याय के रूप में कहा है। हिन्दुत्व जो हमारा अवलम्ब है, इस पवित्र एवं सर्वग्राही प्रेम का पोषण करता है, तथा प्रतिक्रिया की भावना से सर्वथा मुक्त है ।[५२] एक उत्कृष्ट जीवन निर्माण करने की अपेक्षा और आकांक्षा है ।

हिन्दू शब्द साझी सभ्यता का ही बोध करता है ।' हिन्दू रिलीजन नाम की कोई वस्तु अस्तित्व में नहीं है । हिन्दू शब्द के अन्तर्गत अनेक रिलीजन आ जाते हैं । हिन्दू समाज अनेक उपासना पद्धतियों का संघ (कामनवेल्थ आफ रिलीजन्स) है ।'[५३] हिन्दू नाम भारत के सर्व व्यापक धर्म का बोध कराता है ।[५४] अनुशासन और आत्मसंयम के सम्पूर्ण जीवन क्रम में प्रशिक्षित होने के लिए हिन्दू का जन्म हुआ है, जो उसे जीवन में श्रेष्ठतम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये शुद्ध करता है और शक्ति प्रदान करता है ।[५५] उद्देश्यपूर्ण जीवन प्राप्ति हिन्दू का लक्ष्य है ।[५६]

एकात्म मानववाद ने हिन्दू की सकारात्मक और सक्रिय परिभाषा की है । इस परिभाषा में, हृदय की विशालता, मन की शुद्धता, चरित्र की उदात्तता आदि मनुष्य जाति की आन्तरिक सम्पदा, केन्द्र बिन्दु है । उस सम्पत्ति का वरण किया है, जो मानव जीवन की अनुपम निधि है, जिसे हम अपने में विकसित कर सकते हैं, श्रेष्ठ सद्गुणों, पूर्ण ज्ञान तथा आत्मा के उदात्त भाव की सम्पत्ति । वही सत्य है । वही शाश्वत है' ।[५७] सत्ता या सम्पत्ति हिन्दू जीवन का केन्द्र बिन्दु नहीं है । हमें केवल सम्पत्ति एवं सत्ता के पीछे नहीं दौड़ना चाहिए, वरन् जीवन में सद्गुणों को उच्च स्थान देना चाहिए । ' हिन्दुत्व द्वारा सच्चे और सम्पूर्ण मनुष्यत्व की प्राप्ति का अभिधेय, एकात्म मानववादी विचार सरणि का है।[५८] हिन्दुत्व की इस परिभाषा का प्रतिमान प्रतिक्रियात्मक या नकारात्मक नहीं है । हिन्दुत्व के द्वारा एक ऐसे मानवीय व्यक्तित्व का विकास एवं विस्तार का लक्ष्य

है, जिससे सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त महान सत्य का साक्षात्कार हो सके ।[५६] गुरू गोलवलकर ने बलवती स्वर में घोषणा की थी - 'हमारी विचारधारा हिन्दू है । हमें उसी का विकास करना है। हिन्दू विशेषता को रखने से विश्व का कल्याण होगा '।[६०]

एकात्म मानववादी विचार सरणि का हिन्दू, भारत की अखंडित विचारवत्ता और मानवीय मूल्यवत्ता का विश्व मानव है । यह हिन्दू वामन नहीं, विराट है । यह हिन्दू सम्प्रदाय से परे हैं । यह हिन्दू पांथिक परिभाषाओं से ऊपर है । हिन्दुत्व की परिव्याप्ति के संदर्भ में बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक की अवधारणा की मीमांसा उपादेय है ।

संदर्भ संकेत

१- हिन्दू धर्म - वियोगी हरि - पृ० ८
२- विचार नवनीत - मा० स० गोलवलकर - पृ० २८
३- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ५ पृ० १२४
४- विचार नवनीत - मा० स० गोलवलकर - पृ० २६
५- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड २ पृ० २४६
६- विचार नवनीत - मा०स० गोलवलकर खंड २ पृ० १६
७- कबीर ग्रंथावली - कबीर - पद ३५५
८- जायसी ग्रंथावली - जायसी - ३/३/१४
९- पद्मावत् महाकाव्य - जायसी - गोरा बादल खंड
१०- लाइफ एंड कंडीशन आफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान - के०एम० अशरफ - पृ० १६१
११- जायसी ग्रंथावली - जायसी - पृ० २८६
१२- सुन्दर ग्रंथावली - सन्त सुन्दरदास - खंड २ - अंक २ सवैया २७
१३- बिहारी रत्नाकर - कवि बिहारी - दोहा ३००
१४- भूषण ग्रंथावली - कवि भूषण - पृ० १६६/६
१५- वही - १६२/२०
१६- वही १११/३२६
१७- वही ११५/३३७
१८- वही ३५/६६
१९- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ५ पृ० २६२
२०- वही खंड ५ - पृ० २५६
२१- वही खंड ५ - पृ० ३३४
२२- वही खंड ५ - पृ० ३३६
२३- वही खंड ५ - पृ० २७०/२७१
२४- वही खंड ३ - पृ० ३०२
२५- वही खंड २ - पृ० २०२
२६- वही खंड ३ - पृ० २७६

२७- वही खंड २ - पृ० २००
२८- नीति-धर्म और दर्शन - महात्मागांधी - पृ० ३६६
२९- वही पृ० ४१०
३०- वही पृ० ४१६
३१- वही पृ० ४१०
३२- वही पृ० ३६७
३३- वही पृ० ५१८
३४- वही पृ० ४२३
३५- वही पृ० ५७८
३६- वही पृ० ३२२
३७- वही पृ० ३२१
३८- वही पृ० ३२१
३९- वही पृ० ३५०
४०- वही पृ० ३४६
४१- वही पृ० ३६६
४२- वही पृ० ३६६
४३- वही पृ० ३६८
४४- वही पृ० ३१६
४५- वही पृ० ३५४
४६- वही पृ० ३२२
४७- वही पृ० ३३७
४८- वही पृ० ३६२
४९- वही पृ० ३२०
५०- वही पृ० ३१६
५१- विचार नवनीत - मा० स० गोलवलकर - पृ० १५६
५२- वही पृ० २१६
५३- श्री गुरुजी विचार दर्शन - मा०सा० गोलवलकर - खंड ५ - पृ० २७
५४- विचार नवनीत - मा०सा० गोलवलकर - पृ० १०२
५५- विचार नवनीत - मा०सा० गोलवलकर - पृ० ५३
५६- वही पृ० ४७
५७- वही पृ० ४६
५८- वही पृ० ५०
५९- वही पृ० ४६
६०- श्री गुरुजी समग्रदर्शन - खंड ३ - पृ० ६

◆ ◆ ◆

13

अल्पसंख्यक अवधारणा

भारतीय समाज के संदर्भ में हिन्दू समाज की संज्ञा, इस देश के सहस्त्रों वर्षों की सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यवत्ता पर आस्था रखने वाले बहुसंख्यक की है । वर्तमान में भारत की जनसंख्या के वर्गीकृत आधार पर अस्सी प्रतिशत से अधिक हिन्दू कहे जाते हैं । हिन्दू को बहुसंख्यक कह कर या अन्य किसी वर्ग को अल्पसंख्यक बताकर समाधान प्राप्त करना सम्भव नहीं है । इतिहास के विवेक, संविधान की व्यवस्था तथा सामाजिक विग्रह के समाधान की भूमिका पर इस बहुसंख्यक तथा अल्पसंख्यक की अवधारणा का विश्लेषण उपयोगी है ।

अल्प संख्यक अवधारणा

वर्तमान संविधानों में धर्म या पंथ, संस्कृति, भाषा लिपि, मूलवंश आदि के आधार पर राज्य या राष्ट्र में बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक का निर्धारण होता रहा है । अल्पसंख्यकों की समस्या वैश्विक है । भारतीय या जागतिक संदर्भ में अल्पसंख्यक अवधारणा केवल मानवीय गरिमा के संरक्षण का कौशल है । दार्शनिक दृष्टि से अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, सत्य की अभिव्यक्ति का एक अधिकार है । राष्ट्रीय एकता में विविधता के समन्वय तथा सामंजस्य के अभ्युदय की संज्ञा अल्पसंख्यक का सिद्धान्त हो सकता है । समाज में साहचर्य से कार्य सम्पन्न करने का एक समझौता अल्पसंख्यक की मान्यता है । लोकतंत्र के संदर्भ में अल्पसंख्यक को संरक्षण, विचार स्वातन्त्र्य का ही प्रावधान है । अल्पसंख्यक की मान्यता धार्मिक क्षेत्र में सर्वत्र उपासना पद्धति का स्वातंत्र्य है ।

भारतीय समाज में पांथिक दृष्टि से अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक भेद को महत्व नहीं दिया गया । यह अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक अवधारणा लोकतांत्रिक व्यवस्था की देन है । संवैधानिक अल्पसंख्यक व्यवस्था की मीमांसा और मूल्यांकन भारतीय परम्परा के परिप्रेक्ष्य में विवेकपूर्ण है ।

वैदिक चिन्तन

भारतीय इतिहास में सभ्यता के आदिकाल से व्यवस्था बाह्य एक वर्ग की पहिचान अवश्य की गयी थी । वेद की समाज व्यवस्था चातुर्वर्ण्य के अतिरिक्त पंचम जन की उपस्थिति अल्पसंख्यक के रूप में मानी जा सकती है । संहिता में इसे पांचजन्य व्यवस्था की संज्ञा है । किन्तु वेद के संदर्भ में धर्म के क्षेत्र में अल्पसंख्यक का अस्तित्व नहीं है, 'क्योंकि वेद सारी मानवजाति का ग्रंथ है - नाना धर्माणां पृथिवी विवाचसम्।

पृथ्वी पर अनेक धर्म और भाषाओं का अस्तित्व मान लिया गया है । यदि कोई इस्लाम धर्मावलम्बी कहे कि वेद से उसे प्रार्थना पद्धति का आधार प्राप्त है, तो उसका निषेध नहीं है । [१]वेद के अनुसार सत् एक ही है, उपासना के लिये भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्ति होती है - एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति । सांस्कृतिक आधार पर वेद के अनुसार कोई अल्पसंख्यक नहीं है । वेद की घोषणा है कि विश्व को आर्य बनायें - कृष्वन्तो विश्वमार्यम। अर्य का अर्थ है - श्रेष्ठ । श्रेष्ठ से उत्पन्न का नाम आर्य है । विश्व को हम आर्य बनायें, अपनी संस्कृति को कुल विश्व का प्रतिनिधि बनायें, और दुनियां भर के अच्छे विचार हम अपनी संस्कृति - सभ्यता में ले लें । इसका अर्थ यह है कि हमारी सभ्यता के अच्छे विचार दुनियां को दें ।'[२] वेद स्पष्ट है कि मानव को मानव के स्तर पर ही ग्रहण करें - 'प्रति गृम्णीत मानवं सुमेधसः ।' मानवता के विरोध में जो भी राजनीतिक दम्भ, धर्माभिमान, संस्कृति का अभिमान आदि है, वैदिक चिन्तन में अस्वीकार्य है । भारतीय चिन्तन में मानवाधिकार केन्द्र बिन्दु है ।

वैदिक परम्परा में विश्व मानवता का संदर्भ बहुसंख्यक विचार से प्रेरित प्रभावित नहीं है । ऋग्वेद 'मानव-मानव में ज्येष्ठता और कनिष्ठता नहीं मानता । सब भाई-भाई है । सब मिलकर सौभाग्य के लिये, समृधि और उत्थान के लिये प्रयत्न करें। देश और काल के भेद इस बन्धुता में अन्तर न डालें । संस्था का भेद भी स्वीकार्य नहीं है '। [३] ऋग्वेद के पंचम मंडल-सूक्त साठ के पाँचवें मंत्र में इस मानव बंधुता का उच्च स्वर में उद्घोष है ।

'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो बावृधुः सौभगाय ।'

ऋग्वेद में सहजीवन की कामना तथा स्वराज्य की स्थापना और स्वातंत्र्य की विवेचना, अल्पसंख्यक अवधारणा तथा पंथ निरपेक्षता की दिशा को स्पष्ट करने की मानवीय सभ्यता की प्रथम उत्कृष्ट उद्घोषणा है ।

ऋग्वेद में सहजीवन की कामना के प्रसंग में लोकशक्ति और राज्य शक्ति का संवाद उल्लेखनीय है । 'प्रजानन, अग्नि (सम्राट) से कह रहे हैं । राष्ट्र में सुख - समृद्धि की वर्षा करने वाले हे अग्ने ! उत्साह की उष्णता और ज्ञान के प्रकाश वाले सम्राट, राष्ट्र के स्वामी तुम सभी प्रकार के राष्ट्रगत व्यवहारों को अच्छी तरह से संयुक्त और वियुक्त करते हो । जिन बातों को राष्ट्र के कल्याण के लिए चलने देना चाहिए, उनसे अपना सम्बन्ध जोड़कर उनकी सहायता करते हो, और जिन्हें नहीं चलने देना चाहिए, उनसे अपना सम्बन्ध तोड़कर उनको रोकने का प्रयत्न करते हो । ऐसे आप हमें प्रजाजनों के लिए ऐश्वर्यों को दीजिये । प्रजाजनों के उपरोक्त सम्बोधन के पश्चात् सम्राट दूसरे मंत्र में प्रजा की सुख समृद्धि के सार्वदेशिक और सार्वकालिक सिद्धान्त स्पष्ट करते हैं '।

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्व संजानाना उपासते ॥'

अर्थात सुख समृद्धि के अभिलाषी हे प्रजाजनों (संगच्छध्वं) मिलकर चलो, इकट्ठे रहो (संवदध्वं), मिलकर वार्ता करो, वः तुम सबके (मनांसि) मन मिलकर ज्ञान

प्राप्त करें, (यथा) जैसे पूर्वे पुराने (देवाः) विद्वान लोग (संजानानाः) एक मत होकर (भागं) सुखों को (उपासते) प्राप्त करते रहे हैं ।[४]

राजा का कथन है कि, वह तो जो कुछ बनेगा करेगा ही, परन्तु सुख-समृद्धि प्राप्त करने का सच्चा मूल मंत्र तो यह है कि, प्रजाजनों को चाहिए कि अपने सब व्यवहारों में एक्यमत प्राप्त कर लें । इसप्रकार उन्नति के सामान्य सूत्र के उपदेश में एक सुसंवादी जीवन की उदात्त कामना है । सुसंवादी जीवन में सहजीवन की अवतारणा सहज है ।[५]

वैदिक राजनीतिक चिन्तन में बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक की अपेक्षा सर्व उदय का प्रतिपादन है । राजा का कर्तव्य है कि, वह प्रजा को सुखी और प्रसन्न रखे । प्रजा स्वतंत्रता तथा स्वावलम्बन का उपभोग करे । राजा माँ के समान विशाल हृदय और पिता के समान नियंत्रक रूप में है ।[६] राजा वृक्ष के समान है, जो प्रजा को छाया तथा फल प्रदान करता है । राजा के ऊपर प्रजा पालन का भार वैसा ही है, जैसा पर्वत पर शिळाओं आदि का भार होता है । राजा को उपदेश है कि, वह प्रजा का शोषण या अनाचार न करें ।[७] सर्व-भूतहित राज्य व्यवस्था का निरूपण वैदिक चिन्तन में है।

यजुर्वेद के दशम अध्याय में राजसूय यज्ञ या राज्याभिषेक का वर्णन है । इसके द्वितीय मन्त्र में राजा के लिये कहा गया है कि वह विभिन्न वर्गों को एक राष्ट्र के रूप में खड़ा करता है । उसकी प्रजा सुरक्षा तथा वैभव से ओत-प्रोत है । चतुर्थ मन्त्र में स्वतन्त्रता (स्वराजःस्थ) जनकल्याण (जनामृतः) तथा विश्वशान्ति (विश्वमृतः) आदि का वर्णन है । इन्हीं के द्वारा राज्य या राष्ट्र की शक्ति का संग्रह होता है । अन्तिम ३४वें मन्त्र में राजा और प्रजा का सम्बन्ध 'पुत्रमिव पितरौ' शब्दों में व्यक्त है । राजा के लिये प्रजा पुत्रवत है । प्रजा के लिये राजा पुत्रवत है ।

यजुर्वेद के २२ से २५ अध्यायों में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है । अध्याय २२ में पुरोहित सम्राट को प्रजा की ओर से यह अधिकार प्रदान करता है कि वह प्रजा के अभ्युदय तथा रक्षा के प्रति अपने कर्तव्य का पोषण करें । यजुर्वेद के अनुसार, राजा के सिर पर पुरोहित जलाभिषेक द्वारा उसके कर्तव्यों को प्रकट करताहै । राजा का अभिषेक प्रजा पालन के लिए होता है । अपेक्षा है कि राजा सबका प्रेम पात्र बने । राजा भी सबसे प्रेम करे ।[८]

वैदिक साहित्य के तत्वान्वेषी ग्रन्थ उपनिषदों ने दार्शनिक दृष्टि से सर्वत्र आत्मवत्ता की व्याप्ति की अनुभूति के आधार पर बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक जैसी किसी अवधारणा को प्रश्रय नहीं दिया है । चातुर्वर्ण्य के स्थूल विभाजन के अतिरिक्त एक अन्य विभाजन भी छान्दोग्य उपनिषद् में है । छान्दोग्य उपनिषद में प्रजापति की तीन सन्तानें हैं - देव, मनुष्य और असुर । प्रजापति ने तीनों को शिक्षा केवल 'द' कहकर प्रारम्भ की थी । देवों के लिए दमन, मनुष्यों के लिये दान और असुरों को दया का उपदेश है । एक ही पिता की सन्तानों की सामाजिकता को दृष्टि से मानवता का उत्कर्ष देवत्व में, और अपकर्ष असुरत्व में है । प्रत्येक स्थिति में समाज से संगतिकरण की आकांक्षा और अपेक्षा है ।

सर्वभूतहित चिन्तन

महाभारत में राज्य या राजा से अपेक्षा है कि वह धर्म के विविध रूपों को मान्यता प्रदान करेगा । विभिन्न पंथों या धर्मों की रक्षा, प्रजा को धर्मों के अनुकूल आचरण की सुविधा तथा इनके पालन को सुनिश्चित करने का दायित्व राज्य या राजा का है ।[९] महाभारत के अनुसार राज्य या राजा का महान कर्तव्य या सनातन धर्म प्रजा की रक्षा है ।[१०] महाभारत के आरण्य पर्व में भीम युधिष्ठिर से कहते हैं कि धर्म पूर्वक पृथ्वी का पालन प्राचीन काल से चला आने वाला तथ्य है ।[११] महाभारत के राज धर्म में सर्वप्रजा- सम्पन्न, विपन्न, विद्वान, वृद्ध-विधवा, अनाथ तथा अपंग आदि सभी के भरण पोषण का भार राजा या राज्य पर है ।[१२] महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि, 'जैसे यमराज सभी प्राणियों पर समान रूप से शासन करते है, वैसे ही राजा भी बिना भेदभाव के समस्त प्रजा का नियंत्रण करता है ।'[१३] किसी अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक के विशैषाधिकार का कोई उल्लेख नहीं है । सर्वभूतहित की अपेक्षा राज संस्था से हैं ।

भारतीय राजदर्शन के इतिहास में सम्राट अशोक ने धर्म की व्यापक परिभाषा स्वीकृति करके भी, बौद्ध बिहारों के नियमन में हस्तक्षेप किया था । ईसा पूर्व २५६ के शिलालेखों के इस प्रकार के प्रसंगों का इतिहासकारों ने उल्लेख किया है । बौद्ध अशोक ने अपने समय की सभी उपासना पद्धतियों को संरक्षण देकर सर्वजनहिताय राज्य का कर्तव्य सुनिश्चित किया था ।[१४] ईसा पूर्व २४३ वर्ष के छठे स्तम्भ अभिलेख में प्रचलित सभी आस्थाओं का समादर है ।

भारतीय इतिहास में सर्वप्रजा की रक्षा को सर्वोच्च राज धर्म की मान्यता दी गयी है । भारतीय प्राचीन साहित्य में इसके साक्ष्य उपलब्ध है ।[१५] पांथिक दृष्टि से किसी बहुसंख्यक या अल्पसंख्क को विशेषाधिकार या अधिकार वंचना को स्वीकार नहीं किया गया है । ईसा की सातवीं शती तक भारत में प्रचलित सभी पंथों को समादृत करने की परम्परा के गौरवपूर्ण निर्वाह का इतिहास, सम्राट हर्षवर्धन के राज्यकाल का है । एक विदेशी चीनी यात्री का इस प्रकार का वर्णन, भारतीय इतिहास की उदात्तवृत्ति का साक्ष्य है ।

आक्रामक इस्लाम

विश्व रंगमंच में इस्लाम पंथ के प्रवेश ने एक हाथ में शस्त्र और दूसरे में सद्ग्रंथ लेकर पंथ के विस्तार के इतिहास की रचना की है । यह ऐतिहासिक सत्य है कि, इस पांथिक उन्माद की गति को रोका नहीं जा सका । इस पंथ के उन्माद से भारतीय इतिहास की ग्यारहवीं शती व्यापक रूप से आक्रान्त होती है । मनुष्य जाति के बलपूर्वक विचार परिवर्तन का, तथा हिंसा और हत्या से गुजरने वाले हेय मार्ग का, सफल प्रतिकार नहीं हुआ । इतिहास में बहुसंख्यक, पाशविक आक्रामक शक्तियों से पराजित हुआ ।

इस्लाम के इस गुण को भी नकारा नहीं जा सकता कि, यह पंथ याधर्म अपने सब अनुयायिओं को समानता प्रदान करता है। भातृभाव इस्लाम की विशेषता है किन्तु अन्य पंथ या सम्प्रदाय या धर्म के प्रति हेय भाव से निकृष्ट व्यवहार का इतिहास इस्लाम का रहा है। भारत में इस्लामी शासन दमनकारी रहा है। इतिहासकार नखलिस्तान के कुछ स्थलों को अवश्य प्रस्तुत करते हैं। किन्तु ये अपवाद हैं।

इस्लामी शासन में राजनीतिक स्वातंत्र्य खोकर, पंथ या धर्म की स्वतंत्रता की अपेक्षा व्यर्थ है। पांथिक दृष्टि से भारत के विशाल भूभाग में अल्पसंख्यक इस्लाम ने बहुसंख्यक समाज पर शासन किया। इसके प्रतिकार में राजनीतिक और आध्यात्मिक ऐतिहासिक प्रयास भी मध्यकालीन इतिहास में हुये हैं।

यह ऐतिहासिक सत्य और तथ्य है कि मध्यकालीन शताब्दियों में हिन्दू इस्लाम परस्पर विरोधी शक्तियों के रूप में प्रकट हो गये थे। इस्लाम ने हिन्दू भावनाओं, उसकी आस्थाओं, विश्वासों और उनके प्रतीकों को ध्वंस किया था। इस्लाम ने आक्रामक बनकर धार्मिक अत्याचारों की गाथाओं को तलवार की नोक से लिखा था। इस प्रसंग और इसी काल के संतों - विचारकों द्वारा गहरी आस्तिकता, गम्भीर आस्था, स्वातंत्र्य और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण को भी मानवीय धर्म के रूप में प्रकट किया गया।

अल्पसंख्यक अवधारणा की पृष्ठभूमि में मध्यकालीन भारत में बहुसंख्यक पर अत्याचार और उसके द्वारा प्रतिकार की पृष्ठभूमि को वर्तमान में विस्मृत नहीं किया जा सकता। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में दीर्घकाल तक राजनीतिक और धार्मिक पृष्ठभूमि पर प्रमुख रूप से स्वातंत्र्य संघर्ष प्रवर्तित रहा है। अंग्रेजों के पूर्व जो विदेशी दासता इस्लामी शासकों द्वारा आरोपित की गयी, वह धार्मिक, उन्माद का दुखद अध्याय है। उसे राजनीतिक या सामंती कहकर इतिहास के इस पक्ष को विस्मृत नहीं किया जा सकता है कि, विदेशी आक्रान्ताओं ने अपने पंथ के प्रसार से ऊर्जा ग्रहण की थी। किन्हीं इस्लामी शासकों के उदार या अनुदान अ चरण में अधिक अन्तर इतिहास में नहीं पड़ा है। इस्लाम धर्मावलम्बी शासकों कीराजनीति, उदारता और अनुदारता के किनारों से बंधकर, अपनी पांथिक नैतिकता और सभ्यता को प्रवाहित करने की रही है। मध्यकालीन शताब्दियों में दक्षिण और उत्तर भारत में पांथिक संघर्षों के स्वरूप राजनीतिक रहे हैं।

अठारहवीं शती के अन्त में इस्लाम धर्मावलम्बी शासकों का बल क्षीण हो गया था। इस शती में विदेशी इस्लामी आक्रान्ताओं के साथ यूरोपीय ईसाई व्यवसाइयों का भी आक्रमण तीव्र हो गया था। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में इस्लामी शासन की समाप्ति से बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक पांथिक या साम्प्रदायिक राजनीतिक चेतना का प्रस्फुटन प्रारम्भ हो गया।

इतिहास में रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य विवेकानंद ने हिन्दू मुसलमानों में समझौते की तात्विक कामना की थी। 'हमारी मातृभूमि के लिये इन दोनों विशाल मतों का सामंजस्य -हिन्दूत्व और इस्लाम - वेदान्त बुद्धि और इस्लामी शरीर यही एक आशा है।'[१६]

बीसवीं शती और अल्पसंख्यक

बीसवीं शती के भारत में अल्पसंख्यक राजनीति का प्रारम्भ १९०६ में मुस्लिम लीग के गठन से हो गया । इतिहास साक्षी है कि १९१६ में कांग्रेस द्वारा पृथक मुस्लिम प्रतिनिधित्व को अनुचित नहीं माना गया । पश्चात् मुस्लिम देशों के खलीफात आन्दोलन को भारत में भी संघर्ष का मुद्दा बनाया गया । भारत के राजनीतिक जीवन में मौलाना मोहम्मद अली और मौलाना शौकत अली आये । देश -बाह्य शक्तियों के प्रति वफादारी को प्रश्रय मिला ।

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के इतिहास में हिन्दुत्व को अपने अखंडित अस्तित्व के लिये अंग्रेजों के द्वारा प्रवर्तित इस्लामी कूटनीति का सामना करना पड़ा । सन् १९०५ में बंगाल विभाजन का कृत्य, मुस्लिम बहुल प्रदेश को अलग - थलग कर, पार्थक्य की भावना से प्रेरित था । तत्कालीन शासक वायसराय कर्ज़न ने पूर्व बंगाल और असम के भूभाग को मुसलमान बहुमत में होने के कारण शेष बंगाल से पृथक कर एक अन्य प्रदेश के रूपमें घोषित किया था । सन् १९०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना भी हिन्दुस्तान की अखंडता को एक गम्भीर चुनौती थी । सन् १९०६ में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष आगा खान ने मुस्लिम मतदाता द्वारा मुसलमान प्रतिनिधियों को चुनने की प्रस्तावना की थी ।

बीसवीं शती के इतिहास में विघटन की वृतियों के लिए मोर्ले - मिन्टो सुधार कानून (सन् १९०७) उल्लेखनीय है । इस सुधार कानून ने मतदाताओं का विभाजन पंथों के अनुसार किया था । मुस्लिम मतदाता और मुस्लिम प्रतिनिधित्व द्वारा साम्प्रदायिक राजनीति को बढ़ाया गया । इसी कालखंड में मुस्लिम बहुल प्रदेश सीमाप्रांत पंजाब से पृथक किया गया ।

सन् १९०६ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने मुस्लिम लीग से समझौता कर मुसलमानों के पृथक मतदाता वर्गों को मान्यता दी । मुस्लिम सम्प्रदाय को विभाजन की दिशा में ले जाने की यह भयंकर भूल इतिहास में स्पष्ट है । भारतदेश की मुख्य धारा से पृथक अस्तित्व, मुसलमान सम्प्रदाय का जाने अनजाने बनाया गया । राष्ट्रीय धारा से भिन्न प्रवाह में इस्लाम धर्मावलम्बी के जाने का एक कारण खलीफात आन्दोलन का समर्थन भी इतिहासविदों ने माना है ।

प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४ - १८) में तुर्की साम्राज्य का पतन हो गया । इस्लाम धर्मावलम्बियों का प्रमुख खलीफा तुर्की साम्राज्य में था । तुर्की साम्राज्य का शासक सम्राट के अतिरिक्त इस्लाम का धार्मिक नेता - खलीफा भी था । कई राज्यों में विभाजित कर विजेता अंग्रेजों ने तुर्की और खलीफा की शक्ति भी समाप्त कर दी । भारतीय मुसलमानों ने अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन किया । कांग्रेस ने इसमें सहायता की । भारतीय मुसलमानों की इस देश बाह्य निष्ठा में काँग्रेस द्वारा समर्थन ऐतिहासित भूल और भ्रम का कारण बना ।

सन् १९२७ में ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन भारत को सौंपने के लिये साइमन कमीशन भेजा । किन्तु इसका विरोध हुआ, फिर भी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस

ने अपना आयोग बनाया । इसकी अनुशंसा से बम्बई प्रदेश से सिंध का मुसलमान बहुल प्रदेश पृथक हो गया ।

सन् १९३१ में महात्मा गांधी और तत्कालीन वाइसराय लार्ड इरविन के समझौते के अनुसार महात्मा गांधी को सम्पूर्ण भारत के प्रतिनिधि के रूप में इंगलैण्ड की गोलमेज परिषद् में आमंत्रित किया गया । किन्तु मुसलमान नेताओं ने महात्मा गांधी को प्रतिनिधि रूप में स्वीकार नहीं किया ।

सन् १९३५ में साइमन कमीशन की अनुशंसा के आधार पर 'भारत सरकार अधिनियम' बना था । इसके अन्तर्गत सन् १९३७ में चुनावों द्वारा प्रादेशिक विधान सभाओं का निर्माण हुआ । इसके आठ प्रदेशों में कांग्रेस बहुमत में आई । मुसलमान नेतृत्व ने इसके द्वारा इस्लाम पर संकट आने की शंका प्रकट की । सन् १९४० में मुस्लिम लीग के लाहौर अदिवेशन में भारत के विभाजन की मांग की गयी । फिर भारत विभाजन के मोड़ पर इतिहास तीव्रता से आ गया । इतिहास का दुर्भाग्यपूर्ण ओर दुखद घटनाचक्र भारत-पाक विभाजन सैकड़ों वर्षों से हिन्दुत्व और इस्लाम के राजनीतिक संघर्ष का परिणाम था । तत्कालीन श्रेष्ठ राजनीतिज्ञों ने जिस हिन्दुत्व और इस्लाम की एकता का प्रयास किया । उसकी परम्परा शताब्दियों पुरानी है । किन्तु तत्कालीन स्वार्थी राजनीतिज्ञों ने एकता के प्रयास को सफल नहीं होने दिया । भारत या हिन्दिया (हिन्दुस्तान) का विभाजन अल्पसंख्यक अवधारणा के आधार पर भारत-पाक में हो गया। फिर अविश्वास और आशंका की मानसिकता से जघन्य हत्याकांडों का रक्तिम अंकन इतिहास में हुआ ।

भारत का विखंडन

भारत विभाजन और पंथ निरपेक्षता में कोई सामंजस्य नहीं है । भारत विभाजन के पूर्व महात्मा गांधी और जिन्ना की वार्ताओं और पत्राचार में स्पष्ट है कि, महात्मा और कांग्रेस को जिन्ना ने हिन्दू ही माना था ।[१७] कांग्रेस यह अस्वीकार करती रही कि, वह एक हिन्दू संगठन है । कांग्रेस ने भी मुस्लिम लीग के मुसलमानों का एक मात्र संगठन स्वीकार नहीं किया । अल्पसंख्यकों के पार्थक्य का संघर्ष मुस्लिम राजनीतिक नेतृत्व कर रहा है ।

हिन्दू मुसलमान के बंटवारे का प्रत्यक्ष दायित्व मुस्लिम लीग के १९४० के लाहौर प्रस्ताव का है । मुस्लिम लीग ने अपने को मुसलमानों की एक मात्र संस्था या संगठन घोषित किया था । इसके सर्वोच्च नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने स्पष्ट घोषणा की थी कि, भारत (इंडिया) के समाधान का एक ही रास्ता पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का विभाजन- बंटवारा है । भारत के स्वातंत्र्य को प्राप्त करने के लिये जिन्ना ने हिन्दू -मुसलमानों के बीच निर्णय होना अनिवार्य कहा था । जिन्ना ने हिन्दू इंडिया शब्द का प्रयोग कर देश विभाजन के अतिरिक्त और कुछ अस्वीकार किया था। जिन्ना ने हिन्दू और मुसलमानों को दो राष्ट्रों के रूप में घोषित किया था ।[१८] गांधी जी ने दो राष्ट्र के इस सिद्धान्त को अस्वीकार किया था ।[१९] जिन्ना ने गांधी जी को केवल हिन्दुओं का प्रतिनिधि स्वीकार किया था ।[२०]

भारत विभाजन के पश्चात

भारतीय संविधान की अल्पसंख्यक अवधारणा की युक्ति संगत विवेचना इतिहास सम्मत होना आवश्यक ही है। इसकी व्याख्या में समाधान मूलक स्तर भावी को संतुलित स्थिति प्रदान कर सकती है। भारतीय स्वातंत्र्य के पश्चात् गांधी-विचार सरणि के विनोबा ने अल्पसंख्यक अवधारणा को राजनीतिक क्षेत्र में ही अपरिहार्य रूप से स्वीकृति नहीं दी। लोकतन्त्र को सर्वानुमति के आधार पर कार्य करने का सुझाव विनोबा का है। सर्वोदय समाज या सर्वभूत हित समाज संरचना किसी बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक अवधारणा पर नहीं टिक सकती।

भारत विभाजन के पश्चात् किस प्रकार अल्पसंख्यकों का प्रश्न अन्तर्राष्ट्रीय द्वेष और दमन के रूप में परिवर्तित हो गया, इसका प्रसंग जयप्रकाश नारायन के विचारों में प्रतिबिम्बित है। जयप्रकाश नारायन ने सन् १९५० में भारत-पाक समझौते के सन्दर्भ में कहा था कि, इस समझौते से सहमति और सहकार के नये युग का सूत्रपात हुआ। किन्तु दोनों देशों में अल्पसंख्यकों के स्वाधिकार और संरक्षण की दृष्टि से समझौते को जयप्रकाश ने पर्याप्त रूप से प्रभावकारी नहीं माना। जयप्रकाश ने पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों के प्रति अन्याय और अत्याचार की घटनाओं को लज्जाजनक कहा था। 'पाकिस्तान में हिन्दुओं के साथ जो जुल्म किया गया, उसकी जितनी सख्त निन्दा की जाय थोड़ी है'।[२१] जय प्रकाश ने अल्पसंख्यकों के प्रश्न को सहमति और सहजीवन की पद्धति से समाधान करना विश्व के लिये अधिक तर्क पूर्ण माना है। विवाद, या बल प्रयोग या विभाजन अल्पसंख्यकों के प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत नहीं करते। जय प्रकाश के भाषणों के एक संकलन में- 'आजादी खतरे में' - यह स्पष्ट है कि, राष्ट्रीय सहजीवन के लिये परस्पर सम्मान और सद्भाव की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं की भावनाओं का आदर करना भी अनिवार्य है।

पांथिक दृष्टि की उपासना पद्धति के सन्दर्भ में भारतीय इतिहास में हिन्दू-मुसलमानों का संघर्ष सैकड़ों वर्षों तक चला और फिर विभाजन हो गया। एकात्म मानववादी चिन्तन ने इस्लाम पंथ से एक अपेक्षा इस प्रसंग में की है कि मुसलमान भारत के राष्ट्रीय प्रवाह से सामंजस्य स्थापित करें। एकात्म मानव दर्शन के प्रबल प्रवक्ता श्री गुरू जी का राष्ट्र समर्पित जीवन था, उन्होंने केवल हिन्दूत्व का ही विचार नहीं किया। मुसलमान नहीं चाहिये, यह उनकी भावना कदापि नहीं थी, किन्तु उनका यह आग्रह अवश्य ही था कि, मुसलमान राष्ट्रीय प्रवाह से समरस हों।[२२]

संदर्भ संकेत

१- वेदचिन्तन - विनोबा भावे - पृ० ५७
२- वही पृ० २००
३- चतुर्वेद मीमांसा - डॉ॰ मुंशीराम शर्मा - पृ० ४१

४- ऋगवेद - १०/१६१/२
५- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त - पृ० २१५
६- चतुर्वेद मीमांसा - डॉ० मुंशीराम शर्मा - पृ० ६५
७- वही पृ० ६६
८- वही पृ० ६४
९- महाभारत की राज्य व्यवस्था - डॉ० प्रेम कुमारी - पृ० २१६
१०- वही पृ० ५६
११- महाभारत आरण्य पर्व - ३४/६०
१२- महाभारत की राजव्यवस्था - डॉ० प्रेम कुमारी - पृ० ५६
१३- दही पृ० ७२
१४- अशोक - विन्सेन्ट स्मिथ - पृ० ६०
१५- रघुवंश - कालिदास - १४/६७
१६- विवेकानंद साहित्य - विवेकानंद - खंड ६ - पृ० ४०५
१७- कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मागांधी - खंड ७८ - पृ० ४०३/४०४
१८- वही खंड ७८ - पृ० ४०६/४०७
१९- वही खंड ७८ - पृ० ४१३
२०- वही खंड ७८ - पृ० ४०८
२१- आजादी खतरे में - जयप्रकाश नारायन - पृ० १५
२२- श्री गुरुजी - समग्रदर्शन - पृ० १५६

◆ ◆ ◆

14

धर्म, राजनीति और राज्य

धर्म सापेक्ष किन्तु पंथ निरपेक्ष प्राचीन तथा परम्परागत भारतीय राजनीति का विहंगावलोकन प्रासंगिक है । प्राचीन भारतीय राजनीति का कालक्रमानुसार विवरण या विवेचना उपलब्ध नहीं है । किन्तु ईसा के सहस्त्रों वर्ष पूर्व भारतीय राजनीति परिपक्व अनुभवों तथा अध्ययनों से परिपोषित थी । इतिहास (महाभारत शान्ति पर्व) में राजनीति के निष्णात पंडितों का प्रसंग महत्वपूर्ण है । ईसा से लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व (कौटिल्य अर्थशास्त्र) में भी प्राचीन राजनीति शास्त्रियों की सूची उपलब्ध है । इन सभी साक्ष्यों से स्पष्ट है कि, महात्मा बुद्ध के पूर्व राजनीतिक सिद्धान्तों और सोच का विकास भारत देश में अपनी प्रौढ़ता में था ।[1]

भारतीय राजनीतिशुभारम्भ

राजनीतिक पद्धति में यह सन्निहित माना जायेगा कि इसकी पृष्ठभूमि में जो विचारधारा है, उसका स्रोत क्या है ? इस विचारधारा का प्रसार या व्याप्ति का स्तर क्या है ? इस विचारधारा की स्वीकृति में इतिहास, भूगोल या समाज अथवा संस्कृति की भूमिका क्या है ? राजनीतिक पद्धति का देश-विदेश की विचारधारा से सामंजस्य, राज्य और समाज की समरसता या संतुलित सम्बन्धों का अनिवार्य अनुबन्ध है।राजनीतिक पद्धति की समग्रता, संविधान में निहित संस्थाओं के अतिरिक्त सामाजिक- सांस्कृतिक पृष्ठभूमि या परम्परा तथा प्रवाह से है । इसके द्वारा नैतिक आधार का, स्पष्टता तथा श्रेष्ठता से स्थापन में सहायता उपलब्ध होती है । जो विश्वास शताब्दियों में विकसित और पोषित होते हैं और जो व्यवहार उनसे संलग्न हो जाते हैं, उनके आधार पर राजनीतिक पद्धति बलवती बनती है ।

वैदिक युग से लेकर भारत में इस्लाम पंथ के प्रवेश के पूर्व तक भारतीय राजनीति के शास्त्र और व्यवहार में विकास अवश्य हुआ है । भारत की राजनीतिका इतिहास यूरोप में अधिक प्राचीन है । भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में राजनीतिकी पहिचान विविध नामों से की गयी है । वैदिक साहित्य (छांदोग्य उपनिषद) में इसे क्षात्र विद्या कहा गया है । महाभारत शान्ति पर्व में इसे राजधर्म की संज्ञा है । बौद्ध साहित्य (पंचतंत्र) में राजनीति नृपविद्या है । स्मृति शास्त्रों (मनु-वृहस्पति) में इसे दंडनीति बताया गया है । प्राचीन विचारक कामान्दक ने इसे नीतिशास्त्र कहा है । कौटिल्य ने राजनीति को अर्थशास्त्र के रूप में निरूपिन किया है । एक अन्य (चंदेश्वर) ने राजनीति को राजनीति के रूप में ही ग्रहण किया । भारतीय राजनीति के इतिहास में महाभारतकार

द्वारा इसे राजधर्म के रूप में मान्यता प्रदान करना अधिक महत्वपूर्ण है । महाभारत के अनुसार सभी का पोषण करने वाला राजधर्म, सभी धर्मों में प्रधान है ।

राजनीति समाज को स्थापित तथा संगठित करने का शिल्प है । राजनीति दंड शक्ति के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक सम्बन्धों, आर्थिक अनुबंधों, और प्रबंधों का शास्त्र है । राजनीति में एक बड़ी सीमा तक विधि निहित या विधि विहित शक्ति अन्तग्रस्त है। राजनीति, नीतिशास्त्र के रूप में मनुष्य जाति के सर्व पुरूषार्थों का आधार है । प्राचीन भारत में धर्म और अध्यात्म से पृथक राजनीति की सत्ता नहीं रही है । पांथिक या साम्प्रदायिक दृष्टि भारतीय राजनीति की नियामक नहीं है । विचार स्वातंत्र्य के वातावरण ने विभिन्न विश्वासों के वैचित्र्य को राजनीति पर हावी नहीं होने दिया ।

प्राचीन भारतीय या हिन्दू राजनीति की प्रवृत्तियों को इतिहासकारों ने सुनिश्चित किया है कि हिन्दू राजनीति धर्म - विधान से ऊपर नहीं रही है । हिन्दू राजनीति और राज्य मानवीय संस्थान रहा है । हिन्दू राजनीति अनुबंधित प्रतिमान की पोषक रही है । हिन्दू राजनीति और राज्य की सक्रियता, सहकार पर आधारित रही है । हिन्दू राज्य एक न्यास के रूप में रहा है, जिससे समाज में विकास और सम्पन्नता स्थापित रहे । हिन्दू राज्य प्राथमिक रूप से राष्ट्रीय स्तर का, और द्वितीय रूप से क्षेत्रीय रहा है ।[2]

प्राचीन भारत में राजा या राजनीति या जीवन का कोई क्षेत्र स्वेच्छाचारी नहीं था । धर्म से नियंत्रित होने के अपेक्षा ही नहीं, अनिवार्यता थी । अपवाद रूप में राजा स्वच्छन्द हो जाते थे । किन्तु स्वेच्छाचारिता की घोषणा का दुस्साहस दुर्लभ था । यह भी महत्वपूर्ण है कि धर्म के स्वरूप का निर्णय राज्य या राजा के अधिकार क्षेत्र के बाहर था ।

प्राचीन भारतीय साहित्य के आधार से यह स्पष्ट है कि, धर्म की उत्पत्ति राज्य संस्था के पूर्व की है । राज्य का विकास या राजा - संस्था का प्रादुर्भाव धर्म की व्यवस्था को पोषित करने के कारण हुआ है । राज्य पर धर्म के अनुशासन को राजधर्म कहा गया । प्राचीन युग में इस राजधर्म की उत्पत्ति राजा या राज्य द्वारा नहीं, विचारक या ब्रह्मज्ञ वर्ग द्वारा होना महत्वपूर्ण है ।

प्राचीन भारत में राज्य शक्ति के विकास और विवेक के प्रसार में धर्म की प्रबल भूमिका है । प्राचीन भारत में राज धर्म, प्रबलतम शक्ति के रूप में सभी क्षेत्रों में व्याप्त रहा है । संस्कृत तथा बौद्ध साहित्य में राज धर्म मानवीय मूल्यवत्ता से आक्रान्त रहा है। जैन साहित्य में भी धर्माधारित राज्य और राजनीति का प्राधान्य रहा है । मध्यकालीन सन्तों ने धर्म आधारित राजनीति को व्याख्यायित किया है । उन्नीसवीं शती के पुनर्जागरण काल के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि, राजनीति को धर्म आधृत होने पर ही उचित और उपादेय रूप में स्वीकृति दी गयी । उन्नीसवी शती के अन्तिम दशक में स्वामी विवेकानंद के प्रवचनों में भारतीय धर्म की सहस्त्रों वर्षों की परम्परा का उल्लेख है । इसमें धर्म आधारित राज्य और राजनीति के प्रति सहमति है । बीसवीं शती में महात्मा गांधी ने धर्म और राजनीति को पृथक - पृथक् ग्रहण नहीं किया है । जिस धर्म का निषेध अन्य विचार पद्धतियों ने किया है, उनका धर्म, पंथ (रिलीजन) या मजहब का पर्याय है ।

प्राचीन भारतीय राजनीति का बोध, धर्म के संदर्भ में सम्भव है । धर्म का अस्तित्व राज्य और राजनीति के अभ्युदय के पूर्व का ही है । वैदिक साहित्य, धर्म - सूत्रों महाकाव्यों (रामायण - महाभारत) तथा बौद्ध और जैन धार्मिक साहित्य के विश्लेषण - विवेचन से स्पष्ट है कि, धर्म की सत्ता के समक्ष राज्य और राजनीति गौण है । धर्म का अंग राजनीति रही है । इस धर्म के साक्ष्य रूप चतुर्वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, तथा उपनिषद् आदि महत्वपूर्ण हैं ।

प्राचीन भारत में चतुर्वेद के आधार पर विभिन्न विचार धाराओं को सूत्रबद्ध किया गया है - श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र तथा धर्मसूत्र । श्रौतसूत्रों में राजसूय, बाजपेय, अश्वमेघ यज्ञों आदि के वर्णन में प्राचीन राज्य तथा राजनीति की प्रामाणिकता, प्रसारण और प्रतिष्ठा में धर्म की महत्वपूर्ण भूमिका का अंकन है । धर्मसूत्रों में राजनीति या राज्य का विधान धर्म की अपेक्षा और अनुकूलता के संदर्भ में है ।

भारतीय धर्म की व्यापक अवधारणा में राजनीति इसका एक अंग है । प्राग् ऐतिहासिक काल में धर्म के क्षीण होने पर व्यवस्था में न्यूनता आ जाने से दंड शक्ति का आविर्भाव हुआ । यह दंड शक्ति धर्म की सहकारी है । प्राचीन साहित्य (महाभारत शान्ति पर्व) में इसके प्रमाण हैं ।

राज्य के उत्पत्ति की भारतीय वैदिक अवधारणा का प्रसंग एतरेय ब्राह्मण में है । देव - असुर के धर्म-युद्ध में देवों की व्यवस्था में राज्यहीनता के कारण पराजय प्राप्त होती रही । किन्तु राजा के चयन से राज्य की एक स्थिति प्रकट हो गयीं, इससे देवों को सफलता उपलब्ध हुई । धर्म- युद्ध में राजा या राज्य की आवश्यकता का इस प्रसंग में प्रतिपादन है ।

वैदिक वांग्मय के शतपथ ब्राह्मण में राज्याभिषेक के संदर्भ में अभिसिंचनम द्वारा राजा को सद्गुणों से सम्पन्न करने के लिये दैवी शक्तियों का आह्वान किया जाता है। सविता के द्वारा ऊर्जा, अग्नि द्वारा पारिवारिक सम्पन्नता, सोम द्वारा अरण्य, वृहस्पति द्वारा वाणीबल, इन्द्र द्वारा शासनिक क्षमता, रूद्र द्वारा पशु समूह की सुरक्षा, मित्र द्वारा सत्य और अन्त में वरूण द्वारा धर्म की रक्षा की सामर्थ्य की अपेक्षा महत्वपूर्ण है ।

अत वरूणाय धर्मपतये ।
वारूंणयवमयं चरूं निर्वपति तदेनं वरूण
एवं धर्म पति धर्मस्य पतिं करोति परमता वैसायो
धर्मस्य पतिरसद्यो हि परमतां गच्छति - - - [3]

केवल विधि - विधान या व्यवस्था, यहाँ धर्म शब्द की पर्याय रूप से सामर्थ्य प्रकट नही कर पाते हैं । धर्म शब्द में व्यवस्था या विधि - विधान या अनुशासन आदि निहित हैं ।

अभिषेक समारोह के उपरान्त सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् राजा को दण्ड से स्पर्श कर धर्म की सर्वोपरिता का स्मरण कराने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है ।

राज्याभिषेक के प्रसंग में राज्य और धर्म के सम्बन्ध का स्पष्ट दर्शन है । राजा अभिषेक के अवसर पर "अदंड्योऽस्मि" (मैं दंडित नहीं हो सकता), उच्चारण

करता है । सब ऋषि धर्म के प्रतीक दंड से राजा का तीन बार स्पर्श कर कहते हैं कि, राजन तुम धर्म द्वारा दंडित किये जा सकते हो ।

प्राचीन भारतीय राजनीति में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सहिष्णुता अति महत्वपूर्ण है । सत्य के प्रयोग और शोध के अधिकार के लिये परस्पर विरोधी चिन्तन पद्धति के सहअस्तित्व को प्राचीनकाल से भारतीय समाज ने स्वीकार किया है । भौतिकवादी (चार्वाक), शून्यवादी, अद्वैतवादी, द्वैतवादी, आत्मवादी और अनात्मवादी वैचारिक संघर्ष को पोषित करते रहे । किन्तु किसी पर प्रतिबंध नहीं रहा है । तर्क, युक्ति तथा विवेकपूर्ण प्रतिपादन, विचार स्वातंत्र्य का आधार स्तम्भ है ।

वैदिक राजनीति का विवेचन इतिहासकारों ने किया है । वैदिक साहित्य में देव जगत के राजा रूप में इन्द्र,वरुण तथा यम आदि का अंकन है । ये शासक रूप में, धर्म के आधार पर स्थित है । ऋग्वेद में इन्द्र आदि शब्द अनेक पदार्थों के वाचक हैं । इन्द्रसूर्य हैं । इन्द्र विद्युत हैं । इन्द्र आत्मा हैं । इन्द्र परमात्मा हैं । इन्द्र वैभव हैं । इन्द्र सम्राट हैं । वैदिक शब्द पारिभाषिक कहे गये हैं । इसके अर्थों में विविधता हो सकती है । किन्तु धर्म की धारणा से राजनीति या राज्य, राजा तथा सम्राट आदि अनुशासित है ।

वैदिक राजनीति और धर्म

वैदिक राजनीति विश्व में सर्वाधिक प्राचीन है । यह भारतीय राजनीति का आदि रूप है । इसका अधिक विवेचन अनावश्यक नहीं हैं । वैदिक साहित्य में राज्य व्यवस्था का राज धर्म के रूप में विवेचन है । वेद में इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि, सम्राट और उसके सहायक सब राज्याधिकारियों को अपने जीवन में सत्य, न्याय, अहिंसा, संयम आदि धर्म के विभिन्न अंगों का परिपूर्ण रूप से पालन करना चाहिए। वेद में स्थान - स्थान पर राज्याधिकारियों के लिये सत्य के प्रवर्तक, सत्य के प्रथम प्रवर्तक, सत्य में निवास करने वाले, सत्य को धारण करने वाले विशेषणों का प्रयोग किया गया है । - - - -राज्य के सामान्य प्रजाननों के लिये भी वेद ने धर्म के इन सत्य आदि अंगों के परिपूर्ण करने पर अत्यधिक बल दिया है '।[४]

वैदिक साहित्य में धर्म, राज्य की विधि - विधानों के लिये भी प्रयुक्त किया गया है । स्मृति - शास्त्र और धर्मशास्त्रों में राज्य नियमों के लिये धर्म शब्द का प्रयोग किया गया है ।[५]

ऋग्वेद में राज्य समिति का उल्लेख है, इसके सदस्यों के कर्तव्य का भी विवेचन है । सदस्यों का कर्तव्य है कि, जब वे सभाओं में जाये तो उनके वहाँ जाने से सभायें पवित्र हो जायें, '- - - -उन्हें सभा में जाकर धर्म को, न्याय को, सत्य के बढ़ान वाला बनना चाहिये, अधर्म को, अन्याय को, असत्य को बढ़ाने वाला नहीं ।'[६] ऋग्वेद में जिन देवताओं का उल्लेख किया है । उनको राज्य संस्था के अधिकारियों के रूप में भी निरूपित किया गया है । वैदिक देवमाला को मंत्रिमंडल के रूप में भी समझा गया है ।[७] देवमाला में इन्द्रसम्राट है । अग्नि, वरुण, मित्र, अश्विनी, पूषा, वृहस्पति, सोम, त्वष्टा और रुद्र आदि राज्य के विभिन्न विभागों का कार्य धर्मानुसार संचालित

करते हैं । इन्द्र वेद का सर्व प्रमुख प्रधान देवता है । चारों वेदों में इन्द्र देवता के मंत्रों की संख्या ३३६३ है । अग्निदेवता के मंत्रों की संख्या २४६१, सोम देवता के १२६१ मंत्र, अश्विनी देवता के ६८६, मरूत देवता के ४६४, और रूद्र देवता के २२७ मंत्र हैं । इन मंत्रों में विभिन्न देवताओं के वर्णन हैं । पौराणिकों से भिन्न, वेदों के भाष्यकार इन देवताओं को राज्य संस्था के अंग मानते हैं । 'न तो अग्नि और इन्द्र आदि पौराणिक देवताओं कीकोई सत्ता है, न ही उस स्वर्ग की कोई सत्ता है, जहाँ ये पौराणिक देवता निवास करते हैं '।[८] सम्राट इन्द्र आदि सब धर्मानुसार ही कार्य करते हैं ।

वेदों के राजनीतिक सिद्धान्तों की विवेचना में सोम को न्यायकर्ता के रूप में भी प्रतिपादित किया गया है । ऋग्वेद में सोम को धर्म का धारण करने वाला बताया गया है ।[९] सोम द्वारा दिये गये दंड के भय से लोग पाप नहीं करेंगे । वे पाप से ऊपर रहकर धर्म का आचरण करेंगे । धर्माचरण में सहायक होकर सोम राष्ट्र में धर्म की रक्षा करेंगे । एक और प्रकार से भी सोम धर्म की रक्षा करेगा । राज्य के विधि-विधानों को, नियमों और कानूनों को भी धर्म कहा जाता है सोम और उससे उपलक्षित न्याय विभाग, सबसे राज्य के नियमों का पालन करायेगा । किसी के द्वारा उनको भंग नहीं होने देगा । इस दृष्टि से भी सोम धर्म की रक्षा करेगा ।[१०]

वेद में इस सोम का उल्लेख आता है, उसके मानव रूप के विवेचन में उसे न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी तथा राजा के सहायक रूप में भी माना गया है।[११] सोम सत्यः या सत्य का ही रूप है ।[१२] सोम सत्यं बदन्, सत्यमन्या, सत्यशुष्कः सत्यकर्मा आदि है । सोम सत्यमय है । सत्य ज्ञानयुक्त है । सोम सत्यों को ही करने वाला है । सत्य के घर बैठता है । सत्य में निवास करता है । वह सत्य की नौका पर बैठकर अपने कार्यों के समुद्र को पार कर जाता है । सोम को सत्य पर परम आस्था है ।[१३] इस भूमिका से सोमधर्म की रक्षा करता है । ऋग्वेद में सोम को धर्मों का धारण करने वाला कहा गया है । सोम द्वारा दिये गये दंड के भय से लोग पाप नहीं करेंगें । वे पाप से दूर रहकर धर्म का आचरण करेंगें । उनसे किसी को किसी प्रकार का दुख और कष्ट नहीं पहुँचेगा । इस प्रकार धर्माचरण में सहायक होकर सोम राष्ट्र के धर्म की रक्षा करेगा । एक और प्रकार से भी सोम धर्म की रक्षा करेगा । राज्य के विधि विधानों और नियमों को भी धर्म कहा जाता है ।[१४]

ऋग्वेद में सविता भी इन्द्र का एक सहचारी देवता है । सविता के व्यक्तित्व और कृतित्व में वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त को स्पष्ट किया गया है । सविता धर्म को उत्पन्न करते हैं । सविता धर्म को प्रेरित करते हैं । इससे स्पष्ट है कि सविता विधि - विधान बनाकर राज्य का संचालन करे, और प्रजाजनों को उन पर चलने के लिये प्रेरित करे ।

' मित्रों भवसि देव धर्माभिः '।[१५]

' देव : सविता धर्म साविषत् '।[१६]

ऋग्वेद के उद्धरण का अर्थ है कि हे सविता देव तुम धर्मों अर्थात् नियमों के द्वारा (धर्मभिः).लोगों के मित्र बनते हो । इस प्रकार राज्य के विधि- विधान राष्ट्रवासियों के वश में रखते हैं । सब मर्यादा में रहते है, और कुमार्ग से रोककर, सन्मार्ग प्रशस्त

करते हैं । सविताको ऋग्वेद में सत्यधर्मी कहा गया है - 'देव इव सविता सत्य धर्मा' ।[17] सत्यधर्मा, इस विशेषण का अर्थ है कि सविता का कार्य, धर्म अर्थात् नियमों का निर्माण करना है । सविता देवता द्वारा, सत्य का अर्थात् न्याय का आश्रय लेकर नियम बनाये जाते हैं । सविता द्वारा ऐसा राजधर्म प्रेरित या प्रवर्तित होता है, जो प्रजाजनों को मर्यादित सहजीवन प्रदान करता है ।

इस राजधर्म द्वारा असत्य और अन्याय का प्रक्षालन होता है । स्वामी दयानंद के भाष्यानुसार सविता देवता धर्म कृत्यों के निमित्त प्रेरक है - सविता धर्म कृत्येणु प्रेरकः' यजुर्वेद में सविता राजनियमों के प्रेरक हैं -सविता राजनियमः प्रेरकः ।[18]

ऋग्वेद के अनुसार वेद में सूर्य इन्द्र का एक सहचर है । सूर्य सत्य ज्ञान का विस्तार करता है - सत्यं तातान सूर्यः ।[19] यह सूर्य धर्म से युक्त है - 'धर्मणा सूर्यः शुचिः ।'[20] इस कारण पवित्र है । धर्माचरण के कारण सूर्य पवित्र है । राजधर्म जीवन में सद्गुणों की स्वीकृति है । राजधर्म का अभिप्राय है - सत्य तथा ब्रह्मचर्य आदि। कर्तव्यपालन, सहिष्णुता आदि गुणों को ग्रहण करना और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि दुर्गुणों से दूर रहना राज्यकर्ता का धर्म है । जनता के कल्याण के लिए बनाये गये राजनियमों को धर्म कहा गया है । नियमों का पालन करना भी धर्म है । 'सूर्य इसी व्यापक अर्थ में धर्म का पालन करता है, और इसीलिये वह शुचि है, पवित्र है ।'[21] वेदों में विष्णु को इन्द्र का सहकारी राज्याधिकारी के रूप में निरूपित किया गया है । ऋग्वेद में सर्व की रक्षा और किसी से भी न दबने वाला विष्णु, तीन पग चलता है । वह अपने इन पगों से धर्मों का धारण करने वाला है । ऋग्वेद में विष्णु के तीन पगों द्वारा तीनों लोकों को नापने का प्रसंग एक काव्यमय आलंकारिक वर्णन है । इस विष्णु की पहुँच राष्ट्र के तीन अधिकार क्षेत्रों तक है । विष्णु के तीन पगों द्वारा लोक कल्याण सम्पादित होता है । ऋग्वेद के मंत्र के अनुसार विष्णु तीन पगों द्वारा धर्मों को धारण करता है । 'राष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों से उनके धर्मों का या उनके कर्तव्यों का पालन कराना विष्णु का कार्य है ।'[22]

ऋग्वेद ने 'अग्नि को राजा कहने के अतिरिक्त धर्मों का अध्यक्ष भी कहा है। धर्म का अर्थ होता है, प्रजाओं के अपने -अपने कर्तव्य-कर्म, राज्य-नियम, न्याय व्यवस्था। - - - धर्माध्यक्ष का अर्थ होगा, वह जो कि यह देवता देखता है कि प्रजाजन अपने-अपने कर्तव्य - कर्मों को ठीक कर रहे हैं कि नहीं । राज्य - नियम समुचित रूप में चल रहे हैं कि नहीं, और व्यवस्था ठीक हो रही है कि नहीं ।'[23]

ऋग्वेद में राजा के प्रतीक रूप अग्नि को माना गया है । ऋग्वेद के मंत्रों में राजा को सत्य धर्मों पर चलने वाला क्रान्तदर्शी विद्वान कहा गया है - 'कविमग्निं सत्यधर्माणम् ।'[24]

ऋग्वेद में राजा को धर्म आदि की वृद्धि का कारण कहा गया है । राजा 'राष्ट्र के सौभाग्य को बढ़ाने वाले उपायों को जानने वाला है । ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य इन छः को भग कहते हैं । ये छः जिस राष्ट्र के लोगों के पास होंगे, वही सौभाग्यशाली कहलायेगा । राजा ऐसा होना चाहिए, जो इन छः के बढ़ाने का उपाय जानता हो ।'[25]

यजुर्वेद में सविता देवता से धर्म की उत्पत्ति का कथन है -

' देवः सविता धर्म साविषत् '। [२६]

'धर्म शब्द का संस्कृत में अति प्रसिद्ध अर्थ, विधि अर्थात नियम या कानून होता है । धर्म का शब्दार्थ होता है कि, जिसके द्वारा धारण किया जाये अथवा जो धारणा करे । विधि या नियमों के द्वारा राष्ट्र धारण किया जाता है , इसलिये उन्हें धर्म कहा जाता है । बिना नियमों के कोई भी राष्ट्र न तो स्थिर ही रह सकता है, और नहीं उन्नति ही कर सकता है । संस्कृत में मनुस्मृति आदि ग्रंथों को धर्म- शास्त्र कहा जाता है, इन ग्रंथों में धर्म अर्थात् व्यक्तिगत जीवन के नियमों और राज्य के नियमों का वर्णन होता है, इसलिये इन्हें धर्मशास्त्र अर्थात् धर्म का उपदेश देने वाले ग्रंथ कहा जाता है । 'कोषों में धर्म का विधि या कानून एक मुख्य अर्थ किया गया है । संस्कृत में न्यायाधीश को धर्माध्यक्ष या धर्माधिकारी तथा न्यायालय को धर्माधिकरण कहते हैं ।' [२७]

यजुर्वेद के उपरोक्त मंत्र का अभिप्राय है कि सविता धर्म को उत्पन्न या प्रेरित करे । अर्थात् कानून बनाकर उन्हें राष्ट्र में चलाये, तथा प्रजाजनों को उन पर चलने को प्रेरित करे ।

सविता सत्य धर्म है । [२८] सविता सत्यधर्मी अर्थात् सत्य नियमों वाला है । सविता का कार्य धर्म अर्थात् नियमों का निर्माण करना है । भाव यह है कि राजा को सत्य और न्याय पर आरूढ़ रहकर नियमों का निर्माण करना चाहिए, और उनका दृढ़ता से पालन करना चाहिए । [२९]

वेदों में राजा के कार्य में सहायता तथा स्वेच्छाचारिता पर अंकुश के लिये समिति और सभा का उल्लेख है । अर्थववेद (सातवें कांड के १२ वें सूक्त) में इसका विवेचन है । समिति से अपेक्षा है कि, अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर सत्य और हित का सम्पादन करे । इसके निर्माण का उल्लंघन न किया जाये । इस समिति के सदस्यों की योग्यताओं का उल्लेख ऋग्वेद में है । सदस्य उत्तम बुद्धि तथा सर्वदेवों के गुणों से युक्त, स्नातक तथा विद्वान हो । सदस्य सभा के द्वारा धर्म, न्याय सत्य का ही प्रसार करेगा अधर्म, अन्याय और असत्य का समापन करेगा । [३०]

समिति का कार्य धर्म या नियम का निर्माण है । अंग्रेजी के "ला" शब्द में जो भाव है वह वेद के धर्म शब्द में भी है । राजनीतिक नियम राष्ट्र का धारण करते हैं। इसलिए वे धर्म हैं । सब धर्म-सूत्रों और स्मृतियों में राज्य नियमों के लिये धर्म शब्द ही प्रयुक्त हुआ है । [३१]

वैदिक राज्य, धर्म राज्य तो है, परन्तु साम्प्रदायिक राज्य नहीं है । यह पूर्ण रूप से असाम्प्रदायिक राज्य है । आत्मा, परमात्मा और प्रकृति के सम्बन्ध में दार्शनिक या तत्वज्ञान की दृष्टि से एक विशेष प्रकार के विचारों का उपदेश करते हैं । इन दार्शनिक विचारों का मनुष्य के व्यावहारिक जीवन पर भी प्रभाव पड़ता है, और उसका एक विशेष प्रकार का जीवन दर्शन बन जाता है । वेद अपने इन दार्शनिक विचारों, और उनके आधार पर बनने वाले मनुष्य के व्यावहारिक जीवन दर्शन को ही वस्तुतः मानव के लिये कल्याणकारी मानते हैं ।

अथर्ववेद (बारहवें काण्ड में - प्रथम सूक्त, भूमि सूक्त के ४५ वें मन्त्र) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, 'भिन्न-भिन्न भाषाओं को बोलने वाले और विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों को राष्ट्र में इस प्रकार प्रेम से मिलकर रहना चाहिए, जिस प्रकार कि एक घर के लोग मिलकर रहते हैं। ---- वैदिक राज्य में दस्यु को तो दंडित किया जाता है, परन्तु विचार भेद के कारण किसी को दण्डित नहीं किया जाता '।

यजुर्वेद में राज्य को धर्म के आधार पर स्थित होने का उल्लेख है। प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में पुरोहित राजा से पूँछता है कि, 'हे सत्य परायण राजा (सत्य राजन्) तुम कौन हो ? तुम्हारा रूप क्या है ? तुम किस प्रयोजन के लिए सिंहासन पर बैठ रहे हो?'

इसके उत्तर में राजा, अपने रूप का वर्णन करता है, और राजा बनने के अपने प्रयोजन को बताता है।[३२] राजा धर्मानुसार प्रजा पालन के लिये संकल्पित है। वैदिक साहित्य में राजनीति के समाधान अंकुरित हैं। ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त संज्ञान सूक्त है, इसमें समाजवाद तथा मानवतावाद का उल्लेख है। मनुष्य जाति के पाशविक रूप के उदात्तीकरण की प्रक्रिया में धर्म की प्रमुख भूमिका की वैदिक साहित्य में उन्मुक्त स्वीकृति है। वैदिक धर्म पशुता से मानवता की अपवाद रहित यात्रा है। इस धर्म में अग्रिम या आधुनिक इतिहास में जन्में समाजवाद की समता और मानवतावाद में व्यक्ति की महत्ता के सशक्त बीज हैं।[३३]

वैदिक साहित्य में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के निर्देश हैं। कल्याणकारी राज्य से अधिक अर्थगर्भित धर्मराज्य है। ऋग्वेद में राजा या राज्य द्वारा ऐसे प्रबंध की अपेक्षा है, जिससे प्रजाजनों की भूख शान्त रहे। 'हे अग्ने (सम्राट) ये प्रजायें तेरे किसी भी नियम को (व्रतों) को नहीं तोड़ती है, क्योंकि तू इसके लिये अन्न प्रदान करता है। ---- हे इन्द्र (सम्राट) तू भूखे लोगों को और दूध आदि पदार्थ प्रदान करें। हे लोगों, तुम्हारा अन्न क्षीण न होने पाले, उसे दृढ़ करके रखो '।[३४] वेद के अनुसार अभावग्रस्त प्रजाजनों की आवश्यकताओं की पूर्ति राजा का कर्तव्य है। 'एक अच्छे सम्राट का कर्तव्य है कि वह प्रजाओं के अन्न को क्षीण न होने दे - उसकी क्षुधा को मिटाने के लिये सदा भरपूर अन्न का प्रबंध करता रहे। --- भूख, प्रजाओं की सभी आवश्यकताओं का उपलक्षण है।'[३५] राज्य की प्रजाओं की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में पंथ, आस्था आदि कोई बाधक नहीं है।

'वेद का धर्म और उसकी राजनीति, विभिन्न राष्ट्रों के अपने -अपने पृथक राज्य संघों तक ही जाकर नहीं ठहर जाती। वे इससे आगे बढ़कर सारी मनुष्य जाति को एक कुटुम्ब और एक राज्य बनाना चाहते हैं। --- वेद का परम अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने मन का इतना ऊँचा विकास करे कि वे सारी धरती को ही अपना एक राष्ट्र और मातृभूमि समझ सके।'[३६]

जनहित या जन कल्याण के निमित्त निर्मित वैदिक राजनियमों में निहित धर्म, वैश्विक धरातल पर मानवतावादी दर्शन या दृष्टिकोण को विस्मृत नहीं करता। यह राज धर्म, मानव सापेक्ष धर्म है। इसका पालन करना भी धर्म है। इस व्यापक अर्थ में राज धर्म के पालन से मनुष्य पावन बनता है।

अर्थववेद के एक सूक्त में यह स्पष्ट कहा गया है कि राष्ट्र (या प्रजा) रोहित (या परमात्मा) का है । राष्ट्र परमात्मा की वस्तु है । राजा स्वछेया उसे भोग की सामग्री नहीं बना सकता । परमात्मा ने अपना राष्ट्र राजा को दिया है । राज्य को राष्ट्र के उन्नयन और उत्कर्ष के लिये कार्य करना है । राजा द्वारा वैयक्तिक भोग के लिये राष्ट्र या प्रजा का प्रयोग करना अनुचित है ।[३७] राज्य या राजा द्वारा रूचि वैचिव्य के आधार पर प्रजाजनों का तुष्टीकरण या तिरस्कार अमान्य है ।

उपनिषद् युग में धर्म राज्य की कल्पना का विस्तार उल्लेखनीय है । छान्दोग्य उपनिषद् में राजा द्वारा भौतिक उन्नति को पर्याप्त नहीं माना गया है । नैतिकता की निरन्तरता का उल्लेख अश्वपति राजा केकय के विश्वासयुक्त कथन में है कि, उसके राज्य में चोर, कायर, मद्यप, अग्निहोत्रहीन, अशिक्षित, दुराचारी आदि नहीं है ।[३८] धर्म राज्य में शान्ति - व्यवस्था, भौतिक सम्पन्नता तथा नैतिकता की स्थिति महत्व की है । राज्य अपने दायित्व में नैतिकता का भी निषेध नहीं कर सकता । विधि -विधान का हस्तक्षेप, नैतिकता का गहराई तक स्पर्श नहीं कर सकता ।

राजनीति का आध्यात्मिकीकरण

भारतीय राजनीति के आध्यात्मिकीकरण की प्रक्रिया प्रागू ऐतिहासिक काल से प्रारम्भ हो गयी थी । उपनिषदों में राजन्य वर्ग और इसके द्वारा राजनीतिक यज्ञों को आध्यात्मिक आवरण प्रदान किया गया था । बृहदारण्यक उपनिषद् के द्वितीय अध्याय के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय ब्राह्मण में काशिराज अजातशत्रु को ब्रह्म विद्या का उपदेशदेने वाले गार्ग्य दृप्त बालाकि ब्राह्मण का आख्यान है । किन्तु गार्ग्य द्वारा ब्रह्म विद्या के निरूपण से अजातशत्रु प्रभावित नहीं होते । काशिराज अज्ञातशत्रु ने, गार्ग्य जो उत्तम वर्ण ब्राह्मण है तथा आचार्यत्व के अधिकारी हैं, उसे ब्रह्म विद्या का बोध कराया, और 'सत्यस्य सत्यम' - सत्य का सत्य प्रकट किया -[३९] 'सत्यस्त सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तैषामेष सत्यम् ।'[४०] राजन्य वर्ग द्वारा ब्रह्म विद्या का उद्बोधन उस बौद्धिकता को अभिव्यक्त करते हैं, जो जीवन के प्रति या सर्वभूतों के प्रति दृष्टि को परिवर्तित करता है । राजन्य वर्ग द्वारा सर्वत्र एकत्व का निरूपण समता आदि को एक आध्यात्मिक आधार प्रदान करता है ।

बृहदारण्यक उपनिषद के तृतीय अध्याय में विदेह के राजा जनक की राज-सभा में जिस तात्विक परिसंवाद के वर्णन हैं, वे अपने में राजनीति और अध्यात्म के सम्बन्ध को स्पष्ट करने में पर्याप्त हैं । मृत्यु की मृत्यु द्वारा इसमें जीवन के अपराजेय स्तर का प्रतिपादन किया गया है । पंथ सापेक्षता को नकारने का दार्शनिक आधार उपनिषदीय ज्ञान ने प्रदान किया है ।

'आत्मा सर्वान्तिरी' या आत्मा को सर्वान्तिर बताकर सर्वत्र एकत्व तथा अभेद का निरूपण 'याज्ञवल्कय - उषस्त' संवाद में किया गया है । परमात्म तत्व से कोई पदार्थ भिन्न नहीं है । याज्ञवल्कय कहोल संवाद का हेतु ऐसे आत्मज्ञान की प्राप्ति है, जिससे समस्त विषय दृष्टि को तिरस्कृत करने का बल उत्पन्न होता है - 'बलं नाम आत्म विद्या शेष विषय दृष्टि तिरस्करण्म् ।'[४१]

राजसभा की जिज्ञासा के विषय हैं कि, वह कौन सूत्र है, जिसके द्वारा यह लोक, परलोक और सारे भूत ग्रसित हैं ? वह कौन अन्तर्यामी है, जो लोक, परलोक और समस्त भूतों को भीतर से नियमित करता है ? इस सूत्र और अन्तर्यामी का ज्ञाता ब्रह्मवेत्ता, लोकवेत्ता, देववेत्ता, वेदवेत्ता, मूलवेत्ता, आत्मवेत्ता तथा सर्ववेत्ता हैं ।[४२] सर्वभूतों में स्थिति सर्वभूतों के अन्तर में है, तथा सर्वभूत जिसके शरीर हैं, जिसके द्वारा सर्वभूतों का नियमन है, उस अन्तर्यामी अमृत में है, तथा सर्वभूत जिसके शरीर हैं, जिसके द्वारा सर्वभूतों का नियमन है, उस अन्तर्यामी अमृत या आत्मवत्ता की शोध राज-सभा में याज्ञवल्कय और आरूणि संवाद में हो रही है ।[४३] नानात्व में या अनन्त में एकत्व की शोध द्वारा समन्वय और सामंजस्य की प्रक्रिया का संवाद राजसभा में चल रहा है। इसी उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय के प्रथम ब्राह्मण में सम्राट जनक के पास याज्ञवल्कय पशु प्राप्ति और प्रश्न दोनों के लिये ही जाते हैं । सम्राट जनक अध्यात्म विद्या के रसिक हैं - 'अध्यात्म विद्या रसिको जनकः'। याज्ञवल्क्य से आत्मज्ञान प्राप्त कर सम्राट जनक अपना समस्त राज्य देने की घोषणा करतेहैं, और दास्य कर्म के लिये अपने को भी समर्पित करते हैं ।[४४] इसी उपनिषद् के चतुर्थ अध्याय के पंचम ब्राह्मण में याज्ञवल्कय द्वारा समस्त ऐश्वर्य के ज्ञानपूर्वक परित्याग की कथा है । पंथ निरपेक्षता का आधार भौतिकवादी सभ्यता से अनासक्ति को ही उपनिषदों ने अग्रसरित किया है ।

वृहदारण्यकोपनिषद् के अध्याय छः के द्वितीय ब्राह्मण में पांचालों की परिषद् में श्वेतकेतु से राजा प्रवाहण पांच प्रश्न पूछते हैं । ये प्रश्न मनुष्य के अस्तित्व, जीवन-मरण आदि के प्रसंग में है । उपनिषद् में यह स्पष्ट है कि, यह विद्या राजन्य वर्ग द्वारा प्रकाशित हुई । क्षत्रियों की परम्परा से प्राप्त इस विचार में यह सारा जगत - कालचक्र-अग्निहोत्र से उत्पन्न हुआ है । सृष्टि तथा सृष्टा आदि की जिज्ञासा से राजन्य वर्ग ने अद्वितीय राजनीतिक सभ्यता का अभ्युदय किया है । भारत की परम्परागतपंथ निरपेक्षता इसी सभ्यता की देन हैं ।

राजाओं द्वारा अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण, महाभारत आदि में है । अश्वमेघ यज्ञ को तैत्तिरीय ब्राह्मण में राज्य या राष्ट्र कहा गया है ।[४५] यज्ञ की प्रेरणा परार्थ वृति ही है । राजा अभिषिक्त होकर ही अश्वमेघ यज्ञ कर सकता था । इसमें अश्व को स्वतंत्र रूप से विभिन्न देशों में विचरण के लिये छोड़ दिया जाता था । एक वर्ष तक अश्व चलता रहता था । पीछे लौटने का प्रश्न नहीं था । यदि अश्व का हरण शत्रु द्वारा हो जाये तो अश्वमेघ यज्ञ असफल माना जाता था । सफल होने पर अश्व का हनन कर उसके मांस की आहुति अग्नि में दी जाती थी । महाभारत में अर्जुन के नेतृत्व में दिग्विजय का वर्णन है । भारतीय इतिहास में कई सम्राटों द्वारा अश्वमेघ यज्ञ किये गये । एक उपनिषद् . अरण्य में कहे जाने के कारण आरण्यक है । परिमाण में बृहत होने के कारण बृहदारण्यक नाम है । इस उपनिषद् के प्रारम्भ में अश्वमेघ ब्राह्मण है । इस ब्राह्मण में यज्ञीय अश्व के अवयवों में विराट के अवयवों की दृष्टि का विधान किया गया है । अश्वमेघ यज्ञ के स्थूल विधि विधानों को प्रतीकात्मक मानकर उसकी संश्लिष्टता और सकामता में उपनिषदकार ने काल चक्र को यज्ञीय अश्व कहा है।

राजन्य वर्ग की साम्राज्यवादी महत्वकाक्षाओं के संदर्भ में यज्ञीय अश्व का विराट के परिप्रेक्ष्य में स्थापन द्वारा उपनिषद्कार ने अनुष्ठान से सम्भावित विग्रह और विध्वसं के निषेध की प्रस्तावना की है। इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि, राजनीति शस्त्रों और संघर्षों की रचना नहीं है। कालचक्र में राजनीति एक व्यवस्था है। अश्वमेघ यज्ञ की साम्राज्यवादी वृत्तियों से शासन तथा शोषण का सम्बन्ध नहीं है। राजनीतिक दृष्टि से अश्वमेघ यज्ञ के विचार बिन्दु है - मैत्री, मान्यता तथा मानवता का विस्तार। एक ऐसी राजनीतिक सभ्यता है, जिसमें नैतिकता ही नहीं अध्यात्म भी अनुबंधित है। एक ऐसे राजधर्म के विस्तार का मार्ग प्रशस्त किया गया है, जिसने अभेद मानवता के सार का स्पर्श हो सके। पंथ निरपेक्षता इस राजधर्म की सहज फलश्रुति है। स्मृतिकार मनु के अनुसार भी अराजक लोक की रक्षा के लिये परमात्मा ने राजा को बनाया है। उसका इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्र और कुबेर के अंशों से निर्माण हुआ है।[४६]

मनुस्मृति में राजा का सर्वोत्तम धर्म प्रजा की रक्षा है। स्मृतिकार मनु के अनुसार राजा की स्थिति स्वधर्म के निर्वहन की अनुकूलता को बनाये रखने में ही है।[४७] समाज की आध्यात्मिक, भौतिक, आर्थिक और श्रमिक शक्तियों तथा व्यक्ति की सम्यक जीवन पद्धति की संज्ञा वर्णाश्रम है। वर्णाश्रम धर्म का अभिप्राय है - समाज में मान्य सामाजिक संघटन गत संतुलन, स्वातंत्र्य और सम्मान का सातत्य। प्रत्येक व्यक्ति तथा वर्ग अपने व्यवसायगत जीवन से, और शेष व्यवस्था से संतुलन रखकर अपने धर्म का निर्वहन करें। स्मृतिकार राज्य शक्ति द्वारा इस सामंजस्य और समन्वय के पक्षधर हैं। धर्म, सामाजिक संगठन कौशल से भिन्न नहीं है। स्मृतिकार मनु ने बारम्बार धर्म के द्वारा राज्य संचालन की अपेक्षा की है। यह धर्म सामाजिक संगठन की स्थिरता से भी उत्कृष्ट सामाजिक न्याय का पोषक है। सामाजिक न्याय से भी उच्च स्थान, सामाजिक स्वातंत्र्य का है। स्वातंत्र्य एक मर्यादा है, जिसकी संज्ञा स्वधर्म कही गयी है। स्वधर्म का अनुपालन न करने या अपने कर्तव्य का अतिक्रमण, दंडनीय कहा गया है।

' माता पिता च भ्राता च भार्या चैव पुरोहित : ।
नादण्यो विद्यते राज्ञो यः स्वधर्मेण तिष्ठाति ॥ '[४८]

महाभारत और राजधर्म -

महाभारत में राजधर्म का व्यापक और विवेकपूर्ण चिन्तन उपलब्ध है। महाभारत में विवेचित राजधर्म के प्रमुख प्रतिपादक भीष्म पितामह है। भीष्म पितामह ने पूर्ववर्ती राजनीति के प्रेणताओं का उल्लेख कर परम्परा का सम्मान और प्रगति के प्रवाह का निर्वाह किया है। इस प्रकार राजधर्म के विश्लेषण में बिचार स्वातंत्र्य की मर्यादा का भी स्थापना है। पंथ निरपेक्षता, उपासना स्वातंत्र्य, तर्कपूर्ण आस्था, श्रद्धा आदि विचार स्वातंत्र्य के घटक हैं।

भीष्म पितामह अपने युग के राजनीति के अद्वितीय विद्वान थे। शान्तिपर्व का प्रसंग है कि, धर्मराज युधिष्ठिर ने महर्षि व्यास से राजधर्म से सन्दर्भ में प्रश्न किये। तब उन्होंने भीष्म पितामह से राजधर्म की शिक्षा ग्रहण करने का आदेश दिया था।[४९]

महाभारत के कृष्ण ने भी युधिष्ठिर को भीष्म पितामह से राजधर्म की शिक्षा ग्रहण करने का परामर्श दिया था । [५०] महाभारत के अनुसार राजनीति का अभ्युदय धर्मशास्त्र से हुआ है । [५१]

राजधर्म, राजाप्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन है । महाभारत में राजा को प्रजा का माता - पिता, तथा गुरू और रक्षक माना गया है । [५२] प्रजाजनों की भौतिक उन्नति और अस्तित्व रक्षण राजधर्म का अभिन्न अंग कहा गया है । इसमें राजा प्रजा का पारस्परिक दायित्व है । प्रजा का धर्म रक्षणीयता और राजा का धर्म रक्षण, या राजा की रक्षा प्रजा के कन्धों पर है । शान्ति पर्व में भीष्म पितामह ने स्पष्ट किया है कि, आपद्काल में राजा प्रजा एक दूसरे की रक्षा करें, यही सनातन धर्म है। राजा प्रजा की रक्षा करता है। राजा के ऊपर संकट में प्रजा को उसकी रक्षा करना कर्तव्य है । राजधर्म दोनों के हित पूर्ति में है । [५३]

महाभारत के आदि पर्व में एक ऋषि का कथन है कि राजा के अभाव में सुखपूर्वक धर्म का अनुष्ठान भी नहीं कर सकते हैं । राजा के द्वारा सुरक्षित होकर धर्माचरण कर पाते हैं । [५४] रक्षा के द्वारा रक्षित धर्म सम्पूर्ण जगत को धारण कर सकता है । राजा धर्म का संरक्षक है । [५५] महाभारत के शान्तिपर्व में स्पष्ट है कि धर्म का योगक्षेम भी राजा पर अवलम्बित है । [५६] भीष्म के अनुसार लोक प्रचलित धर्म राजा या राज्य में ही निहित है । [५७] आरण्य पर्व में राजा सत्य धर्म प्रवर्तक है । इसी पर्व में कहा गया है कि, जैसे देवलोक में सूर्य अपने तेज से अन्धकार का नाश करता है । उसी प्रकार राजा पृथ्वी पर अधर्म का विनाश करता है । [५८]

महाभारत में धर्म के आधार पर समाज में अनुशासन और नियमन का प्रसंग है । महाभारत के शान्तिपर्व में भीष्म का कथन है कि , सत्ययुग में न राजा था, न राज्य, न दंड था और न दंड देने वाला । समस्त प्रजा धर्म के अनुसार चलती थी और उसी से परस्पर रक्षा करती थी । धर्म से परस्पर एक दूसरे का पोषण करते हुए, उनमें मोह व्याप्त हो गया । मोह के कारण उनका धर्म नष्ट हो गया । धर्म नष्ट होने से लोभ आ गया । लोभ के कारण अप्राप्य वस्तुओं के प्राप्त करने की इच्छा करने लगे । इससे काम उत्पन्न हुआ। काम के कारण क्रोध का जन्म हुआ । इससे वेद और धर्म का नाश होने लगा । तब देव गणों की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने दंड नीति या राजनीति का निर्माण किया ।

महाभारत शान्ति पर्व के ५९वें अध्याय में राज्य सभ्यता के प्रारम्भ काल से राजाओं की सूची का उल्लेख है । प्रथम एक तेजस्वी मानस पुत्र का उद्भव हुआ । किन्तु उसने पृथ्वी का स्वामी बनने से अनिच्छा स्पष्ट की । उसके पुत्र कीर्तिमान और इसका पुत्र कदर्म तपस्वी था । कदर्म के नीतिमान पुत्र अनंग का पुत्र राजा बेन उत्पन्न हुआ । बेन अधर्म चर्या के कारण मार दिया गया । इसके द्वारा उत्पन्न पृथु धर्म विद्या में पारंगत और प्रवृत उत्पन्न हुआ । पृथु का राज्याभिषेक विष्णु तथा देवगणों ने किया। प्रजा का रंजन करने के कारण उसको राजा कहा गया । ब्राह्मणों को क्षति से बचाने के कारण पृथु क्षत्रिय कहा गया । मानवीय मूल्यवत्ता से अनुराग पूर्ण और अभय वृति से चिन्तनशील व्यक्ति ब्राह्मण वर्ग में रहे हैं ।

महाभारत के शान्ति पर्व में यह स्पष्ट है कि, जब राज्य नहीं था, धर्म था। राज्य की उत्पत्ति होने पर, यह धर्म के अनुशासन में था। धर्म से पृथक होने पर राजाबेन का पराभव स्पष्ट है।

महाभारत के इस प्रसंग से स्पष्ट होता है कि धर्म ने एक बड़े कालखंड में राज्य और राजा के अभाव में समाज का रक्षण किया। धर्म एक ऐसे सामाजिक कौशल के रूप में विकसित हुआ कि, समाज उसके द्वारा मर्यादित रहा। महाभारतकार के अनुसार धर्म ने राज्य या राजा के अभाव में भी समाज मर्यादा का सृजन और सुरक्षा की। धर्म ने लोक सम्मति द्वारा मानवीय बुद्धि को सम्यक, स्वतंत्र तथा सामंजस्यपूर्ण स्थिति प्रदान की।

महाभारत ने राज्य को संचालित और संयमित करने वाले राजधर्म को श्रेष्ठ कहा है। समस्त धर्मों में राजधर्म प्रधान है, क्योंकि इसी से समस्त वर्णों का प्रतिपालन होता है। राजधर्म में ही समस्त त्याग है, और त्याग को धर्म कहा जाता है। राजधर्म में समस्त विद्यायें निहित हैं। समस्त लोक उसी मे समाविष्ट हैं।

' सर्वे धर्मा राजधर्म प्रधानाः सर्वे वर्णौं पाल्याना भवन्ति ।
सर्वस्त्यागो राजधर्मेषु राजस्त्यागं धर्म चहुरंग यं पुराणूम ॥
सर्वस्त्यागो राज धर्मेषु दृष्टाः सर्वा दीक्षा राज धर्मेषु चोक्ता :
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्तः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्ठाः ।' [५६]

धर्मानुकूल राज्य के संचालन के कारण ही महाभारत ने राजा को देवांश से आपूरित ही नहीं, मानव शरीरधारी ईश्वर के रूप में निरूपित किया है।[६०] धर्म पथ में चलकर राज्य या राजा मनुष्यत्व की परिपूर्णता, देवत्व में उपलब्ध करता है।

महाभारत के शान्तिपर्व में धर्म और राजनीति के सम्बन्ध में कुछ अति महत्व के प्रसंग है। महाभारत ने राजा का अस्तित्व धर्म के लिये माना है - 'धर्माय राजा भवति'। राजा धर्माचरण द्वारा देवत्व की उपलब्धि करता है। धर्माचरण के अभाव में राजा दुर्गति को प्राप्त करता है - 'नारकायैव गच्छति'। जिसमें धर्म का साक्षात्कार होता है, वही राजा है - यस्मिन् धर्नो विराजते तं राजानं प्रचक्षते।[६१] प्राचीन भारत में राज्य और उसके प्रतीक राजा को धर्म के व्यापक उद्देश्य की पूर्ति का माध्यम माना गया है। यह अपेक्षा है कि, राजा धर्माचरण करेगा। धर्म के अनुसार आचरण को महाभारत में स्पष्ट किया गया है। महाभारतकार ने गर्भिणी स्त्री का उदाहरण दिया है। जिस प्रकार एक गर्भिणी स्त्री अपनी मनमानी न कर अपने गर्भ के हित का सदैव ध्यान रखतीहै, वैसे ही राजा अपनी मनमानी न कर, वे ही कार्य करें जिससे प्रजा का हित हो।[६२]

राज्य के अस्तित्व का उद्देश्य समाज का अभ्युदय है। यह धर्म के द्वारा संयमित राज्य से सम्भव है। राज्य या राजा का धर्म प्रजा का रंजन है - 'लोक रंजन मेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।'[६३]

धर्म का अभिप्राय प्रजा का हित है। प्रजा का उत्पीड़न अधर्म है। महाभारत के प्रसंगों से यह निश्चित है कि, राज्य का सम्बन्ध धर्म से बहुत गहरा गम्भीर है। यह

धर्म प्रजा के कल्याण में निहित है । धर्म केवल निश्चित विश्वासों का संग्रह ही नहीं है। मनुष्य जाति के सुख- शान्ति तथा सौहार्द से धर्म का अटूट सम्बन्ध है । महाभारतकार ने इसे ही धर्म की संज्ञा दी है । जिससे उत्पीड़न न हो । प्रजा की सुरक्षा होकर, अभ्युदय हो सके वही धर्म है । राज्य की कार्य प्रणाली धर्म द्वारा उद्देश्यपूर्ण बनकर प्रजा को अपने विकास के पूरे अवसर प्रदान करती है । अपेक्षा है कि, धर्म के अनुशासन से राज्य शक्ति संयमित रहकर, जनशक्ति को सुखद तथा शान्तिपूर्ण व्यवस्था से संलग्न कर सकेगी ।

महाभारत के अनुशासन पर्व के एक प्रसंग में स्पष्ट है कि, प्राचीन भारत में धर्मानुसार न चलने पर राज्य के अधिपति के प्रति विरोध या विद्रोह या वध की व्यवस्था रही है । राज्य का धर्म प्रजा की रक्षा है । यदि वह ऐसा नहीं करता, तो उसका पागल कुत्ते की भाँति ही बध करना उचित कहा गया है । महाभारत के शान्ति पर्व में प्रत्येक सम्भव उपाय से धर्महीन राजा का दमन करने का प्रावधान महत्वपूर्ण है ।[६४]

महाभारत के शान्ति पर्व में राज्य संचालक से जिन योग्यताओं की अपेक्षा की है, उनमें धर्म के द्वारा अनुशासित जीवन की प्रमुखता है । 'राजा हि पूजितो धर्म स्ततः सर्वत्र पूज्यते' ।[६५] राज्य का धर्मानुकूल शासन संश्लिष्ट कार्य माना गया । किन्तु राज्यकर्ता के सदाचारी होने पर शासन कार्य सहज रूप से सम्भव है । राजा सत्यवादी हो । सत्याचरण के अतिरिक्त और कोई कारण राजा की सिद्धि का नहीं होता ।[६६]

महाभारत ने धर्म को राज्यकर्ता के संचालक रूप में स्वीकृत किया है । इसके साथ ही यह महत्वपूर्ण है कि, राज्य स्वधर्म के पालन करने में सहायक बनें ।[६७]

राज्य शक्ति को सामाजिक संतुलन या शान्ति व्यवस्था को दंड शक्ति के द्वारा नियमित करने का अटूट अधिकार प्रदान किया गया है । किन्तु यह धर्मानुकूल आचरण द्वारा ही सम्पन्न होने का भी निश्चय महाभारतकार ने स्पष्ट किया है - विभज्य दण्डः कर्तव्यों धर्मणनमदृच्छया ।[६८]

भारतीय नीतिशास्त्रकार प्रजा रक्षण राजा का प्रधान धर्म मानते हैं ।[६६] महाभारत में राजा या राज्य का धर्म प्रजा का रक्षण है । अनुशासन पर्व में महेश्वर का कथन है कि, रक्षणीयता प्रजा का धर्म है और रक्षा करना राजा का । शान्ति पर्व में भीष्म पितामह ने पूर्ववर्ती राजशक्तियों के आचार्यों के मतानुसार प्रजा की रक्षा करना राजा का महान धर्म रहा है ।[७०] राजा या राज्य से रक्षित होकर प्रजाजन स्वधर्मरत और सदाचार में अनुरक्त होते हैं । प्रजाजनों द्वारा अर्जित धर्म का आंशिक पुण्य राजा या राज्य को प्राप्त होता है ।[७१] प्रजापालन को महाभारतकार ने परिभाषित किया है कि, प्रजापालन के अन्तर्गत राजा का यह कर्तव्य भी समाविष्ट था कि वह प्रजा के भरण पोषण और जीविका का समुचित प्रबन्ध करे । इस प्रसंग में राजा शिवि के वाक्यों को उद्धृत कर सकते हैं । उनके अनुसार जिसके राज्य में द्विज अथवा कोई, अन्य व्यक्ति क्षुधा से पीड़ित हो, उस राजा के जीवन को धिक्कार है । भीष्म ऐसे राजा को निंदनीय मानते हैं, जिसके राज्य में प्रजा कष्ट पाती हो ।[७२]

महाभारत में अनाथ, आतुर, असहाय आदि के योग क्षेम में राजधर्म की अभिव्यक्ति मानी गयी है ।[७३] महाभारत का राजधर्म किसी उपासना पद्धति में सीमित

नहीं है। कृषि की उन्नति, पशुओं का पालन, वन संवर्धन, व्यापार को संरक्षण आदि भी राजधर्म के अंग हैं। सभा - पर्व में नारद मुनि धर्मराज युधिष्ठिर से प्रश्न करते हैं कि, क्या राज्य में कृषि का कार्य भलीभाँति होता है ? क्या राज्य में जलपूरित तड़ाग बनवाये गये हैं ?[७४]

महाभारत में राजधर्म के अन्तर्गत पशुओं के लिये जलाशय का निर्माण भी है।[७५] शान्ति पर्व में व्यापारी और व्यापार का संरक्षण राजधर्म का अंग है। महाभारत के सभापर्व में नारद मुनि युधिष्ठिर से प्रश्न करते हैं कि, क्या राष्ट्र में व्यापारी सम्मानित हो बिक्री के लिये उपयोगी वस्तुयें लाते हैं, और राज कर्मचारी पीड़ित तो नहीं करते?[७६] महाभारत में धर्म सापेक्ष राज्य का वर्णन है। यह धर्म सापेक्षता, पंथ निरपेक्षता से अधिक उदार तथा उत्कृष्ट है।

धर्म को व्याख्यायित करने का अधिकार राजा या राज्य को महाभारत ने नहीं दिया है। धर्म के व्याख्यायित करने के अधिकार से राज्य द्वारा स्वेच्छाचार की आशंका सहज है। धर्मविज्ञजनों को यह अधिकार, शान्तिपर्व में वर्णित है। दस वेद-शास्त्र के ज्ञाता, या तीन धर्मज्ञ, जिस धर्म की व्याख्या को स्पष्ट करें, वही प्रामाणिक कही गयी है।[७७]

महाभारतकार ने राजधर्म को मानवीय सृष्टि के लिये अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। महाभारत में मानवीय सम्बन्धों के संदर्भ में राजधर्म की भूमिका प्रामाणिक और प्रतिष्ठित रूप से स्थापित है। महाभारत के राजधर्म ने मानव के सर्वतोमुखी विकास में राज्य संस्था की पूर्ण उपादेयता को सुनिश्चित किया है। महाभारतकार ने पूर्व परम्पराओं के उल्लेख द्वारा और वर्तमान की समीक्षा से राजधर्म का निर्धारण किया है। महाभारत के राजधर्म ने राजनीतिक नैतिकता को प्रश्रय दिया है। इस राजधर्म ने राजा के हाथों में राज्य शक्ति को न्यासवत स्थापित किया है। महाभारत राज्य को राजा के हाथ में न्यासवत मानता है, और शासन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।[७८]

महाभारतकार ने धर्मानुसार शासन का ही महत्व प्रतिपादित किया है। धर्म की भूमिका राज्य के संचालन में प्रमुखतम है। राजा और राज्य के नींव में धर्म ही है।[७९] आरण्य पर्व में धर्म को धारण करने वाले को राजा की मान्यता दी है। धर्म से प्रजा का शासन अनिवार्य स्थिति है। राजा या राज्य का आविष्कार धर्म के लक्षण के निमित्त ही है। महाभारत में विभिन्न आचार्यों द्वारा राजा को धर्म के अनुसार शासन का आदेश है। इसके अच्छे परिणामों की अपेक्षा है। महाभारतकार ने स्पष्ट किया है कि धर्म की अवहेलना करने के राजा और राज्य दोनों विपत्ति ग्रस्त होते हैं। शान्ति पर्व में धर्म की उपेक्षा के गम्भीर दुष्परिणामों का कथन है।[८०] शासन की सफलता के मूल में राजधर्म का निर्वाह है। अनुशासन पर्व तथा शान्ति पर्व में राजा या राज्य का दायित्व प्रजाजनों की भौतिक उन्नति के साथ अधर्म से मुक्ति का भी है।[८१] अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह ने स्पष्ट किया है कि, राजा के शुभ कार्यों से प्रजा का कल्याण सम्भव है। धर्म विरूद्ध राजा के कारण राज्य के योगक्षेम का अभाव रहेगा।[८२]

महाभारत के शान्ति पर्व में वामदेव द्वारा राज्य और राजा द्वारा उन्हीं कार्यों को करने को कहा है, जो सबके लिये कल्याणकारी हो ।[८३] इसका निष्कर्ष है कि, धर्म वह हो जो सर्व कल्याणप्रद है । राजधर्म सर्वभूत हित का कौशल है ।

महाभारतकार ने शान्ति पर्व में धर्मानुसार न्याय व्यवस्था को मान्यता दी है। जहाँ धर्म निष्ठा से स्थापित शास्त्र व्यवस्था होती है, वही राज्य उत्तम है -

'धर्म निष्ठान् व्यवहारान् स्थापयन्तश्च शास्त्रतः

यथावत्प्रति पश्यन्तो विवर्धन्ते गणोत्तम : ' ।[८४]

महाभारतकार ने धर्म की प्रधानता को शाश्वत कहा है - 'धर्मान्विक्ष्यामि शाश्वतान्' ।[८५] धर्म की प्रमुखता सनातन है । राजा की सत्ता सर्वोच्च नहीं है । व्यक्ति या वर्ग अहंकार से ग्रस्त हो सकते हैं । इस कारण धर्म को सर्वोच्च स्थान है ।

धर्म की रक्षा के निमित्त कोई भी वर्ण ब्राह्मण , क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र दंड धारण कर सकता है । यह धर्म सत्पुरुषों की रक्षा, दुर्जनों को दंड आदि है ।[८६]

महाभारत में राज्य संस्था के अन्तर्गत राजा तथा राजसभा का भी उल्लेख है । इस राजसभा के विविध नाम हैं - संसद, समिति तथा परिषद् । महाभारत के उद्योग पर्व में कहा गया है कि, वह सभा, नहीं जहाँ वृद्ध न हो, और वृद्ध नहीं जो धर्म की बात न कहें ।[८७] सभाजनों को भी उद्योग पर्व में धर्मज्ञ कहा गया है ।[८८] महाभारत में राज्य और राजकर्ता द्वारा धर्मानुसार संचालन की स्पष्ट स्थिति है ।

महाभारत के शान्तिपर्व में राजधर्म के अन्तर्गत सद्विचारों, सद्भावनाओं और इनके स्रोत सद्पुरुषों को सम्मान का पात्र माना गया है । आयुवृद्ध और ज्ञान का सम्मान, दीनदुखी के प्रति करूणा, आदि की रक्षा का दायित्व राजधर्म में निहित है । महाभारतकार ने राजधर्म की परम्परा का उल्लेख किया है । शान्ति पर्व में स्पष्ट है कि, राजा से पूर्ववर्ती व्यक्तियों द्वारा भी स्वधर्म पालन, धर्म मार्गानुसरण तथा शास्त्रानुमोदित कार्य की अपेक्षा है । यह स्वधर्म या धर्ममार्ग व्यापक परिप्रेक्ष्य में मानवीय हितों का संर्वधन, सामंजस्य और स्वातंत्र्य है ।[८९] शान्ति पर्व में राजधर्म ब्राह्मण या सत्पुरूषों द्वारा निर्दिष्ट धर्म के पालन में है । आदि पर्व में धर्म के अनुसार राज्य करने वाले राजाओं का उल्लेख नारद ने महाराज श्वेत से किया है । समस्त धर्मों के पालक और पोषक राजाओं में मर्यादा पुरूषोत्तम राम तथा धर्मराज युधिष्ठिर आदि हैं । ये समस्त धर्म मानवता को नैतिक और नीतिपरायण मार्ग का दर्शन कराने वाले हैं ।[९०] कुल-धर्म, जाति-धर्म तथा श्रेणी-धर्म सभी की रक्षा, राजा का धर्म है ।[९१] सभा पर्व के अनुसार राजा का धर्म कृषि का उत्थान और कृषकों की सहायता भी है ।[९२] महाभारत का राजधर्म पांथिक या साम्प्रदायिक नहीं है । व्यापक परिप्रेक्ष्य में राजधर्म द्वारा मानवीय समाज की संगठित, संतुलित तथा सद्भावना पूरित संरचना की अपेक्षा है । राजधर्म का आविष्कार मनुष्य जाति को प्रमाद से सुरक्षित कर समाज की मर्यादा में स्थिर रखने के लिये हुआ है ।

महाभारतकार ने राजधर्म को चातुर्वर्ण्य की मर्यादा के प्रति दायित्व का बोध कराया है । चातुर्वर्ण्य या वर्णाश्रम को मानवीय धर्म के स्तर पर स्वीकृत किया गया है ।

सामाजिक या व्यक्तिगत जीवन को व्यवस्थित करने के शिल्प रूप में इसे स्वीकार किया गया। इसका सम्बन्ध किसी पांथिक या साम्प्रदायिक भावना से प्रतीत नहीं होता।

महाभारत के शान्ति पर्व में युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में भीष्म ने आश्वस्त किया है कि, धर्म की रक्षा के लिये ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र भी सत्पुरुषों की रक्षा के लिये राज शासन कार्य कर सकता है। [६३] महाभारत का राज धर्म उपासना शैली में स्वातंत्र्य का पक्षधर है। मनुस्मृति आदि में राजा द्वारा यज्ञादि सम्पादित करने की परम्परा है। तीर्थ यात्रा, मूर्ति पूजा आदि कृत्यों की राजा से अपेक्षा है। महाभारत में राजा को यज्ञादि करने का स्पष्ट आदेश है। [६४] इन यज्ञों को सम्पन्न करने से उपासना पद्धति के स्वातंत्र्य का समापन नहीं होता है। यज्ञों के माध्यम से राजधर्म में औपचारिकता, आध्यात्मिकता, आस्तिकता, नीतिमत्ता, नियंत्रण तथा प्रतिष्ठा और प्रसार का समावेश है। समस्त राजधर्म में प्रजा के प्रति समर्पण की वृति केन्द्र बिन्दु है। महाभारतकार राजधर्म में दिव्यता और भव्यता का समावेश करने का पक्षधर है। राजधर्म द्वारा वैचारिक स्वातंत्र्य या उपासना स्वातंत्र्य पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

राज धर्म बुद्ध तथा अशोक

महात्मा बुद्ध के संवादों में राज्य की सफलता के लिये स्वधर्म में निष्ठा का प्रावधान है। विधियों का उल्लंघन न करना और समाज विरोधी को मान्य न करना, धर्म विहित राज्य का लक्षण है। [६५]

अशोक ने धर्म की उस अवधारणा का अभ्युदय किया, जिसकी अपेक्षा धर्माचरण और धर्मानुशासन से राज्य और राजनीति के संचालन की थी। अशोक ने कलिंग शिलाभिलेख (प्रथम) में धर्म के द्वारा सामाजिक जीवन के समस्त क्षेत्र में साफल्य की आकांक्षा और अपेक्षा की है। अशोक का राजधर्म सामाजिक सम्बंधों को सुखद बनाकर मानवीय जीवन को सुसंवादी, सहज तथा सुविधापूर्ण बनाने की आकांक्षा से आक्रान्त रहा है। यह धर्म किसी भी वर्ण- संघर्ष या वर्ग - संघर्ष तथा सम्प्रदाय - संघर्ष का विरोधी रहा है। अशोक का यह धर्म मानवतावादी है।

इतिहास के महान राजन्य प्रियदर्शी अशोक ने भारत भूमि के विशाल प्रांगण में धर्म के व्यापक स्वरूप का प्रसारण किया था। ईसा के पूर्व पाषाणों में उत्कीर्ण ये लेख भारतीय धर्म के सहज स्वरूप के उद्घोषक हैं। धर्म की ऊँचाइयों के साक्षी शिलाभिलेख, राजनीति के क्षेत्र में प्रकाश स्तम्भ हैं। अशोक का यह धर्म, उसके रूचि वैचित्र्य पर आधारित नहीं है। इस धर्म का आधार के पूर्ववर्ती वेद और बुद्ध का साहित्य है।

सम्राट अशोक के स्तम्भ लेख (दो) में स्पष्ट है कि - 'धर्मे साधु। कियं चु धिर्मे ति ? अपलिनवे बहुकयाने दया दाने सचे सोचये।'

धर्म अच्छा है। परन्तु धर्म क्या है ? धर्म इसी में है कि अधर्म से दूर रहें। बहुत अच्छे कार्य करें। दया-दान -सत्य और शुचिता का पालन करें।

अन्य शिलाभिलेख में अशोक ने धर्म को सद्सम्बंधों की स्थापना का कारण माना है। धर्म समाज के कल्याण का साधन है। धर्म समस्त लोकों में हित का साधक

है । धर्म धरती के जीवन के सुख, परलोक में स्वर्ग की प्राप्ति का साधन है । कलिंग के शिलाभिलेख प्रथम-द्वितीय तथा अन्य स्तम्भ लेख तीन -चार सात और शिलाभिलेख ग्यारह भारतीय धर्म के द्वारा मनुष्य जाति की हिंसात्मक शक्ति को नियंत्रित करने के प्रयास के साक्षी हैं । राज्य और राजनीति मानवीय इतिहास में रण और रणनीति में संलग्न रही हैं । धर्माचरण की भूमिका में सम्राट अशोक ने राज्य और राजनीति को समर तथा शस्त्र से पृथक करने का प्रयास किया था । शिलाभिलेख, तीन चार-आठ आदि तथा स्तम्भलेख पाँच इसके साक्ष्य रूप हैं ।

भारतीय इतिहास की आठवीं शती से हिन्दू राज्य संस्था की परम्परागत प्रणाली में क्षरण प्रारम्भ हो गया । इसके कारणों की शोध की अपेक्षा इतिहासकारों ने की है ।[६६]

राजधर्म - भारतीय मध्यकाल

भारतीय या हिन्दू प्रणाली अन्तःसलिला हो गयी । इसके पुनः अभ्युदय की प्रतीक्षा इतिहास में महत्वपूर्ण है । भारतीय अतीत की राज्य प्रणाली से प्रतिबद्धता का समापन मध्यकालीन शताब्दियों में नहीं हुआ । महाभारत और शुक्रनीति के आधार के सैद्धान्तिक अनुकरण से हिन्दू पद्धति के सातत्य का निर्वाह किया गया । मध्यकालीन भारतीय राजदर्शन में राजनीति और राज्य की रूपरेखा धर्म प्रधान रही है । राजनीतिक संस्थाओं के पावित्र्य की अनुभूति मध्यकालीन शताब्दियों में व्याप्त रही है । इसके पर्याप्त साक्ष्य मध्यकालीन साहित्य में हैं । मध्यकालीन इतिहास में इसकी सशक्त परम्परा का निर्वहन है ।

राजनीति के मार्ग दर्शक के रूप में धर्म की भूमिका स्पष्ट है । जैन मुनि सोमदेव सूरी के ग्रंथ 'नीति वाक्य मित्र' (सन् १४६३) में इसका उल्लेख सूत्र रूप में है- अर्थ धर्मार्थ फलाय राज्याय नमः । राज्य, धर्म और अर्थ का फल प्रदान करने वाला है ।

इस्लाम से संघर्ष और सम्पर्क से धर्म सिद्धान्त क्षीण होकर शक्ति सिद्धान्त अधिक प्रभावी था । जायसी के पदमावत महाकाव्य का कथन कि, 'तिरिया भूमि खड़ग के चेरी' एक वास्तविकता थी । रण और रमणी में राजनीति और राज्य उलझा रहा। किन्तु भारतीय परम्परागत विश्वास स्थापित रहा, कि धर्म और नीति के आधार पर राज्य दृढ़ हो सकता है । भारतीय काव्य में प्रतीकात्मक शैली में स्पष्ट किया गया है कि, पृथ्वी रूप रावण की सभा में राजा रूप अंगद का पैर, धर्म रूपी राम और नीति रूपी सीता के बल से ही अचल होता है ।[६७]

भारतीय राजदर्शन में निरन्तर आदर्श राज्य की कामना तथा कल्पना की विशेषता मध्यकालीन शताब्दियों में भी स्थापित रही है । ज्यामिति शास्त्र के बिन्दु की भाँति यह काल्पनिक अधिक हो सकता है । किन्तु यथार्थ भी इतना है कि शताब्दियों तक मान्य रहा है । मध्यकालीन साहित्य में इसे रामराज्य या धर्मराज्य कहा गया है । इसकी परम्परा आदि महाकाव्यबाल्मीकीय रामायण में है । रामायण की राजनीति धर्म

और नैतिकता से भिन्न नहीं है । किसी पंथ के प्रति पक्षपात नहीं है । राज्यरोहण के उपरान्त राम ने जिस प्रकार शासन व्यवस्था की वह सहस्रों वर्षों से आदर्श रूप में भारतीय विचारकों के मन में स्थिर रही है । राजा राम का राज्य आदर्श धर्ममूलक राज्य का प्रतीक है । समस्त राजन्य गुणों से युक्त बहुत से राजा भारतभूमि में उत्पन्न हुये हैं । किन्तु सर्वोपरि राजाराम हैं । सोलहवीं और सत्रहवीं शती में भारतीय साहित्य में रामराज्य का वर्णन महत्वपूर्ण है । महाकवि तुलसीदास का रामराज्य, धर्मराज्य है। इसमें किसी वर्ग या सम्प्रदाय को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है । सर्वजन स्वधर्म में संलग्न है ।[९८] राज्य और राजत्व के मूल में धर्म हैं ।

धर्म राज्य में परार्थ की भावना है और स्वार्थ का त्याग है । भारतीय परम्परा में जिस प्रकार धर्म व्यापक है, उसी प्रकार यह राज भावना भी उदात्त और उत्कृष्ट है। यह पंथ निरपेक्ष तथा दंड निरपेक्ष राज्य का प्रतिमान है । उत्कृष्ट दंड निरपेक्ष राज्य का आदर्श प्रस्तुत किया गया है । किन्तु तत्कालीन यवन-शासन निकृष्ट दंड सापेक्ष था।[९९] शासन में दंड नीति के कारण व्यवस्था रहती है । किन्तु धर्मराज्य का आदर्श दंड शक्ति की क्षीणता है । क्योंकि दंड शक्ति के मूल में शासन-शोषण की प्रवृत्ति है । धर्म राज्य या रामराज्य में लोकशक्ति का विकास होकर दंड शक्ति तिरोहित होती है । धर्म या लोक चिन्तन करने वाले वर्ग के लिये ही राम का अवतार होता है । रामराज्य में मनुष्य जाति ईर्ष्या-द्वेष का त्याग कर परस्पर प्रीति के मार्ग में अग्रसर होती है ।[१००] रामराज्य में अधर्म ही अपने धर्म को त्यागता है ।[१०१] जन के उन्नत नैतिक स्तर से धर्मराज्य या आदर्श राज्य या आध्यात्मिक राज्य का उद्‌भव हो जाता है । इस रामराज्य के अन्तर्गत व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन के सर्वविरोधों में सामंजस्य की स्थापना है ।

धर्म राज्य की कल्पना -कामना का प्रेरक तथ्य, विपरीत इस्लामी सत्ताधारी की निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता भी है । इस्लामी शासन पांथिक राज्य या पंथ सापेक्ष रहा है ।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुगल बादशाह औरंगजेब को भारतीय साहित्य में कुम्भकरण या असुर का अवतार कहा गया है - जिसने मथुरा के मंदिरों को ध्वंस किया, काशी के विश्वनाथ मन्दिर को तोड़ा और देवी-देवताओं की मूर्तियां नष्ट-भ्रष्ट कर डाली । चारों वर्णों को स्वधर्म का त्याग कर नमाज पढ़ने की बाध्यता हो रही थी।[१०२] इन अभिव्यक्तियों में उत्पीड़न का प्रतिकार है ।

मध्यकालीन भारतीय राजनीति में राजधर्म के परिपालन के लिये लोकहित को सर्वोपरि मान्यता देने के लिये छत्रपति शिवाजी का नाम अत्यन्त गरिमापूर्ण है । छत्रपति शिवाजी ने भी घोषित किया था कि, यह राज्य धर्म का है, शिवबा का नहीं। अथवा हमारा राज्य तो शंकर जी का दिया हुआ । राज्य को न्यासवत ग्रहण करने का उत्कृष्ट राजधर्म है ।

उन्नीसवीं शती और राजधर्म

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में भारतीय राजनीति का पराभव अंग्रेजी साम्राज्यवाद की सफलता के कारण हो गया । इस शती के अन्त में विवेकानन्द ने धर्म और राजनीति तथा राज्य के संदर्भ में महत्वपूर्ण सूत्र प्रदान किये हैं । विवेकानन्द ने कहा था कि, 'मैं न राजनीतिज्ञ हूँ, न राजनीतिक आन्दोलन खड़ा करने वालों में से हूँ। - - - मेरे लेखों या उपदेशों पर राजनीतिक अर्थ का मिथ्या आरोपन करें । "[१०३] विवेकानन्द ने धर्म शब्द को संकीर्ण अर्थ में न लेकर, समस्त सामाजिक जीवन को धर्म के एक मुक्त भाव की अभिव्यक्ति कहा है ।[१०४]

विवेकानन्द ने स्पष्ट कहा है कि, 'भारत में यदि तुमको राजनीति की बात करनी है , तो धर्म की भाषा को माध्यम बनाना होगा । भारत में धर्म की भाषा इतिहास में प्रभावी रही है, और वर्तमान में भी है । प्रत्येक राष्ट्र के हृदय को स्पर्श करने के लिये उसी राष्ट्र की भाषा बोलना आवश्यक है । भारत में धर्म की भाषा में जो राजनीति बोली जायेगी, वह ही प्रभावी रहेगी ।'[१०५] भारतीय राजनीति की धर्म से नियंत्रण की अनिवार्यता विवेकानन्द ने प्रकट की है ।[१०६] विवेकानन्द के अनुसार राजनीतिक स्वाधीनता बहुत अच्छी स्थिति है, किन्तु आध्यात्मिक स्वाधीनता भारतीय जीवन का प्राप्य है ।[१०७] धर्म और अध्यात्म में अन्तर है । किन्तु धर्म की राहों में चल कर अध्यात्म में प्रवेश होता है ।

महात्मा गांधी और राजधर्म

बीसवीं शती में महात्मा गांधी विवेकानन्द से बहुत प्रभावित थे । गांधी जी का विश्वास था कि,'विवेकानन्द का प्रेम विस्तृत था । वे भावना से भरपूर थे, और भावना में बह भी जाते थे । वह भावना उनके ज्ञान के लिये हिरण्यमय पात्र थी । 'धर्म और राजनीति में जो उन्होंने भेद किया, वह ठीक नहीं था । मगर इतने महान व्यक्ति की आलोचना कैसी ? - - - - मेरे मन में शंका नहीं कि विवेकानन्द महान सेवक थे।'[१०८] विवेकानन्द ने धर्म के सामाजिक पक्ष को विवेक दिया और विकसित किया था । गांधी जी ने धर्म के अन्तर्गत समाजनीति, अर्थनीति तथा राजनीति सभी को सम्मिलित किया । एक व्यापक विराट तथा मानवीय धर्म की भारतीय अवधारणा के प्रसार के प्रति गांधी जी आस्था के संचय थे । गांधी जी के अनुसार जब तक जीवन में धर्म का तत्व प्रविष्ट नहीं होता, समाधान की उपलब्धि नहीं हो सकती ।[१०९]

शताब्दियों से भारतीय इतिहास में स्वातंत्र्य का अपहरण मुस्लिम और ब्रिटिश शासकों ने किया था । गांधी जी ने इस राजनीतिक स्वातंत्र्य के समाप्त होने की स्थिति को धर्म सहित सर्वस्व खोना माना था । मुस्लिम शासन दमनकारी तथा दम्भपूर्ण था । ब्रिटिश शासन धर्म के प्रति सम्मान से रहित रहा है, और भारतीय धर्म के अस्तित्व के लिये संकट स्वरूप रहा है ।[११०]

गांधी जी की देशभक्ति, उनके धर्म के प्रति लगाव के अन्तर्गत रही है । गांधी जी ने कहा था कि, 'मैं धर्म के लिये देश का भी बलिदान करने को प्रस्तुत रहूँगा । मेरी

देशभक्ति मेरे धर्म के प्रति लगाव के अन्तर्गत है । इसलिए देशहित, धर्महित से टकराता हो तो मैं पहिले के बलिदान के लिए प्रस्तुत रहूँगा ।'[१११]

गांधी जी ने स्पष्ट किया था कि, 'मैं देश प्रेम को अपने धर्म का ही एक भाग मानता हूँ । उसमें सारा धर्म नहीं आता, यह बात नहीं है, लेकिन देश प्रेम के बिना धर्म का पालन पूरा हुंआ नहीं कहा जा सकता है ।'[११२]

गांधी जी के अनुसार इतिहास धर्म से बिलग नहीं रहा है । गांधी जी की राजनीति का उद्‌गम धर्म है ।[११३] धर्मवृत्ति से राजनीतिक प्रश्नों का सहजता से समाधान सम्भव है । धर्मवृति के अभाव में समाधान का परिणाम स्तरीय नहीं हो सकता ।[११४] इस धर्म का अर्थ अन्धविश्वास या विवेकहीनता नहीं है । यह धर्म न द्वेष करने वाला है, और न लड़ने वाला है । यह विश्वव्यापी सहिष्णुता का धर्म है।[११५] यह मानवीय मूल्यवत्ता के केन्द्रबिन्दू से निसृत धर्म है ।

गांधी जी के अनुसार भारतीय राजनीति को धर्म से अलग नहीं कर सकते।[११६] 'धर्म से विछिन्न राजनीति गिराने वाली चीज बन जाती है ।'[११७] धर्म रहित स्थिति शुष्क और शून्य होती है ।[११८] धर्म भावना के बिना किसी बड़े कार्य के सम्पन्न होने की कल्पना गांधी जी ने नहीं की थी । 'धर्म भावना के बिना कोई भी बड़ा कार्य नहीं हुआ है और न कभी भविष्य में होगा ।'[११९] गांधी का समस्त जीवन धर्म भावना से ओतप्रोत रहा है । गांधी जी ने कहा था कि, 'मैं बिना धर्म के एक पल भी जीवित नहीं रह सकता था । मेरे बहुत से राजनीतिक मित्रों को मेरी ओर से निराशा हो गयी है । क्योंकि उनका कहना है कि मेरी राजनीति और मेरी समस्त प्रवृतियां धर्म से ही निकली है ।'[१२०] धर्म शास्त्र में धार्मिक, राजनीतिक आदि बातों का समावेश है। जो धर्म शुद्ध राजनीति की विरोधी है । वह धर्म नहीं है । धर्म रहित अर्थ भी त्याज्य है । धर्म रहित राजसत्ता राक्षसी है ।[१२१]

गांधीं जी ने धर्म विहीन राजनीति को त्याज्य माना था । 'मैं देश की आंखों में धूल न झोकूंगा । मेरे नजदीक धर्म विहीन राजनीति कोई चीज नहीं है । - - - - नीति शून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है ।'[१२२]

गांधी जी ने धर्म के पालन के लिए राजनीति का वरण किया ।' अपने धर्म के पालन के लिए ही मैं राजनीति और समाज सेवा इत्यादि में पड़ा हुआ हूँ '।[१२३] गांधी जी ने राजनीतिक जीवन को धर्ममय बनाने का विचार दिया । इस धर्ममयता को गांधी जी ने परिभाषित किया है कि अभय, सत्य, धैर्य, नम्रता, न्यायबुद्धि, सरलता, दृढ़ता, आदि सद्‌गुणों के विकास का देश के उपयोग में करना धार्मिक वृतियों का पोषण करना है ।[१२४]

गांधी जी की स्वीकारोक्ति है कि, 'मैं करोड़ों लोगों के बीच वर्षों से भटकता रहा हूँ । उनके सामने राजनीतिक मनुष्य के रूप में नहीं, बल्कि एक धर्मपरायण पुरूष के रूप में ही स्वीकार किया है ।[१२५] गांधी जी को करोड़ों मनुष्यों ने राजनीतिज्ञ के रूप में नहीं, धार्मिक मनुष्य के रूप में सुना था ।[१२६]

गांधी जी ने राजनीति में धार्मिक मनुष्य के रूप में भाग लिया था । 'मैं राजनीति में इसलिए भाग लेता हूँ क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि जीवन का कोई

विभाग ऐसा नहीं है, जिसका धर्म से सम्बन्ध विच्छेद किया जा सके ।'[१२७] गांधी जी को विश्वास था, कि, शुद्ध धर्म पर चलने वाले कोई भी भारतवासी राजनीतिक कार्यों में भाग लिये बिना नहीं रह सकता । 'दूसरे शब्दों में कहे तो शुद्ध धर्म मार्गी लोकसेवा को अपनाये बिना नहीं रह सकता । राजतंत्र के जाल में हम सब इतने अधिक जकड़े हुए हैं कि, उसमें पड़े बिना लोक सेवा सम्भव नहीं है ।'[१२८] गांधी जी को धर्मवृति की व्यापकता के आधार पर, राजतंत्र को शुद्ध करने पर विश्वास था ।

राजनीतिक समस्याओं और प्रश्नों के समाधान में गांधी जी ने धर्म की भूमिका को सक्षम समर्थ माना है । 'धार्मिक वृत्ति से राजनीतिक सवालों को जिस तरह हल कर सकते हैं, उस तरह धर्मवृति को छोड़ कर नहीं कर सकते । धर्मवृति को छोड़कर हम जो फल प्राप्त करेंगे वह और ढंग का होगा ।'[१२६]

गांधी जी ने राज्य और राजनीति से धर्म को श्रेष्ठ कहा है । वर्तमान से अधिक भावी युग पर धर्म के सर्वाधिक प्रभाव को गांधी जी ने अभिव्यक्त किया था ।[१३०]

राज्य और राजनीति के मूल में धर्म भाव अपरिहार्य है । किन्तु धर्म में राज्य के हस्तक्षेप का महात्मा ने निषेध किया है । राज्य का हस्तक्षेप सदैव अनुचित है । धर्म व्यक्तिगत आस्था का विषय है । अगर सारी कौम का एक ही धर्म हो तो मैं भी राजकीय धर्म पर विश्वास नहीं करता । धर्म शुद्ध रूप से व्यक्तिगत विषय है । वस्तुतः जितने मन है, उतने ही धर्म हैं ।'[१३१] यहाँ धर्म से अभिप्राय अन्धविश्वासों से नहीं, अनुरागपूर्ण आस्था और विवेकपूर्ण उपासना-साधना प्रतिमान से है । गांधी जी की राजनीति की आत्मा धर्म है । किन्तु राज्य से धर्म की स्वतंत्र सत्ता है । इस धर्म को राज्य की सहायता या संरक्षण अनावश्यक है । राज्य पंथ निरपेक्ष है । सामान्य जन तथा सर्व सामान्य वृतियां धर्म सापेक्ष है, और पंथ सापेक्षता रूचि वैचित्र्य का विषय है । महात्मा गांधी ने राज्य के हस्तक्षेप को मर्यादित करने का विचार दिया था । गांधी जी ने कहा था कि धर्म और राज्य पृथक - पृथक हैं । धर्म और राज्य दोनों को पृथक रहना अनिवार्य है। यहाँ धर्म पंथ का पर्याय है ।'राज्य के अपने विषय हैं । उनकी उसे चिन्ता करनी है ।' राज्य आपके अमन चैन, स्वास्थ्य, यातायात, साधन, और वैदेशिक सम्बन्धों और सिक्कों के चलन आदि की देखभाल करेगा, आपके या मेरे धर्म (पंथ) की नहीं । यह तो प्रत्येक (व्यक्ति) का निजी मामला है ।'[१३२]

राज्य द्वारा धर्म या पंथ में हस्तक्षेप के साथ ही उसके समर्थन या पोषण को गांधी जी ने अनुचित कहा है ।'अगर सारी कौम का एक ही धर्म हो तो भी मैं राजकीय धर्म पर विश्वास नहीं करता । शायद सरकारी हस्तक्षेप सदा ही अनुचित होगा।'[१३३] गांधी जी का स्पष्ट मत रहा है कि जो समाज अपने धर्म की रक्षा हेतु आंशिक या पूर्णरूप से सरकारी सहायता पर निर्भर रहता है, वह उसके योग्य नहीं होता, और इससे भी बढ़कर यह है कि उसका धर्म वास्तव में धर्म कहे जाने योग्य नहीं होता ।[१३४]

धर्म द्वारा राजनीति को श्रेष्ठ और श्रेयस्कर रूप में निर्मित करने का गांधी जी का विचार भारतीय इतिहास में प्रकाश स्तम्भ की भांति है । इसके माध्यम से गांधी जी स्वर्ग का राज्य स्थापित करने के आकांक्षी थे ।[१३५] गांधी जी धर्मराज्य की स्थापना

के पक्षधर थे । गांधी जी की श्रद्धा थी कि, भारत अपनी परम्परा और प्रकृति के अनुकूल धर्म राज्य को प्रकट और प्रसारित कर सकेगा । पश्चिम की नकल करके हम भारत में धर्मराज्य की स्थापना नहीं कर सकते ।[१३६]

गांधी जी की राजनीति में यथार्थ का जितना समावेश था, उतनी ही वह धार्मिक या आध्यात्मिक थी । गांधी जी ने राजनीतिक, आर्थिक तथा नैतिक स्वातंत्र्य के उत्कृष्ट रूप को 'रामराज्य' की संज्ञा दी हैं । 'मैं तो रामराज्य का यानी दुनिया में ईश्वर के राज्य का ख्वाब देखता हूँ - वही आजादी है । स्वर्ग में यह राज्य कैसा होगा, यह मैं नहीं जानता । - - - - - रामराज्य की मेरी कल्पना में ब्रिटिश फौजी हुकूमत की जगह राष्ट्रीय फौजी हुकूमत को बैठा देने की कोई गुंजाइश नहीं है ।'[१३७]

संविधान और राजधर्म

स्वातंत्र्य के पश्चात् भारत के सहस्त्रों वर्षों के इतिहास में जिस राजधर्म का विकास हुआ, उसका विवेकपूर्ण और वास्तविक निरूपण भारतीय संविधान में समग्र रूप से नहीं हो सका । इसके कारणों में विशेषकर औपनिवेशिक पराभूत मानसिकता, बौद्धिक दासता, परम्परा तोड़ने के साहस का अभाव तथा छद्म आधुनिकता की हीन भावना आदि है । किन्तु असंदिग्ध रूप से संविधान राजधर्म का आधुनिक संस्करण या संग्रह है ।

संविधान का राजधर्म बाह्य नियंत्रण की प्रक्रिया निर्धारित करने में ही समर्थ है । भारतीय राजधर्म की परम्परा मनुष्य की अन्तःरचना, उसकी मानसिकता तथा विवेकवत्ता को अनुकूल दिशा और दायित्व प्रदान करने में अधिक समर्थ मानी जा सकती है । सक्षम या समग्र राजधर्म अन्तः और बाह्य दोनों की नियंत्रित करने में समर्थ हो सकता है । संविधानेत्तर भारत में कई विचार सरणियों ने इस दिशा में गहरायी से चिन्तन किया है । भारतीय स्वातंत्र्य के पश्चात् रचनात्मक राजनीति में भी इसे धर्मराज्य की संज्ञा दी गयी है ।

महात्मा गांधी के अनुयायी संत विनोबा ने (१९५२) भूदान के व्यापक अर्थगर्भित बहुआयामी आन्दोलन को नूतन धर्म चक्र प्रवर्तन का रूप दिया । समाज संरचना के नूतन सूत्र इसके द्वारा उपलब्ध हुये, और राजनीति को नवीन दिशा का संकेत उपलब्ध हुआ । विनोबा ने धर्म के पांथिक स्वरूप की अपेक्षा आध्यात्मिक स्वरूप का प्रतिपादन किया है । सेकुलर शब्द को हास्यापद रूप में विनोबा ने निरुपित किया है । भारतीय इतिहास की उत्कृष्ट उपलब्धियों या मानवीय मूल्यवत्ता के आधार पर जिस राजदर्शन या राजधर्म का विकास गांधी -विचारसरणि ने किया है, वह अध्ययन और आचरण का विषय है ।

एकात्म मानववादी राजधर्म

एकात्मवादी परम्परा पर आस्था रखने वाले एक राजनीतिक पक्ष (जनसंघ) ने अपने सिद्धान्तों और नीति दर्शन में धर्मराज्य की भारतीय अवधारणा को स्पष्ट रूप से विजयवाड़ा की प्रतिनिधि सभा (१९६५) में स्वीकृति प्रदान की । यह धर्म-सापेक्षता

है । इसमें पंथ निरपेक्षता अपने समग्र रूप में है । इसमें भारतीय परम्परा की सर्वोपरि मान्यता है ।

एकात्म मानववादी परम्परा की राजनीति ने भारतीय सर्वोच्च आदर्श राम राज्य की मीमांसा में यह स्पष्ट किया है कि, 'श्री राम को दुष्टों का नाश कर धर्मराज्य की प्रस्थापना करने के अपने परम कर्तव्य का ज्ञान था ।----यह हमारा तत्वज्ञान जिसकी सहस्राब्दियों से शिक्षा दी गयी है और जिसके अनुसार आचरण किया गया है । ----अधर्म की शक्तियों के ऊपर धर्म की शक्तियों की अन्तिम विजय का विश्वास हमारे रक्त में दृढ़मूल है।'[१३८] इस धर्म राज्य की स्थापना की व्याप्ति वैश्विक है । 'धर्म स्थापना के, अर्थात सारे संसार में धर्म की प्रतिष्ठापना के मार्ग में, जो युगों से हमारे राष्ट्रीय जीवन का उद्देश्य रहा है वह हममें सही विवेक जागृत कर सकती है।'[१३९]

मनीषी दीनदयाल ने स्पष्ट शब्दों में धर्मराज्य का आग्रह रखा है, और कहा है कि 'सम्प्रदायवादी राज्य हिन्दुओं को कभी अभिप्रेत नहीं था । हिन्दू शासकों ने हजारों वर्ष इस देश पर शासन किया, सेक्यूलर स्वरूप का ही था । सेक्युलर इस अर्थ में कि किसी एक रिलीजन (सम्प्रदाय) को यहाँ राज्य की ओर से विशेष प्रश्रय नहीं मिला ।'[१४०]

भारतीय राज्य सत्ता ने किसी सम्प्रदाय को पदाक्रान्त नहीं किया । गांधी जी के रामराज्य और दीनदयाल के धर्मनिष्ठ राज्य की परिकल्पना में सिद्धान्तः कोई अन्तर नहीं है ।

धर्म का राजनीति से पार्थक्य का प्रश्न, इसको संकीर्ण घिरौदों में परिभाषित करने के कारण है । एकात्म मानववादी विचार सरणि धर्म और राजनीति के सम्यक और संतुलित सम्बन्धों की पक्षधर है । 'धर्म को राजनीति में क्यों लाते हो ? धर्म सम्बन्धी हमारी गलत धारणा और उसे पाश्चात्य लोगों की रिलीजन की कल्पना के साथ एक रूप करने की भूल में सेइस प्रश्न का उदय हुआ है । धर्म (रिलीजन) की मतान्ध कल्पना तथा राज्य-सत्ता पादरियों के हाथ में होने के कारण पाश्चात्य देशों ने बहुत सदियों तक कष्ट भोगे हैं ।-----धर्म ---कोई अन्धमत नहीं है, अपितु सम्पूर्ण जीवन का एक दृष्टिकोण है । राजनीतिक अथवा आर्थिक क्षेत्रों के समान धर्म, राष्ट्र-जीवन का कोई अलग क्षेत्र नहीं है ।'[१४१]

भारतीय परम्परा, प्रतिमा और प्रगति ने राजनीति और राज्य को मानवीय मूल्यवत्ता से प्रामाणिक और प्रतिष्ठित धर्म के अनुसार नियंत्रित होने का आमन्त्रण और आदेश दिया है । यह व्यापक, व्यावहारिक और विवेकपूर्ण पंथ - निरपेक्षता है । संविधान की निर्मिति वर्तमान शासकों को नियंत्रित करने के लिये हैं । संविधान निहित राजधर्म को पंथ- निरपेक्षता के सन्दर्भ में परिभाषित करने के लिये परम्परा, परिस्थिति और प्रगति की व्यापक दिशा, दर्शन तथा दायित्व महत्वपूर्ण है । विवेक की भूमिका से संविधान में किसी भी विरोधाभास या विसंगति का समाधान अपरिहार्य है । राजधर्म का तत्वज्ञान शाश्वत मूल्यवत्ता का धारक है, किन्तु उसकी प्रक्रिया सतत शोध तथा संशोधन का विषय है ।

संदर्भ संकेत

१- हिन्दू पालिटी - डॉ० के०पी० जायसवाल - पृ० ४
२- वही पृ० २११
३- शतपथ ब्राह्मण - अ० ५/३/३/६१
४- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त - पृ० ३८
५- वही पृ० २१६
६- वही पृ० २३०
७- वही पृ० २६८
८- वही पृ० २८२
९- ऋग्वेद - ९/६४/१
१०- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त - पृ० ३६८
११- वही पृ० ३६२
१२- ऋग्वेद - ९/६२/६
१३- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त पृ० ३६८
१४- वही पृ० ३६७
१५- ऋग्वेद ५/८१/४
१६- यजुर्वेद ६/५ तथा ८/३०
१७- ऋग्वेद १०/३४/८
१८- यजुर्वेद ३३/२०
१९- ऋग्वेद - १/१०५/१२
२०- वही १/१६०/१
२१- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त पृ० ४४०
२२- वही पृ० ४५७
२३- वही पृ० ८०
२४- ऋग्वेद १/१२/७
२५- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त पृ० ११३
२६- यजुर्वेद ६/५ तथा १८/३०
२७- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त पृ० ४२४
२८- अर्थववेद ७/२४/१
२९- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त पृ० ४२६
३०- वही पृ० २२९/२३०
३१- वही पृ० २१८
३२- वही पृ० ६०६

३३- चतुर्वेद - डॉ० मुंशीराम शर्मा पृ० ४२
३४- वेदों का राजनीतिक सिद्धान्त पृ० ६११
३५- वही पृ० ६४२
३६- वही पृ० ३५५
३७- वही पृ० १६६
३८- छांदोग्य उपनिषद पृ० ७/७
३६- बृहदारण्यक उपनिषद प्रथम अध्याय - ब्राह्मण १/२/३
४०- वही २/३/६
४१- बृहदारण्यक उपनिषद् - शांकर भाष्य ३/५/२
४२- वही ३/७/१
४३- वही ३/७/२३
४४- वही ४/२/२३
४५- तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/८/६
४६- मनुस्मृति ७/३-८
४७- वही ७/३५
४८- महाभारत शान्ति पर्व - २१-६०
४६- वही ३८/६-१०
५०- वही ४६/२१-३
५१- सम एसपेक्टस् आफ एन्सेन्ट इंडियन पालिटी - रामस्वामी आयंगर - पृ० ७२
५२- शान्तिपर्व १३७/६६
५३- महाभारत की राज व्यवस्था - डॉ० प्रेम कुमारी दीक्षित - पृ० ६७
५४- वही पृ० २३
५५- वही पृ० २७
५६- महाभारत शान्तिपर्व - ७३/२२
५७- वही - ६८/८
५८- वही आरण्य पर्व ८५/२६/३१
५६- वही शान्ति पर्व ६३/२०-२६
६०- वही ६८/४०
६१- वही ६०/१४
६२- वही ५६/४५-४६
६३- वही ४७/१२
६४- वही ७८/२०-२१
६५- वही ७५/४

६६- वही ५६/१६
६७- वही ५७/१५
६८- वही १२२/४०
६९- महाभारत की राज्य व्यवस्था - डॉ० प्रेम कुमारी पृ० ५५
७०- महाभारत अनुशासन पर्व ५७/४२
७१- वही शान्ति पर्व ७३/१६-२१
७२- महाभारत की राज्य व्यवस्था - डॉ० प्रेमाकुमारी - पृ० ५७
७३- वही पृ० ५८
७४- महाभारत अनुशासन पर्व - ६१/२५
७५- महाभारत की राज्य व्यवस्था - डॉ० प्रेमकुमारी - पृ० ६२
७६- महाभारत - सभा पर्व - ५/१०३-१०४
७७- वही शान्ति पर्व - ३६/२०
७८- महाभारत की राज्य व्यवस्था - डॉ० प्रेम कुमारी - पृ० २६५
७९- वही पृ० २४६
८०- वही पृ० २५०
८१- वही पृ० २५३
८२- महाभारत अनुशासन पर्व - ६१/३१-४०
८३- वही शान्ति पर्व - ६५/१०
८४- वही - १०७/१७
८५- वही - ६०/६
८६- वही - ७८/३५-३७
८७- महाभारत की राज्यव्यवस्था - डॉ० प्रेमकुमारी - पृ० २२२
८८- महाभारत - उद्योग पर्व - ६३/७/४८
८९- महाभारत की राज्यव्यवस्था - डॉ० प्रेमकुमारी - पृ० ४७
९०- वही पृ० ४८
९१- वही पृ० २१६
९२- महाभारत सभा पर्व - ५/६७-६६
९३- वही शान्तिपर्व - अध्याय ७८
९४- महाभारत की राज्यव्यवस्था - डॉ० प्रेमकुमारी पृ० ६५
९५- डायलाग्ज आफ बुद्धा - डेरिस डेविड - २/७६ से ८५
९६- हिन्दू पालिटी - डॉ० के० पी० जायसवाल - पृ० ३५७
९७- दोहावली - तुलसीदास - दोहा ५१६
९८- वही १८२

९९- दोहा वली - दोहा ५५६

१००-रामचरित मानस - तुलसीदास - उत्तर कांड

१०१-रामचन्द्रिका - कवि केशवदास - २८/७

१०२-भूषण ग्रंथावली - कवि भूषण - पृ० १३९-१४२

१०३-विवेकानन्द साहित्य - विवेकानन्द - खंड ३ पृ० ३१५

१०४-वही खंड २ - पृ० ८१

१०५-वही खंड १० - पृ० ७

१०६-वही खंड १० - पृ० ६०

१०७-वही खंड १० - पृ० ५९

१०८-नीति-धर्म-दर्शन - (संग्रह) महात्मागांधी - पृ० ४३४

१०९-वही पृ० २३७

११०-वही पृ० ६१५

१११-वही पृ० ६१६

११२-वही पृ० ६००

११३-वही पृ० ६७७

११४-वही पृ० ६०८

११५-वही पृ० ६२४

११६-वही पृ० ६०५

११७-वही पृ० १४२

११८-वही पृ० २३६

११९-वही पृ० १४३

१२०-वही पृ० २६०

१२१-वही पृ० ६३५

१२२-वही पृ० ६२६

१२३-वही पृ० ६०३

१२४-वही पृ० २३३

१२५-वही पृ० ६७१

१२६-वही पृ० ५१८

१२७-वही पृ० ६११

१२८-वही पृ० ६१०

१२९-वही पृ० ६०८

१३०-वही पृ० ७०९

१३१-वही पृ० ३१३

१३२-वही पृ० ४०९

१३३-वही पृ० ७१३
१३४-वही पृ० ७१३
१३५- अमृतवाणी - महात्मा गांधी पृ० ४३
१३६-नीति - धर्म - दर्शन - महात्मा गांधी पृ० ६१६
१३७-दिल्ली डायरी भाग २ - बृजकृष्ण पृ० २६६
१३८-विचार, नवनीत - मा०स० गोलवलकर पृ० २६३/२६४
१३६-वही पृ० ६५
१४०-पं० दीनदयाल उपाध्याय - विचार खंड - पृ० २६
१४१-विचार - नवनीत - मा० स० गोलवलकर - पृ० ६६

15

पंथ निरपेक्षता-एक राजनीतिक संस्कृति

संस्कृति जीवन शैली का पर्याय है । भारत देश की परम्परा में संस्कृति का मुख्य प्रवाह धर्म सापेक्ष रहा है । धर्म से भिन्न संस्कृति का अस्तित्व नहीं है । यह धर्म, पंथ यासम्प्रदाय नहीं है । यह धर्म मनुष्य जाति की विवेकवत्ता, विराट मूल्यवत्ता और बुद्धिमत्ता पूर्ण सहजीवन है । सहजीवन राजनीतिक कौशल की मूलभूत उपलब्धि है। मानवीय सहजीवन से संस्कृति को सहज ही पहिचाना जा सकता है ।

राजनीतिक संस्कृति

समाज का प्राकृत स्थिति से परिष्कार, समाज की विकृति का प्रक्षालन, समाज के शीर्षस्थ संगठन राज्य-शक्ति का प्रतिमान, तथा नैतिकता-नीतिमत्ता, नियंत्रित करने की पद्धति आदि विषय राजनीतिक संस्कृति के हैं । राजनीतिक संस्कृति उद्देश्यपूर्ण राजनीतिक जीवन की दिशा और दायित्व है । संस्कृति विशेष्य है, और राजनीति विशेषण । संस्कृति परम्परा और प्रगति के किनारों से बंध कर प्रवहमान रहती है । राजनीति के विशेषण से संस्कृति का स्पष्ट अभिधेय है कि, राजनीतिक जीवन प्रामाणिक और प्रतिष्ठित तथा उत्कृष्ट और उदात्त रूप से विचलित न हो ।

राजनीतिक संस्कृति की प्रामाणिकता संविधान या तत्सम्बन्धी विधि-विधान से प्रतिबद्धता है । राजनीतिक संस्कृति की प्रतिष्ठा सर्वोपरि मान्य मूल्यों से सम्बद्धता है । राजनीतिक संस्कृति का उत्कृष्ट रूप विधि-विधानों के माध्यम से सहजीवन के सतत् विस्तार में है । राजनीतिक संस्कृति का उदात्त स्वरूप संविधान या विधि-विधानों में सहिष्णुता और सद्‌भावना की विवेकपूर्ण स्वीकृति है ।

राजनीतिक संस्कृति की अन्तः रचना राज्य शक्ति और जन-शक्ति के सम्यक और संतुलित संबंधों में श्रेयस्कर बनती है । राज्य शक्ति जब सुनिश्चित कर्तव्यों और अधिकारों से आश्वस्त उद्देश्यपूर्ण मार्ग पर चलती है, तब भारतीय परम्परा में इसे राजधर्म या धर्म-राज्य के प्रवर्तन तथा प्रस्थापन की संज्ञा दी गयी है । राज्यशक्ति द्वारा पंथ निरपेक्षता से प्रतिबद्धता राजनीतिक संस्कृति का एक पक्ष है ।

भारतीय परम्परा में राज्य या राजनीति सांस्कृतिक सहजीवन की उदात्त संरचना है । मानवीय इतिहास में संगठित और संस्कारित जीवन शैली का उपोद्‌घात राजनीति के द्वारा हुआ है । राजनीति और संस्कृति में अन्तर भी है । राजनीति में बाध्यता भी है । संस्कृति में विवेक है । राजनीति में प्रतिबंध है । संस्कृति में अनुबंध है । राजनीति बाह्य जीवन का नियंत्रक है । संस्कृति आंतरिक जीवन की नियामक है।

राजनीति मनुष्य जाति की विकृति का परिष्कार कर संस्कृति की दिशा प्रशस्त करने की कला है । राजनीति मानवजाति को अधिकतम सांस्कृतिक ऊँचाइयों में प्रतिष्ठित करने का कौशल है । राजनीति और संस्कृति एक दूसरे के प्रेरक हैं । राजनीति की गुणात्मकता संस्कृति की संलग्नता से श्रेष्ठ और श्रेयस्कर बनती है ।

राजनीतिक जीवन की कार्य प्रणाली या पद्धति को भी राजनीतिक संस्कृति की संज्ञा दी गयी है । इसका आशय राजनीतिक प्रतिमान से है । इसका सम्बंध राजनीतिक सामूहित आचरण से भी है । वस्तुतः राजनीति में जो बीज रूप है, वह उसकी संस्कृति है । इसके द्वारा राजनीति श्रेयस्कर और श्रेष्ठ प्रारूपों, प्रतिमानों तथा प्रबंधों के लिये उत्प्रेरित होती है ।

पंथ निरपेक्ष राजनीतिक संस्कृति

पंथ निरपेक्षता इतिहास के आदि काल से भारत की राजनीतिक संस्कृति का अंग है । संहिता से संविधान तक भारतीय जीवन चिन्तन शैली में इसका प्रतिबिम्बन असंदिग्ध रूप से है । भारतीय पंथ निरपेक्षता, आदिकालीन राजनीतिक सभ्यता के साक्षी, वेद, बुद्ध, वेदान्त और वैष्णव बांगमय में परिलक्षित है । इसका आधार मानव मात्र को विभूतिमान कर उसके विवेक को मान्यता प्रदान करना है। मानवीय गरिमा के रक्षण की प्रामाणिकता उसके सोच, साधना, आस्था, उपासना आदि के स्वातंत्र्य पर निर्भर है । प्रत्येक मनुष्य को सामाजिकता के संदर्भ में मत और मतवाद के रूचि वैचित्र्य का अधिकार है ।

भारतीय राजनीति के प्राचीन काल में भी शासक वर्ग के पांथिक चरित्र द्वारा किसी बाध्यता के औचित्य को स्वीकार नहीं किया । राजा या राज्य द्वारा पांथिक विचारों को आरोपित करने को युक्ति संगत नहीं समझा गया । राजा या शासक का अपना कोई पंथ या मत या सम्प्रदाय हो सकता था । किन्तु इस संदर्भ के प्रजाजनों या जनता को विवश या बाध्य करने का इतिहास साक्षी नहीं है ।

भारत में ईसा के पश्चात् ईसाई आये । फारस से पारसी भारत आये। लगभग अठारह सौ वर्ष पूर्व यहूदी आये । किन्तु इनके उत्पीड़न को कोई प्रसंग धर्म या पंथ के वैविध्य के कारण नहीं हुआ । भारतीय मध्यकालीन इतिहास ने पांथिक औदार्य को तिलांजलि भी दी है । इस्लाम पंथ जब शस्त्रों के आधार पर अपने मतवाद के प्रसार हेतु भारत में आया, संघर्ष और समर प्रारम्भ हो गये । ग्यारहवीं शती में गजनी के शासक ने भारत के विश्वासों और आस्थाओं पर गहरी चोट की । गुजरात के सोमनाथ और मथुरा के मन्दिरों में भारत की आस्थाओं के प्रतीकों को तोड़ा गया। सन् ११९३ से ११९६ तक गोरी के शासक महमूद गोरी के सेनापति कुतुबद्दीन ने चौबीस मन्दिरों को तोड़कर दिल्ली में मस्जिद का निर्माण कराया । सन् १५२८ में काबुल के बादशाह बाबर के सेनापति मीर बाकी ने अयोध्या के रामजन्म भूमि के मन्दिर को तोड़कर धार्मिक या पांथिक भावनाओं को अपमानित किया । बाबर के बंशज औरंगजेब ने

काशी, मथुरा आदि के धार्मिक या पांथिक भावनाओं पर गहरी ठेस, मन्दिरों को तोड़कर पहुँचायी । एक असहिष्णु पांथिक विकृति की आक्रामक वृति की तुलना में सत्रहवीं शती के अन्त के इतिहास में महाराज शिवाजी ने पांथिक औदार्य और स्वातंत्र्य को अपनी गरिमा में भारतीय इतिहास में पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। पंथ-निरपेक्षता और राजनीतिक संस्कृति के संदर्भ में औरंगजेब और शिवाजी को नीतियों का अध्ययन भारतीय परम्परा के गौरवशाली रूप का उद्घाटन कर सकता है ।

भारत के आधुनिक इतिहास में राजनीतिक संस्कृति की व्याख्या या विश्लेषण के पूर्व, यूरोप की पंथ सापेक्ष राजनीतिक संस्कृति का उल्लेख आवश्यक है।

यूरोप की राजनीतिक संस्कृति

यूरोप की राजनीतिक संस्कृति में, राज्य शक्ति पांथिक शक्तियों से दीर्घकाल खंड तक पराभूत रही है । यूरोप के मध्ययुग में इसके कारण राजनीतिक विकृति का अंश अधिक प्रभावी हो गया था । चर्च शक्ति और राजशक्ति का विवाद बढ़ गया । यूरोप के मध्ययुग में रोम की चर्च के बन्धन से मुक्ति का संघर्ष प्रारम्भ हो गया । जर्मनी के विचारक मार्टिन लूथर (सन् १२३१) ने विरोध का कीर्तिमान स्थापित किया । एक सुधार युग का प्रारम्भ हो गया । यूरोप के मध्ययुगीन रेनेसां (पुनरुत्थान) तथा रिफार्मेशन (सुधार) आन्दोलनों में विरोध और विवेक शक्ति का प्रदर्शन हुआ । इन आन्दोलनों ने यूरोप का रूप परिवर्तित किया । पांथिक और राजनीतिक संस्कृति का अभूतपूर्व सामजंस्य हुआ। यूरोप का रेनेसां एक सांस्कृतिक विकास का वाहक बना । मनुष्य की विचार शक्ति और विवेक की पुनर्रचना का अभियान रेनेसां बना था । रेनेसां विचार और सुधार पांथिक क्षेत्रों में था । इसके कारण पांथिक जटिलता तथा जकड़ से राज्य शक्ति को सामान्य नागरिक तक पहुँचाने की प्रक्रिया की भी खोज हो गयी । इस आधुनिकता के प्रसार से औद्योगिक विकास, नगरीकरण तथा शिक्षा विस्तार आदि हुए । इसने पंथ और राज्य के पार्थक्य तथा इनकी समानान्तर सत्ता, दोनों के सामंजस्य आदि की प्रेरणा दी । पंथ निरपेक्ष और पंथ सापेक्ष दोनों राजनीतिक सभ्यताओं का विकास यूरोप में हुआ ।

भारत की पंथ निरपेक्ष राजनीतिक संस्कृति

भारतीय इतिहास में सहस्राब्दियों से धर्म को सर्वोपरि मान्यता उपलब्ध हुयी है । भारत की परम्परा ने धर्म को राजनीतिक संस्कृति की नियंत्रक शक्ति के रूप में स्वीकृति दी है । आधुनिक इतिहास भी इसका साक्षी है । उन्नीसवीं शती के भारतीय विचारकों ने पांथिक सभ्यता से निरपेक्ष रहकर धर्म सापेक्षता का समर्थन किया है । पंथ और धर्म के भेद को दृष्टिगत रखकर ही इस संवेदनशील राजनीतिक संस्कृति के मर्म को स्पष्ट किया जा सकेगा ।

उन्नीसवीं शती के परमहंस रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि, भारत का मेरूदंड राजनीति नहीं है, सैन्य शक्ति नहीं है, व्यावसायिक आधिपत्य

नहीं है, और यांत्रिक शक्ति भी नहीं है । भारत का मेरुदंड धर्म है । धर्म ही भारत का सर्वस्व है ।[1] भारत में धर्म राजनीति की अपेक्षा गहरे महत्व की वस्तु है । धर्म जड़ तक पहुँचता है। धर्म आचरण के सार से सम्बन्धित है ।[2]

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में महात्मा गांधी ने भारतीय अखंडित परम्परा के अनुकूल राजनीति को धर्म से प्लावितकर दिया । महात्मा गांधी ने सच्चे और समग्र धर्म का राजनीति में प्रवर्तन किया । एक अद्वितीय धर्म सापेक्ष राजनीतिक संस्कृति का पोषण गांधी जी द्वारा हुआ । गांधी ने धर्म के बिना राजनीति को अर्थहीन और अनावश्यक माना है । 'जो लोग यह कहते हैं कि राजनीति से धर्म को की वास्ता नहीं बै, वे नहीं जानते कि धर्म का अर्थ क्या है' ?[3] 'मेरे लिये धर्म रहित राजनीति बिल्कुल गन्दी चीज है, जिससे हमेशा दूर रहना चाहिये । - - -इसलिये राजनीति में भी हमें स्वर्ग का राज्य स्तापित करना होगा ।' धर्म सापेक्ष राजनीति द्वारा स्वर्ग के राज्य की खोज गांधी-विचार का प्रमुख राजनीतिक तत्व ज्ञान है । राजनीति को नैतिक आधार, धर्म द्वारा उपलब्ध होने पर गांधी जी को विश्वास था । मानवीय प्रवृति से विलग किसी धर्म पर गांधी जी को विश्वास नहीं था । धर्म द्वारा सभी प्रवृतियों को नैतिक आधार, प्राप्त होने का गांधी जी को विश्वास था । धर्म, राजनीति को क्षुद्रता से मुक्त कर सकता है । मनुष्य समाज धर्म के प्रभाव से सत्ता की लालसा और लालच से ऊपर उठाकर राजनीति को उदात्त और उदार जीवन जीने का साधन बना सकता है ।

संविधान और राजनीतिक संस्कृति

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में संविधान की सत्ता और महत्ता की जागतिक स्वीकृति है । किसी देश के संविधान से किसी देश के सामाजिक जीवन या वास्तविक सार्वजनिक जीवन की संरचना को समझना संश्लिष्ट समस्या है । संविधान के द्वारा सही मूल्यों या संस्थागत प्रबंधों से परिचित होना सरल नहीं है । संविधान तथ्यगत रूप से सम्बन्धों या प्रबंधों को यथार्थ रूप में प्रतिबिम्बित नहीं कर पाता है । किन्तु सम्बंधों या प्रबंधों को यदि समाज की बुद्धिमत्तापूर्ण मूल्यवत्ता, विवेकपूर्ण परम्परा, विसंगतिप्रक्षालन की क्षमता और विश्वसनीय प्रतिमान से संलग्न रहने का साहस, संविधान निर्माताओं तथा नीति नियंत्रकों को, प्रकट करने की क्षमता है, तभीयह आदर्शोन्मुखी यथार्थ के सामाजिक अध्याय को अनावृत कर सकता है । इसके द्वारा एक उत्कृष्ट राजनीतिक संस्कृति का उद्घाटन सम्भव है ।

संविधान की भारतीय परम्परा मनुस्मृति से प्रारम्भ होती है । इसके उपरान्त अन्य स्मृति शास्त्रों की रचना हुयी । ये इतिहास में राज्यशक्ति और जनशक्ति के प्रेरक रहे हैं । इनका निर्माण राज्य या राजा या राजनीतिज्ञों ने नहीं किया था । सामाजिक विचारक, चिन्तकों तथा दार्शनिकों द्वारा सामाजिक-राजनीतिक नैतिकता को प्रकाश स्तम्भ प्रदान किये गये थे । काल प्रवाह में मनुस्मृति की विवेकपूर्ण परम्परा 'सर्व भूत हित' की आकांक्षा-अपेक्षा एक शाश्वत मूल्यवत्ता का

उत्कृष्ट उदाहरण है । भारत की संवैधानिक मर्यादा इस मानवीय मूल्यवत्ता से पृथक नहीं हो सकती ।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मनुस्मृति इतिहास की वस्तु है । भारतीय संविधान के अनुच्छेद ४४ में नागरिकों के लिये एक समान सिविल संहिता का निदेशन है । राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिये एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा । किन्तु इस्लाम धर्मावलम्बियों के लिये कुरान शरीफ के विधि-विधानों से शासित होने का स्वातंत्र्य है । अनुच्छेद ३७१ क और ३७१ छ द्वारा नागालैण्ड तथा मिजोरम के नागाओं और मिजों को धार्मिक या सामाजिक प्रथाओं या रूढ़िजन्य विधि के स्वातंत्र्य में विशेष उपबंध दृष्टव्य है । विश्व के कई राज्यों ने वर्तमान संविधानों के प्रारूप को ग्रहण करने की आवश्यकता को स्वीकार नहीं किया । सम्बन्धित समाज के व्यवहार प्रतिमान के अनुरूप शताब्दियों पूर्व की मान्यताओं को स्वीकार किया । इनमें ओमान और सउदी अरब महत्वपूर्ण है । इन राज्यों में कुरान शरीफ ही संविधान है । अन्य कोई संविधान नहीं है । अपने समाज की शत-शत वर्षों की परम्परा का पालन विश्वासपूर्वक ये राज्य करते हैं । आधुनिकता के नाम पर कोई पश्चाताप का अवकाश नहीं है । बहरीन राज्य ने अपना संविधान बनाकर भी अन्च्छेद २ में इस्लामी विधि-विधानों के अनुसार चलने पर निष्ठा प्रकट की है । हिन्द महासागर के एक छोटे राज्य मालदीप के संविधान के अनुच्छेद १५ में कुरान शरीफ के अध्ययन को सुनिश्चित किया गया है । इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्यों में वास्तविक रूप से कुरानशरीफ या तत्सम्बन्धी साहित्य संविधानं के प्रारूप है । एक सहस्त्र वर्षों से अधिक की मान्यताओं, मर्यादाओं और मूल्यों की राज्य द्वारा स्वीकृति है । इस संदर्भ में भारतीय संविधान का अध्ययन उपादेय है । संविधान की अर्थवत्ता, विवेकपूर्ण तथा व्यवहार्य परम्परा से संयमित होना तर्कसम्मत है ।

राजनीतिक संस्कृति-व्यक्ति या वर्ग

भारतीय संविधान या विश्व के विभिन्न संविधानों के अध्ययन से यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि, व्यावहारिक तथा शास्त्रीय प्रयोगों में पंथनिरपेक्षता की राजनीतिक संस्कृति राज्य के प्रसंग में है । राज्यशक्ति के पंथ सापेक्ष या पंथ निरपेक्ष होने की मान्यता है । कोई व्यक्ति या वर्ग पंथ सापेक्ष या पंथ निरपेक्ष हो सकता है । किन्तु भारतीय संविधान या विश्व के संविधानों में पंथ निरपेक्षता या सापेक्षता राज्य के प्रसंग में है । भारतीय संविधान की स्पष्ट अपेक्षा राज्य के पंथ निरपेक्ष स्वरूप का संरक्षण या संवर्धन है । व्यक्ति या वर्ग की पंथ सापेक्षता या निरपेक्षता भारतीय संविधान का अभिधेय नहीं है ।

पूर्व अध्ययन में भारतीय संविधान का विवेचन कर चुके हैं । भारतीय संविधान (उद्देशिका) में स्पष्ट है कि राज्यशक्ति पंथ निरपेक्ष रहकर नागरिकों के विचार, विश्वास, धर्म, उपासना स्वातन्त्र्य आदि की पक्षधरता से प्रतिबद्ध है । 'हम भारत के लोग भारत को एक (संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक

गणराज्य) बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को - - - -विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता - - - -प्राप्त कराने के लिए - - - दृढ़ होकर - - - संविधान को अंगीकृत - - -करते हैं ।'

पंथ निरपेक्षता से अभिप्राय पंथ-विमुखता या धर्म विमुखता या पंथ-विरोध या धर्म-विरोध नहीं है । नागरिकों की पांथिक आस्थाओं और अभिव्यक्तियों का स्वातंत्र्य राज्य की पंथ निरपेक्षता का उद्देश्य है । सभी पंथों या धर्मों द्वारा विधि-सम्मत विवेकपूर्ण स्वातंत्र्य का उपभोग संविधान की मर्यादा के अनुकूल है । राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, मूलवंश - - -के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा (अनुच्छेद १५) । अनुच्छेद १६ में है कि, राज्य के आधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश जाति - - -किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न उससे विभेद किया जायेगा । अनुच्छेद २५ से 'सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप में मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान हक होगा । ' भारतीय संविधान के ४२वें संशोधन द्वारा प्रविष्ट अनुच्छेद ५१ क उल्लेखनीय है । इस अनुच्छेद (ज) के अनुसार प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि,वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करें । सभी शब्द महत्व के हैं । भारतीय चिन्तन की परम्परा में जिज्ञासा का अति व्यापक स्वातंत्र्य है । उसी जिज्ञासा ने भारतीय तत्वज्ञान का विकास किया है । राज्यशक्ति की पंथ सापेक्षता से इस जिज्ञासा और तद्नूकूल समाधानकारी तर्कसंगत और विवेक सम्मत विचार - आचार के प्रतिगामी होने की शंका की जा सकती है । अतः भारतीय परम्परा वैदिक-उपनिषदीय काल से जिज्ञासा और ज्ञान के अखंड और अनंत प्रवाह पर किसी निषेध पर विश्वास नहीं करती । व्यक्ति, वर्ग तथा समाज नहीं, राज्यशक्ति संविधान के द्वारा पंथ निरपेक्षता के लिये बाध्य है । व्यक्ति, वर्ग और समाज पंथ सापेक्ष या निरपेक्ष होने के लिये स्वतंत्र हैं । राज्यशक्ति किसी पंथ को विशेषाधिकार न देकर, समान संरक्षण और विधिक समता की व्यवस्था की बाध्यता और विवेक से अनुशासित रहेगी ।

भारतीय संविधान ने धर्म या पांथिक स्वातंत्र्य स्वीकार कर, व्यक्ति-वर्ग या समाज की पांथिक प्रतिबद्धता का निषेध नहीं किया है । विवेकवत्ता के अनुसार व्यक्ति, वर्ग या पक्ष या समाज अपने धार्मिक या पांथिक विश्वासों के आधार पर वैयक्तिक या सामूहिक राजनीतिक या सामाजिक सहजीवन की संरचना कर सकता है । भारतीय राजनीतिक संस्कृति के अन्तर्गत ही इस कारण राजनीतिक क्षितिज में मुस्लिम लीग, अकालीदल या हिन्दूमहासभा आदि अपने पांथिक मतवादों की सुरक्षा के नाम पर अपने अस्तित्व का रक्षण करते रहे हैं । वर्तमान भारतीय संविधान से इनके अस्तित्व को कभी कोई चुनौती नहीं दी गयी ।मुस्लिम लीग से समझौता करने पर एक राजनीतिक दल अपने को ऊँची ध्वनि में पंथ निरपेक्ष कहता रहा । स्वयं मुस्लिम लीग अपने को पंथ निरपेक्ष या सेकुलर होने का दावा करती रहीं है । मुस्लिम लीग के अध्यक्ष ने अपने को सेकुलर या पंथ निरपेक्ष पक्ष घोषित किया है । राजनीतिक पक्ष की पंथ निरपेक्षता के

निर्णय की कसौटी उनकी नीति, पद्धति और उद्देश्य ही माना जाये । मुस्लिम लीग के अनुसार सांस्कृतिक या भाषायी आदि आधार पर शासन थोपने वाले पक्ष साम्प्रदायिक कहे जाने चाहिये ।[५] मुस्लिम लीग का आशय इस्लाम पंथ की तहजीबी पहिचान को बनाये रखना है ।भारतीय संविधान ने उसका निषेध नहीं किया है । यूरोप की धरती पर संवैधानिक पंथ तांत्रिक या पंथ निरपेक्ष राज्यों में भी क्रिश्चियन डेमोक्रेट दल हैं । बेलजियम, पश्चिमी जर्मनी, फ्रांस, इटैली आदि में अपनी पहिचान और पंथ विहीनता से संघर्ष करने की ऐतिहासिक तत्परता में इनका जन्म हुआ है । यूरोप में क्रिश्चियन राजनीतिक दलों ने इतिहास के उस मोड़ को स्वीकार नहीं किया है कि, धर्मान्धिता या धार्मिक जड़ता या पांथिक अतार्किक अनाचार वर्तमान में प्रवहमान रहें । मतवाद या आस्था के वैचित्र्य में सहिष्णुता या सदाचार का समापन अविवेक है। संवैधानिक पंथ निरपेक्षता की स्वीकृति प्रत्यक्ष मानवीय मूल्यों की स्वीकारोक्ति है। पंथ सापेक्षता ने भी परोक्ष रूप से इन मूल्यों के प्रति अश्रद्धा नहीं प्रकट की है ।

राज्य की हस्तक्षेपनीयता

पंथ निरपेक्षता की राजनीतिक सभ्यता में राज्य की सतत विस्तारित हस्तक्षेपनीयता का परिसीमन है । वैयक्तिक या वर्गीय - पांथिक रूचि वैचित्र्य पर सामान्यतः हस्तक्षेप पंथ निरपेक्ष राज्य का अधिकार नहीं है । अपवाद रूप में हस्तक्षेप की आवश्यकता जनहित में मान्य की गयी है । पंथ सापेक्षता राजनीतिक चिन्तन और चरित्र पर आरोपित करने से विचार स्वातंत्र्य में नियंत्रण का सम्भावना प्रबल हो सकती है । विचारणीय विषय यह भी है कि, पंथनिरपेक्षता जो राज्य शक्ति की पांथिक तटस्थता है, किस सीमा तक राजनीतिक चिन्तन, राजनीतिक दल आदि पर प्रभावी होना आवश्यक या अपेक्षित है । राजनीतिक चिन्तन का राज्य विशेष की परम्परा, प्रतिभा, परिस्थितियां तथा वैश्विक परिवेश से सामजंस्य या प्रगतिशीलता के संदर्भ में विकास अपरिहार्य रूप से अपेक्षित है । राजनीतिक दल किसी भी राज्य में संविधान की सन्तानें कही जाती है। भारतीय संविधान की वर्तमान व्यवस्था के अनुसार राजनीतिक दल इसकी उद्देशिका और मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत प्रावधान के विरूद्ध नहीं जा सकते ।

भारतीय राजनीतिक क्षितिज में विभिन्न पांथिक दलों जैसे मुस्लिम लीग ने भी अपने को सेकुलर घोषित किया है । तब सेकुलर की परिभाषा भारतीय संविधान तथा भारतीय परम्परा के अनुसार होना अपरिहार्य है । लोकतांतिक संदर्भ में किसी पंथ का विशेषाधिकार वैसे भी त्याज्य है, और पंथ निरपेक्षता से प्रतिबद्धता होने पर संरक्षण किसको किस सीमा तक प्राप्त हो, यह विवाद और विवेक का विषय है ।

दलीय लोकतंत्र के संदर्भ में इटली, जर्मन, चेक तथा स्लोवाक आदि में क्रिश्चियन डेमोक्रेटिक दलों के प्रबल अस्तित्व का उल्लेख किया गया है । पंथ

निरपेक्षता एक ऐसी राजनीतिक संस्कृति के उद्‌भव का कारण है, जिसमें छद्‌म वेशी राजनीतिक चिन्तन और चरित्र का पहिचान कठिन नहीं है । पांथिक सभ्यता को एक सीमा तक स्वातंत्र्य हो सकता है । किन्तु विशेषाधिकार भारतीय संविधान की पंथ निरपेक्षता के अंतर्गत सम्भव नहीं है । पंथ निरपेक्षता के अन्तर्गत विशेषाधिकार के प्रसंग में जापान के वर्तमान संविधान का अनुच्छेद २० उल्लेखनीय है कि, इसमें किसी पांथिक वर्ग के विशेषाधिकार का स्पष्ट निषेध है ।

अपने से भिन्न पांथिक भावनाओं का दमन, पंथ सापेक्ष राज्यों की सभ्यता द्वारा भी वैश्विक राजनीति में मान्य नहीं है । किन्तु अपने विधि-विधानों द्वारा इनकी नीतियाँ दमनकारी होने पर आश्चर्य नहीं हो सकता है । पंथ निरपेक्षता के प्रावधान द्वारा पांथिक अल्पसंख्यकों के संरक्षण की मर्यादा का उल्लंघन भी तिरस्कार और तुष्टीकरण हो सकता है । भारतीय संविधान के ढाँचे में यह अमान्य है । किसी विरोधाभास की विसंगति का निराकरण इतिहास में अपेक्षित है ।

भारतीय पंथ निरपेक्ष राजनीतिक संस्कृति में विशेषाधिकार या संरक्षण की मान्यता तथा मर्यादा को समझने के लिये वैश्विक संदर्भ में पंथ सापेक्ष राज्यों की संख्या और स्थिति महत्व की है । पंथ सापेक्ष इस्लामी राज्यों की स्थिति का आकलन अन्तर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में विचार योग्य है ।

इस्लामी राजनीतिक सभ्यता

भारतीय राजनीतिक संस्कृति में इस्लामी जगत की पंथ सापेक्षता की भूमिका प्रत्यन्त प्रभावी है । किसी राज्य में इस्लाम बहुमत उसे पंथ सापेक्षता की दिशा और दायित्व ग्रहण कराने में सफल है । इस कारण विश्व में इस्लाम बहुल या बहुमत वाले देशों की जनसंख्या की दृष्टि से भी विचार करने का औचित्य है (१६८१ की जनगणना के आधार पर निम्नांकित जनसंख्या का विवेचन है ।)

इस्लाम पंथ सापेक्ष अफगानिस्तान की जनसंख्या १७१५० हजार है । अरब अमीरात की जनसंख्या १७७० हजार है । ओमान की १२०० हजार, ईराक १७०६० हजार, ईरान ४६८६० हजार, कुवैत १७७० हजार, जोर्डन ३६८४ हजार, पाकिस्तान १०२२०० हजार, मालदीव १८६ हजार, दोनों यमन ८८३० हजार, सऊदी अरब ११५२० हजार तथा सीरिया की १०६६० हजार है । अफ्रीका के इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्यों में अलजीरिया की जनसंख्या २२६०० हजार, मिश्र ४६२८० हजार, मोरक्को २३००० हजार; लीबिया ३६६० हजार, सूडान २५५५०, सोमालिया ६११० हजार तथा ट्यूनिसिया की जनसंख्या ७३२० हजार और युगांडा की जनसंख्या १६७६० है। उपरोक्त २४ इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्यों की जनसंख्या लगभग ५११८४४ हजार है। इन इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्यों के अतिरिक्त इस्लाम बहुल राज्य हिंदेशिया की जनसंख्या १७२००० हजार और तुर्की की जनसंख्या ५०६७० हजार है । हिंदेशिया ने अपने संविधान में पंथ सापेक्षता को स्वीकार न कर ईश्वर के प्रति अडिग आस्था और अपनी

सभ्यता के प्रति गहरी पक्षधरता (अनुच्छेद ३२) में प्रकट की है। तुर्की ने अपने संविधान में पंथ निरपेक्षता की स्पष्ट घोषणा की है। तुर्की के इतिहास से वह स्पष्ट है कि, बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इस्लामी कट्टरवाद या कठमुल्लापन से संघर्ष कर राज्यशक्ति ने अपना पार्थक्य और पहिचान के लिये पांथिक शक्तियों से तटस्थता ग्रहण की।

इस्लाम पंथ सापेक्ष और इस्लाम बहुल उपरोक्त २६ राज्यों की जनसंख्या का योग लगभग ७३०००० हजार है। १९८१ की जनगणना से भारत राज्य की जनसंख्या ७४८००० हजार रही है। भारत की जनसंख्या में विविध पांथिक मतवादी सम्मिलित है। भारत में पांथिक दृष्टि से पचासी प्रतिशत से अधिक हिन्दू है। हिन्दू में सिक्ख, जैन और बौद्ध हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद २५ के स्पष्टीकरण (२) में इसकी स्वीकृति है। जिज्ञासा का विषय है कि, भारतीय संविधान निर्माताओं ने पंथ निरपेक्षता की व्यवस्था को स्वीकृति दी। एशिया के एक राज्य मलेशिया ने ४७ प्रतिशत गैर मुसलमान या ५३ प्रतिशत इस्लामी मतावलम्बी बहुमत होने पर ही राज्य का पंथ इस्लाम, संविधान में घोषित किया है। विभिन्न राज्य अपनी राजनीतिक संस्कृति का अनुकरण करते हैं।

वर्तमान में रूस और युगोस्लाविया केविधान से कई इस्लाम बहुल राज्यों का उदय हुआ है। उजबेकिस्तान, ताजकिस्तान, कजाकिस्तान, बोस्निया आदि में इस्लाम मतावलम्बियों का बहुमत है। अफ्रीकी महाद्वीप में भी अन्य मुस्लिम बहुल राज्य हैं। इनमें नाइजीरिया की जनसंख्या दस करोड़ से कुछ अधिक है। जनसंख्या के प्रतिशत के आधार पर पंथ सापेक्ष या निरपेक्ष राज्यों की राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन अपेक्षित है। इस संदर्भ में वर्तमान विश्व में सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों और मान्यताओं की पारदर्शी, प्रभावी तथा प्रगतिशील अवधारणा तथा प्रामाणिक आचरण की प्रतिष्ठा भावी इतिहास के लिये कल्याणकारी है।

इस्लाम पंथ सापेक्ष या इस्लाम बहुल राज्यों में राजनीतिक संस्कृति में विशेष अंतर नहीं है। पांथिक विचारों, व्यवहारों तथा प्रतिमानों के कारण इस्लामी राज्यों ने विभाजित रहकर भी एकता का प्रयास अपने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बना कर किया है। इस्लाम बहुल राज्यों में राजाशाही, तानाशाही, नाताशाही, समाजवादी आदि व्यवस्थायें है। किन्तु पंथ सापेक्ष राज्यशक्ति ही अपरिहार्य प्रतीत होती है। इस्लाम बहुल राज्यों में आन्तरिक और बाह्य रूप से जुड़ने की शक्ति पांथिक संस्कृति में है।

पंथ सापेक्ष तथा पंथ निरपेक्ष संस्कृति

पंथ सापेक्ष राज्य इस्लामी या ईसाई अपनी-अपनी पांथिक संस्कृति से भिन्न किसी संस्कृति के प्रति सहिष्णुता या समादर के मार्ग की अपेक्षा नहीं करते। परम्परागत संस्कृति का अनुगमन इनके राज्य संविधानों की व्यवस्था है। रूढ़िवादी राजनीतिक संस्कृति का पोषण पंथ सापेक्ष इस्लामी -ईसाई राज्यों की सहज स्थिति है। मलेशिया से मोरक्को तक प्रस्तुत अध्ययन में जिन इस्लाम पंथ सापेक्ष राज्यों का विवेचन है, उनके संविधान और समाज इसी परम्परागत जीवन शैली के प्रति आबद्ध है। ईसाई पंथ सापेक्ष इंगलैड, पोर्तगाल, ब्राजील, स्पेन आदि की राजनीतिक संस्कृति रूढ़ि जन्य है।

पंथ निरपेक्ष राज्यों में हिन्देशिया ने अपने संविधान में पथ निरपेक्षता की घोषणा नहीं की है । हिन्देशिया ने अपने संविधान के अनुच्छेद २९ में एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की घोषणा की है । अनुच्छेद ३२ में अपनी संस्कृति के विकास का प्रावधान किया है । इस व्यवस्था में परम्परा और प्रगति के सामजंस्य की संभावना अधिक प्रबल है ।

भारतीय संविधान ने संस्कृति सम्बंधी अधिकार में, भारत के राज्यक्षेत्र में या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को अनुच्छेद २९ में अपनी विशेष संस्कृति को बनाये रखने का अधिकार दिया है । किन्तु ४२ वें संविधान संशोधन द्वारा अनुच्छेद ५१ क (च) के द्वारा भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य भी निर्धारित किया कि, हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझें और उसका परिरक्षण करें । इस सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का शुभारम्भ के कालखंड का निर्णायक तथ्य और तत्वज्ञान, संविधान की मूलप्रति से संलग्न २२ चित्र हैं । भारतीय वैदिक युग से परम्परा प्रारम्भ होती है । समस्त सृजनात्मक, रचनात्मक, वैचारिक, विवेकपूर्ण और विसंगति प्रक्षालन की परम्परा से समर्थ तथा सार्थक पांथिक स्वातंत्र्य की सभ्यता इसमें निहित है ।

भारतीय संविधान के १३ वें संशोधन (१९६३) द्वारा अंतः स्थापित अनुच्छेद ३७१ (क) तथा (छ) में नागाओं तथा मिजो नागरिकों की धार्मिक, सामाजिक तथा विधिक प्रथायें, रूढ़ियाँ और प्रक्रिया के विशेष उपबन्ध किये गये। इस संदर्भ में राजनीतिक संस्कृति के विनिश्चय में ५१ (१) की भूमिका-कि गौरवशाली परम्परा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद, ज्ञानार्जन, सुधार की भावना तथा राष्ट्र के सतत उत्कर्ष की ओर अग्रसर होना -संविधान की अपरिहार्य अपेक्षा है । व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में यह लागू है । भारतीय संविधान सभी पंथों के स्वातंत्र्य को आश्वस्त कर,वैचारिक स्तर पर पंथ विरोध का भी निषेध नहीं करता । साम्यवादी राज्यों ने अपने संविधानों में पंथ विरोध का भी अधिकार दिया है । किन्तु भारतीय संविधान की राजनीतिक संस्कृति, पंथ निरपेक्षता या सर्व पंथ स्वातंत्र्य की पक्षधर है।

भारतीय पंथ निरपेक्ष राजनीतिक संस्कृति को अधिक स्पष्ट करने के लिये वैश्विक संदर्भ में पंथ निरपेक्षता और राजाशाही, पंथ निरपेक्षता और तानाशाही, पंथ निरपेक्षता और नाताशाही (लोकतंत्र), पंथ निरपेक्षता और समाजवाद, तथा पंथ निरपेक्षता और साम्यवाद का विभिन्न संविधानों के आधार पर सम्यक तथा संतुलित अध्ययन करना आवश्यक है ।

राजाशाही और पंथ निरपेक्षता

भारतीय इतिहास में राजाशाही या नृपतंत्र संहिता काल में पंथ निरपेक्ष, किन्तु धर्म सापेक्ष रही है । राज्य की पंथ निरपेक्षता ने वैयक्तिक रूचि वैचित्य, तार्किक तत्वज्ञान, वैचारिक स्वातंत्र्य आदि को मानवीय विवेक की सामाजिक मूल्यवत्ता और मर्यादा की सीमा में स्वीकार किया था । सम्राट अशोक, महात्मा बुद्ध की विवेकवता

को स्वीकार कर धर्म की शरण में आये । अशोक के शिलालेखों आदि से स्पष्ट है कि, उसने पांथिक उपासना-साधना आदि का निषेध नहीं किया । यज्ञ-संस्कृति पर शत-शत वर्षों तक भारतीय राजनीति स्थापित रही है । यज्ञ की राजनीतिक संस्कृति का तात्विक -सात्विक विवेचन उपनिषदों में है । सृष्टि के रहस्यों को अनावृत करने और समाज में अनुराग को स्थापित करने का एक कौशल यज्ञ रहा है । (गांधी विचार सरणि के संत विनोबा ने समाज और राजनीति के परिष्कार के लिये स्वप्रणीत आन्दोलन को भूदान यज्ञ माना था।) भारतीय मनीषा ने यज्ञ को पांथिक या साम्प्रदायिक या जातीय कर्मकाण्ड के रूप में स्वीकार नहीं किया था ।

भारतीय इतिहास में इस्लाम के प्रवेश ने एक ऐसी राजनीतिक संस्कृति या विकृति को आरोपित किया, जिसने अन्य मतवादों या पंथों की भावनाओं, आस्थाओं तथा स्वाभिमान पर करारी चोट दी । इस्लाम की राजनीति ने इस पंथ सापेक्षता को भारतीय इतिहास में स्थापित करने का प्रयास किया, जिसने असहिष्णुता, अन्याय, अनाचार आदि पोषित किये ।

उन्नीसवीं शती से विदेशी वर्चस्व भी पंथ सापेक्ष शक्तियों का रहा है । इस शक्ति ने भारत की स्वतंत्र राजाशाही को तोड़ दिया था । भारतीय संविधान के प्रवेश काल में पंथ सापेक्ष विघटनकारी इस्लामी राजनीति ने भारत को विखंडित किया । भारत में पंथ सापेक्ष विदेशी राजाशाही ने अपने पराभव के काल में भी भारत के पड़ोस में पंथ सापेक्ष राजनीति को स्थापित कर दिया ।

भारतीय इतिहास के स्वातंत्र्य काल में जो सामंती शकित रजवाड़ों की शेष थी, वह टूट गयी । इस सामंती व्यवस्था में भी पंथ निरपेक्ष राजनीतिक सभ्यता एक नियम के रूप में रही है । सभी सम्प्रदायों के पांथिक स्वातन्त्र्य की कथा इस सांमती भूगोल के इतिहास में अंकित है ।

विगत इतिहास की सांमती राजाशाही वर्तमान विश्व में संवैधानिक राजशाही में रूपांतरित हो गयी है । भारत में आदिकाल से संवैधानिक राजाशाही रही है । किन्तु अपेक्षाकृत नये देश इंगलैण्ड ने शताब्दियों तक संघर्ष कर राजाशाही को संवैधानिक नियंत्रण प्रदान किया है । बेलजियम, इंगलैण्ड, नार्वे, जापान, जोर्डन, मोरक्को, सऊदी अरब, थाईलैण्ड, नेपाल आदि की राजाशाही व्यवस्था से पांथिक संबंधों का विवेचन महत्व का है । बेलिजियम में संवैधानिक राजाशाही अनुच्छेद ६० के प्रावधान से है । अनुच्छेद १४ के अनुसार उपासना स्वातंत्र्य भी है । विश्व इतिहास में महाशक्ति के रूप में उभरने वाले इंगलैण्ड की राजाशाही वर्तमान में भी धर्माध्यक्ष और राज्याध्यक्ष है । राजाशाही की संवैधानिक मान्यता नार्वे में है । नार्वे के संविधान के अनुच्छेद १६ में राजाशाही राज्य की ही नहीं, पंथ की नियंत्रक है । अनुच्छेद २ के अन्तर्गत लूथरन ईसाई सम्प्रदाय का वर्चस्व है । जापान, अनुच्छेद २० के अन्तर्गत पंथ निरपेक्ष राजाशाही राज्य है । जोर्डन के संविधान में अनुच्छेद २ से राज्य का पंथ इस्लाम है । किन्तु अनुच्छेद १४ - १५ में पंथ का स्वातंत्र्य भी है । मोरक्को में संवैधानिक राजाशाही

उद्देशिका में स्पष्ट है । अनुच्छेद ६ में पांथिक स्वातंत्र्य का भी प्रावधान है । सऊदी अरब में संविधान नहीं है । यह पंथतांत्रिक सर्व सत्ताधारी राजाशाही राज्य है । इस राज्य शक्ति का परम्परागत नियंत्रण इस्लामी विधिक व्यवस्था से है ।

थाईलैण्ड की राजाशाही की संवैधानिक बाध्यता बौद्ध मतावलम्बन की है। राजा को बौद्ध पंथ का होना अनिवार्य है । नेपाल में संवैधानिक राजाशाही की व्यवस्था प्रथम अनुच्छेद में है । अनुच्छेद १४ में पांथिक स्वातंत्र्य है । राजाशाही व्यवस्था में पंथ निरपेक्षता या पंथ सापेक्षता की राजनीतिक सभ्यता को अपनी गौरवशाली परम्परा और परिस्थितियों की अनुकूलता की भूमिका पर स्वीकृति दी है । राजाशाही विभिन्न राज्यों की अपनी ऐतिहासिक विकास की अभिव्यक्ति है । संवैधानिक राजाशाही भी अपने ऐतिहासिक विकास की उपलब्धि है ।

पंथ निरपेक्षता और तानाशाही

वर्तमान विश्व की राजनीति में तानाशाही अपवाद बनती जा रही है । अन्तर्राष्ट्रीय रानजीति में इसे सम्माननीय स्तर की मान्यता नहीं है । तानाशाही अल्पकालिक या संक्रान्ति कालीन व्यवस्था के रूप में अस्थिर राजनीति की उपज है । तानाशाही का एक रूप युगांडा में ईदी अमान के राज्य के कालखंड में उभर कर आया था । पड़ोसी पाकिस्तान की यह सहज विकृति रही है। इस को रुचि वैचित्र्य के कालखण्ड की संज्ञा दी जा सकती है । वर्तमान राजनीति में संवैधानिक तानाशाही अधिक दाम्भिक और दमनकारी है । भारतीय संविधान के गाम्भीर्य को क्षीण करने के लिये आपातकालीन अनुच्छेदों को १९७५ में प्रवर्तित करने पर भारतीय जनमानस की १९७७ में प्रतिक्रिया इतिहास में अविस्मरणीय है । संवैधानिक या सैनिक तानाशाही राजनीतिक विकृति है।

पंथ निरपेक्षता और लोकतंत्र

बीसवीं शती के द्वितीय विश्व युद्ध ने सामंती तथा साम्राज्यवादी सभ्यता के समापन की सक्षम भूमिका का ऐतिहासिक निर्वाह किया है । बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में जागतिक स्तर पर लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति सर्वोपरि बन गयी । सामंती सभ्यता के खंडहरों में पोषित राज्य या राजनीति अपवाद रूप में शेष है । सामंती सभ्यता के केन्द्र बिन्दु में जो मूल्य या मान्यतायें रहीं हैं, उनको नकार कर लोकतांत्रिक मूल्यों और मर्यादाओं को अधिकांश राज्य शक्तियों ने ग्रहण किया । लोकतांत्रिक संस्कृति की निर्णायक शक्ति नियमतः संवादिता और समझौता है । पंथ निरपेक्षता का लोकतांत्रिक सभ्यता के संदर्भ में पल्लवित और पुष्पित होना तार्किक स्थिति है । लोकतांत्रिक राज्यों में पंथ निरपेक्ष व्यवस्था आवश्यक है । किन्तु अपरिहार्य नहीं है ।

भारतीय राजनीति जब सांमती इतिहास से निकल रही थी, तब भी इसने पांथिक जीवन में हस्तक्षेप नहीं किया । भारतीय सांमती राजनीति ने वैचारिक स्वातंत्र्य तथा इसकी पांथिक अभिव्यक्ति में हस्तक्षेप नहीं किया । भारत की राजनीतिक संस्कृति,

पंथ निरपेक्षता की सहज स्थिति है । पंथ निरपेक्षता लोकतांत्रिक राजनीति के ताने बाने में गुम्फित है । लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिक के अधिकाधिक स्वातंत्र्य की सुनिश्चितता है । लोकतंत्र के संदर्भ में राज्यशक्ति नागरिक के पांथिक अधिकार को मूलभूत मानकर उनका संरक्षण करती है । यह भारत राज्य की ऐतिहासिक और संवैधानिक स्थिति है ।

विश्व के पंथ सापेक्ष सभ्यता के राज्यों ने भी लोकतंत्र के प्रति निष्ठा प्रकट की है । अलजीरिया ने अपने संविधान के अनुच्छेद १ में लोकतंत्र के प्रति निष्ठा प्रकट की है । किन्तु संविधान के अनुच्छेद ४ में राज्य का पंथ इस्लाम है । अफगानिस्तान के संविधान (अनुच्छेद१) में लोकतंत्र के प्रति निष्ठा है । इसी राज्य के संविधान के अनुच्छेद ५ में पवित्र और सत्य इस्लाम पंथ से भी निष्ठा प्रकट की गयी है । पुनः अनुच्छेद ३४ में लोकतांत्रिक अधिकारों और स्वातंत्र्य से नागरिक को आश्वस्त किया गया है । ईजप्ट (मिस्त्र) के संविधान के प्रथम अनुच्छेद में लोकतांत्रिक व्यवस्था से प्रतिबद्धता है । द्वितीय अनुच्छेद में राज्य शक्ति की इस्लाम पंथ के प्रति निष्ठा प्रकट की गयी है । ईराक के संविधान के प्रथम अनुच्छेद में लोकतंत्र और चतुर्थ अनुच्छेद में इस्लाम पंथ के प्रति राज्य को प्रतिबद्ध घोषित किया गया है । पाकिस्तान के संविधान की उद्देशिका में लोकतंत्र की स्वीकृति और अनुच्छेद २० में राज्य का पंथ इस्लाम का प्रावधान है । सूडान के संविधान के अनुच्छेद १ में लोकतंत्र, और ६ तथा १६ अनुच्छेदों में राज्य की इस्लाम पंथ के प्रति आबद्धता स्पष्ट है । लोकतंत्र की व्यवस्था को इस्लाम पंथ सापेक्ष शक्तियों ने भी अमान्य नहीं किया है । लोकतंत्र को स्वीकार न करने वाले पंथ सापेक्ष की संख्या भी महत्व की है ।

बौद्ध सापेक्ष पांथिक राज्यों में कम्बोडिया के संविधान में प्रथम अनुच्छेद द्वारा लोकतंत्र की पक्षधरता और द्वितीय अनुच्छेद में राज्य की पांथिक प्रतिबद्धता भी है । लोकतांत्रिक शक्तियों को पंथ निरपेक्षता या सापेक्षता की संवैधानिक व्यवस्था से अधिक, अपनी सामाजिक परम्परा से शक्ति उपलब्ध होती है । इंगलैण्ड, पंथ सापेक्ष राज्य का, और लोकतांत्रिक नागरिक अधिकारों का निश्चय ही, एक सहज सामंजस्य का उदाहरण है ।

पंथ निरपेक्षता और विधिक समता

लोकतंत्र का एक लक्षण विधिक समता का प्रावधान है । विधिक समानता के पंथ निरपेक्ष राज्यों में भारत लोकतांत्रिक महान राज्य है । पंथ सापेक्ष राज्यों की बड़ी संख्या है, जिन्होंने विधिक समता को संवैधानिक स्वीकृति दी है । अफगानिस्तान की पंथ सापेक्षता में संविधान के २८ वें अनुच्छेद में विधिक समानता की घोषणा है । पंथ सापेक्ष इस्लामी राज्य ईजिप्ट के संविधान (अनुच्छेद ४०) में विधिक समानता की व्यवस्था है । मलेशिया के संविधान (अनुच्छेद ६) में विधिक समानता और पांथिक स्वरूप (अनुच्छेद ३) का संकल्प है । मोरक्को के संविधान के ५ वें अनुच्छेद में विधिक समानता की व्यवस्था है । इस्लामी राज्य सूडान के संविधान के अनुच्छेद ३८ में विधिक

समानता का प्रावधान है । राज्य जब पांथिक तंत्र को स्वीकार करता है, तब उसकी विवशता या बाध्यता का परिसीमन पंथ विशेष केविधि-विधानों से होता है । प्राकृत या मानवीय आधार पर तथा सार्वभौमिक स्तर या जागतिक मानक के आधार पर पंथ सापेक्ष राज्य विधिक समता को जीवन्त नहीं बना सकते ।

भारतीय संविधान के १४ वें अनुच्छेद में विधिक समता की व्यवस्था व्यापक परिप्रेक्ष्य में है । राज्य,भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा ।' मनुष्य जाति के मूल अधिकारोंमें यह समता का अधिकार राज्यशक्ति को पंथ निरपेक्ष रहने के लिए सतर्क और सक्षम बनाता है । इसमें विधि शब्द के अन्तर्गत भारत के राज्य क्षेत्र में विधि का बल रखने वाला कोई अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनिमय, अधिसूचना, रूढ़ि या प्रथा है । (अनुच्छेद १३) भारतीय संविधान में राज्यशक्ति पांथिक विषयों की विधिक स्वतंत्रता में सदाचार, शान्ति व्यवस्था और स्वास्थ्य के औचित्य के आधार पर केवल हस्तक्षेप कर सकती है । भारत राज्य द्वारा पांथिक स्वातंत्र्य और समानता का संवैधानिक आधार, राज्यशक्ति को किसी पंथ के उपासना प्रतिमान के अतिक्रमण या अपमान से निषिद्ध करता है । पंथ निरपेक्षता की राजनीतिक संस्कृति में विधिक समता राज्यशक्ति को नीतिवान, नियंत्रित और नैतिक बनने का अधिक अवसर प्रदान करती है ।

नैतिकता और राजनीतिक संस्कृति

पंथ निरपेक्ष राज्य और पंथ सापेक्ष राज्य नैतिकता को पृथक-पृथक स्तर पर स्वीकार करते प्रतीत होते हैं । पंथ सापेक्ष राज्यों ने भी नैतिक मूल्यों को स्वीकृति दी है । पंथ के अनुकूल नैतिकता में सार्वभौमिक नैतिकता या जागतिक स्तर पर मानवीय मूल्यवत्ता उपेक्षित होने की प्रबल सम्भावना निहित रहती है । पंथ सापेक्ष या पंथ निरपेक्ष राज्य अपने-अपने क्षेत्रों में परम्परागत रूप से मान्य नैतिक मूल्यों से पृथक नहीं हो सकते। किन्तु पंथ के अनुकूल नैतिकता में राज्य द्वारा सार्वभौमिक नैतिकता का वृहत अंश या जागतिक स्तर पर मानवीय मूल्यवत्ता उपेक्षित होने की सम्भावना निहित रहती है ।

कोलम्बिया राज्य के संविधान में रोमन कैथोलिक पांथिक व्यवस्था में राज्य का योगदान है । कोलम्बिया के संविधान के अनुच्छेद ५३ में सभी उन पंथों या सम्प्रदायों की स्वतंत्रता की मान्यता है, जिनकी ईसाई पंथ की नैतिकता से विरोध नहीं है । इस राज्य की संवैधानिक मर्यादा के अनुसार उपासना स्वातंत्र्य का उपयोग ईसाई पंथ की नैतिकता के विरूद्ध नही हो सकता । कोस्टारिका के संविधान मेंरोमन कैथोलिक पांथिक व्यवस्था में राज्य का योगदान है । किन्तु अन्य उपासना पद्धति की जो जागतिक नैतिकता के प्रतिकूल नहीं है, उसकी छूट है । चाइल के संविधान के अनुच्छेद ६ में चर्च और उस पर आश्रित संस्थाओं की सभी पांथिक गतिविधियों को कराधान से

मुक्ति का प्रावधान है । अन्य सभी पांथिक आस्थाओं का स्वातंत्र्य नैतिकता आदि के प्रतिकूल न होने पर है ।

इस्लाम पंथ सापेक्ष ईराक के संविधान के २५ वें अनुच्छेद में इस्लाम के अतिरिक्त अन्य पंथों के स्वातंत्र्य का प्रावधान है । किन्तु संविधान और विधि-विधान के अनुसार निहित नैतिकता और सार्वजनिक व्यवस्थां के अन्तर्गत यह स्वातंत्र्य है ।

पंथ निरपेक्षता और समाजवाद

भारतीय संविधान के ४२ वें संशोधन (सन् १९७६) के द्वारा पंथ निरपेक्षता और समाजवाद शब्दों को उद्देशिका में प्रविष्ट किया गया । राजनीतिक क्षेत्रों में कुछ आभास हुआ कि पंथ निरपेक्षता और समाजबाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । विश्व तथा भारतीय साक्ष्य से इसे भ्रममूलक कहा जा सकता है । स्वयं भारतीय संविधान में अनुच्छेद ३७१ (क) और (छ) के परिप्रेक्ष्य में स्वीकृति है । (१) इस संविधान में किसी बात के होते हुये भी (१) निम्नलिखित के सम्बंध में संसद का कोई अधिनियम नागालैंड राज्य को तब तक लागू नहीं होगा, जब तक नागालैंड का विधान सभा संकल्प द्वारा ऐसा विनिश्चय नहीं करती, अर्थात:

(१) नागाओं की धार्मिक या सामाजिक प्रथाएं

(२) नागारूढ़ि जन्म विधि और प्रक्रिया - - - ।

अनुच्छेद ३७१ (छ) में मिजोरम का धार्मिक, सामाजिक प्रथाएं रूढ़ि जन्य विधि और प्रक्रिया आदि के स्वातंत्र्य का प्रावधान, उद्देशिका की समाजवादी तथा पंथ निरपेक्षता की घोषणा के सन्दर्भ में विचारणीय है । पंथ निरपेक्षता या सरकार के किसी राज्य में संविधान में संशोधन परम्परा की जीवन्तता पर आश्रित है । समाजवाद ने समाज की मूलरचना में परिवर्तन की अपेक्षा राज्यवाद को अधिक शक्ति प्रदान करने में सहायता की है ।

पंथ सापेक्ष राज्यों द्वारा समाजवाद की स्वीकृति में राज्यवादी नियंत्रण की स्वीकृति परिलक्षित है । अलजीरिया ने इस्लाम पंथ सापेक्षता के साथ समाजवाद को अनुच्छेद १० में स्वीकृति प्रदान की है । ईजिप्ट ने इस्लाम पंथ सापेक्षता से प्रतिबद्धता के साथ-साथ अनुच्छेद १ में समाजवाद को स्वीकृति दी है । ईराक के संविधान में पंथ सापेक्षता के साथ अनुच्छेद १ में समाजवादी व्यवस्था के प्रति निष्ठा है । इसी प्रकार यमन (उत्तरी) ने इस्लाम और समाजवाद से एक साथ अनुकूलता प्रकट की है । लीबिया के संविधान में समाजवाद के पक्षधर बनकर इस्लाम राज्य कापंथ घोषित है । सीरिया ने इस्लाम पंथ सापेक्षता अनुच्छेद ३ में, और समाजवाद को उद्देशिका में स्वीकृति दी है । सूडान ने अपनी पांथिक निष्ठा की अपेक्षा राज्यवादी शक्तियों को प्रोत्साहन दिया है ।

पंथ निरपेक्ष राज्य शक्तियों में, भारत द्वारा समाजवाद की स्वीकृति में, सामाजिक समरसता या मनुष्य जाति की समता और क्षमता का सामंजस्य है । भारत

की राज्यशक्ति ने पंथ निरपेक्ष रहकर समाजवादी संस्कृति को आमंत्रण दिया है। भारतीय संविधान ने पंथ निरपेक्षता की कोई परिभाषा नहीं की है, और समाजवाद भी अपरिभाषित है। इसी संविधान में एक ऐसी राजनीतिक संस्कृति (अनुच्छेद ५१ क (च) की अपेक्षा है, जो उपासना और साधना के क्षेत्रों में नागरिकों को अधिकाधिक स्वातंत्र्य और समाजवाद के नाम से सामाजिक दायित्व के विकास की अनन्त सम्भावनाओं का सृजन कर सके। पंथ निरपेक्षता राज्य की शक्ति को सीमित करने का अनुबन्ध है, और समाजवाद राज्य की शक्ति को प्रतिबद्ध करने का संकल्प है। इस प्रकार एक सामाजिक राजनीतिक संस्कृति उद्भव सहज रूप से हो सकता है।

पंथ निरपेक्षता और साम्यवाद

साम्यवादी राजनीतिक संस्कृति, समाजवादी संस्कृति का एक पंथ विरोधी संस्करण है। मार्क्स ने मानवीयकरूणा के आधार पर जिस वैचारिक क्रान्ति की उद्घोषणा की थी, वह संवैधानिक सीमाओं में कानून और व्यवहार में कत्ल के आधार पर साम्यवादी रूप में स्थित हो गयी। इसकी राजनीतिक सभ्यता संवाद, सहमति तथा सहजीवन की अपेक्षा, संघर्ष, साजिश तथा वर्ग विद्वेष और बाध्यता से संलग्न हो गयी। कई कारणों से बीसवीं शती के नवम दसक में इस राजनीतिक सभ्यता का रूप तथा वारसा संधि के देशों में पराभव हो गया। इस राज्यवादी सभ्यता ने सच बोलने की नैतिक आजादी समाप्त की थी। इसके समापन से साम्यवादी दल भी विधि निषिद्ध और पराभूत हो गये। इस साम्यवादी राजनीतिक सभ्यता का अपने बोझ से स्वयं टूट जाने पर, राज्यशक्ति से प्रताड़ित या उपेक्षित प्रसुप्त पांथिक मनोभावों के जागरण और गिरजाघरों के घंटों के मुखरित होने का इतिहास उत्कीर्ण हो गया।

साम्यवादी राज्यों के संविधानों की विशेषता है कि, इनमें सद्पुरूषों-मार्क्स, लेनिन तथा भावों - के आधार पर स्थित होकर, प्रचलित पंथों और मतवादों पर विश्वास न कर, इनके विरोध को संवैधानिक मान्यता प्रदान की। कुछ साम्यवादी राज्यों के संविधानो ने मार्क्सवादी और लेनिनवादी विचारों के आधार पर राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा आर्थिक व्यवस्थाओं को स्वीकृति दी। मोजेम्बिक के संविधान में भावो पंथ के प्रति निष्ठा है। साम्यवादी अंगोला राज्य ने अपने संविधान के अनुच्छेद २ में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के प्रतिनिष्ठा प्रकट की है। अनुच्छेद ७ द्वारा पंथ निरपेक्षता को स्वीकृत कर, सभी पंथों को सम्मान और अनुच्छेद २५ के अनुसार सभी उपासना पद्धतियों को समान अधिकार दिया गया है। क्यूबा में वैज्ञानिक समाजवाद या साम्यवाद के नाम पर प्रचलित पांथिक स्वरूपों को महत्वहीन कर, मार्क्सवादी-लेनिनवादी पंथ पर आस्था का प्रसार है। कोरिया (उत्तरी) के संविधान की निष्ठा मार्क्सवाद -लेनिनवाद के प्रति है। कांगों (ब्राजीविली) के संविधान के अनुच्छेद १ में सेकुलर राज्य की घोषणा कर, अनुच्छेद ६६ में मार्क्सवादी

और लेनिनवादी सिद्धान्तों को मार्गदर्शक घोषित किया गया है । जर्मन (पूर्वी) के संविधान के अनुच्छेद १ में मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों को मार्ग दर्शक घोषित किया गया। अनुच्छेद २० में पांथिक स्वातंत्र्य का भी प्रावधान है । मंगोलिया के संविधान में मार्क्सवादी-लेनिनवादी संरचना से प्रतिबद्धता है । अनुच्छेद ८६ में उपासना स्वातंत्र्य है, और पंथ या धर्म विरोधी प्रचार का स्वातंत्र्य भी है ।

साम्यवादी राज्यों ने पांथिक स्वातंत्र्य और पांथिक विरोध दोनों को अपने संविधानों में स्थान दिया है । इसका अभिप्राय प्रचलित परम्परागत पंथों या धर्मों का विरोध है। वस्तुतः सद्पुरुष विशेष को जब आचार-विचार का मार्ग दर्शक मानकर समाज या राजनीति की रचना की प्रक्रिया निर्धारित होगी, तब एक पंथ के निर्माण की प्रक्रिया स्वतः प्रारम्भ हो जाती है । मार्क्सवाद-लेनिनवाद, एक भौतिक, दार्शनिक और सामाजिक संरचना की पक्षधरता और परम्परागत पांथिक विरोध के कारण स्वयं एक पंथ बन गया है । राजसत्ता और अर्थसत्ता के साथ ही नैतिक सत्ता पर नियन्त्रण की दिशा का साम्यवादी संविधानों ने मार्ग प्रशस्त किया है । इस प्रकार एक राजकीय पंथ का प्रवर्तन साम्यवादी राज्यों ने किया है। साम्यवादी राज्यों के संविधानों के पंथ निरपेक्षता के प्रावधान में भौतिकवादी जीवन पंथ की स्वीकृति से, पंथ सापेक्षता को एक नया आकार प्राप्त हुआ है । किन्तु सत्य या स्वातंत्र्य की अभिव्यक्ति पर अंकुश के कारण साम्यवादी सभ्यता को इतिहास ने नकार दिया है ।

धर्म और राजनीति

विश्व राजनीति में साम्यवादी राज्य प्रतिष्ठान के उद्भव ने पांथिक विचारों, आस्थाओं तथा विश्वासों के प्रति विरोध के स्वातंत्र्य को भी संवैधानिक स्वीकृति दी है । रूस में साम्यवादी व्यवस्था ने पंथ विरोध का अधिकार अनुच्छेद १२४ (संविधान) द्वारा दिया था । चीन ने नास्तिकता के प्रसार का स्वातंत्र्य अनुच्छेद ४६ में दिया । उत्तरी कोरिया,मंगोलिया मोजाम्बिक आदि के संविधानों में भी इसी प्रकार के प्रावधान किये गये । किन्तु सभी पंथ सापेक्ष राज्य आस्तिकता से प्लावित हैं । हिन्देशिया या इंडोनेशिया पंथ सापेक्ष नहीं है । किन्तु संविधान शुभारम्भ में ईश्वर के प्रति निष्ठा प्रकट है । स्विटजरलैंड पंथ तांत्रिक नहीं है । किन्तु संविधान में सर्वशक्तिमान पर आस्था है।

भारतीय संविधान में धर्म और उपासना को स्वातंत्र्य प्रदान कर आस्तिकता या नास्तिकता का भेद नहीं है । भारतीय परम्परा की व्यापक और विराट जीवन दर्शन की अवधारणाओं ने इसे महत्व नहीं दिया । किन्तु चरित्र प्रतिमान की दृष्टि से भारत ईश्वरत्व की गहरी श्रद्धा से आपूरित रहा है । भारत के महत्वपूर्ण विचारक विद्वान तथा राजनीतिज्ञ आस्तिकता से प्रेरित और प्रभावित रहे हैं । इस आस्तिकता ने एक ऐसी आध्यात्मिक अनुभूति और अवधारणा का प्रसारण किया, जिससे एक

समता का भाव उपजा, जिसने समस्त पंथ, वर्ग नस्ल आदि के भेदों को स्वीकार नहीं किया। साराग्रही या सत्याग्रही वृति ने जिस अभेदवत्ता का प्रतिबिम्बन किया, उसे धर्म के तत्वज्ञान या अध्यात्म की संज्ञा उपलब्ध हुयी। इसके अभाव में भारतीय राजनीति, समाजनीति अर्थनीति आदि की पारदर्शिता और पावनता के विनष्ट होने की सम्भावना को सहज ही समझा जा सकता है। राजनीतिक संस्कृति में धर्म या अध्यात्म केन्द्र बिन्दु है। भारत के संविधान की प्रामाणिकता किसी भी धर्म विरोधी प्रतिमान की अस्वाकृति में है।

१९९३ में भारतीय संविधान के अस्सीवें संशोधन की संसद में प्रस्तुति से भारतीय राजनीति के आकाश मेंअनिश्तिताओं और आशंकाओं की आँधी विस्तारित हो गया। इस संशोधन द्वारा संविधान के मूल स्वरूप के विकृत होने, लोकतांत्रिक मूल्यों के विनष्ट होने और राजनीतिक संस्कृति में विद्वेष तथा विरोध के गहराने का षडयंत्र प्रकट होने की स्पष्ट स्थिति बनी।

भारतीय संविधान पूर्ववर्ती आस्थाओं, विश्वासों और मूल्यों को परवर्तीकाल में ले जाने का राजनीतिक कौशल है। भारतीय इतिहास को विखंडित करने का नहीं, विगत को आगत से जोड़े रखने का सेतु संविधान है। भारतीय इतिहास में धर्म का राजनीति से गहरा -गम्भीर सम्बन्ध विस्मृत नहीं किया जा सकता। (इसका विवेचन चौदहवे अध्याय में है)

प्राचीन और मध्यकालीन शताब्दियों में राजनीति का धर्म से सम्बन्धों की अपेक्षा, आधुनिक मनीषियों के विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन अपेक्षित है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में धर्म से राष्ट्रीयता प्रेरित,प्रभावित और सम्पर्कित रही है। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में स्वातन्त्र्य आन्दोलन धार्मिक विचारों और विश्वासों से संलग्न था। प्रमुख स्वातंत्र्य सेनानियों की प्रेरणा भारत का धार्मिक साहित्य रहा है। धर्म के आधार पर राजनीति की पुनर्रचना महात्मा गांधी की प्रमुखतम देन है। गांधी जी ने सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों के निर्धारण के अहिंसक संघर्ष को धर्म युद्ध कहा था।

भारतीय संविधान के प्रवर्तन के पश्चात् इसके द्वारा मूलभूत मौलिक और मानवीय धर्म या पंथ तथा उपासना के स्वांतन्त्र्य का अधिकार प्रदान किया गया था। भारतीय संविधान के आधार बिन्दुओं में यह स्वातंत्र्य निहित है। भारतीय संविधान के निर्माताओं में एक पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था। 'हम भारत में प्रायः धर्म निरपेक्ष राज्य की चर्चा करते हैं। शायद धर्म निरपेक्षतावाद अंग्रेजी के सेकुलर शब्द का भाव ठीक तरह से व्यक्त नही करता। कुछ लोग यह समझते हैं कि धर्म के खिलाफ कोई बात है। - - - -ऐसा समझना गलत है। इसका मतलब यह है कि यह एक ऐसा राज्य है, जो सब तरह के धर्मों और मजहबों का एक सा आदर करता है, और उन्हें फलने-फूलने का एक सा मौका देता है। राज्य की हैसियत से वह किसी धर्म की तरफदारी नहीं करता। क्योंकि ऐसी हालत में वह धर्म उस राज्य का धर्म बन जाता है।'

गांधी विचार प्रवाह के मौलिक विचारक संत विनोबा ने सेकुलर के सम्बन्ध में स्पष्ट किया है कि, 'हम इतना भी कहे कि सरकार सेकुलर यानी धर्म से असम्बद्ध है, तो भी ठीक अर्थ नहीं हो सकता । अतः धर्म से असम्बद्ध, उससे विहीन अपनी सरकार को बताना, निरा प्रचार ही होगा ।' धर्म में विभाजन, विघटन, विरोध आदि दुष्प्रवृत्तियों की समाप्ति पर विनोबा को गहरा विश्वास था ।

लोकनायक जयप्रकाश नारायन ने राज्य की नियंत्रक शक्ति के रूप में धर्म का निरूपण 'भारतीय राज्य व्यवस्था की पुनर्रचना' में किया है । भारतीय समाज को धर्म विषयक भावना बड़ी प्रबल थी । जयप्रकाश ने इस धर्म का प्राचीन भावना को पुर्नज्ञीवित करने का सुझाव दिया है । लोकतंत्र के संदर्भ में उपादेय धर्म पर विश्वास की अपेक्षा जयप्रकाश की है । गांधी विचार सरणि ने राजनीति और धर्म के सम्बंधों में तिरस्कर और तुष्टि की अपेक्षा सद्भाव तथा संतुष्टि को प्रविष्ट करने का संदेश दिया है । इस विचार में एक ऐसी राजनीतिक सभ्यता के उद्भव की कामना है ,जिसमें धर्म में निहित अध्यात्म, और राजनीति में समाविष्ट विज्ञान की प्रतिष्ठा हो सके । अध्यात्म से एकात्मता और राजनीति से मानववाद की प्रामाणिकता सिद्ध हो सके ।

धर्म और राजनीति की संवादिता अपेक्षित है । भारत की वर्तमान राजनीतिक संस्कृति में धर्म, नियन्त्रण की आन्तरिक विवेकवत्ता है । धर्म और राजनीति के पार्थक्य को संवैधानिक आकार देने वाले अस्सीवां संशोधन साम्प्रदायिक तुष्टीकरण और तिरस्कार के क्षुद्र चिंतन का परिणति है । सत्ता पक्ष अन्य पक्षों से संवाद, सद्भावना और समझदारी के अभाव में, राजनीतिक मूल्यांकन की उपेक्षा, और लोकतांत्रिक मर्यादा का हनन है ।

राम जन्म भूमि एक सांस्कृतिक युद्ध

संविधान संशोधन (८०) की प्रस्तुति, भारतीय इतिहास की ६ दिसम्बर ९२ की उसघटना की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतीत होती है, जिसने जनशक्ति के समक्ष राज्य शक्ति को बौना कर दिया था । जन आक्रोश ने बाल बुद्धि द्वारा राजनीतिक बलबुद्धि को नग्न कर दिया था । जन शक्ति सर्वोपरि है । न्यायिक प्रक्रिया पर पुनर्विचार का एक अवसर उपस्थित हो गया । राम जन्म भूमि के प्रश्न ने भारतीय राजनीति को मनोवैज्ञानिक कुरूक्षेत्र या धर्म क्षेत्र या सांस्कृतिक युद्ध क्षेत्र में आमंत्रित कर दिया । एक राजनीतिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया का प्रवर्तन हो गया ।

वैश्विक लोकतांत्रिक संदर्भ और भारतीय संविधान के वर्तमान ढाँचे के अन्तर्गत भी धर्म और राजनीति को पृथक करने की कोई प्रक्रिया अव्यावहारिक, अवास्तविक, अनैतिक तथा असंस्कारित कुचेष्टा है ।

जागतिक संदर्भ में यदि धर्म और पंथ को पर्यायवाची समझा जाये, तो इतिहास और संविधान दोनों आधारों पर आधुनिकता के पक्ष धर कुछ राज्य शक्तियाँ न केवल धार्मिक-पांथिक हैं, बल्कि साम्प्रदायिक हैं । इंगलैण्ड की राज्य शक्ति ईसाई पंथ के एक सम्प्रदाय ऐंग्लिकन चर्च की अनुयायी है । ग्रीस राज्य में

ईसाई पंथ के एक समुदाय की राजधर्म के रूप में स्वीकृति है । नार्वे राज्य ईसाई पंथ के एक लूथरन सम्प्रदाय का अनुयायी है । स्पेन, पुर्तगाल आदि ईसाई पंथ के रोमन कैथोलिक सम्प्रदायवादी राज्य हैं । परम्परा और परिस्थिति संवैधानिक सत्ता को शक्ति प्रदान करती हैं ।

भारतीय संविधान की शक्ति, परम्परा की सद्ग्राह्यता और परिस्थितियों से सामजंस्य पूर्ण समाधान में निहित है । जनशक्ति के समर्थन-सहयोग के अभाव में बौद्धिक दृष्टि से अच्छे संविधान पर्याप्त नहीं हो सकते ।

भारतीय सामाजिक परिवेश की आवश्यकता एक ऐसी राजनीतिक संस्कृति की है, जो संवाद, सद्भावना, सहमति के द्वार उन्मुक्त कर, संविधान की प्रामाणिकता प्रतिष्ठितकर सके । ऐतिहासिक दृष्टि से भारत लगभग एक सहस्त्र वर्ष से विदेशी आक्रान्ताओं से अपमानित होता रहा है । स्वतंत्र भारत का संविधान इतिहास में प्रताड़ना का प्रक्षालन कर सर्वोपरि जनशक्ति के स्वाभिमान को अक्षुण रख सकेगा ।

भारतीय संविधान ने स्वातंत्र्य को आग्रहपूर्वक स्वीकार किया है । व्यक्ति विशेष कितना भी ऊँचा रहा है, उसमें संविधान को केन्द्रित नहीं किया गया है । महात्मागांधी के विचारों या व्यक्तित्व का संविधान में उल्लेख नहीं । पाकिस्तान के संविधान की उद्देशिका में पाकिस्तान राज्य के संस्थापक के प्रति निष्ठावान होने का उल्लेख है ।

16

मानवाधिकार और पंथनिरपेक्षता

मानवाधिकार की अवधारणा मानवीय इतिहास की नूतन उपलब्धि है। भारतीय प्राचीन इतिहास में मानव कर्तव्य की अवधारणा प्रतिष्ठित है। अधिकार और कर्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अधिकार में कुछ लेना है। कर्तव्य में कुछ देना है।

१० दिसम्बर १९४८ के संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकार का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इसके तीस अनुच्छेदों में मनुष्य जाति के नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों की घोषणा की गयी। इसमें पंथ, मतवाद, अन्तःकरण आदि की स्वतंत्रता मनुष्य जाति को प्रदान करने का संकल्प है। पांथिक, सामाजिक,राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी। इस घोषणा के पश्चात् २३ मार्च १९७६ को इसे विधिक रुप देने के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय विधेयक बना।

मानवाधिकार मानव सभ्यता के विकास से संलग्न है। जून १९९३ में वियना में सम्पन्न मानवाधिकार सम्मेलन में लगभग १७० राज्यों में संयुक्त राष्ट्र संघ में एक उच्चायोग के पद का सृजन करने का संकल्प लिया, जिससे मानवाधिकारों की दिशा में प्रगति हो सके।

मानवाधिकार को एक कूटनीतिक सत्ता के रुप में प्रयोग करने का प्रयास इतिहास में होता रहता है। वस्तुतः मानवाधिकार अभावग्रस्त और अन्यायग्रस्त मानवता के लिये स्वतंत्रता, समता और सहजीवन की अवतारणा का शिल्प है।

मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में भारतीय इतिहास और परम्परा सहस्रों वर्षों से पंथ निरपेक्ष रही है। यह पंथ निरपेक्षता, धर्म सापेक्षता की फलश्रुति है। सभ्यता के आदिकालीन स्वरूपों का उद्घाटन वेदों ने किया है। इस वैदिक परम्परा में मानवीय कर्तव्यों या अधिकारों और पंथनिरपेक्षता की घोषणा का तात्विक विवेचन कर चुके हैं। वेदों का उपसंहार वेदान्त है। वेदान्त की उत्कृष्ट अवधारणा से पंथ निरपेक्षता के उज्जवल इतिहास का शुभारम्भ होता है। वेदान्त में एक विराट पृष्ठभूमि में मानव की सत्ता की स्वीकृति है। मानव से भी आगे बढ़कर अन्य प्राणियों तथा प्रकृति में एक ही सत्ता की स्वीकृति है। पशुत्व से मानवत्व के पथ को वेदान्त ने प्रशस्त किया है। मानत्व के चरम उत्कर्ष का वेदान्त ने साक्षात्कार किया है।

इतिहास में स्मृति शास्त्रों का समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा है। स्मृतिशास्त्रों ने धर्म राज्य में पंथनिरपेक्षता की अपेक्षा की है। मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में राजधर्म के संदर्भ में इसका उल्लेख है। राज्य युद्ध करता है, किन्तु प्रतिमान धर्म युद्ध का मान्य है। विजित राज्य में जनता के अपने पांथिक मतवादों तथा विश्वासों में कोई हस्तक्षेप

नहीं है । मनु के अनुसार राजा को विजित राज्य के पंथ या धर्म को पूर्ववत ही चलने की अपेक्षा की है । इसमें परिवर्तन नहीं करना है । राजा को विजित राज्य में प्रचलित धर्मों, परम्पराओं, मतवादों आदि को मान्यता देनी है ।[१] यह है, धर्म सापेक्ष पंथ निरपेक्षता ।

स्मृतिशास्त्रों या धर्मशास्त्रों में धर्म-सापेक्ष समग्र समाज की कल्पना और कामना है । स्मृतियाँ सर्वभूतहित के रक्षण से संकल्पित है सर्वत्र एकात्मता और अभेद दर्शन से प्रेरित और प्रभावित है । मनुष्य मात्र को जल के समान स्मृतिकारों ने बताकर मनुष्य की समानता की अभिव्यक्ति की है ।[२] स्मृति ने चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था की है । वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण बुद्धिजीवी को मान्यता देकर उससे स्वेच्छया दारिद्र्य वरण की अपेक्षा की है ।[३] शूद्र वर्ण के स्वधर्म है, जिनके पालन से पाप नष्ट होते हैं, और इन्द्रासन की प्राप्ति होती है।[४] इस व्यवस्था के अन्तिम छोर पर स्थित शूद्र वर्ण या श्रमजीवी को सरल, सात्विक और संतुष्ट जीवन यापन का आमंत्रण है ।

स्मृतिशास्त्रों या धर्मशास्त्रों में नारी-पुरुष की सैद्धान्तिक समानता प्रतिपादित की गयी है किन्तु व्यावहारिक रुप से कार्य क्षेत्र पृथक-पृथक हैं । नारी को सम्मान और संरक्षण स्मृतिकारों ने प्रदान किया है ।''[५] नारी के स्वरूप, समर्पण और सेवा की प्रशंसा स्मृतिकारों ने की है ।[६] स्मृतिकारों ने नारी को प्राकृत रुप या सहज रुप से विशुद्ध कहा है।[७] भारतीय समाज ने दार्शनिक स्तर पर समानता स्वीकार कर व्यावहारिक स्तर पर भेद भाव किया था ।

मानवाधिकारों का प्रवल प्रवर्तन महात्मा बुद्ध ने किया था । चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का अतिक्रमण करने वालों को साहस और सांत्वना उपलब्ध हुई । करुणा के आधार पर मानवाधिकार मानवीय मूल्यवत्ता से जुड़ जाते हैं ।

मध्यकालीन संतों ने उत्पीड़ित और दलित जातियों के उन्नयन की बलवती स्वरों में घोषणा की और मानव की समानता और सम्मान का शंखनाद किया ।

उन्नीसवीं शती मानवीय अधिकारों की शताब्दी है । यूरोप की धरती पर वैचारिक क्रान्ति हो रही थी । मानवाधिकारों के लिये बलवती स्वरों में घोषणा हुई । अठारहवीं शती के अन्तिम दशक में फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने दूरगामी प्रभाव डाला था। भारत में उन्नीसवीं शती के अन्तिम दशक में पंथ निरपेक्षता और मानवाधिकारों की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति विवेकानन्द के विचारों में है । वेदांत में निहित मूलभूत पंथ निरपेक्षता तथा निम्न वर्ग- दलित और दरिद्र की पीड़ा का समाधान देने की आकांक्षा विवेकानंद ने प्रकट की थी ।

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में महात्मा गांधी मानवीय अधिकारों और पंथ निरपेक्षता के अद्वितीय प्रवक्ता थे । पंथ सापेक्ष शक्तियों ने देश का विभाजन कराया और भारत की तत्कालीन पंथ निरपेक्षता पर गहरा आघात किया ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के मानवीय अधिकारों के घोषणा पत्रक १९४८ में जिन मानवीय अधिकारों का प्रबल समर्थन किया गया, उन्हें विश्व के अधिकांश संविधानों में मूल अधिकारों के रुप में समाविष्ट किया गया । भारतीय संविधान में भी मूल

अधिकारों के रुप में अन्तःस्थापित किया गया । वैश्विक स्थिति के संदर्भ में पंथ सापेक्ष राज्यों ने भी अपने संविधानों में कहीं दबे स्वरों और कहीं स्पष्ट स्वरों में मानवाधिकार स्वीकृत किये ।

विश्व परिप्रेक्ष्य में अनेक महत्वपूर्ण और महत्वाकांक्षी राज्य, पंथ निरपेक्ष नहीं है। या तो इस्लाम सापेक्ष है, या ईसाई सापेक्ष या मार्क्सवादी-लेनिनवादी सापेक्ष राज्य हैं । पंथ निरपेक्ष राष्ट्र संवैधानिक दृष्टि से इस्लाम बहुल तुर्की है । इंडोनेशिया संविधान घोषित पंथ निरपेक्ष राज्य नहीं है, किन्तु पंथ सापेक्ष राज्य भी नहीं है । मानवाधिकारों की दृष्टि से इनके संविधानों का तुलनात्मक अध्ययन रोचक विषय है ।

इस्लामी राज्यों के संगठन में चार दर्जन राज्यों से अधिक हैं । इन इस्लामी राष्ट्रों या राज्यों में अधिकांश में राजनीति की अन्तः रचना लोकतांत्रिक नहीं है, या औपचारिक लोकतांत्रिक है । लोकतांत्रिक राज्यों में पंथ निरपेक्षता सम्भव है । पंथ सापेक्ष राष्ट्र सीमित लोकतंत्र या औपचारिक लोकतंत्र या परम्परागत लोकतांत्रिक ढाँचा को स्वीकृति प्रदान करते हैं । पंथ सापेक्ष राष्ट्र या राज्य अधिकांश में व्यवहार में सहिष्णु नहीं है । इस कारण लोकतंत्र औपचारिक या परम्परागत रहता है । मानवाधिकारों की कटौती लोकतंत्र के अभाव में या औपचारिक लोकतंत्र के रुप में होती है । पांथिक औदार्य की घोषणा करके भी पंथ सापेक्षता के बंधन नहीं तोड़ पाते । यह अवश्य है कि अपने इतिहास और परम्परा के दबाव से इस्लाम और ईसाई पंथ सापेक्ष राज्य मर्यादित है ।

भारत में पंथ निरपेक्षता और मानवाधिकार की अपनी उत्कृष्ट और उदार परम्परा है । भारतीय संविधान ने इस परम्परा को स्वीकार किया है । भारतीय भूगोल सभी ओर से पंथ सापेक्ष देशों से घिरा है । किन्तु भारत ने अपनी परम्परा का स्वतंत्रता के पश्चात् भी निर्वाह किया ।

२६ सितम्बर १६६३ को एक अध्यादेश मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये प्रवर्तित किया गया । अध्यादेश का स्थान अधिनियम ने लिया । राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बना । मानव अधिकारों के संरक्षण के लिये एक अध्यक्ष, एक विशेषज्ञ, राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष तथा राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्ष और राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा जनजाति आयोग के अध्यक्ष को आयोग में सदस्य बनाया गया। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने प्रदेश की सरकारों से अपेक्षा की कि वे भी मानव अधिकार आयोग की प्रदेशों में संरचना करें । भारत में मानव अधिकार आयोग की रचना अधिकांश में अल्पसंख्यक वर्ग के अधिकारों की रक्षा, अनुसूचित जाति तथा जनजाति के अधिकारों की रक्षा और नारी जाति के अधिकारों की रक्षा के उद्देश्य से हुई । अल्पसंख्यक, पांथिक, भाषायी, लिपि के स्तर पर और सांस्कृतिक हो सकते हैं।[८]

पांथिक अल्पसंख्यक के मानव अधिकारों का संरक्षण अधिकांश पंथ सापेक्ष या पंथ निरपेक्ष संविधानों में हैं । पंथ सापेक्ष राष्ट्र भी पांथिक स्वतंत्रता को अस्वीकार नहीं करते। मानव अधिकार संरक्षण किसी विशेषाधिकार की रचना नहीं करना । किन्तु भारतीय संविधान में तात्विक रुप से अल्पसंख्यकों का संरक्षण और तथ्यगत दृष्टि से विशेष अधिकार प्रतीत होते हैं । मानव अधिकार का अभिप्राय है, नीचे गिरे

हुये मनुष्यों या पददलित या उत्पीड़ित मानवता को शेष समाज के स्तर पर लाना है। पंथ निरपेक्षता में पांथिक उपासना प्रतिमान में रुचि वैचित्र्य का, जो शान्ति व्यवस्था के प्रतिकूल न हो, अधिकार है । समान प्रतिमान के शिक्षालयों में अल्पसंख्यकों के अधिकार, विशेष अधिकार की कोटि में प्रतीत होते हैं। किसी पांथिक शिक्षण के स्वातंत्र्य का अधिकार तो है, जो नीति और नैतिकता के प्रतिकूल न हो । विश्व के संविधानों में इस प्रकार के प्रावधान हैं ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद १५(४) जो चौबीसवें संशोधन (१९७१) द्वारा अन्तःस्थापित किया गया, उसके अनुसार सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग यदि पंथ परिवर्तन करते हैं, तो वे समाज के पिछड़े वर्ग के माने जाये या नहीं, यह विवादास्पद है । पंथ परिवर्तन से समाज और वर्ग परिवर्तित होता है । इससे पिछड़े की परिभाषा में वास्तविक रूप से पंथ परिवर्तित वर्ग नहीं आते । संविधान परम्परा से चली आ रही, सामाजिक विकृतियों के प्रक्षालन के लिये भी कार्य करता है । विश्व के कई राज्यों के संविधानों में इस प्रकार के प्रावधान हैं - जैसे दक्षिण अफ्रीका । कुछ राष्ट्रों में मानवीय दासता का निषेध है ।

भारत के संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों की विषम दशा, उनका उत्पीड़न तथा उनकी अस्पृश्यता का साक्षी सैकड़ों वर्षों का इतिहास रहा है । कारण कुछ भी रहा हो, इतिहास से विकृतियों, विसंगतियों और विषमताओं का जन्म पांथिक या धार्मिक या समाज व्यवस्था की कठोरता से होता है । पंथ निरपेक्षता इस कठोरता या कट्टरता को क्षीणकर समाज के सभी नागरिकों को सहयात्री बनाती है। इससे मानव अधिकार संयोजित होते हैं ।

मानवाधिकार राष्ट्रीय आयोग में नारी जाति के मानवीय अधिकारों को सुरक्षित कर संरक्षण देना चाहेगा । इसमें पंथनिरपेक्षता की प्रविष्टि और प्रयोग आवश्यक और अनिवार्य है । पंथ सापेक्ष विधि-विधान या रुढ़ियाँ या रीतियाँ पुरुष तथा नारी जाति को पृथक-पृथक सामाजिक स्तर देकर मानवाधिकारों का हनन करते हैं ।

भारतीय संविधान के ३९ वें अनुच्छेद (क) (घ) तथा (ङ) स्त्री को पुरुष के समान जीविका, समान वेतन और स्वास्थ्य और शक्ति का दुरुपयोग न होने का प्रावधान किया गया है । संविधान के ४४ वें अनुच्छेद के अनुसार नागरिकों के लिये समान सिविल संहिता प्राप्त करने का राज्य प्रयास करेगा । अनुच्छेद ४४ के द्वारा विभिन्नपंथों में मानवीय मूल्यों के आधार पर मानवाधिकार की सुरक्षा के लिये लिंग की समानता प्रतिष्ठित करने का प्रावधान है । जिसकी गारंटी संविधान के मूल अधिकारों में है । विवाह, तलाक तथा उत्तराधिकार के संदर्भ में संवैधानिक मूल्यों की रक्षा करने की व्यवस्था की अपेक्षा इस ४४ वें अनुच्छेद में है । नागरिकों के लिये पृथक-पृथक विधि विधान, संवैधानिक मर्यादा के अनुकूल नहीं है । इस्लाम में विवाह आदि के लिये पृथक विधि-विधान और अन्य के लिये पृथक, इसकी विसंगति मूल अधिकारों तथा विधि समक्ष समानता से है। अनुच्छेद १३ के अनुसार मुस्लिम परसनल ला १९३७ क्या मूल अधिकारों के प्रतिकूल नहीं है ? नारी जाति को द्वितीय-तृतीय श्रेणी का नागरिक मानना,

या पांथिक आधार पर उनके स्वातंत्र्य का अपहरण या विवाह द्वारा भोग्या समझना तथा अमानवीय या अतार्किक प्रक्रिया में तलाक की व्यवस्था आदि से मानवाधिकारों को तात्विक या तथागत दृष्टि से चुनौती है। यह भी सही है कि अच्छे से अच्छे विधि विधान बनाकर मनुष्य जाति को सुधारा नहीं जा सकता। मनुष्य जाति के विवेक को जाग्रत करने के लिये लोक शिक्षण द्वारा सोच-समझ और संवाद से समाज परिवर्तन की दिशा प्रशस्त करने का भी औचित्य है। विधि-विधान और विवेक दोनों की सीमा है। इस कारण मानवाधिकारो के लिये संघर्ष नहीं, संरचना के बीज बोने का औचित्य है। किन्तु संविधान की आकांक्षा उपेक्षित नहीं को जा सकती।

नारी जाति के विभिन्न वर्गों को समानता के स्तर पर लाने का प्रयास पंथ निरपेक्षता की प्रक्रिया से करना आवश्यक है। भारत के इस्लाम ने नारी जाति की विधि के समक्ष समता को स्वीकार नहीं किया।

पंथ निरपेक्षता से मुस्लिम परसनल ला की विसंगति है क्या उसे दासत्व, हीनत्व तथा द्वितीय श्रेणी की नागरिकता प्रदान नहीं की है? मानवाधिकार का इस दिशा में विकास अनेक मुसलमान राज्यों ने किया है। हिन्दू पुरातन पंथी समाज ने नारी जाति के परम्परागत रूप के प्रक्षालन की प्रक्रिया उन्नीसवीं शती से प्रारम्भ की थी। इस्लामी समाज को परिवर्तन की प्रक्रिया का शुभारम्भ संविधान के अनुकूल करना है।

संविधान के अनुच्छेद ३७२ द्वारा इस विधान को जिन्दा रखा जा रहा है। भारतीय संविधान ने अनुच्छेद १५ में लिंग या स्त्री-पुरुष की समानता का सिद्धान्त स्वीकार करके भी पांथिक शक्तियों के दबाव से अन्याय का पोषण भारतीय संसद ने 'शाहबानों' के वाद में किया था। यह पांथिक स्वतंत्रता के नाम पर किया गया था। इसी प्रकार ४४ वें अनुच्छेद के संविधान से मिटाने की भी माँग की जा रही है।

मानवाधिकार का अभियान अल्पसंख्यक को समान अधिकार, दलित को समान या बिशेष संरक्षण और नारीजाति को समान स्तर देने के अभिधेय से प्रेरित है। पंथनिरपेक्षता मानवाधिकारों को उज्ज्वल और उत्कृष्ट रुप देने में सहायक ऊर्जा और उमंग है। धर्म सापेक्ष पंथ निरपेक्षता अखंड भारतीय इतिहास और समाज की प्रेरणा और प्रवहमानता है।

संदर्भ

१- मनुस्मृति - ७ अध्याय २०३
२- अत्रिसंहिता - ३६२
३- मनुस्मृति - १ अध्याय ३२
४- लघुहारीत स्मृति - २/११ से १४
५- वृहत पराशर स्मृति- ६ अध्याय-५८-६४
६- वशिष्ठ स्मृति ३ अध्याय ४४ - तथा शांख स्मृति १६/१६
७- वृहत पराशर स्मृति- ६ अध्याय ३३७-३४३-३४५-३४६

♦ ♦ ♦

DEMOCRATIC REPUBLIC OF AFGHANISTAN

(27th Dec., 1979)

ARTICLE-1

The D.R.A. is independent and democratic government of all the toiling Muslim people of Afghanistan, including

workers, farmers, artisans, nomads, intellectuals -----

* * * *

ARTICLE 5

The sacred and true religion of Islam will be respected, observed and protected in the D.R.A. and freedom to practice religious rites is guaranteed for all Muslims. The followers of all religious and faiths have complete freedom to observe their religious rites --------.The State will assist in the patriotic activities of holy men and religious leaders in performing their duties and responsibilities.

* * * *

ARTICLE 28

All subjects of Afghanistan are equal in law. ------without consideration of racial---religion-----has equal rights and duties.

ARTICLE 29

(2) The complete freedom of the observation of the rites of the sacred religion of Islam and also the right of the observation of religious rites for the followers of other religions in accordance with the law.

* * * *

(7) The Right of freedom of speech and thought

* * * *

ARTICLE 34

The D.R.A. will provide all conditions so the subject can make effective use of their democratic rights and freedom.

* * * *

लोकतांत्रिक गणराज्य अफगानिस्तान

(२७ दिसम्बर १६७६)

अनुच्छेद १

लोकतांत्रिक गणराज्य अफगानिस्तान सभी मेहनतकश मुसलमान, अफगानों तथा श्रमिक, कृषक, कारीगरों, खानावदाशों, बुद्धिजीवी वर्ग - - - का स्वतंत्र और लोकतांत्रिक राज्य है - - -

* * * *

अनुच्छेद ५

लोकतांत्रिक गणराज्य अफगानिस्तान में पवित्र और सत्य पंथ इस्लाम सम्मानित, अनुपालनीय और संरक्षित होगा । सभी मुसलमानों को पांथिक परम्पराओं को मनाने की गारंटी दी जाती है । सभी पंथों और आस्थाओं को अपनी पांथिक परम्पराओं को मनाने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी, राज्य पवित्र मनुष्यों और पांथिक नेताओं को राष्ट्र भक्तिपूर्ण कर्मों और कर्तव्यों तथा दायित्वों के निर्वाह में, सहायक होगा ।

* * * *

अनुच्छेद २८

अफगानिस्तान के सभी नागरिकों में जातीय- - - पांथिक - - - भेदभाव विचारणीय नहीं - - - समान अधिकार और कर्तव्य - - - और विधि के समक्ष समानता होगी ।

अनुच्छेद २६

(२) पवित्र इस्लाम पंथ के सभी रीति रिवाजों को मानने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी, और दूसरे पंथों के अनुयायियों के रीतिरिवाजों को मनाने, राज्य के विधि विधानों के अनुसार होगा ।

* * * *

(७) वाक् स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार है ।

* * * *

अनुच्छेद ३४

लोकतांत्रिक गणराज्य अफगानिस्तान अपने सभी नागरिकों को लोकतांत्रिक अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रभावी ढंग से निर्वाह की व्यवस्था करेगा ।

* * * *

CONSTITUTION OF ARGENTINA

1853

(As amended)

* * * *

ARTICLE 2

The Federal Government supports the Roman Catholic Apostolic Faith.

* * * *

संविधान - अर्जेन्टाइना

१८५३

(संशोधित)

* * * *

अनुच्छेद २

संघीय राज्य रोमन कैथोलिक एपोसलिक आस्था का समर्थन करता है ।

* * * *

ALGERIA

(Issued Sept. 1992)

ARTICLE 1

Algeria is a democratic and popular republic.

* * * *

ARTICLE 4

Islam is the religion of the State. The Republic guarantees to all respect for their opinions and belief and the free exercise of religions.

* * * *

ARTICLE 10

The fundamental objective of the democratic and popular Algerian Republicare:

* * * *

---- the construction of a socialist democracy.

----the struggle against all discrimination, in particular discrimination based on race and religion;

* * * *

ARTICLE 12

All citizens of both sexes have the same rights and the sameduties.

* * * *

अलजीरिया

(सितम्बर १६६२)

अनुच्छेद १

अलजीरिया लोकतांत्रिक और लोकप्रिय गणराज्य है ।

* * * *

अनुच्छेद ४

इस्लाम, राज्य का पंथ है । राज्य पूर्ण सम्मान मतों और विश्वासों को और पांथिक आस्थाओं को स्वतंत्रता पूर्ण मनाने की गारंटी करता है ।

* * * *

अनुच्छेद १०

लोकतांत्रिक तथा लोकप्रिय अलजीरिया गणराज्य के मूलभूत उद्देश्य :

* * * *

----समाजवादी लोकतंत्र की संरचना

---- सभी भेद भावों के प्रति संघर्ष, विशेषतया जातीय और पांथिक आधार पर भेदभावों के प्रति;

* * * *

अनुच्छेद १२

सभी नागरिकों - स्त्री-पुरुषों- के समान अधिकारों और कर्तव्यों की व्यवस्था।

* * * *

ANGOLA

(Issued May 1981)

* * * *

ARTICLE 2

All sovereignty shall be vested in the Angolian people ---- Marxist-Leninist party shall be responsible for potential, economic and social leadership of the state in the effort to construct Socialist Society.

* * * *

ARTICLE 7

The People's Republic of Angola shall be a secular State, and there shall be complete separation of the state and the religious institutions. All religions shall be respected, and the state shall afford churches and places and objects of worship protection so long as they comply with the State causes.

* * * *

ARTICLE 18

All citizens shall be equal before the law and enjoy the same rights. They shall be subject to the same duties without any distinction based on colour, race, ethnic group -----religion---- - .

* * * *

ARTICLE 25

Freedom of conscience and belief shall be inviolable. The People's Republic of Angola shall recognise the equality and guarantee the practice of all forms of worships compatable with public order and national interest.

अंगोला

(मई १९८१)

* * * *

अनुच्छेद २

सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता अंगोला की जनता में निहित होगी - - - मार्क्सवादी - लेनिनवादी पार्टी राज्य के सक्षम, आर्थिक और सामाजिक नेतृत्व का दायित्व ग्रहण करेगी, इस प्रयास में जिससे समाजवादी समाज की निर्मिति हो ।

* * * *

अनुच्छेद ७

जनता का गणराज्य अंगोला एक पंथ निरपेक्ष राज्य होगा, और जिसमें पूर्णतया राज्य संस्था और पांथिक संस्थानों का पूर्णतया पार्थक्य होगा । सभी पंथों का सम्मान होगा, और राज्य गिरजाघर और पूजा स्थलों की सुरक्षा करेगा; पूजा को संरक्षण तभी तक रहेगा, जब तक राज्य के हितों के साथ सामंजस्य रहेगा ।

* * * *

अनुच्छेद १८

सभी नागरिकों की विधि के समक्ष समानता होगी और समान अधिकारों का उपभोग करेगा । उनके समान कर्तव्य रहेंगे, रंग, जाति,वर्ग,पंथ के आधार पर विभेद नहीं होगा ।

* * * *

अनुच्छेद २५

आस्था और विश्वास का स्वातंत्र्य अखंडनीय रहेगा । जनता के गणराज्य अंगोला में समानता की मान्यता और सर्वपंथों या पूजा पद्धतियों की, सार्वजनिक शान्ति और राष्ट्रीय हितों के सामंजस्य के साथ गारंटी रहेगी ।

BELGIUM

By - Ilhan Arsel

(Issued Sept., 1972)

ARTICLE 6

All Belgions are equal in the eyes of law------

ARTICLE 6 (b)

(b) Enjoyment of the rights and liberties to which. Belgians are entitled must be ensured without discrimination. To this end, laws and decrees shall guarantee amongst other things the rights and liberties of ideological and philosophical minorities.

ARTICLE 7

Individual liberty is guaranteed.

* * * *

ARTICLE 14

Freedom of worship and its public exercise, together with freedom to manifest personal opinions in every way are guaranteed save for the punishment of offences perpetrated in exercising these liberties.

* * * *

ARTICLE 16

The state has no right to intervene either in the appointment or induction of ministers of any form of worship.

* * * *

ARTICLE 60

The constitutional powers of the King are hereditary in the direct line of national, legitimate heirs of H.M.------

* * * *

बेलजियम

(सितम्बर १६७२)

* * * *

अनुच्छेद ६

सभी बेलजियमों की विधि के समक्ष समानता है । -----

अनुच्छेद६ (ब)

(ब) भेदभाव के बिना, जिन अधिकारों और स्वतंत्रताओं को बेलजियनों को प्रदान किया गया, उन्हें अबाध रूप से मनाते रहेंगे । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विधि विधान अनुकूल गारंटी करेंगे, साथ ही वैचारिक और दार्शनिक अल्पसंख्यकों को अधिकार और आजादी रहेगी ।

अनुच्छेद ७

व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की गारंटी है ।

* * * *

अनुच्छेद १४

पूजा का स्वातंत्र्य और इसका सार्वजनिक रूप, साथ ही वैयक्तिक मत के उद्गार का स्वातंत्र्य है, किन्तु इन स्वतंत्रताओं को आपराधिक वृत्ति से, दुरुपयोग दंडनीय है ।

* * * *

अनुच्छेद १६

राज्य को किसी पंथ प्रवक्ता को नियुक्ति में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं रहेगा या किसी पुरोहित को किसी उपासना पद्धति में प्रविष्ट करने का अधिकार नहीं होगा ।

* * * *

अनुच्छेद ६०

राजा की संवैधानिक सत्ता उत्तराधिकार प्राप्त राष्ट्रीय और वैधानिक होगी ------

* * * *

◆◆◆

BAHRAIN

By - **John N. Gatch, J.R.**

(Issued Dec., 1974).

* * * *

ARTICLE 1

(a) Bahrain is a completely independent, sovereign Islamic Arab State ....

* * * *

ARTICLE 2

The Religion of the State shall be Islam, and Islamic Sharia (Islamic Law) shall be a main source of legislation, and Arabic is the official language.

* * * *

ARTICLE 5

(a) The Family is the foundation of society, its strength lies in religion, morality and patriotism.

* * * *

ARTICLE 6

The State shall preserve the Arab and Islamic heritage, it shall participate in the furtherance of human civilization, and it shall strive to strengthen ties with the Muslim countries.

* * * *

ARTICLE 9

Property, Capital and work, in accordance with the principles of Islamic justice.

* * * *

बहरीन

(१९७४)

* * * *

अनुच्छेद १

(अ) बहरीन पूर्ण स्वतंत्र, प्रभुत्व सम्पन्न, इस्लामिक अरब राज्य है -

* * * *

अनुच्छेद २

राज्य का पंथ इस्लाम होगा और इस्लामी विधान, विधि के प्रमुख स्रोत रहेंगे, और अरब अधिकृत भाषा होगी ।

* * * *

अनुच्छेद ५

(अ) परिवार, समाज का आधार है, इसकी शक्ति पंथ, नैतिकता और देश प्रेम में है ।-----

* * * *

अनुच्छेद ६

राज्य अरब और इस्लामिक उत्तराधिकार का संरक्षण करेगा, राज्य मानवीय सभ्यता को अग्रसरित करने में भागीदारी करेगी, राज्य मुस्लिम देशों से सम्बंध दृढ़ करने का प्रयास करेगा ।

* * * *

अनुच्छेद ९

इस्लामिक सिद्धान्तों के अनुरूप सम्पत्ति, पूंजी और काम की व्यवस्था

* * * *

BRAZIL

By- **Fortunacalvo Roth**

(Issued June 1975).

Constitutional Amendment No. 1

October 17,1969

ARTICLE 1

The constitution of January 24, 1969 shall henceforth be force with the following wording - "The national Congress, involving the protection of God, decrees and promulgates the following ---- -."

Chapter iv

Individual Rights and Guarantees

ARTICLE 153

Paragraph 1

All are equal before the law, without distinction as to sex, race, occupation, religious creed, or political convertions.

* * * *

Paragraph 5

There shall be full freedom of conscience, and believers shall be assured the right to practice religious cults that are not contrary to public order or good morals.

Paragraph 6

No one shall be deprived of any of his rights by reason of religious belief or philosophical or political connection ------.

* * * *

Paragraph 8

However propaganda for war----or for religious, race or class prejudice shall not be tolerated-------contrary to good morals.

* * * *

ARTICLE 176

Paragraph 3

(V) Religions instruction, enrollment for which shall be optional, shall be part of the normal schedules of the official elementry and secondary schools.

* * * *

ARTICLE 180

Support of culture is a duty of state.

ब्राजील

(अक्टूबर १७, १९६९)

संविधान संशोधन क्रमांक १

अनुच्छेद १

२४ जनवरी १९६७ का संविधान निम्नांकित शब्दों से लागू होगा - 'राष्ट्रीय काँग्रेस ईश्वर से संरक्षण मांगते हुये यह आदेशित और प्रवर्तित करती है ----- ।'

अध्याय चतुर्थ
व्यक्ति - अधिकार और गारंटी

अनुच्छेद १५३

परिच्छेद १-

विधि के सक्षम सभी समान है, लिंग, मूलवंश, व्यवसाय, पंथ या राजनीतिक रूप से भेदभाव का अभाव रहेगा ।

* * * *

परिच्छेद ५

अन्तरात्मा और विश्वास का पूर्ण स्वातंत्र्य रहेगा, जो भी सार्वजनिक व्यवस्था और अच्छी नैतिकता के विरुद्ध नहीं होगा, उस धार्मिक मत को मानने के अधिकार से आश्वस्त किया गया है ।

परिच्छेद ६

अपने धार्मिक विश्वास, या दार्शनिक विचार या राजनीतिक सम्बंधों के कारण किसी को अपने अधिकारों से वंचित नहीं किया जायेगा ----- ।

* * * *

परिच्छेद ८

युद्ध का प्रचार ----- या पांथिक, मूलवंश या वर्ग विद्वेष सहन नहीं होगा - ----जो अच्छी नैतिकता के विरुद्ध होगा ।

* * * *

अनुच्छेद १७६

परिच्छेद ३

(V) पांथिक शिक्षण, जो वैकल्पिक होगा, सामान्य अनुसूची में शासकीय प्रारम्भिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षण का भाग होगा ।

* * * *

अनुच्छेद १८०

राज्य का कर्तव्य होगा कि यह संस्कृति को समर्थन दे----- ।

◆ ◆ ◆

BURMA

Albert P.Blaustein And Other

(Issued Dec. '74)

The Constitution of the Socialist Republic of the Union Burma

. 3rd Jan. '1974

* * * *

ARTICLE 22

All citizens shall -

(a) be equal before the law, regardless of race, religion, status, or sex ;

* * * *

ARTICLE 147

All citizens are equal before the law irrespective of race, status, official position, wealth, culture, birth, religion or sex.

* * * *

ARTICLE 156

(a) Every citizen shall have the right to freedom of thought, and of conscience and to freely profess any religion.

* * * *

(c) Religion and religious ---- organisation shall not be used for political purposes. Law shall be enacted to this effect.

* * * *

वर्मा

(३ जनवरी १६७४)

समाजवादी गणतंत्र वर्मा संघ का संविधान

* * * *

अनुच्छेद २२

सभी नागरिक

(अ) विधि के समक्ष समान होंगे, जो भी मूलवंश, पंथ, स्तर या लिंग हो --- ।

* * * *

अनुच्छेद १४७

सभी नागरिकों को विधिक समता प्राप्त होगी, मूलवंश, स्तर, शासकीय स्थिति, वित्तीय स्थिति, संस्कृति, जन्म, पंथ और लिंग जो भी हो ।

* * * *

अनुच्छेद १५६

(अ) प्रत्येक नागरिक को विचार, अन्तःकरण, किसी पांथिक उपासना को स्वातंत्र्य का अधिकार रहेगा ----- ।

* * * *

(स) पंथ और पांथिक संस्थायें राजनीतिक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त नहीं की जायेगी, विधिक व्यवस्था इस दिशा में की जायेगी ।

* * * *

◆◆◆

CANADA

By James G. Matkin

(Issued Feb., 1974)

The Constitution of Canada consists of the following four documents;

-A Consolidation of the British North America Acts, 1867.
-Statute of West Minister, 1931.
-War Measures Act.
-Canadian Bill of Rights, 1960.

Canadian Bill of Rights

Appendix III

(Assented to 10th August 1960)

Preamble

The parliament of Canada affirming that the Canadian nation is founded upon principles that acknowledge the supermacy of God, the dignity and worth of the human person and the position of the family in a society of free men and free institutions;

Affirming also that men and institutions remain free only when freedom is founded upon respect for moral and spiritual values and rules of law.

* * * *

Bill of Rights

(1) It is hereby recognized and declared that in Canada there has existed and shall continue to exist without discrimination by reason of race, -----religion----, the following human rights and fundamental freedoms, namely.

* * * *

(b) the right of the individual to equality before the law -----

(c) Freedom of religion.

(d) Freedom of speech.

* * * *

कनाडा

(फरवरी, १९७४)

कनाडा का संविधान निम्न चार अभिलेखों में है,

- १८६७ के ब्रिटिश नार्थ अमेरिका के समग्र अधिनियम
- १९३१ वेस्ट मिनिस्टर का अधिनियम
- युद्ध अधिनियम
- कनाडा का अधिकार बिल १९६०

कनाडा का अधिकार बिल

(१० अगस्त १९६० को स्वीकृत)

उद्देशका

कनाडा की संसद आश्वस्त है कि कनाडा राष्ट्र उन सिद्धान्तों पर सहमत है, जो कि ईश्वर को सर्वोपरि मानता है, मानवीय मूल्यवत्ता और मानव विभूति तथा समाज के परिवार की स्थिति स्वतंत्र मानवों और स्वतंत्र संस्थाओं की है ।

मनुष्य और संस्थायें स्वतंत्र रहती है, जबकि स्वतंत्रता, नैतिकता और आध्यात्मिक मूल्यवत्ता और विधिक नियमों की प्रतिष्ठा स्थापित होती है ।

* * * *

अधिकारों का बिल

(१) यह स्वीकृत और घोषित है कि कनाडा में बिना किसी मूलवंश -----पंथ -----भेद भाव के निम्न मानवीय अधिकार और मूलभूत स्वतंत्रता है, और निरन्तर रहेगी;

* * * *

(ब) व्यक्ति का अधिकार, विधि समक्ष समता,

(स) पांथिक स्वातंत्र्य,

(द) वाक् स्वातंत्र्य,

* * * *

CAMBODIA

Khmer Republic

By Thomas Bowen

(Issued Sept., 1972).

* * * *

ARTICLE 1

Combodia is an independent, democratic and social Republic.

Its motto is 'Liberty, Equality, Fraternity, Progress and Happiness'.

* * * *

ARTICLE 2

Buddhism is the state religion.

Freedom of conscience and worship shall be absolute and shall be restricted only if the maintenance of law and order so required.

The state shall ensure the equality of all citizens before the law, without as to their racial origin,-----philosophical or religious beliefs.----

* * * *

कम्बोडिया

खामेर गणतंत्र

* * * *

(१ सितम्बर, १६७२)

अनुच्छेद १

कम्बोडिया स्वतंत्र, लोकतांत्रिक और सामाजिक गणतंत्र है ।

इसका आदर्श स्वातंत्र्य, समानता, भ्रातृभाव, प्रगति और प्रसन्नता में है।

* * * *

अनुच्छेद २

बौद्ध पंथ, राज्य का पंथ है ।

अन्तःकरण और उपासना का स्वातंत्र्य पूर्णरूपेण रहेगा, यह तभी प्रतिबन्धित होगा, जब विधि व्यवस्था की आवश्यकता होगी ।

राज्य सभी नागरिकों को विधिक समता से आश्वस्त करेगा, मूलवंश -----दार्शनिक या पांथिक विश्वासों से भेदभाव नहीं करेगी ।

* * * * ◆ ◆ ◆

CHILE

BY **Albert P. Balvstein**

(Issued November, 1980)

ARTICLE-1

Men are born free and equal, in dignity and rights .....

* * * *

ARTICLE -9

Terrorism in any of its forms is essentially contrary to human rights.

* * * *

ARTICLE-19

6. Freedom of conscience, manifestation of all creeds and the free exercise of all cults, which are approved to morals, good customs and public order.

The religious establishments may erect and maintain churches and their dependencies in accordance with the conditions of safety and hygiene as established by the laws and ordinances.

.....Churches and their dependencies assigned exclusively for religious activities shall be exempt from all taxes.

* * * *

चिली

(नवम्बर, १६००)

अनुच्छेद १

मनुष्य स्वतंत्र और समान रूप से जन्मा है, सम्मान और अधिकारों के संदर्भ में -----

* * * *

अनुच्छेद ६

आतंकवाद किसी भी रूप में हो, अनिवार्य रूप से मानवीय अधिकारी के विरोध में है ।

* * * *

अनुच्छेद १६

अन्तःकरण का स्वातंत्र्य, सभी मतवादों की अभिव्यक्ति और सभी उपासना पद्धतिओं का स्वातंत्र्य है, जो कि नैतिकता, अच्छे रीतिरिवाज और सार्वजनिक व्यवस्था हित से निषिद्ध न हो ।

पांथिक संस्थायें धार्मिक स्थान (चर्च) और उनके उपस्थान निर्मित और संचालित कर सकते हैं, जो सुरक्षा और स्वास्थ्य की पृष्ठभूमि में विधि- विधान और अध्यादेशों के अनुकूल हो । -----पांथिक संस्थायें (चर्च) और उसकी आश्रित जो केवल पांथिक गतिविधियों से संलग्न हैं, वे कराधान से मुक्त रहेगी ----- ।

* * * *

CONSTITUTIONS OF ASIAN COUNTRIES

CHINA

N.M.Tripathi Pvt. Ltd.

(Bombay)

The Constitution Of The People's Republic Of China

(20 th Sept., 1954)

ARTICLE 1

The People's Republic of China is a people's democratic state led by the working Class and Based on the alliance of workers and peasants.

* * * *

ARTICLE 85

All citizens of the People's Republic of China are equal before the law.

ARTICLE 86

All citizens of the People's Republic of China who have reached the age of eighteen, have the right to vote and stand for election, irrespective of their nationality, race, sex, occupation, social origin, religious belief.

* * * *

ARTICLE 88

Citizens of the People's Republic of China enjoy freedom of religious belief.

* * * *

चीन

जनवादी गणतंत्र चीन का संविधान

(२० सितम्बर १९५४)

अनुच्छेद १

जनवादी गणतंत्र चीन जनवादी लोकतांत्रिक राज्य है, जिसका नेतृत्व श्रमिक वर्ग करता है और श्रमिक और कृषक गठबंधन पर आधारित है ।

* * * *

अनुच्छेद ८५

जनवादी गणतंत्र चीन के सभी नागरिक विधि के समक्ष समान है ।

अनुच्छेद ८६

जनवादी गणतंत्र चीन के सभी नागरिकों को जो अठारह वर्ष के हो गये हैं, उन्हें मतदान और चुनाव में खड़े होने का अधिकार होगा, इसमें जातीयता, मूलवंश, लिंग, व्यवस्था, सामाजिक उद्गम तथा पांथिक भेदभाव का अप्रभावी रहेगा ।

* * * *

अनुच्छेद ८८

जनवादी गणतंत्र चीनके नागरिक पांथिक विश्वासों के लिए स्वतंत्र होंगे ।

* * * *

◆ ◆ ◆

PEOPLES REPUBLIC OF CHINA

By Taotai Hsia And Other

(Issued March. 1980)

* * * *

Article 46.

Citizens enjoy freedom to believe in relegion and freedom not be believe in religion, and to propogate atheism.

* * * *

जनवादी गणतन्त्र चीन

(मार्च १६८०)

* * * *

अनुच्छेद ४६

नागरिकों को पांथिक विश्वासों की स्वतंत्रता होगी और पांथिक अविश्वासों की स्वतंत्रता होगी, तथा नास्तिकता का प्रचार कर सकेंगे ----- ।

* * * *

◆ ◆ ◆

COLOMBIA

by **Gisbert H. Flanz.**

(Issued July 1972)

1957

* * * *

ARTICLE 53

The state guarantees freedom of conscience. No one shall be molested by reason of his relegious opinions or compelled to profess beliefs or observe practise contrary to his conscience. The freedom of all aets that are not contrary to christian morality or to the law is guaranteed. Acts contrary to christian morality or subversive of public order that may be committed on the occassion or under the pretext of worship are subject to the general law.

* * * *

कोलम्बिया

१९५७

(जुलाई १९७२)

* * * *

अनुच्छेद ५३

राज्य अन्तःकरण स्वातंत्र्य की गारंटी करता है । किसी को पांथिक विश्वासों के कारण प्रताड़ित नहीं किया जायेगा या पांथिक विश्वासों के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा या अन्तःकरण के विरुद्ध उपासना पद्धति नहीं मानेगा । ईसाई नैतिकता का विरोध विधिक प्रतिकूलता के अतिरिक्त सभी पंथों या सम्प्रदायों को स्वातंत्र्य होगा । ईसाई नैतिकता के प्रतिकूल या सार्वजनिक व्यवस्था का तात्कालिक अतिक्रमण या पूजा प्रतिमान, सामान्य विधिक प्रक्रिया के विषय होंगे ।

* * * *

CONGO (BRAZZAVILLE)

By **Jes Walow Salacuse**

(Issued July, 1980)

* * * *

ARTICLE 1.

The Congo, a Sovereign and Independent State is a people's Republic, indivisible and secular in which all power emanates from the people and belongs to the people.

* * * *

ARTICLE 66.

------ The following oath.

" I swear loyality to the congolese people to the revolution and the congolese labour party. I will apply with the guidance of Marxist-Leninist principles ------"

* * * *

कांगो (ब्राजीविली)

(जुलाई १६८०)

* * * *

अनुच्छेद १

कांगो एक पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न और स्वतंत्र जनवादी गणतंत्र, अविभाज्य और पंथ निरपेक्ष राज्य, जिसको सारी शक्ति जनता से प्राप्त है, और जनता का है ।

* * * *

अनुच्छेद ६६

- - - - - निम्न शपथ

"मैं कांगो की जनता, क्रान्ति के प्रति और कांगो की श्रमिक पार्टी के प्रति निष्ठा की शपथ लेता हूँ । मैं मार्क्स वादी - लेनिनवादी सिद्धान्तों से मार्गदर्शन ग्रहण करूँगा - - - - - ।"

* * * *

◆ ◆ ◆

CONGO (Kinshasa)

By **John. Crabb**

(Issued April, 1971.)

* * * *

Article 3. Any act of racial, ethnic or religious discrimination, ------are probhibited -----

* * * *

Article 10. Every person has the right to liberty of thought of conscience and of religion.
In the Republic there is no state religion. Every person has the right to profess his religion or his convictions

* * * *

कांगो (किनशासा)

(अप्रैल १९७१)

* * * *

अनुच्छेद ३

मूलवंश, मूलदेशीय या पांथिक गतिविधियों से भेदभाव का निषेध है ।

* * *

अनुच्छेद १०

प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अन्तःकरण और पांथिक स्वातंत्र्य का अधिकार है----- गणतंत्र में राज्य का कोई पंथ नहीं है प्रत्येक व्यक्ति को अपने पंथ या मतवाद को मानने का अधिकार होगा ----- ।

* * * *

COSTARICA

By **Gilbert Convers.**

(Issued June 1975)

* * * *

Article 76- The Apostolic Roman Catholic Relegion is that of the state, which contributes to its maintainance without impending the free exercise in the republic of other worship that is not opposed to universal morality or good customs.

* * * *

कोस्टारिका

(जून १९७५)

* * * *

अनुच्छेद ७६ अपोसोलिक रोमन कैथोलिक राज्य का पंथ है, जिसकी अबाध रूप से सहायता की जाती है, इसके कारण गणतंत्र में अन्य किसी उपासना पद्धति का निषेध नहीं किया जाता है, यदि सार्वभौमिक नैतिकता के या अच्छे रीति रिवाजों के प्रतिकूल नहीं है ।

* * * *

♦ ♦ ♦

CYPRUS

By Stanley Kyriakides

(Issued July 1971)

* * * *

ARTICLE 1

The State of Cyprus is an independent and sovereign Republic with a presidential regime, the President being Greek and the Vice-President being Turk elected by the Greek and the Turkish communities of Cyprus respectively as hereinafter in the constitution provided.

ARTICLE 2

For the purpose of this constitution-

(1) The Greek community comprises all citizens of the Republic who are of Greek origin and whose mother tongue is Greek or who share the Greek traditions or who are member of the Greek Orthodox Church;

(2) The Turkish Community comprises all citizens of the Republic who are of Turkish origin and whose mother tongue is Turkish or who share the Turkish Cultural traditions or who are Moslems;

(3) Citizens of the Republic who do not come within the provisions of paragraph (1) or (2) of this Article shall within three months of the date of the coming into operation of this constitution, opt to belong to either the Greek or the Turkish community as individuals, but if they belong to a religious group, shall so opt as a religious group and upon such option they shall be deemed to be members of such community;

For the purposes of this paragraph a religious group means a group of person ordinarily resident in Cyprus professing the same religion----the number of whom, on the date of the coming into operation of this constitution exceeds one thousand out of which at least five hundred become on such date citizens of the Republic.

* * * *

ARTICLE 18

1. Every person has the right to freedom of thought, conscience and religion.

2. All religions whose doctrine or rites are not secret, are free.
3. All religions are equal before the law-----no -----act of the Republic shall discriminate against any religious institution or religion.
4. Every person is free and has the right to profess faith and to manifest his relegion or belief, in worship, teaching, practise or observance, either indivisually or collectively, in private or in public, and to change his religion or belief.

* * * *

6. Freedom to manifest one's religion or belief shall be subject only to such limitations as are prescribed by law -----

* * * *

Part v - The Communal Chambers

ARTICLE 86

The Greek and the Turkish communities respectively shall elect from amongst their own members a communal chamber which shall have the competence expressly reserved for it under the provisions of the constitution.

ARTICLE 87

1. The Communal Chambers shall, in relation to their respective community, have competence to exercise within the limits of this constitution and subject to paragraph 3 of this Article, legislative power solely with regard to the following matters;

   (a) all religious matters;

   (b) all educational, cultural, and teaching matters;

   (c) personal status

* * * *

3. Any law or decision of a Communal Chamber made or taken in exercise of the power vested in it-----shall not in any way contain anything contrary to the interests of the security of the Republic----or which is against the fundamental rights and liberties guaranteed by the constitution to any person.

* * * *

साइप्रस

(जुलाई १९७२)

* * * *

अनुच्छेद १

साइप्रस एक स्वतंत्र और पूर्ण स्वामित्व सम्पन्न अध्यक्षीय गणतंत्र राज्य है। अध्यक्ष ग्रीक और उपाध्यक्ष तुर्क, अपने-अपने समुदाय के निर्वाचक मंडलों के द्वारा संवैधानिक प्रावधान के अनुसार चुने जायेंगे।

अनुच्छेद २

इस संविधान के हेतु -

(१) गणतंत्र के ग्रीक नागरिक जो कि ग्रीक उद्‌गम से और जिनकी मातृभाषा ग्रीक या जो ग्रीक परम्परा के भागीदार या ग्रीक पुरातन पंथी चर्च के सदस्य हैं - ग्रीक समुदाय है।

(२) गणतंत्र के तुर्क नागरिक जो कि तुर्क उद्‌गम से तथा जिनकी मातृभाषा तुर्की है, यो जो तुर्क परम्परा का पालन करते हैं या जो मुसलमान है, तुर्क समुदाय है।

(३) गणतंत्र के नागरिक जो इस अनुच्छेद के परिच्छेद (१) या (२) के अन्तर्गत नहीं आते संविधान के लागू होने के तीन महीने के भीतर ग्रीक या तुर्की समुदायों के एक को व्यक्तिगत रूप से चुन ले। लेकिन यदि वे किसी अन्य पांथिक वर्ग के हो, उस पांथिक वर्ग को चुन ले, और इससे वे उस समुदाय के सदस्य माने जायेंगे।

इस परिच्छेद के हेतु एक पांथिक वर्ग का अभिप्राय है कि मनुष्यों का समूह जो साइप्रस का नागरिक सामान्यतः है, और एक ही पंथ के मानने वाले हैं - - - - - इस संविधान के लागू होने के समय में जिनकी एक हजार से अधिक संख्या है, जिसमें पांच सौ से अधिक गणतंत्र के नागरिक हैं।

* * * *

अनुच्छेद १८

१- प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन, अन्तःकरण तथा पांथिक स्वातंत्र्य का अधिकार है।

२- सभी पंथ जिनके सिद्धान्त और कर्मकांड गुप्त नहीं है, उन्हें स्वातंत्र्य है।

३- सभी पंथों को विधि के समक्ष समता है - - - - - गणतंत्र के अधिनियम, किसी पांथिक संस्थान और पंथ के विरुद्ध भेद भाव नहीं करेगा।

४- प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है, और किसी पंथ के प्रति आस्था हो सकती है, किसी पंथ पर विश्वास, उपासना, शिक्षण, साधना, आचरण व्यक्तिगत या

समूहगत, निजी रूप में या सार्वजनिक रूप में कर सकता है, और अपने पंथ या मतवाद में परिवर्तन कर सकता है ।

* * * *

६- किसी पंथ या मतवाद के प्रदर्शन के स्वातंत्र्य की सीमा विधि द्वारा निर्धारित होगी ----- ।

* * * *

भाग पंचम - साम्प्रदायिक प्रकोष्ठ

अनुच्छेद ८६

ग्रीक और तुर्क समुदाय अपने प्रतिनिधि का चयन अपने साम्प्रदायिक प्रकोष्ठ से करेगा, संविधान के प्रावधान द्वारा स्पष्ट रूप से आरक्षित होगी ।

अनुच्छेद ८७

१- साम्प्रदायिक प्रकोष्ठ अपने-अपने समुदाय के संदर्भ में, संविधान प्रदत्त अधिकारों से जो इस अनुच्छेद के तीसरे परिच्छेद के अनुकूल होंगे निम्न विषयों के विधि विधान निर्मित करने का अधिकार रहेगा --

(अ) सभी पांथिक विषयों,

(ब) सभी शैक्षणिक, सांस्कृतिक और अध्यापन विषय,

(स) व्यक्तिगत स्तर,

* * * *

३- कोई विधि विधान या आदेश, जो साम्प्रदायिक प्रकोष्ठ द्वारा अपने अधिकार के अंतर्गत निर्मित हो या दिया जाये, ----गणतंत्र की सुरक्षा के प्रतिकूल किसी प्रकार नहीं होगा ----- या संविधान द्वारा मूलभूत अधिकारों और स्वतंत्रताओं की गारंटी को किसी व्यक्ति को निषिद्ध नहीं करेगा ।

* * * *

◆ ◆ ◆

EGYPT

By Peter B. Heller

(Issued May 1972)

ARTICLE 1

The Arab Republic of Egypt is a state whose system is democratic and socialist, based on the alliance of the working forces of the people.

The Egyptian people are part of the Arab nation and strive to bring about its overall unity.

* * * *

ARTICLE 2

Islam is the religion of the state----.The principles of Islamic Sharia are primary sources of legislation.

* * * *

ARTICLE 12

Society is bound to care for morality, to protect it and to observe the original Egyptian traditions. It has to pay attention to the high standard of religious education moral and national values and historical heritage of the people, scientific facts, socialist behaviour------

* * * *

ARTICLE 19

Religious education is a basic subject in the programme of general education.

* * * *

ARTICLE 40

Citizens are equal before the law. They have equal rights and duties without discrimination between them on the basis of sex, origin, language, religion or creed.

* * * *

इजिप्ट

मई १६७२

अनुच्छेद १

अरब गणतंत्र इजिप्ट एक राज्य है, जिसकी व्यवस्था लोकतांत्रिक और समाजवादी है, जो मेहनतकश जनता पर आधारित है ।

इजिप्ट की जनता अरब जाति का अंग होगी, इसका प्रयास अरब जाति की समग्र एकता है ।

* * * *

अनुच्छेद २

इस्लाम राज्य का पंथ है -----इस्लामिक शरियत विधि-विधानों की प्रारम्भिक स्रोत है ।

* * * *

अनुच्छेद १२

समाज नैतिकता के निर्वाह के लिए बाध्य है, इसका रक्षण और वास्तविक इजिप्ट की परम्परा को मानना है । इसके उच्च स्तरीय पांथिक शिक्षण, नैतिकता और राष्ट्रीय मूल्यवत्ता तथा ऐतिहासिक विरासत, वैज्ञानिक तथ्य, समाजवादी व्यवहार ----- के प्रति सावधान रहना होगा ----- ।

* * * *

अनुच्छेद १६

पांथिक शिक्षण सामान्य शिक्षण की योजना में आधारभूत विषय है ।

* * * *

अनुच्छेद ४०

नागरिक विधि के समक्ष समान है । बिना किसी लिंग, उद्गम, भाषा, पंथ या मतवाद के भेदभाव, बराबर अधिकार और कर्तव्य हैं ।

* * * *

◆ ◆ ◆

FINLAND

By **Voittosaario**

(Issued February 1973)

Constitution Act of Finland

17 July, 1919

* * * *

ARTICLE 5

All Finish citizens shall be equal before the law.

* * * *

ARTICLE 8

Every Finish citizen shall have the right to worship in public or in private upon condition that he does not violate the law or good morals, he shall be at liberty----to leave the religious community to which he belongs and to join another such community.

* * * *

ARTICLE 9

The fact of belonging to any special religious community or of not belonging to any such community shall in no way detract from the rights and duties of Finish citizens -----

Chapter - ix

Religious Communities

ARTICLE 83

The organization and administration of the Evangelical Luthern Church is regulated by Eccelesiastical Law.

Other existing religious communities shall be governed by rules which are or shall be prescribed on their behalf. New religious communities may be founded subject to the provisions of the law.

* * * *

ARTICLE 90 (1)

For appointments to posts in the Unversity in the Institute of Technology, in the Evangelical Luthern Church and the Greek Orthodox Church----special regulations are in force.

* * * *

फिनलैंड

फिनलैंड का संविधान अधिनियम १७ जुलाई १६१६

फरवरी १६७३

* * * *

अनुच्छेद ५

सभी फिनिश नागरिकों की विधि के समक्ष समानता होगी ।

* * * *

अनुच्छेद ८

प्रत्येक फिनिश नागरिक को निजी स्तर या सार्वजनिक स्तर पर उपासना का अधिकार होगा, जिसमें अनुबंध, विधि- विधानों के भंग होने और शुभ नैतिकता का उल्लंघन न हो, नागरिक को अपने पांथिक समुदाय को छोड़ने -----और दूसरे पांथिक समुदाय से जुड़ने का अधिकार होगा ।

* * * *

अनुच्छेद ६

किसी विशेष समुदाय से जुड़े होने या किसी समुदाय से न जुड़ने पर फिनिश नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों से वंचित नहीं होगा ----- ।

अध्याय IX

पांथिक समुदाय

अनुच्छेद ८३

ईवानजेलीकल लूथरन चर्च का संघटन और प्रशासन इसाई चर्च विधि से संचालित होगा ।

अन्य वर्तमान पांथिक समुदाय स्वनिर्धारित नियमों के अनुसार संचालित होंगे । नये पांथिक समुदाय विधि विधानों के प्रावधान के अन्तर्गत होंगे ।

* * * *

अनुच्छेद ६० (I)

विश्वविद्यालयय के प्राविधि संस्थान, ईवानजिलिकल लूथरन चर्च और ग्रीक पुरातन चर्च में नियुक्ति के लिए ----- विशेष विधि - विधान प्रभावी हैं।

* * * *

◆ ◆ ◆

FRANCE

By **Gisbert H. Flanz** and other.

(Issued February 1974).

* * * *

ARTICLE 2

France is a Republic, indivisible, secular, democratic and social. It shall ensure the equality of all citizens before the law, without distinction of origin, race or religion. It shall respect all beliefs.

* * * *

The motto of the Republic is 'Liberty, Equality, Fraternity.'

* * * *

ARTICLE 77

All Citizens shall be equal before the law, whatever their origin, their race and their religion. They shall have the same duties.

फ्रांस

(फरवरी १९७४)

* * * *

अनुच्छेद २

फ्रांस अविभाज्य, पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सामाजिक गणतंत्र है । यह विधि के समक्ष सभी नागरिकों की समानता सुरक्षित करेगा ।

यह सभी मतवादों का सम्मान करेगा ।

* * * *

गणतंत्र का आदर्श है, स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृभाव ।

* * * *

अनुच्छेद ७७

सभी नागरिकों की विधि के समक्ष समानता होगी, जहाँ से भी उत्पत्ति हो या उनका मूलवंश और उनका पंथ कोई भी हो, एक ही प्रतिमान के उनके कर्तव्य होंगे ।

◆ ◆ ◆

GERMAN DEMOCRATIC REPUBLIC

By Gisbert H. Flanz

(Issued June, 1975)

(1968 and 1974)

* * * *

ARTICLE 1

The German Democratic Republic is a socialist state of German nationhood. It is the political organisation of the working people in town and countryside, who together under the leadership of the working class and its Marxist-Leninist Party, make socialism a reality.

* * * *

ARTICLE 18

Socialist national culture belongs to the foundations of Socialist Society. The G.D.R. furthers and protects socialist culture, which serves peace, humanism and the development of the socialist society. Socialist Society further the full cultural life of the working people, cultivates humanistic values of the national cultural heritage and of world culture and develops socialist national culture as the concern of the whole people.

* * * *

ARTICLE 20

(1) Every Citizen the G.D.R. ---- his race, philosophical or religious profession, his social origin or status has the same rights and duties. Freedom Of conscience and freedom of belief or safeguarded. All citizens are equal before the law.

* * * *

ARTICLE 39

(1) Every citizen of the German Democratic Republic has the right to profess a religious creed and to carryout

(2) The Churches and other religious communities order their affairs and exercise activities in conformity with the constitution.

* * * *

ARTICLE 86

Socialist Society, the political power of the working people, their state and legal system are the basic guarantees for the observance and enforcement of the constitution in the spirit of justice, equality, fraternity and humanity.

* * * *

जर्मन लोकतांत्रिक गणतंत्र

(जून १६७५)

(१६६८ और १६७४)

* * * *

अनुच्छेद १

जर्मन लोकतांत्रिक गणतंत्र एक समाजवादी राज्य जर्मन राष्ट्र का है । नगर और ग्राम के मेहनतकश लोगों का यह राजनीतिक संगठन है, मेहनतकश लोगों के नेतृत्व के अन्तर्गत है, और मार्क्सवादी - लेनिनवादी पार्टी समाजवाद को यथार्थ करेगी ।

* * * *

अनुच्छेद १८

समाजवादी समाज का आधार समाजवादी राष्ट्रीय संस्कृति है । जर्मन लोकतांत्रिक गणतंत्र समाजवादी संस्कृति को अग्रसरित और संरक्षित करेगी, जिससे शान्ति, मानवता और समाजवादी समाज का विकास होगा । समाजवादी समाज मेहनतकश लोगों के सांस्कृतिक जीवन को पूर्णता तक पहुँचायेगी, राष्ट्रीय संस्कृति और विश्व संस्कृति की विरासत में मानवीय मूल्यों को प्रविष्ट करेगी और समग्र जनता के लिए समाजवादी राष्ट्रीय संस्कृति का विकास करेगी ।

* * * *

अनुच्छेद २०

(१) जर्मन लोकतांत्रिक गणतंत्र के प्रत्येक नागरिक का - - - - -उसके मूलवंश, दार्शनिक विचार या पांथिक मान्यता, सामाजिक उद्भव या स्तर कैसा भी हो समान अधिकार और कर्तव्य होंगे । अन्तःकरण और आस्था के स्वातंत्र्य का रक्षण होगा । सभी नागरिक विधि समक्ष समान होंगे ।

* * * *

अनुच्छेद ३६

(१) जर्मन लोकतांत्रिक गणतंत्र के प्रत्येक नागरिक को पांथिक मतवाद को मानने और पांथिक उपासना का अधिकार होगा ।

(३) चर्च और दूसरे पांथिक समुदाय अपनी गतिविधियों को अनुशासित और अपने अनुष्ठानों को संविधान के अनुकूल सामंजस्य करेंगे ।

* * * *

◆◆◆

INDONESIA

By **Geralda McBeath**

(Issued May 1973)

5th July 1959

* * * *

ARTICLE 27

Section1 All citizens shall have the same status in law and in the government and shall without exception, respect the law and the government.

* * * *

ARTICLE 29

Section 1 The State shall be based upon belief in the Supreme God.

Section 2 The State shall guarantee the freedom of the people to profess and the exercise their own religion.

* * * *

ARTICLE 32

The Government shall develop Indonesian national culture.

इंडोनेशिया

(मई १९७३)

५ जुलाई १९५९

* * * *

अनुच्छेद २७

भाग १ - सभी नागरिकों की विधि के समक्ष और शासन में समान स्थिति होगी, और बिना अपवाद विधि और शासन का सम्मान करेगा ।

* * * *

अनुच्छेद २९

भाग १ - राज्य सर्वोपरि ईश्वर विश्वास पर आधारित होगा ।

भाग २ - राज्य जनता की अपनी पांथिक गतिविधियों और पांथिक क्रियाकलापों के स्वातंत्र्य की गारंटी करेगा ।

* * * *

अनुच्छेद ३२

राज्य, इंडोनेशिया की राष्ट्रीय संस्कृति का विकास करेगा ।

◆ ◆ ◆

IRAN

By **Gisberih. Flang**

(Issued April 1980)

IN the name of God.

The constitution of Islamic Republic of Iran.

Preamble.

The constitution of the Islamic Republic of Iran examplifies the cultural, social political and economic foundations of Iranin Society. It is based upon Islamic Principles and standards.

* * * *

ARTICLE 1.

The Government of Iran is an Islamic Republic approved by the nation in the referendum of the 10th and 11th of the month of Farvardin in the solar year 1358......

ARTICLE 2.

The Islamic Republic is a system based on belief in :

(1) One God (there is no god but one) ....

(2) Divine Revelation and its fundamental role in expressing His laws.

* * * *

ARTICLE 3.

The Islamic Republic of Iran, in order to attain the goals mentioned in Article 2, shall employ every possible means to achieve.

* * * *

ARTICLE 12.

The official religion of Iranis Islam and the set followed is Jafor Shi'Ism and this article is unalterable.

* * * *

ईरान

इस्लामिक गणतंत्र ईरान का संविधान

(अप्रैल १९८०)

ईश्वर के नाम पर

उद्देशिका

इस्लामिक गणतंत्र ईरान के संविधान, ईरानी समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक दार्शनिक और आर्थिक आधारों को चरितार्थ करेगा । यह इस्लाम के सिद्धान्तों और मानदण्डों पर आधारित है ।

* * * *

अनुच्छेद १ -

ईरान की सरकार एक इस्लामी गणतंत्र है जिसकी पुष्टि राज्य ने १०-११ फरवरी-दिन के महीने में सौर वर्ष १३५८ को मतगणना में की है ----- ।

अनुच्छेद २ -

इस्लामी गणतंत्र एक व्यवस्था है जो इस विश्वास पर आधारित है :

(१) एक ईश्वर (एक ईश्वर के अतिरिक्त दूसरा नहीं)

(२) दैवी प्रकटीकरण और इसकी मूलभूत भूमिका उसके विधि विधान की अभिव्यक्ति में है ।

* * * *

अनुच्छेद ३ -

ईरान का इस्लामिक गणतंत्र अनुच्छेद २ में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सभी सम्भव प्रयास करेगी ।

* * * *

अनुच्छेद १२ -

ईरान का आधिकारिक पंथ और सम्प्रदाय, जफर शिया है, और यह अनुच्छेद अपरिवर्तनीय है ।

* * * *

IRAQ

By **Gisbert H. Flanz**

(Issued February 1974).

The Interim constitution.

16 July 1970.

ARTICLE 1.

Iraq is a sovereign peoples Democratic Republic. Its basic objective is the realization of one Arab State and the build up of the socialist system.

* * * *

ARTICLE 4.

Islam is the religion of the State.

* * * *

ARTICLE 25.

Freedom of Religions, faith and the exercise of religious rites, is guaranteed in accordance with rules of constitution and laws and in compliance with moral and public order.

* * * *

ईराक

(१६७४)

अन्तरिम संविधान

१६ जुलाई १६७०

अनुच्छेद १ -

ईराक पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न जनवादी लोकतांत्रिक गणतंत्र है । इसका मूल उद्देश्य एक अरब राज्य का साक्षात्कार और समाजवादी व्यवस्था का निर्माण है ।

* * * *

अनुच्छेद ४ -

राज्य का पंथ इस्लाम है ।

* * * *

अनुच्छेद २५ -

पंथ, आस्था और पांथिक गतिविधियों के स्वातंत्र्य की गारंटी है, जो कि संविधान और विधि के नियमानुसार तथा नैतिक और सार्वजनिक व्यवस्था के अनुकूल होगा ।

* * * *

◆ ◆ ◆

ISRAEL

By Fredricl.Bor

(Issued July 1973)

Declaration of the Establishment of the State of Israel

(14th May, 1948)

* * * *

The State Of Israel will be open for jewish immigration and for the Ingathering of the Exiles ----it will be based on freedom, justice, and peace as invisaged by the Prophets of Israel; it will ensure complete equality of social and political rights to all its inhabitants irrespective of religion, race or sex, it will guarantee freedom of religion, conscience, language, education and culture, it will safeguard the Holy places of all religions, and it will be faithful to the principles of the charter of the United Nations.

Basic Law (The Knesset)

ARTICLE 1

The Knesset is the parliament of the state.

* * * *

ARTICLE 7

The following shall not be candidate for the Knesset.

* * * *

(4) a judge (dayan) of a religious court, so long as he holds office-------

(7) rabbis and ministers of other religion, so long as they held office.

* * * *

इजराइल

(जुलाई १६७३)

इजराइल राज्य स्थापना का घोषणा पत्र

(१४ मई १६४८)

* * * *

इजराइल राज्य यहूदी निष्क्रमणार्थियों के लिए खुला रहेगा, निर्वासितों के एकत्रीकरण के लिए - - - - - यह स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति, जैसा कि इजराल के पैगम्बरों ने अपेक्षा की है, पर आधारित होगा; यह पूर्ण सामाजिक और राजनीतिक समानता के अधिकार से सभी नागरिकों को पंथ, मूलवंश और लिंग के भेद भाव बिना आश्वस्त करेगा । पंथ, अन्तःकरण, भाषा, शिक्षा और संस्कृति के स्वातंत्र्य की गारंटी करेगा । सभी पंथों के पवित्र स्थानों की सुरक्षा करेगा और यह राष्ट्रसंघ के घोषणा पत्र से निष्ठा रखेगा ।

बुनियादी विधान (किनीसूसेट)

अनुच्छेद १

किनीसूसेट राज्य की संसद होगी ।

* * * *

अनुच्छेद ७

निम्नांकित किनीसूसेट के प्रत्याशी नहीं हो सकते - - - - - ।

* * * *

(४) पांथिक न्यायालय का न्यायाधीश, जब तक वह पद पर रहे - - - - - ।

* * * *

(७) रब्बा तथा पुरोहित अन्य पंथों के, जब तक वह पद पर हो ।

* * * *

ITALY

By **Gisbert H. Flaz and Others.**

(Issued Feb. , 1973).

1947 Dec. 22

ARTICLE 1

Italy is a democratic Republic founded on labour

* * * *

ARTICLE 3

All Citizens are invested with equal social status and are equal before the law, without distinction as to sex, race, language, religion, political opinions and personal or social conditions.

* * * *

ARTICLE 7

The state and the Catholic Church are with in its own ambit, independent and sovereign.

Their relations are regulated by the Lateren pacts. Such amendments to these pacts as are accepted by both parties do not require any procedure of constitution revision.

(By virtue of this Article, Italy recognizes the constitutional status of the Lateren Pacts, consisting of the Treaty -------. Only modifications agreed upon between the Holysee and the Italian Government may be approved by Parliament with ordinary law. -----)

ARTICLE 8

All religious denominations are equally free before the law.

Religious demoninations other than Catholic are entitled to organize themselves according to their own creed---.

Their relations with the state are regulated by law on the basis of agreements within their respective representatives.

* * * *

ARTICLE 19

All are entitled to freely profess their religious convictions in any form, individually or in associations, to propagate them and to celebrate them in public or in private, save in the case of rites contrary to morality.

ARTICLE 20

The religious character and the religious or confessional aims of an association or institution shall not involve special legal limitations or special fiscal burdens for its constitution, legal status or any of its activities.

ARTICLE 21

All are entitled freely to express their thoughts by word of mouth, in writing, and by all other means of communication.

* * * *

इटली

(फरवरी १९७३)

१९४७ दिसम्बर २२

अनुच्छेद १

इटली लोकतांत्रिक गणतंत्र है, जो श्रमिकों के आधार पर है - - - - - ।

* * * *

अनुच्छेद ३

सभी नागरिक समान सामाजिक स्तर और विधि समता से आश्वस्त है, इसमें लिंग, मूलवंश, भाषा, पंथ, राजनीतिक विचार और व्यक्तिगत या सामाजिक स्थितियों से भेदभाव नहीं होगा ।

* * * *

अनुच्छेद ७

राज्य और केथोलिक चर्च अपनी-अपनी धुरी पर - स्वतंत्र और पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हैं ।

उनके सम्बन्धों का नियमन लेटरन समझौता से है । ऐसे संशोधन (समझौते में) जो उभय पक्षों को स्वीकृत है, उससे संविधान में परिवर्तन की प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है ।

इस अनुच्छेद के अनुरूप इटली लेटरन समझौतों को, जिसमें संधि समाविष्ट है, संवैधानिक स्तर की मान्यता देता है । होलीसी और इटली सरकार के बीच जो संशोधन की स्वीकृति होती है, उसे संसद की पुष्टि सामान्य विधि द्वारा प्राप्त हो जाती है ।

अनुच्छेद ८

सभी धार्मिक क्रिया कलाप विधि के समक्ष समान रूप से स्वतंत्र है ।

धार्मिक क्रिया कलाप जो कैथोलिक के अतिरिक्त हैं, उनका संयोजन अपने मतानुसार कर सकते हैं - - - - - ।

राज्य उनके सम्बन्ध विधि विधान द्वारा नियमित होंगे, जो कि उनके प्रतिनिधियों से समझौते के आधार पर होंगे ।

* * * *

अनुच्छेद १६

सभी को अपनी आस्था के अनुसार पांथिक गतिविधियों को किसी रूप में भी मनाने की स्वतंत्रता है, व्यक्ति और सामूहिक रूप में प्रचार करने और समारोह करने का सार्वजनिक या निजी रूप में स्वातंत्र्य है सिवाय उनके जो नैतिकता के विरुद्ध हैं - ।

अनुच्छेद २०

पांथिक चरित्र और पांथिक उद्देश्य या प्रायश्चित के विधि विधान किसी भी संस्थान या संगठन की विशिष्ट विधिक सीमा या विशिष्ट वित्तीय भार, अप्नी संरचना या किसी भी गतिविधि,या विधिक स्तर पर नहीं रखेगा ।

अनुच्छेद २१

सभी को चिन्तन, वाक्, लेखन या सभी माध्यमों से अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य है ।

* * * *

IVORY COAST

Constitution of the Republic of the Ivory Coast

The people of the Ivory Coast declare their adherence to the principles of Democracy and the rights of the Man, as they have been defined by the declaration of the Rights of Man and the Citizen of 1789, by the Universal Declaration of 1948 and as they have been guaranteed by this constitution.

They affirm their determination to cooperate in peace and friendship withall people who share their ideal of justice, liberty, equality, fraternity and human solidarity.

* * * *

ARTICLE 2

The Republic of the Ivory Coast shall be one and indivisible, secular, democratic and social.

* * * *

ARTICLE 6

The Republic shall assure to all equality before the law without distinction as to origin, race,sex or relegion. It shall respect all relegious beliefs.

* * * *

आइवरी कोस्ट

आइवरी कोस्ट गणतंत्र का संविधान

आइवरी कोस्ट की जनता लोकतंत्र और मानवीय अधिकारों के, सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा की घोषणा करती है, जैसा कि मानवीय अधिकार और नागरिक - १७८६ तथा सार्वभौमिक घोषणा १६४८ में है। इस संविधान में इनकी गारंटी है।

शान्ति रचना में अपने सहकार का दृढ़ निश्चय से आश्वस्त करते हैं और सभी लोगों से जो न्याय, स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व और मानवीय एकता के आदर्शों में भागीदारी करते हैं, उनके प्रति मैत्री से आश्वस्त करते हैं।

* * * *

अनुच्छेद २

आइवरी कोस्ट गणतंत्र एक और अविभाज्य, पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सामाजिक है।

* * * *

अनुच्छेद ६

गणतंत्र विधि के समक्ष समानता से सभी को आश्वस्त करेगी, इसमें जन्म मूलवंश, लिंग या पांथिक कारणों से भेदभाव नहीं होगा, यह सभी पांथिक विश्वासों का सम्मान करेगी।

* * * *

JAMICA

The Constitution of Jamica

Editors : **Albert P. Blaustein & Other.**

(6th August 1962)

* * * *

ARTICLE 21

(1) Except with his own consent, no person shall be hindered in the enjoyment of his freedom of conscience and for the purpose of this section the said freedom includes freedom of thought and of religion, freedom to change his religion or belief and freedom--- -and both in public and in private to manifest and propagate his religion or belief in worship, teaching, practise and observance.

(2) The constitution of a religious body or denomination shall not be altered except with the consent of the governing authority of that body or denomination.

(3) No religious body or denomination shall be prevented from providing religious instruction for persons of that body or denomination in the course of any education----

(4) No person shall be compeleed to take any oath which is contrary to his religion or belief, or to take oath in a manner which is contrary to his religion or belief.

* * * *

जमैका

(१६ अगस्त १९६२)

जमैका का संविधान

* * * *

अनुच्छेद २१

(१) बिना सहमति के, अन्तःकरण की स्वतंत्रता के उपभोग में कोई बाधा नहीं होगी, और इस अनुच्छेद के अन्तर्गत उपरोक्त स्वातंत्र्य में चिन्तन और पंथ का स्वातंत्र्य या पंथ परिवर्तन का स्वातंत्र्य या विश्वास का स्वातंत्र्य - - - - - और निजी तथा सार्वजनिक रूप से पंथ या उपासना का विश्वास, शिक्षण मान्यता और आचरण करने का स्वातंत्र्य है ।

(२) किसी पांथिक संरचना या संस्थान के नियमों में कोई परिवर्तन नहीं होगा, पंथ की संरचना और संस्था के संविधान में कोई भी परिवर्तन, बिना उस पांथिक संस्थानों के नियंत्रकों की सहमति के नहीं होगा ।

(३) किसी भी पांथिक संरचना या संस्थान को किसी पाठ्यक्रम में पांथिक शिक्षा प्रदान करने से निषिद्ध नहीं किया जायेगा - - - - - ।

(४) किसी व्यक्ति को उस शपथ के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा जो कि उसके पांथिक विश्वासों के विपरीत हो या उस प्रतिमान से शपथ ग्रहण नहीं कराई जायेगी, जो उसके पंथ और विश्वासों के प्रतिकूल है ।

* * * *

JAMICA

The Constitution of Jamica

Editors : **Albert P. Blaustein & Other.**

(6th August 1962)

* * * *

ARTICLE 21

(1) Except with his own consent, no person shall be hindered in the enjoyment of his freedom of conscience and for the purpose of this section the said freedom includes freedom of thought and of religion, freedom to change his religion or belief and freedom--- -and both in public and in private to manifest and propagate his religion or belief in worship, teaching, practise and observance.

(2) The constitution of a religious body or denomination shall not be altered except with the consent of the governing authority of that body or denomination.

(3) No religious body or denomination shall be prevented from providing religious instruction for persons of that body or denomination in the course of any education----

(4) No person shall be compelted to take any oath which is contrary to his religion or belief, or to take oath in a manner which is contrary to his religion or belief.

* * * *

जमैका

(१६ अगस्त १९६२)

जमैका का संविधान

- - - -

अनुच्छेद २१

(१) बिना सहमति के, अन्तःकरण की स्वतंत्रता के उपभोग में कोई बाधा नहीं होगी, और इस अनुच्छेद के अन्तर्गत उपरोक्त स्वातंत्र्य में चिन्तन और पंथ का स्वातंत्र्य या पंथ परिवर्तन का स्वातंत्र्य या विश्वास का स्वातंत्र्य - - - - - और निजी तथा सार्वजनिक रूप से पंथ या उपासना का विश्वास, शिक्षण मान्यता और आचरण करने का स्वातंत्र्य है।

(२) किसी पांथिक संरचना या संस्थान के नियमों में कोई परिवर्तन नहीं होगा, पंथ की संरचना और संस्था के संविधान में कोई भी परिवर्तन, बिना उस पांथिक संस्थानों के नियंत्रकों की सहमति के नहीं होगा।

(३) किसी भी पांथिक संरचना या संस्थान को किसी पाठ्यक्रम में पांथिक शिक्षा प्रदान करने से निषिद्ध नहीं किया जायेगा - - - - -।

(४) किसी व्यक्ति को उस शपथ के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा जो कि उसके पांथिक विश्वासों के विपरीत हो या उस प्रतिमान से शपथ ग्रहण नहीं कराई जायेगी, जो उसके पंथ और विश्वासों के प्रतिकूल है।

* * * *

JAPAN

The Constitution of Japan

Promulgated Nov. 3,1946

* * * *

ARTICLE 1

The Emperor shall be the symbol of the state and of the unity of the people, deriving this position from the will of the people with whom resides sovereign power.

* * * *

ARTICLE 11

The people shall not be prevented from enjoying any of the fundamental human rights. The fundamental human rights guaranteed to the people by this constitution shall be conferred upon the people of this and future generations as eternal and inviolate rights.

* * * *

ARTICLE 13

All of the people shall be respected as individuals.

* * * *

ARTICLE 14

All of the people are equal under law.

* * * *

ARTICLE 19

Freedom of thought and conscience shall not be violated.

* * * *

ARTICLE 20

Freedom of religion in guaranteed to all. No religious organization shall receive any previlege from the state, nor exercise any political authority. No person shall be compeled to take part in any religious act, celebration, rite or practise. The state and its organs shall refrain from religious education or any other religious activity.

* * * *

जापान

(प्रवर्तित नवम्बर १९४६)

* * * *

अनुच्छेद १

सम्राट राज्य और जनता की एकता का प्रतीक है, यह शक्ति जनता की इच्छा पर है, जिसमें पूर्ण प्रभुत्व निहित है ।

* * * *

अनुच्छेद ११

मूलभूत मानवीय अधिकारों के निर्वाह में जनता को बाधा नहीं होगी । मूलभूत अधिकार जो इस संविधान के द्वारा जनता और भविष्य की पीढ़ियों को प्रदान किये गये हैं, शाश्वत और अभंगनीय हैं ।

* * * *

अनुच्छेद १३

सभी जनता व्यक्ति के रूप में सम्मानीय है ।

* * * *

अनुच्छेद १४

सभी जनता विधि के समक्ष समान है ।

* * * *

अनुच्छेद १९

चिन्तन और अन्तःकरण का स्वातंत्र्य खंडनीय नहीं है ।

* * * *

अनुच्छेद २०

पांथिक स्वतंत्रता की सभी को गारंटी है । कोई पांथिक संगठन राज्य से विशेषाधिकार नहीं ग्रहण करेगा या कोई राजनीतिक अधिकार नहीं ग्रहण करेगा । किसी भी व्यक्ति को किसी धार्मिक कृत्य, समारोह, कर्मकांड या आचरण के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा । राज्य और उसके अंग किसी पांथिक शिक्षण या पांथिक गतिविधियों में भाग लेने को वर्जित हैं ।

* * * *

◆ ◆ ◆

JORDAN

The Constitution of the Hashemite Kingdom of Jordan

January 1, 1952.

* * * *

1. The form of Government shall be parliamentary with an hereditary monarchy.
2. Islam shall be the religion of the state and Arabic shall be its official language.

* * * *

7. Personal freedom shall be safeguarded.

* * * *

14. The State shall ensure the free exercise of all forms of worship and religious rites in accordance with the custom observed in the Kingdom, subject only to the maintenance of public order and morals.

15 (i) Freedom of Opinion is safeguarded and every Jordanion is free to express his opinion verbally and in writing and in other forms of expression with in the limits of the law.

* * * *

जोर्डन

(१ जनवरी १९५२)

* * * *

१- राज्य का प्रतिमान उत्तराधिकार प्राप्त नृपतंत्र और संसदीय पद्धति है ।

२- इस्लाम राज्य का पंथ है, और अरबी इसकी अधिकृत भाषा है ।

* * * *

७- व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का संरक्षण है ।

* * * *

१४- राज्य, रीतिरिवाज के संदर्भ में तथा शान्ति और नैतिकता के अन्तर्गत, सभी उपासना पद्धतियों और पांथिक समारोहों के स्वातंत्र्य से आश्वस्त करेगा।

* * * *

१५ **(i)** - मतवाद का स्वातंत्र्य है, और प्रत्येक जोर्ड्न वासी को अपनामत मौखिक या लिखित या किसी प्रतिमान में अभिव्यक्ति करने की विधि की सीमा में अधिकार रहेगा ।

* * * *

♦ ♦ ♦

NORTH KOREA

Korean People's Democratic Republic

By **Jamesseymour**

(Issued July 1993)

Chapter 1

Politics

ARTICLE 1

The Democratic Peoples' Republic of Korea -----

* * * *

ARTICLE 4

The Democratic Peoples' Republic of Korea is guided in its activity ---which is a creative application of Marxism-Leninism - --

* * * *

Chapter iii

Culture

* * * *

ARTICLE 38

The state eliminates the way of life inherited from the old society and introduces a new socialist way of life in all fields.

* * * *

Chapter iv

Basic Rights and duties of Citizen

ARTICLE 54

. Citizens have the religious liberty and the freedom of anti-religious propaganda.

उत्तरी कोरिया

कोरिया - जनवादी लोकतांत्रिक गणतंत्र

(जुलाई १९९२)

अध्याय १

राजनीति

अनुच्छेद १

कोरिया लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र है - - - - - ।

* * * *

अनुच्छेद ४

लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र अपनी गतिविधियों में नियंत्रित है - - - - - जो कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सृजनात्मक आचरण है - - - - - ।

* * * *

अध्याय ३

संस्कृति

* * * *

अनुच्छेद ३८

राज्य पुरातन जीवन पद्धति, जो कि पुराने समाज से उत्तराधिकार से प्राप्त है, उसे समाप्त करेगी, और नयी समाजवादी जीवन पद्धति सभी क्षेत्रों में प्रवर्तित करेगी ।

* * * *

अध्याय ४

जनता के मौलिक अधिकार और कर्तव्य

अनुच्छेद ५४

नागरिकों को पांथिक स्वतंत्रता और पंथ विरोधी प्रसार का भी स्वातंत्र्य है - - - - - ।

◆ ◆ ◆

(SOUTH) KOREA

Constitutions of the Democratic Peoples' Republic of Korea

(8th Sept. 1948)

ARTICLE 1

Our state is the Democratic Peoples' Republic of Korea.

* * * *

ARTICLE 11

All citizens of the D.P.R.K. , irrespective or sex, nationality, religions belief ---have equal rights in all spheres of government, political, economic, social and cultural activity.

ARTICLE 12

All the D.P.R.K. Citizens over eighteen years of age, irrespective of sex ----religious belief ----have the right to elect and be elected to organs of state power.

ARTICLE 13

Citizens of the D.P.R.K. have freedom of speech, the press, association, assembly, mass meetings and demonstration.

ARTICLE 14

Citizens of the D.P.R.K. have freedom of religious belief and of conducting religions services.

* * * *

(दक्षिण)कोरिया

कोरिया लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र का संविधान

(८ सितम्बर १९४८)

अनुच्छेद १

अपना राज्य लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र कोरिया है ----- ।

* * * *

अनुच्छेद ११

लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र कोरिया में सभी नागरिकों को लिंग, राष्ट्रीयता, पांथिक विश्वास में भेद के बावजूद ----- समान अधिकार राज्य के सभी क्षेत्रों, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों के होंगे ।

अनुच्छेद १२

लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र कोरिया के सभी नागरिकों को जो अठारह वर्ष के ऊपर है, लिंग, -----पांथिक विश्वास के भेद के बावजूद चुनने का और चुने जाने का अधिकार, राज के किसी भी अंग में प्राप्त है ।

अनुच्छेद १३

लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र कोरिया के प्रत्येक नागरिक को वाक्, प्रेस, संगठन, एकत्रीकरण, सार्वजनिक सभा तथा प्रदर्शन के स्वातंत्र्य का अधिकार रहेगा।

अनुच्छेद १४

लोकतांत्रिक जनवादी गणतंत्र कोरिया के प्रत्येक नागरिक को पांथिक मतवाद और पांथिक आचरणों का स्वातंत्र्य है ।

* * * *

◆ ◆ ◆

(CONSTITUTIONS OF ARAB COUNTRIES)

KUWAIT

The Constitution of the State of Kuwait

N.M. Tripath Pvt. Ltd.

In the name of Allah, the benefient,the Merciful,

* * * *

ARTICLE 2

The religion of the state is Islam, and the Islamic Sharia shall be a main source of legislation.

* * * *

ARTICLE 12

The State safeguards the heritage of Islam and of the Arabs and contributes to the furtherance of human Civilisation.

* * * *

ARTICLE 18

Inheritance is a right governed by the Islamic Sharia.

* * * *

ARTICLE 29

All peopleare equal in human dignity, and in public rights and duties before the law, without distinction as to race, origin, language or religion.

* * * *

ARTICLE 35

Freedom of belief is absolute. The State protect the freedom of practising religion in accordance with established customs, provided it does not conflict with public policy or morals.

* * * *

कुवैत

कुवैत राज्य का संविधान

करुणा पूर्ण और हितकारी अल्लाह के नाम

* * * *

अनुच्छेद २

राज्य का पंथ इस्लाम है और इस्लामिक शरियत विधि - विधानों के प्रमुख स्रोत होंगे ।

* * * *

अनुच्छेद १२

राज्य इस्लाम और अरब से उत्तराधिकार में प्राप्ति का संरक्षण करेगा और मानवीय सभ्यता को अग्रसरित करने में योगदान करेगा ।

* * * *

अनुच्छेद १८

उत्तराधिकार का अधिकार इस्लामिक शरियत से नियंत्रित होगा ।

* * * *

अनुच्छेद २९

मूलवंश, जन्म, भाषा या पंथ के भेदभाव के बिना विधि समक्ष, सार्वजनिक अधिकार तथा कर्तव्य के संदर्भ में और मानव सम्मान में सभी नागरिक समान होंगे ।

* * * *

अनुच्छेद ३५

विश्वास स्वातंत्र्य पूर्ण रूप से है । जो सार्वजनिक नीतियों या नैतिकता से प्रतिकूल नहीं, उन पांथिक आचरणों का, राज्य रीति रिवाज के अनुसार उनके स्वातंत्र्य को संरक्षण देगा ।

* * * *

◆ ◆ ◆

LIBYA

In the name of God most gracious and most merciful.

ARTICLE I

The official name of Libya will be 'The Socialists People's Libyan Arab Jamahiriya.'

ARTICLE II

The holy Kuran is the constitution of the Socialists People's Libyan Arab Jamahiriya.

ARTICLE III

The people's direct democracy is the basis of the political system --------

* * * *

लीबिया

परम विभूति और परम करुणा करने वाले ईश्वर के नाम

अनुच्छेद १

लीबिया का आधिकारिक नाम 'समाजवादी जनवादी लीबिया अरब जमूहरिया' ----- ।

अनुच्छेद २

पवित्र कुरान, अरब जमूहरिया समाजवादी जनवादी लीविया, की संविधान होगी ।

अनुच्छेद ३

जनता का प्रत्यक्ष लोकतंत्र राज्य व्यवस्था का मूलभूत आधार होगा ।

* * * *

MALAYSIA.

* * * *

ARTICLE 3. **Religion of the federation.**

1. Islam is the religion of the federation, but other relegions may be practised in peace and hormony in any part of the federation.

* * * *

ARTICLE 9. **Equality.**

(1) All person are equal before law and entitled to the equal protection of the law.

* * * *

ARTICLE 12. **Rights in respect of education.**

(1) Without prejudice to the generality of article there shall be no discrimination against any citizen on the ground of only of relegion, race, descent or place or birth.

(2) Every relgious group has the right to establish and maintain institutions for the education of children in its own relegion. It shall belawful for the federation or state to establish or maintain or assist-----

......Islamic Institution.

* * * *

मलेशिया

* * * *

अनुच्छेद ३ - फेडरेशन का पंथ

(१) इस्लाम, फेडरेशन का पंथ है, फेडरेशन के किसी भाग में शान्ति और सामंजस्य के संदर्भ में अन्य पंथों का भी आचरण हो सकता है ।

* * * *

अनुच्छेद ६

सभी नागरिक विधि के समक्ष समान होंगे और समान विधिक संरक्षण का अधिकार है ।

* * * *

अनुच्छेद १२ - शिक्षण सम्बंधी अधिकार

(१) अनुच्छेद के सामान्यीकरण से, बिना किसी द्वेष भाव के किसी नागरिक के प्रति पंथ, मूलवंश, जन्म तथा जन्म स्थान के प्रति भेद भाव नहीं होगा।

(२) प्रत्येक पांथिक वर्ग को अपने वर्ग के बच्चों को, अपने पंथ के शिक्षण के लिए संस्थान स्थापित और संचालित करने का अधिकार रहेगा । इस्लामिक संस्थानों का स्थापन, संचालन या सदस्यता करना फेडरेशन या राज्य का विधिक दायित्व होगा ।

* * * *

MALDIVES

By **Bellmuth Hecker.**

(Issued March 1976)

In the Name of Allah.

* * * *

ARTICLE 3. Maldives shall be a republic, its religion shall be Islam ....

* * * *

ARTICLE 5. Maldives are equal before the law ......

* * * *

ARTICLE 15 Every citizen shall learn............
To read and write the Arbic ....to recite the Holy Quaran, and the religion of Islam.....

ARTICLE 16. There exists freedom of acquiring knowledge and imparting it to others in a manner that does not contravent Shariah and law.

ARTICLE 17. Within the frame work of Shariah and the law, all citizens have the freedom to assemble.

* * * *

ARTICLE 26. Compulsory qualifications,
For the president of Republic,
a. Shall be a Muslim of Sunni sect.
e. shall be a male.

* * * *

ARTICLE 34. The president of the Republic is the supreme authority to propagate the religion of Islam in the Maldives.

* * * *

ARTICLE 53. The compulsory qualifications for the Prime Minister and every Minister are that he :
a. Shall be a Muslim of the Sunni Sect.

* * * *

मालदीव

(मार्च १६७६)

अल्लाह के नाम पर

* * * *

अनुच्छेद ३ - मालदीप गणतंत्र राज्य होगा, और इसका पंथ इस्लाम होगा ----- ।

* * * *

अनुच्छेद ५ - मालदीप के नागरिक विधि समक्ष समान होंगे ----- ।

* * * *

अनुच्छेद १५ - प्रत्येक नागरिक शिक्षण ग्रहण करेगा ----
अरबी पढ़ना और लिखना ----- कुरानशरीफ का पाठ और इस्लाम पंथ ----- ।

अनुच्छेद १६ - विद्या अर्जित करने का और दूसरों को शिक्षित करने का स्वातंत्र्य होगा, किन्तु इस पद्धति से जिससे शरियत और विधि-विधानों का उल्लंघन नहीं ।

अनुच्छेद १७ - शरियत और विधि विधानों को ढांचे के भीतर सभी नागरिकों को सभा संगहित करने का अधिकार होगा ।

* * * *

अनुच्छेद २६ - गणतंत्र के राष्ट्रपति की अनिवार्य अर्हता ।
अ - सुन्नी सम्प्रदाय का मुसलमान हो ----- ।

* * * *

ई - पुरुष हो ----- ।

* * * *

अनुच्छेद ३४ - गणतंत्र का राष्ट्रपति मालदीव में इस्लाम के प्रचार का सर्वोच अधिकारी होगा,

* * * *

अनुच्छेद ५३ - प्रधानमंत्री तथा प्रत्येक मंत्री की अनिवार्य अर्हता होगी
अ - सुन्नी सम्प्रदाय का मुसलमान हो,

* * * *

MALTA

Constitution Of Malta

* * * *

Religion :

2. (1) The Religion of Malta is the Roman Catholic Apostolic Relegion.

* * * *

10. Relegious teaching of the Roman catholic Apostolic faith shall be provided in all State schools.

* * * *

41- (1) All persons in Malta shall have full freedom of conscience and enjoy the free exercise of these respective mode of relegious worship.

* * * *

माल्टा

माल्टा का संविधान

* * * *

पंथ -

२ (I) - माल्टा का पंथ, रोमन कैथोलिक अपोसोलिक पंथ है ।

* * * *

१० - रोमन कैथोलिक अपोसोलिक पंथ का शिक्षण सभी राज्य के शिक्षालयों में होगा,

* * * *

४१ (I) अन्तःकरण का स्वातंत्र्य सभी नागरिकों को होगा और सभी अपने पांथिक उपासना प्रतिमान के लिए स्वतंत्र होंगे ।

* * * *

◆ ◆ ◆

MAURITIUS

By Frederic L. Bor

(Issued September 1971)

* * * *

ARTICLE 14 (1)

No religious denomination and no religious social, ethnic or cultural association or group shall be prevented from establishing and maintaining schools on its own expense.

* * * *

मारीशस

(सितम्बर १६७१)

* * * *

अनुच्छेद १४ (I)

किसी भी पांथिक संगठन को और किसी भी पांथिक, सामाजिक, मूल देशीय या सांस्कृतिक संस्थान को अपने व्यय से विद्यालयों के स्थापन और संचालन को निषिद्ध नहीं माना जायेगा ।

* * * *

MEXICO.

By **Leonard V.B. Sutton.**

(Issued February, 1973.)

* * * *

ARTICLE 3. Freedom of relegious beliefs being guaranteed by article 24. .....

3-1 C IV Religious corporations, ministers of religion, stock companies which exclusively or predominantly engage in educational activities and associations or companies devoted to propagation of any religious creed shall not in any way participate in institutions giving elementry, secondary and normal education and education for labourers or field workers.

* * * *

ARTICLE 24. Every one is free to embrace the relegion of his choice....Provided they do not constitute an offence punishable by law.

* * * *

ARTICLE 55. The following are the requirements to be a deputy----

VI. Not to be ministers of any relegious cult.

* * * *

मैक्सिको

(फरवरी १९७३)

* * * *

अनुच्छेद ३ - पांथिक आस्थाओं के स्वातंत्र्य की गारंटी अनुच्छेद २४ में है -----।

३-१-CV - पांथिक संगठन, पंथ-पुरोहित, स्टाक कम्पनी जो पूर्ण रूपेण या विशिष्ट रूप से शैक्षणिक गतिविधियों से संलग्न है, और संगठन या कम्पनी किसी पांथिक मतवाद के प्रचार में लगे हैं, वे किसी प्रकार से भी प्रारम्भिक, माध्यमिक और सामान्य शिक्षण और मजदूरों के शिक्षण तथा खेतिहर मजदूरों के शिक्षण में भागीदार नहीं होंगे।

* * * *

अनुच्छेद २४ - प्रत्येक व्यक्ति अपने रुचि वैचित्र्य से किसी पंथ को ग्रहण कर सकता है -----। परन्तु इससे कोई अपराध वृति न हो, जो विधि विधान से दंडनीय है।

* * * *

अनुच्छेद ५५ - निम्नांकित एक डिप्टी की अर्हता है -----।

VI किसी पंथ का पुरोहित न हो।

* * * *

MONACO.

(Issued July 1972)

* * * *

ARTICLE 9. The Catholic religion, apostolic and Roman is the religion of the state.

* * * *

ARTICLE 17. Monegasque citizens are equal before the law. There are no privilages among them.

* * * *

ARTICLE 23. Freedom of religion, of its public exercise and the freedom to express opinions and on all mattersare guaranteed, except the repression of offences committed in the exercise of these liberties.
No one may be forced to participate in acts and ceremonies of any religion, not to observe its days of rest.

* * * *

मोनाको

(जुलाई १९७२)

* * * *

अनुच्छेद ९ - राज्य का पंथ कैथोलिक अपोसोलिक रोमन पंथ है ।

* * * *

अनुच्छेद १७ - मोनको नागरिकों की विधि के समक्ष समानता होगी । उनके मध्य कोई विशेषाधिकार नहीं होगा ।

* * * *

अनुच्छेद २३ - पंथ का स्वातंत्र्य, इसका सार्वजनिक आचरण और विचार अभिव्यक्त करने का स्वातंत्र्य और सभी विषयों में स्वातंत्र्य की गारंटी है, इन स्वतन्त्रताओं के निर्वाह में आपराधिक वृत्ति पर नियत्रंण रहेगा । किसी को भी किसी भी पांथिक गतिविधियों और समारोहों में भागीदारी के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता या अनध्याय दिवसों में बाध्य नहीं किया जायेगा ।

* * * *

♦ ♦ ♦

MONGOLIAÑ

People's Republic

By Gisbert H. Fianz

(Issued February 1981).

* * * *

ARTICLE 86

Religion in the M.P.R. is seperated from the state and from the school. Citizens of the M.P.R. granted freedom of worship and freedom of anti-relegious propoganda.

ARTICLE 87

In confirmity with the interest of working people and in order to strengthen the socialist state system of the M.P.R., its citizen or guaranteed by law.

1. Freedom of Speech
2. Freedom of Press.
3. Freedom of Assembly, including mass meetings.
4. Freedom to hold demonstration and processions. These freedom are ensured by placing at the disposal of the working people and their organisations the material requisites for their realization.

* * * *

मंगोलिया

जनवादी गणराज्य

(फरवरी १९८१)

* * * *

अनुच्छेद ८६

मंगोलियन जनवादी गणतंत्र में पंथ, राज्य और शिक्षण संस्था से पृथक है। मंगोलियन जनवादी गणतंत्र में नागरिकों को उपासना का स्वातंत्र्य है, और पंथ विरोधी प्रचार का भी स्वातंत्र्य है।

अनुच्छेद ८७

श्रमिक जनता के हितों की अनुकूलता और समाजवादी राज्य पद्धति की दृढ़ता के लिए मंगोलियन जनवादी गणतंत्र की जनता को विधि विधानों, द्वारा गारंटी की जाती है -

१- वाक् स्वातंत्र्य।

२- प्रेस स्वातंत्र्य।

३- एकत्रीकरण का स्वातंत्र्य, जिसमें सम्मिलित हैं - जन सभायें।

४- प्रदर्शन और समारोह यात्राओं का स्वातंत्र्य है। इन स्वतंत्रताओं का आश्वासन मेहनतकश जनता और उनके संगठनों की अनुकूलता पर निर्भर है।

* * * *

MOROCCO

By **William Zartman.**

(Issued December 1971).

* * * *

PREAMBLE The Kingdom of Morocco a sovereign Muslim state.....

* * * *

ARTICLE 5. All Morocans are equal before the law.

ARTICLE 6. Islam is the religion of the state. The state guarantees the individuals freedom to worship.

* * * *

ARTICLE 100 The Monorchial form of the state and provisions relating to Islam shall not be subject to revision.

* * * *

मोरक्को

(दिसम्बर १९७१)

* * * *

उद्देश्यिकी मोरक्को का नृपतंत्र पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न मुस्लिम राज्य है ----- ।

* * * *

अनुच्छेद ५ - सभी मोरक्को नागरिक विधि के समक्ष समान है ।

अनुच्छेद ६ - इस्लाम राज्य का पंथ है । राज्य व्यक्ति के उपासना स्वातंत्र्य की गारंटी करता है।

* * * *

अनुच्छेद १०० - नृपतंत्र का शासकीय प्रतिमान और इस्लाम सम्बंधी प्रावधान संशोधनीय नहीं है ।

* * * *

MOZAMBIQUE

By **Eric B. Blaustein**

(Issued Oct., 1975)

* * * *

ARTICLE 26

All citizens, the People's Republic of Mozambique, enjoy the same rights and are subject to the same obligations whatever their colour, race, sex, ethnic origin, place of birth and religion, degree of education, social position or profession.

* * * *

ARTICLE 33

In the People's Republic of Mozambique, the state guarantees to citizens the freedom to practise or not, any relegion.

* * * *

मोजेम्बिक

(अक्टूबर १९७५)

* * * *

अनुच्छेद २६

जनवादी गणतंत्र मोजेम्बिक के सभी नागरिकों के, उनके चाहे जो वर्ण, मूलवंश, लिंग, मूलदेशीय, उद्‌गम, जन्म स्थान और पंथ, शिक्षण की उपाधि, सामाजिक स्थिति या व्यवसाय हो, एक समान ही अधिकार है और एक ही समान कर्तव्य हैं ।

* * * *

अनुच्छेद ३३

जनवादी गणतंत्र मोजेम्बिक में नागरिकों को राज्य पंथ का और पंथ विरोध का स्वातंत्र्य प्रदान करता है ।

* * * *

◆◆◆

NEPAL

By **Kunjarm. Sharma**

(Issued September, 1972).

* * * *

ARTICLE 3. This state (1) Nepal is an independent, indivisible and sovereign moranchial Hindu state.

* * * *

ARTICLE 10. Right to equality (1) All citizens are entitled to equal protection of law.

No discrimination shall be made against any citizen. In the application of general laws on grounds of religion race, sex, caste tribe and any of them.

* * * *

ARTICLE 14. Right to religion - Every person, having regard to the traditions, may profess and practise his religion as handed down from ancient times.

Provided that no person shall be entitled to convert another person from one religion to another.

* * * *

ARTICLE 20. His majesty the source of Power (1) In this constitution the word His majesty mean, His majesty the king for the time being reigning being a descendant of king Prithivi Narayan Shah and adherent of Aryan culture and Hindu religion.

* * * *

नेपाल

(सितम्बर १६७२)

* * * *

अनुच्छेद ३ - राज्य नेपाल एक स्वतंत्र, अविभाज्य और पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न हिन्दू नृपतंत्र है।

* * * *

अनुच्छेद १० - समानता का अधिकार (१) सभी नागरिकों को राज्य द्वारा बराबर संरक्षण, विधि के समक्ष है। (२) मूलवंश, लिंग, जाति, कबीले के आधार पर या उनके किसी आधार पर पंथ भेदभाव किसी भी नागरिक से नहीं होगा।

* * * *

अनुच्छेद १४ - पांथिक अधिकार - प्रत्येक व्यक्ति परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में अपने पंथ को जो प्राचीन काल से चला आ रहा है, मानने और आचरण करने का अधिकार है।

परन्तु किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं होगा कि, किसी का पंथ परिवर्तन, किसी अन्य पंथ में करे।

* * * *

अनुच्छेद २० - शक्ति का स्रोत महामहिम हैं - इस संविधान में महामहिम का अभिप्राय है, महामहिम राजाधिराज, वंशज राजा पृथ्वी नारायन शाह, जो राजत्व ग्रहण किये हैं और आर्य सभ्यता और हिन्दू पंथ के प्रति निष्ठा है।

* * * *

NIGER

By **Barrym Dennis**

(Issued October 1973)

* * * *

ARTICLE 2. The Republic of Niger shall be one and indivisible secular, democratic and social.

* * * *

ARTICLE 6. The Republic shall ensure to all equality before the law without distinction as to origin, race, sex or relegion.
It shall respect all religious beliefs.

* * * *

नाइजर

(अक्टूबर १९७३)

* * * *

अनुच्छेद २ - नाइजर, एक और अविभाज्य, पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सामाजिक गणतंत्र है ।

* * * *

अनुच्छेद ६ - गणतंत्र सभी नागरिकों को विधि समक्ष समानता से आश्वस्त करता है, उद्गम, मूलवंश, लिंग या पंथ के भेदभाव के बिना ।
यह सभी पांथिक मतवादों का सम्मान करेगा ।

* * * *

NORWAY

By Gisbert H. Flanz

(Issued March 1976)

THe Constitution of 17 May, 1814

* * * *

1. The Kingdom of Norway is a free, independent, indivisible and inalienable realm. Its form of government is a limited and hereditary Monarchy.

2. All inhabitants of the Kingdom shall have the right to free exercise of their religion.

   THe Evangelieat - Lutheran religion shall remain the official religion of the state. The inhabitants professing it shall be bound to bring up their children in the same.

* * * *

4. The King shall always profess the Evangelical Lutheran religion and maintain and protect the same.

* * * *

16. The King gives directions for all public church services and public worship, all meetings and conventions dealing with religions matters and shall ensure that the public teachers of religion follow the rules prescribed for them.

* * * *

100. There shall be liberty of the Press. No person must be punished for any writing, whatever its contents may be ----unless he wilfully and manifestly has either himself shown or incited others -----contempt of religion or morality ----

* * * *

नारवे

(मार्च १६७६)

* * * *

१- नारवे नृपतंत्र एक मुक्त, स्वतंत्र, अविभाज्य, और अहस्तान्तरणीय है। शासन का प्रतिमान सीमित और उत्तराधिकार प्राप्त नृपतंत्र है।

२- राज्य के सभी नागरिकों को अपने पंथ का आचरण करने का स्वातंत्र्य होगा।

इवानजेलीयट लूथरन पंथ, अधिकृत पंथ राज्य का होगा। नागरिक इस पंथ का आचरण करेगा और अपने बच्चों को भी इसमें शिक्षण करेगा।

* * * *

४- राजा सदैव इवानजेलीकल लूथरन पंथ का आचरण और प्रबंध तथा संरक्षण करेगा।

* * * *

१६ - सभी सार्वजनिक चर्चों और सार्वजनिक उपासना के लिए राजा निर्देश करेगा। सभी सभायें और संगमन जो पांथिक विषयों पर होगी, और सार्वजनिक पंथ प्रशिक्षक निर्धारित नियमों का पालन करते हैं, इसे सुनिश्चित करेगा।

* * * *

१०० - प्रेस का स्वातंत्र्य होगा। किसी व्यक्ति को कुछ भी लिखने पर दंड नहीं दिया जायेगा -----जब तक कि जानबूझकर और विचार पूर्वक स्वयं या दूसरों को उकसा कर पंथ की या नैतिकता की अवमानना न करे -----।

* * * *

◆◆◆

OMAN

By **Attiaabdelmone Imattia**

(Issued December,1974)

Oman has neither a written constitution, nor a parliament, nor political parties. The country is governed in the traditional Islamic manner with the Sultan Governing by decaree.

* * * *

The legal system is based entirely on the Islamic Shariah. This is the law laid down in the Quran, together with Sunna the traditions of the Prophet Mohamed.

* * * *

ओमान

(दिसम्बर १९७४)

ओमान का लिखित संविधान नहीं है, न कोई संसद है, न कोई राजनीतिक दल है ।.देश का राज्य परम्परागत इस्लामी प्रतिमान पर और सुलतान के आदेश द्वारा चलाया जाता है ।

* * * *

विधि-विधानों की व्यवस्था इस्लामी शरियत पर पूर्णतया आधारित है। यह विधान कुरान तथा सुन्ना, पैगम्बर मोहम्मद द्वारा प्रतिपादित है ।

* * * *

PAKISTAN

The Constitution of The Islamic Republic of Pakistan

(12th April, 1973 - amended 27th May 1981)

Preamble Faithful to the declaration made by the Founder of Pakistan----- that Pakistan would be a Democratic State based on Islamic principles of social justice;

* * * *

20. Islam shall be the State religion of Pakistan.

* * * *

21. No person shall be compelled to pay any special tax the proceeds of which are to be spend on the propagation or maintenance of any religion other than his own.

* * * *

22.

(3) Subject to law,

(a) no religious community or denomination shall be prevented from providing religious instruction for pupils of that community ---in any educational institution maintained wholly by that community or denomination.

* * * *

36. The state shall safeguard the legitimate rights and interests of minorities including their due representation in the Federal and Provincial services.

* * * *

पाकिस्तान

इस्लामिक गणतंत्र पाकिस्तान का संविधान

-(१२ अप्रैल १६७३ संशोधित २७ मई १६८१)

उद्देशिका पाकिस्तान के संस्थापक की घोषणा के प्रति निष्ठावान रहकर पाकिस्तान लोकतांत्रिक राज्य, सामाजिक न्याय के इस्लामी सिद्धान्तों पर आधारित होगा ।

* * * *

२०- इस्लाम पाकिस्तान के राज्य का पंथ होगा ।

* * * *

२१- किसी भी व्यक्ति को विशेष कराधान शुल्क नहीं देना पड़ेगा, जो अपने के अतिरिक्त किसी पंथ के प्रचार या रखरखाव में व्यय होगा ।

* * * *

२२ -

(३) विधि के अन्तर्गत

(अ) किसी भी पांथिक समुदाय या संगठन को अपने पंथ के अनुयायिओं को पांथिक शिक्षण देने को निषिद्ध नहीं किया जायेगा, उन विद्यालयों में जो अपने निजी समस्त व्यय से समुदाय या संगठन चलाते हो ।

* * * *

३६- राज्य अल्पसंख्यकों के वैधानिक अधिकारों तथा हितों का रक्षण करेगा, केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन में उनके प्रतिनिधित्व का भी अनुरक्षण करेगा।

* * * *

POLAND

Constitution of The Polish People's Republic

(Issued July 1972)

22nd July 1952

* * * *

ARTICLE 69

1. Citizens of the Polish Republic, irrespective of nationality, race & religion, enjoy rights in all spheres of public, political, economic, social and cultural life. Infringement of this principle by any direct or indirect granting of privileges or restriction of rights, on account of nationality race or religion, is punishable by law.
2. The spreading of hatred or contempt, the provocation of strife or the humiliation of man on account of national, racial or religious differences are forbidden.

* * * *

ARTICLE 70

1. The Polish People's Republic Guarantees freedom of conseience and religion to citizens. The Church and other religious bodies may freely exercise their religions functions. It is forbidden to prevent citizens from taking part in religious activities or rites. It is also forbidden to coerce any body to participate in religious activities or rites.
2. The Church is separated from the state. The principles of the relationship between Church and state are, together with the legal and patrimonial portion of religious bodies, determined by law.

* * * *

पोलैंड

जनवादी गणतंत्र पोलैंड का संविधान

(जुलाई १६७२)

२२ जुलाई १६५२

* * * *

अनुच्छेद ६६

१- पोलैंड गणतंत्र के नागरिक, राष्ट्रीयता, मूलवंश, पंथ के भेदभाव के बिना सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में समान अधिकारों से सम्पन्न होंगे। राष्ट्रीयता, मूलवंश या पंथ के अधिकारों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आघात होने, विशेषाधिकार प्रदान करने पर या अधिकारों पर प्रतिबन्ध होने पर विधि-विधान से दंडनीय है।

२- घृणा या अवमानना प्रसारित करने पर, संघर्ष उकसाने पर या मनुष्य को राष्ट्रीयता, मूलवंश या पांथिक मतभेदों के आधार पर अपमानित करना निषिद्ध है।

* * * *

अनुच्छेद ७०

१- पोलिश गणतंत्र नागरिकों को अन्तःकरण और पांथिक स्वातंत्र्य की गारंटी करता है। चर्च या अन्य पांथिक संस्थान अबाध रूप से अपने पांथिक समारोह कर सकते हैं। नागरिकों को किसी पांथिक गतिविधियों या समारोह में भाग लेने पर मना करना निषिद्ध है। किसी को किसी पांथिक कर्मकांड में भाग लेने को बाध्य करना निषिद्ध है।

२- चर्च, राज्य से पृथक है। चर्च और राज्य के सम्बंधों का सिद्धान्त, पांथिक संस्थानों के वैधानिक और सम्पत्ति ग्रहण के अधिकार विधि विधान द्वारा निश्चित होंगे।

* * * *

◆ ◆ ◆

PORTUGAL

By George Manake

(Issued June 1974 - July 1971)

* * * *

ARTICLE 5

* * * *

2. Equality before the law includes the right to be empowered in public office according to qualifications or service rendered and the negation of any privilege of birth, race, sex, religion---

* * * *

ARTICLE 8

Portuguese citizens shall enjoy the following rights, liberties and individual guarantees.

* * * *

III. Liberty and inviolability of religious beliefs and practices, on the ground of holding which nobody may be persecuted ----

* * * *

ARTICLE 43

* * * *

3. The instruction provided by the state-----the development of all moral and civic qualities----to the traditional principles of the country and to Christian doctrine and morality.

* * * *

ARTICLE 46

The Roman Catholic faith is considered to be the traditional religion of the Portuguese Nation. The

Catholic Church is recognized topossess legal entity. The system of relations between the state and religious creeds is sepration --

The Portuguese Catholic Missions in the overseas provinces and their training establishments will be protected and aided by the State as institutions of teaching and assistance and as instruments of civilization.

* * * *

ARTICLE 48

Public cemeteries shall be secular in character and Ministers of any religion may freely practise their respective rites therein.

* * * *

पोर्तगाल

(जून १९७४)

* * * *

अनुच्छेद ५

* * * *

२- विधिक समानता के अन्तर्गत यह अधिकार है कि सार्वजनिक पद योग्यतानुसार ग्रहण करने में या सेवा प्रदान करने पर, कोई विशेषाधिकार जन्म, मूलवंश, लिंग, पंथ ----- निषिद्ध होगा ----- ।

* * * *

अनुच्छेद ८

पुर्तगाली नागरिकों को निम्नांकित स्वतंत्रतायें और व्यक्तिगत गारंटी रहेगी :

* * * *

III. स्वतंत्रता और अखंडनीयता, पांथिक विश्वासों और आचरणों की होगी, इस आधार पर किसी को दंडित नहीं किया जायेगा ----- ।

* * * *

अनुच्छेद ४३

* * * *

३- शिक्षण जो राज्य द्वारा प्रदान किया जाये --------- नैतिक और नागरिकता की योग्यता का विकास ----- परम्परागत देश के सिद्धान्तों और ईसाई सिद्धान्तों और नैतिकता पर होगा ।

* * * *

अनुच्छेद ४६

रोमन कैथोलिक मत पुर्तगाल राष्ट्र का परम्परागत पंथ समझा जायेगा । कैथोलिक चर्च की वैधानिक सत्ता की मान्यता है । राज्य और पांथिक मतवादों के सम्बन्धों का प्रतिमान पार्थक्य का रहेगा ----- ।
समुद्र पार प्रदेशों पुर्तगाली कैथोलिक मिशन और उनके प्रशिक्षण संस्थान संरक्षित और राज्य द्वारा सहायता प्राप्त होंगे - जैसे अन्य शिक्षण संस्थान और सभ्यता प्रसार करने वाली संस्थायें ।

* * * *

अनुच्छेद ४८

सार्वजनिक कब्रगाह पंथनिरपेक्ष रहेंगे, और किसी पंथ का भी विश्वासी स्वतंत्रतापूर्वक अपने पांथिक आचरण उनके भीतर कर सकेगा ।

* * * *

♦ ♦ ♦

SOVIET UNION

Union of Soviet Socialist Republics

(Issued Sept. 1972)

ARTICLE 1

The Union of Soviet Socialist Republics is a socialist state of workers and peasants.

* * * *

ARTICLE 124

In order to ensure to citizens freedom of conscience, the church in the U.S.SR. is separated from the state, and the school from the church. Freedom of religious worship and freedom of anti- religious propaganda is recognised for all citizens.

ARTICLE 125

In confirmity with the interests of the working people, and in order to strengthen the socialist system, the citizens of the U.S.S.R. are guaranteed by law:
(a) Freedom of speech;
(b) Freedom of the Press;
(c) Freedom of assembly, including the holding of mass meetings;
(d) Freedom of street processions and demonstrations.

* * * *

ARTICLE 135

Election of Deputies are universal : all citizens of the U.S.S.R. who have reached the age of eighteen, irrespective of race----- sex, religion,-----social origin--- have the right to vote----

सोवियत यूनियन

सोवियत समाजवादी गणतंत्र

(सितम्बर १६७२)

अनुच्छेद १

सोवियत समाजवादी गणतंत्र, मजदूरों और कृषकों का समाजवादी राज्य है ।

* * * *

अनुच्छेद १२४

नागरिकों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता प्रदान करने के लिए चर्च और राज्य पृथक है, और शिक्षालय चर्च से पृथक हैं । सभी नागरिकों को पांथिक उपासना का स्वातंत्र्य है और पांथिक उपासना के विरोध का भी स्वातंत्र्य है।

अनुच्छेद १२५

श्रमिकों के हितों से सामंजस्य और समाजवादी व्यवस्था को शक्तिशाली बनाने के लिए यू०एस०एस०आर० के सभी नागरिकों को निम्नांकित विधिक गारंटी से आश्वस्त किया जाता है ।

(अ) वाक् स्वातंत्र्य;

(ब) प्रेसस्वातंत्र्य;

(स) एकत्रीकरण का स्वातंत्र्य, जिसके अन्तर्गत सभायें भी होंगी,

(द) सड़कों पर शोभायात्रा और प्रदर्शन

* * * *

अनुच्छेद १३५

प्रतिनिधि (डिप्टी) गणों का चुनाव सार्वजनिक होगा, सभी नागरिक जो अठारह वर्ष की आयु के हैं, मूलवंश -----लिंग, पंथ -----सामाजिक उत्पत्ति, -----के भेदभाव के बिना मतदान का अधिकार है ।

♦ ♦ ♦

SAUDI ARABIA

By **Abdul Munim Shakir**

(Issued March 1976)

The Constitution

Saudi Arabia is one of the countries of the world which does not have a modern constitution. It has often been stated that its constitution is the Quran.

सऊदीअरब

(मार्च १९७६)

संविधान

सऊदी अरब विश्व के उनदेशों में एक है, जिसका कोई आधुनिक संविधान नहीं है। यह कहा जाता है कि कुरान ही संविधान है।

* * *

SENEGAL

By **Jeswald W. Salacuse**

(Issued Feb., 1974)

* * * *

ARTICLE 1

The Republic of Senegal shall be secular, democratic and social. It shall ensure equality before the law for all citizens, without distinction as to origin, race, sex or religion.

* * * *

ARTICLE 6

The human person is sacred. The state shall have the obligation to respect it and to protect it.

* * * *

Religions And Religious Communities

ARTICLE 19

Freedom of conscience and the free practise and profession of religion shall, subject to the respect for public order, be guaranteed to all.

Religious institutions and communities shall have the right to develop without hindrance. They shall not be subject to direct supervision by the state. They shall regulate and administer their affairs autonomously.

* * * *

सेनेगाल

(फरवरी १९७४)

* * * *

अनुच्छेद १

सेनेगाल एक पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सामाजिक गणतंत्र है। जन्म मूलवंश, लिंग या पंथ के भेदभाव के बिना यह विधि के समक्ष नागरिकों की समानता सुनिश्चित करेगा।

* * * *

अनुच्छेद ६

मनुष्य विभूति है। राज्य का दायित्व होगा, वह मनुष्य का सम्मान और संरक्षण करे।

* * * *

पंथ और पांथिक समुदाय

अनुच्छेद १९

सार्वजनिक शांति का सम्मान करते हुए अन्तःकरण का स्वातंत्र्य, पंथ को स्वतंत्र रूप से मनाने और स्वतंत्र पांथिक आचरण करने की गारंटी सभी को रहेगी।

पांथिक संस्थानों और सम्प्रदायों को अबाध रूप से विकास का अधिकार होगा। उनकी प्रत्यक्ष देखरेख का अधिकार राज्य को नहीं होगा। वे स्वशासित रूप से नियंत्रित और प्रशासित होंगी।

* * * *

SINGAPORE

(By **Ahmad Ibrahim**

(Issued May 1984)

Freedom of Religion

* * * *

ARTICLE 15

(1) Every person has the right to progress and practise his religion and to propagate it.

(2) No person shall be compelled to pay any tax the proceeds of which are specially allocated in whole or in part for the purpose of a religion other than his own.

(3) Every religious group has the right-

(a) to manage its own religious affairs;

(b) to establish and maintain institutions for religious or charitable purposes; and

ARTICLE 16

(1) Without prejudice to the generality of Article 12 (All persons are equal before the law) there shall be no discrimination against any citizen-----on the grounds only of religion, race ----

* * * *

ARTICLE 69

(1) There shall be a Presidential council for Minority Rights.--

* * * *

सिंगापुर

(मई १९५८)

पांथिक स्वातंत्र्य

* * * *

अनुच्छेद १५

(१) प्रत्येक व्यक्ति को अपने पंथ का उन्नयन और आचरण करने तथा प्रचार करने का अधिकार होगा ।

(२) कोई व्यक्ति उस कर देने को बाध्य नहीं होगा, जिसको पूर्णरूप से या आंशिक रूप से उस पंथ में व्यय किया जाये, जो उसका अपना नहीं है ।

(३) प्रत्येक पांथिक गुट का यह अधिकार होगा -

(a) अपने पांथिक विषयों का स्वयं प्रबंधन करे,

(b) पांथिक या सार्वजनिक हित की संस्थायें स्थापित करे और उन्हें व्यवस्थित करे ----- ।

अनुच्छेद १६

(१) अनुच्छेद १२ के सामान्यीकरण को प्रभावित किये बिना (सभी की विधिक समानता) केवल पंथ तथा मूलवंश -----के कारण भेदभाव किसी नागरिक के साथ नहीं होगा ।

* * * *

अनुच्छेद ६९

(१) अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिए राष्ट्रपति की एक परिषद होगी --- ।

* * * *

SRI LANKA

(Issued September 1972)

(Budha Year 2515)

* * * *

1. Sri Lanka is Free, Sovereign and Independant republic.

* * * *

6. The Republic of Sri Lanka shall give to Buddhism the foremost place and accordingly it shall be the duty of the state to protect and foster Buddhism while assuring to all religions the rights granted by section 18 (1) d

* * * *

16. (2) The Republic is pleadged to carry forward the progressive advancement towards the establishment in Sri Lanka of a Socialist democracy.

(a) Full realization of the all rights and freedoms of citizen.---

* * * *

(t) Raising the moral and cultural standards of the people;

* * * *

(9) The state shall endeavour to create the necessary economic and social environment to enable people of all religious faiths to make a living reality of their religious principles.

* * * *

18. (1) In the Republic of Sri Lanka -

(a) all persons are equal before law ----.

* * * *

(d) every citizen shall have the right to freedom of thought conscience and religion. This right shall include the freedom to have or to adopt a religion or belief of his choice, and the freedom -----to manifest his religion or belief in worship, observance, practice and treaching;

* * * *

श्रीलंका

(सितम्बर १९९२)
बुद्ध वर्ष २५१५

* * * *

१- श्रीलंका स्वतंत्र, पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न और मुक्त गणतंत्र है ।

* * * *

६- श्रीलंका गणतंत्र बुद्ध पंथ को सर्वोच्च स्थान देगा और इस प्रकार राज्य का कर्तव्य होगा बुद्ध पंथ का रक्षण और पोषण करे, सभी पंथों को, उन अधिकारों से जो अनुच्छेद १८ **(i)** में है, उनसे आश्वस्त करे।

* * * *

१६-(२) गणतंत्र प्रतिबद्ध है कि श्रीलंका को एक समाजवादी लोकतंत्र की दिशा में अग्रसर कर प्रगतिशील बनाये ।

(अ) नागरिक के पूर्ण अधिकार और स्वतंत्रताओं का साक्षात्कार - - - - - ।

* * * *

(ट) जनता के नैतिक और सांस्कृतिक स्तर का उन्नयन,

* * * *

(६) राज्य आर्थिक और सांस्कृतिक, इस प्रकार की परिस्थितियाँ निर्माण करेगा कि जिससे सभी पांथिक विश्वासों की जनता अपने जीवन को अपने प्रतिष्ठित विश्वासों के अनुरूप निर्वाह कर सके ।

* * * *

१८(१) श्रीलंका के गणतंत्र में -

(अ) सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान हैं - - - - - ।

* * * *

(द) प्रत्येक नागरिक को विचार, अंतःकरण और पांथिक स्वतंत्रता होगी । इसमें अपनी रुचि का पंथ या मतवाद ग्रहण करने की छूट होगी - - - - और पंथ के अनुकूल विश्वास, उपासना, मान्यता, आचरण तथा शिक्षण देने का स्वातंत्र्य होगा ।

* * * *

SUDAN

(Issued February 1964)

ARTICLE 1

The Democratic Republic of the Sudan is a unitary, democratic, socialist and sovereign republic, and is part of both the Arab and African entities.

* * * *

ARTICLE 4

The Sudanese Socialist Union is the sole political organization.

* * * *

ARTICLE 9

The Islamic Law and Custom shall be main sources of legislation. Personal matters of non-muslims shall be governed by their personal laws.

* * * *

ARTICLE 16

(a) In the Democratic Republic of Sudan, Islam is the religion and society shall be guided by Islam being the religion of the majority of its people and the State shall endeavour to express its values.

(b) Christianity is the religion in Democratic Republic of the Sudan, being professed by a large number of it's citizens who are guided by Christianity and the state shall endeavour to express its values.

(c) Heavenly religious and the noble aspects of spiritual beliefs shall not be insulted or held in contempt.

(d) The State shall treat followers of religious and noble beliefs without discrimination ---.

(e) The abuse of religious and noble spiritual belief for political exploitation is forbidden -----

* * * *

ARTICLE 38

All persons------are equal before the law, -----irrespective of origion, race------or religion.

* * * *

ARTICLE 47

Freedom of belief, prayer, and performance of religious practices, ----is guaranteed.

* * * *

सूडान

(फरवरी १६६४)

अनुच्छेद १

सूडान एक लोकतांत्रिक संघ, एकात्मक, लोकतांत्रिक समाजवादी और पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणतंत्र है। अरब और अफ्रीका दोनों की सत्ता का एक भाग है।

* * * *

अनुच्छेद ४

सूडान की समाजवादी यूनियन, अकेला राजनीतिक संगठन है।

* * * *

अनुच्छेद ६

इस्लाम के विधि-विधान और रीति रिवाज मुख्य स्रोत, विधि-विधान के होंगे। गैर मुसलमानों के विषय उनके व्यक्तिगत विधि - विधानों से नियंत्रित होंगे।

* * * *

अनुच्छेद १६

(अ) लोकतांत्रिक गणतंत्र सूडान में इस्लाम पंथ मान्य है और समाज इस्लाम के मार्ग दर्शन पर चलेगा, क्योंकि यह पंथ बहुमत का है, और राज्य इसकी मूलवत्ता को अभिव्यक्त करने का प्रयास करेगा।

(ब) ईसाई पंथ, लोकतांत्रिक गणतंत्र सूडान में, क्योंकि एक बड़ी संख्या इस पर आचरण करती है और ईसाई पंथ से मार्ग दर्शन प्राप्त करती है, और राज्य इसकी मूल्यवत्ता की अभिव्यक्ति का प्रयास करेगी।

(स) स्वर्गिक पांथिक और पवित्र विचार जो आध्यात्मिक मतवादों में है, उनका अपमान और अवमानना नहीं होगी।

(द) राज्य पांथिक और पवित्र विचार के अनुयायिओं से कोई भेद भाव नहीं करेगा।

(ई) पंथ और पवित्र आध्यात्मिक विचारों का दुरुपयोग राजनीतिक शोषण के लिए निषिद्ध है -----।

* * * *

अनुच्छेद ३८

उत्पत्ति, मूलवंश -----या पंथ के भेदभाव के बिना -----सभी व्यक्ति -----विधि के समक्ष समान है -----।

* * * *

अनुच्छेद ४७

विश्वास, उपासना तथा पांथिक साधना, आचरण की स्वतंत्रता की गारंटी -----है ।

* * * *

SPAIN

(Issued June, 1974)

Law on The Principles of The National Movement

of 17th May 1958

* * * *

The Spanish nation regards as a badge of honour its respect for the LAW of GOD, according to the doctrine of the Holy Catholic, Apostolic and Roman Church, the one and true and inseparable faith of the national conscience, which inspires the legislation of the country.

Statute Law of The Spanish People

(17th July 1945 - Amended 1967)

* * * *

ARTICLE SIX

The profession and practice of the catholic religion, which is the religion of the Spanish State, shall enjoy official support. The state shall assume the responsiblility of protecting religious freedom.

* * * *

Law of Succession

(Amended 10th January 1967)

ARTICLE ONE

Spain, as a political unit, is a Catholic, Social and representative State which, in keeping with her tradition, discharges herself constituted into a kingdom.

* * * *

स्पेन

(जून १६७४)

राष्ट्रीय आन्दोलन के सिद्धान्तों का विधि-विधान

१७ मई १६५८

* * * *

स्पेन राष्ट्र ईश्वर के विधि विधान के प्रति श्रद्धा को सम्माननीय मानता है, देश के विधि विधानों की जिसने प्रेरणा दी, वह पवित्र कैथोलिक अपोसालिक और रोम की चर्च और राष्ट्रीय चेतना के लिए सत्य और अपृथक निष्ठा है।

स्पेनिश जनता के विधि - विधान

(१७ जुलाई १६४५ - संशोधित १६६७)

* * * *

अनुच्छेद ६

कैथोलिक पंथ स्पेन राज्य का है, इसकी मान्यता और आचरण को आधिकारिक संरक्षण प्राप्त रहेगा। राज्य पर पंथ के स्वातन्त्र्य संरक्षण का उत्तरदायित्व है।

* * * *

उत्तराधिकार के विधि-विधान

(संशोधित १० जनवरी १६६७)

अनुच्छेद १

स्पेन कैथोलिक राज्य है, एक राजनीतिक इकाई की भाँति सामाजिक और प्रतिनिधिमूलक है, अपनी परम्परागत प्रतिमान में राजाशाही अपने कर्तव्यों का निर्वाह करेगी।

* * * *

SWITZERLAND

By Gisbert H. Flanz & Other.

(Issued March 1982)

In The Name of Almighty God

* * * *

ARTICLE 49

1. Freedom of creed and concience is inviolable.
2. None may be forced to participate in a religious association, to attend religious teaching or to perform a religious act nor be subjected to penalties of any sort because of his religious belief.

* * * *

4. The exercise of civil or political rights may not be restricted by any prescription of condition of an eccelesiastical or religious nature.
5. Relegious belief do not exempt any one from carrying out civic duties.

ARTICLE 50

1. The free exercise of acts of worship is guaranteed within the limits set by public order and morality.

* * * *

4. The establishment of bishoprics on swiss territory is the subject to the authorisation of the confederation.

ARTICLE 51

The order of the jesuits and affiliated societies may not be admitted to any part of Switzerland and their members are forbidden any sort of activity in church or school.

* * * *

स्विटजरलैंड

(मार्च १९८२)

सर्वशक्तिमान ईश्वर के नाम

* * * *

अनुच्छेद ४९

१- मतवाद और अन्तःकरण का स्वातंत्र्य अखंडनीय है ।

२- किसी को भी पांथिक संस्थान तथा पांथिक शिक्षण में भागीदारी या पांथिक कृत्य के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, किसी को उसे पांथिक विश्वासों के लिए किसी प्रकार दंडित नहीं किया जायेगा ।

* * * *

४- सामाजिक या राजनीतिक अधिकार, पांथिक कर्मकाण्डों या पारंपरिक पंथीय प्रवृत्तियों से प्रतिबंधित नहीं होंगे ।

५- पांथिक विश्वासों के कारण किसी को नागरिक दायित्व से मुक्ति नहीं मिल सकती ।

अनुच्छेद ५०

१- सार्वजनिक व्यवस्था और नैतिकता की मर्यादा के अन्तर्गत पांथिक उपासना की गारंटी है ।

* * * *

४- कनफेडरेशन को यह अधिकार होगा कि वह विशप स्थान की स्थापना की अनुमति प्रदान करे ।

अनुच्छेद ५१

जैस्यूटस् और उनसे सम्बंधित संस्थानों को स्विटजरलैंड के किसी भाग में प्रवेश की अनुमति नहीं है, और उनके सदस्योंकी कोई भी गतिविधि चर्च या विद्यालयों में निषिद्ध है ।

* * * *

SYRIA

By Peter B. Heller

(Issued June 1974).

PREAMBLE

The socialist Arab Baith Party is the first movement in the Arab homeland which gives Arab Unity its revolutionary meaning connects the nationalist with the socialist struggle

* * * *

ARTICLE 3

1. The religion of the President of the Republic shall be Islam.
2. The Islamic jurisprudence is a main source of lagistlation.

* * * *

ARTICLE 35

1. The freedom of a faith is guaranteed. The State respects all religions.
2. The state guarantees the freedom to hold any religiousrites provided they do not disturb the public order.

* * * *

सीरिया

(जून १९७४)

उद्देश्यिका

अरब की गृहभूमि पर समाजवादी अरब बैथ पार्टी प्रथम आन्दोलन है, जिसने अरब एकता को क्रान्तिकारी अर्थ दिये हैं तथा राष्ट्रवाद को समाजवादी संघर्ष से सम्बद्ध किया है।

* * * *

अनुच्छेद ३

१- गणतंत्र के राष्ट्रपति का पंथ इस्लाम होगा।

२- इस्लाम का विधि दर्शन, विधि - विधानों का प्रमुख स्रोत होगा।

* * * *

अनुच्छेद ३५

१- आस्था के स्वातंत्र्य की गारंटी है। राज्य सभी पंथों को सम्मानित करता है।

२- राज्य किसी पंथ के कृत्यों के स्वातंत्र्य की गारंटी करता है, यदि वे सार्वजनिक व्यवस्था अशान्त न करें।

* * * *

TAIWAN

Republic of China

By Jamed, Sey Mour

(Issued February 1981)

* * * *

ARTICLE 8

Personal freedom shall be guaranteed to the people

* * * *

ARTICLE 13

The people shall have freedom of relegious belief.

* * * *

ARTICLE 22

All other freedoms and right of the people that are not detrimental to social order or public welfare shall be guaranteed under the constitution.

* * * *

ताइवान

चीन का गणतंत्र

(फरवरी १६८१)

* * * *

अनुच्छेद ८ जनता के वैयक्तिक स्वातंत्र्य की गारंटी है,

* * * *

अनुच्छेद १३ जनता को पंथिक विश्वासों का स्वातंत्र्य है,

* * * *

अनुच्छेद २२ संविधान सभी अन्य स्वतंत्रताओं और जनाधिकारों की गारंटी करता है, जो सामाजिकव्यवस्था और जनकल्याण के लिए अहितकर न हो ।

* * * *

TOGO

By Mathewjodzie Wez & Other

(Issued July 1980).

ARTICLE 1

Togo is a Republic, indivisible, secular, democratic and social.

* * * *

ARTICLE 4

All Togoless shall be equal in rights and duties without distinction as to origin, sex, belief or opinion.

* * * *

टोगो

(जुलाई १६८०)

अनुच्छेद १

टोगो एक गणतंत्र है - अविभाज्य, पंथ निरपेक्ष, लोकतांत्रिक और सामाजिक ।

* * * *

अनुच्छेद ४

सभी टोगो वासियों के समान अधिकार और दायित्व होंगे, बिना किसी उत्पत्ति, लिंग, विश्वास या मतवाद के भेदभाव के ।

* * * *

TUNISIA

1972-76

Gisbert H. Flanz.

(Issued July, 1977)

* * * *

ARTICLE 1

Tunisia is a free state, Independant and Sovereign: its religion is the Islam-----

* * * *

ARTICLE 8

The liberties of opinion, expression, the press publication, assembly and association are guaranteed, and exercised within the conditions defined by the Law.

* * * *

ARTICLE 40

Any Tunision of Muslim religion who has a Tunision father and parental grand father, and these of whom have been Tunision citizen without discontinuity, may present himself as a candidate for the Presidency, of the republic.

* * * *

ट्यूनिसिया

(जुलाई ७७)

* * * *

अनुच्छेद १

ट्यूनिसिया एक मुक्त राज्य है, स्वतंत्र, पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न, इसका पंथ इस्लाम है ------।

* * * *

अनुच्छेद ८

मतवाद, अभिव्यक्ति, प्रेस, प्रकाशन, एकत्रीकरण और संगठन के स्वातंत्र्य की गारंटी है, और यह विधि विधान से परिभाषित मर्यादा के अन्तर्गत है।

* * * *

अनुच्छेद ४०

कोई भी ट्यूनिसिया निवासी मुसलमान जिसके ट्यूनिसिया निवासी पिता और पितामह हों, जो निरन्तर ट्यूनिसिया के नागरिक रहे हों, वे गणतंत्र के राष्ट्रपति के प्रत्याशी हो सकते हैं।

* * * *

TURKEY

By Gisberth.flanz.

* * * *

ARTICLE 2

The Turkish Republic is a nationalistic, democratic, secular and social state governed by the rule of law based on human rights and the fundamental tenets set forth in the preamble.

* * * *

ARTICLE 12

All individuals are equal before the law irrespective of language, race, sex, political opinion, philosophical views religion or religious sect. No privileges shall be granted to any individual family group or class.

* * * *

ARTICLE 19

Every individual has freedom of conscience, religious faith and opinion.

Forms of worship and religious ceremonies and rites are free.

No person shall be compelled to worship or participate in religious rites... No person shall be reproached for his religious faith and belief.

Religious education and teaching shall be subject to the individual own will.....

No person shall be allowed to exploit and abuse religion or religious feelings......

* * * *

ARTICLE 154

The department of Religious Affairs,which is incorporated in general administration, discharges function prescribed by a special law.

* * * *

तुर्की

* * * *

अनुच्छेद २

तुर्की गणतंत्र एक राष्ट्रीय, लोकतांत्रिक, पंथ निरपेक्ष और सामाजिक राज्य है, जिसका शासन विधि के अनुसार मानव अधिकार और मूलभूत तत्वों पर जो उद्देश्यिका में वर्णित हैं, आधारित है ।

* * * *

अनुच्छेद १२

प्रत्येक नागरिक बिना किसी भाषा, मूलवंश, लिंग, राजनीतिक विश्वास, दार्शनिक विचार, पंथ या पांथिक सम्प्रदाय के भेदभाव के विधि समक्ष समान होगा । किसी व्यक्ति परिवार, गुट या वर्ग को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं होगा -----

* * * *

अनुच्छेद १९

प्रत्येक नागरिक को अतःकरण, पांथिक आस्था और विश्वास का स्वातंत्र्य होगा ।

उपासना पद्धति और पांथिक समारोहों और उत्सवों का स्वातंत्र्य है ।

किसी व्यक्ति को उपासना या पांथिक कर्मकांड में भाग लेने को बाध्य नहीं किया जायेगा ----किसी व्यक्ति को उसकी पांथिक आस्था और विश्वासों के लिये अपमानित नहीं किया जायेगा ।

पांथिक शिक्षण और प्रशिक्षण व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर होगा ।

किसी भी व्यक्ति को पांथिक शोषण या पंथ या पांथिक भावनाओं के दुरुपयोग की अनुमति नहीं होगी ।

* * * *

अनुच्छेद १५४

पांथिक विषयों का विभाग, सामान्य प्रशासन के अन्तर्गत कार्य करेगा, और विशिष्ट विधिक व्यवस्था के अनुरूप कार्य करेगा ।

UGANDA

By Albert P. Blaustein

(Issued Nov., 1981)

(Constitution into force- 8th Sept. ,1967)

* * * *

8 (1) Every person in Uganda shall enjoy equal protection of the law of Uganda.

(2) Every person in Uganda shall enjoy the fundamental right to each and all of the following ----

(b) Freedom of conscience, of expression and of assembly and association ---

* * * *

16 (1) Except with his own consent, no person shall be hindered in the enjoyment of his freedom of conscience,----the said freedom includes freedom of thought and of religion, freedom to change his religion or belief, and freedom either alone or in community with others, and both in public and in private, to menifest and propagate his religion or belief in worship, teaching, practice and observance.

* * * *

(3) No person shall be compelled to take any oath which is contrary to his religion or belief or to take any oath in a manner which is contrary to his religion or belief----.

* * * *

युगांडा

(नवम्बर १९८१)

(संविधान प्रवर्तन ८ सितम्बर १९६७)

* * * *

८ (१) युगांडा के प्रत्येक व्यक्ति को विधि का समान संरक्षण प्राप्त होगा।

(२) युगांडा के प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक मूलभूत और सभी अधिकार प्राप्त होंगे, जो निम्न हैं -

* * * *

(ब) अन्तःकरण, अभिव्यक्ति, एकत्रीकरण, और संस्थाबद्ध होने का स्वातन्त्र्य होगा - - - -

* * * *

१६ (१) बिना अपनी इच्छा के कोई व्यक्ति अपने अतःकरण के स्वातंत्र्य के लिये प्रतिबन्धित नहीं होगा, - - - - -इन स्वतंत्रताओं के अन्तर्गत विचार और पंथ की स्वतंत्रता, अपने पंथ या आस्था परिवर्तन की स्वतंत्रता, अकेले या समुदाय के साथ रहने का स्वातंत्र्य; निजी रूप से या सार्वजनिक रूप से अपने पांथिक विश्वासों को प्रकट या प्रचार करने, या उपासना; शिक्षण, आचरण या मनाने का स्वातंत्र्य।

* * * *

(३) किसी व्यक्तिको अपने पंथ या विश्वास के प्रतिकूल शपथ ग्रहण करने, या शपथ ग्रहण करने का प्रतिमान,जो उसके पंथ या विश्वास के प्रतिकूल हो, के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।

* * * *

UNITED ARAB EMIRATES

By M. Che Rif Bassiouni

(Issued July 1973)

(2 December 1971 Provisional Constitution of the Arab Emirates)

* * * *

ARTICLE 6

The Union shall be part of the Great Arab Nation, to which it is bound by the ties of religion, language, history and common destiny. The people of the Union shall be a single people, and shall be part of the Arab Nation.

ARTICLE 7

Islam shall be the official religion of the Union. The Islamic Shari'ah shall be a principal source or legislation in the Union. The official language of the Union shall be Arabic.

* * * *

ARTICLE 12

The foreign policy of the Union shall be directed towards support for Arab and Islamic causes -------

* * * *

ARTICLE 15

The family shall be the basis of society. Its support shall be religion, ethics and patriotism.

* * * *

ARTICLE 25

All persons shall be equal before the law. No discrimination shall be practised between citizens of the Union by reason of race, nationality, religious belief or social position.

* * * *

ARTICLE 32

The freedom to hold religious ceremonies in accordance with established custom shall be safeguarded--------

* * * *

यूनाइटेड अरब अमीरात

(जुलाई १९७१)

(२ दिसम्बर १९७१-अरब अमीरात का अस्थायी संविधान)

* * * *

अनुच्छेद ६

यूनियन महान अरब राष्ट्र की अंग होगी, ओ कि पंथ, भाषा, इतिहास और समान भाग्य से जुड़ी है। यूनियन की जनता एक व्यक्तित्व होगी, और अरब राष्ट्र की भाग होगी।

अनुच्छेद ७

इस्लाम यूनियन का अधिकृत पंथ होगा। इस्लाम की शरियत विधि विधानों की प्रमुख स्रोत यूनियन में होगी। यूनियन की अधिकृत भाषा अरबी होगी।

* * * *

अनुच्छेद १२

यूनियन की विदेश नीति की दिशा, अरब और इस्लाम पंथ के समर्थन की होगी।

* * * *

अनुच्छेद १५

समाज का आधार परिवार होगा। इसका समर्थन पंथ, नैतिकता और देशभक्ति द्वारा होगा।

* * * *

अनुच्छेद २५

सभी मनुष्य विधि के समक्ष समान होंगे। यूनियन के नागरिकों के मध्य मूलवंश, राष्ट्रीयता, पांथिक विश्वास या सामाजिक स्तर से कोई भेदभाव नहीं होगा।

* * * *

अनुच्छेद ३

पांथिक समारोहों की स्वतंत्रता स्थापित रीतिरिवाजों के अनुकूल संरक्षित रहेगी।

UNITED KINGDOM

By MICHAEL CURTIS

(Issued Feb., 1974).

Constitution

Britain has no formal written constitution. There is no single document in which are enshrined the basic rules and frame work of its political system, nor any set of laws which are endowed with a higher legal efficiency than other laws or rules.Rather, the constitution of the United Kingdom consists of British political practise and behaviour based on certain principles known to and accepted by these participating in the system.

यूनाइटेड किंगडम

(फरवरी १६७४)

संविधान

ब्रिटेन का कोई औपचारिक, लिखित संविधान नहीं है। कोई ऐसा अकेला अभिलेख नहीं हैं, जिसमें राजनीतिक व्यवस्था के मूलभूत नियम और संरचनात्मक आधार हो, न ऐसी कोई विधि विधान है, जो सामान्य विधि विधानों से अधिक उच्च स्तरीय प्रभावी हो। यूनाइटेड किंगडम का संविधान ब्रिटिश राजनीतिक आचरण और व्यवहार पर है, और जो जानमाने और स्वीकृत सिद्धान्तों पर आधारित है। जिनसे सहमति व्यवस्था में भागीदारी जनता की है।

♦ ♦ ♦

UNITED STATES OF AMERICA

By Jay A.Sigler and Other

(Issued Nov., 1981).

Articles in addition to and amendment of, the constitution of the United States of America, proposed by Congress, and ratified by the legistratures of the several states pursuant to the fifth Article of the original constitution.

ARTICLE (1)

Congress shall make no law respecting an establishment of religion, or prohibiting the free exercise thereof; or abridging the freedom of speech or of the press, or right of the people peaceably to assemble, and to petition the government for a redress of grievances.

* * * *

संयुक्तराष्ट्रअमेरिका

(नवम्बर १९८१)

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के संविधान में,कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित और कई प्रदेशों के विधायका द्वारा समर्पित अनुच्छेदों में संवर्धन तथा संशोधित पाँचवाँ अनुच्छेद-मूल संविधान से संयोजित है ।

अनुच्छेद (१)

कांग्रेस ऐसा कोई विधि -विधान पारित नहीं करेगी, जिससे किसी पंथ के स्थापन का सम्मान हो, या जिसके द्वारा पांथिक आचरण निषिद्ध हो,या वाक् या प्रेस का स्वातंत्र्य, एकत्रीकरण का जनता का अधिकार और उत्पीड़न के समाधान के लिये शासन से परिवाद निषिद्ध नहीं होगा।

* * * *

UPPER VOLTA

By JEswald W. Salacuse

(Issued Feb., 1981).

Constitution

1. Freedoms

1. Allmen are born and remain free and equal in respect to all their rights.

* * * *

3. The Republic shall guarantee to all equality before the law regardless of origin, race, sex, religion or opinion. All distinctions based on birth, class or caste .... are hereby abolished.
Every act of racial, ethnic, regional or religious discrimination, as well as all propaganda of a racist or regional character, shall be punishable by law.

The State & National Soverignty

ARTICLE - 1

Upper Volta is a democratic, secular and social Republic.It is one and indivisible.

* * * *

अपर बोलटा

(फरवरी १६८१)

संविधान

१ - स्वतंत्रतायें

१- सभी मनुष्य स्वतंत्र उत्पन्न हुये और रहेंगे अपने समान अधिकारों के लिए स्वतंत्र रहेंगे ।

* * * *

३- जन्म , मूलवंश, लिंग, पंथ या मतवाद के आधार पर भेद भाव के बिना गणतंत्र सभी की विधि के समक्ष समानता की गांरटी करता है ।

सारे भेद भाव जन्म, वर्ण या जाति - - - - -का उन्मूलन किया जाता है। प्रत्येक गतिविधि जो, मूलवंश, मूलदेशीय, क्षेत्रीय या पांथिक भेदभाव करती है, तथा मूलवंश या क्षेत्रयिता का प्रचार करती है , वह वैधानिक रूप से दंडनीय है ।

राज्य और पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्रीयता

अनुच्छेद १

अपर वोल्टा एक लोकतांत्रिक, पंथनिरपेक्ष, तथा सामाजिक गणतंत्र है। यह एक और अविभाज्य है ।

* * * *

VIETNAM

Socialist Republic of Vietnam

By Gisberth Flang And Other.

(Issued May 1981).

* * * *

ARTICLE 4

The Communist Party of Vietnam, the vanguard and general staff of the Vietnemese working class, armed with Marxism-Leninism, is the only force leading the state and society and the main factor determining and successes of the Vietnamese revolution.

* * * *

ARTICLE 38

Marxism- Leninism is the ideological system guiding the development of Vietnamese society.

* * * *

ARTICLE 39

The State pays attention to strengthening the material infrastructure, institutes regulations -----thereby involving the entire nation in the building of a new culture and a new society ----

* * * *

ARTICLE 68

Citizens enjoy freedom of worship, and may practise or not practise a religion.
No one may misuse religions to violate State laws or policies.

* * * *

वियतनाम समाजवादी गणतंत्र

(मई १६८१)

* * * *

अनुच्छेद ४

वियतनाम की कम्युनिष्ट पार्टी, वियतनाम का श्रमिकवर्ग, मार्क्सवाद और लेनिनवाद से शस्त्र सज्जित एकमात्र शक्ति है, जो राज्य और समाज का नेतृत्व कर रही है , और मुख्य तत्व वियतनामी क्रान्ति को सफल करने के लिये है ।

* * * *

अनुच्छेद ३८

मार्क्सवाद-लेनिनवाद सैद्धान्तिक व्यवस्था है, जो वियतनामी समाज के विकास की मार्गदर्शक है ।

* * * *

अनुच्छेद ३६

राज्य, भौतिक अन्तःरचना, संस्थान, नियमादि - - - - सारे राष्ट्र को सम्मिलित कर एक नई संस्कृति तथा नया समाज बना रहा है । - - - -

* * * *

अनुच्छेद ६८

नागरिकों को उपासना का स्वातंत्र्य है, और पांथिक आचरण करे या न करे । - - - -
किसी को पंथ का दुरुपयोग , राज्य के विभिन्न विधान या नीतियों का अतिक्रमण करने के लिये नहीं है ।

* * * *